पटना विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध

भारतेन्दुयुगीन काव्य में भक्तिधारा

डॉ० रजन
एम० ए०, पी-एच० डी०



रचना प्रकाशन
४५ए खुल्दाबाद इलाहाबाद १

प्रथम संस्करण
जनवरी १९७५



प्रकाशक
जीत मलहोत्रा
रचना प्रकाशन
४५, ए खुल्दाबाद
इलाहाबाद



मुद्रक
इलाहाबाद प्रेस
३७०, रानी मंडी
इलाहाबाद ३

मूल्य पचहत्तर रुपये

भूमिका

भारतेन्दुजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे उन महाकवियो म थे, जो अपनी पूर्व परम्परा का निर्वाह करते हुए अपनी भी एक परम्परा छोड़ जाते हैं। एक नई लीक बना जाते हैं। वे पूर्ववर्ती साहित्य का स्वागत करते हैं। ऐसा देखा जाता है कि वे काव्य-जगत मे पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य की प्राय सभी धाराओ का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक तरफ उनकी कविता मे वीरगाथा काल अपनी आवाज बुलद करता है, तो दूसरी तरफ भक्तिकाल की भागीरथी अपनी चतुरगिनी (कृष्णाश्रयी, रामाश्रयी, नानाश्रयी, प्रेमाश्रयी) धाराओ के साथ किलोलें करती है। एक तरफ वे राम के तुलसी हैं तो दूसरी तरफ कृष्ण के सूर की भाँति अपनी करनी पर पछताते हैं। शृगार की जब बारी आती है तो केवल, भूषण, मतिराम आदि की पक्ति मे न बैठकर घनानन्द और रसखान की बगल मे जा बैठते हैं। इस प्रकार शृगार की सुन्दर सरिता उनके काव्य मे प्रवाहित हो जाती है। अपने चौंतीस वर्ष की अल्पायु म वीरगाथाकाल, भक्तिकाल और शृगारकाल—का त्रिवेणी-सगम बना जाते हैं। रीति के बहते हुए गन्दे प्रवाह को रोक देते हैं, उसे नया मोड़ देते हैं। इस प्रकार काव्य जगत् म उन्होंने अपने जीवन पर्यन्त तथा उसके बाद भी काव्यजगत् का प्रतिनिधित्व किया। इसे ही हमने उनका युग माना है, जो उनके जन्म से लेकर उनकी मृत्यु के बाद के भी १५ वर्षो के समय को घेरता है। यह पच्चास वर्ष उनका है, इस अवधि मे साहित्यिक गतिविधियाँ उनसे अनुप्रेरित हैं।

उनका अपना क्रान्तिकारी व्यक्तित्व है। वे आधुनिक काव्य के प्रवर्तक हैं। उनका जन्म रीतिकाल में होता है। रीतिकाल मे वे पलते हैं लेकिन रीतिकाल से निकल कर एक अलग राह बना लेना, कविता की एक अलग लोक का निर्माण कर लेना, कोई बिरला ही कर सकता है। भारतेन्दु ने यही किया। युग नियामक कलाकार यही करता है। उनके सहयोगिया ने उनके द्वारा निर्मित मार्ग का अनुसरण किया। रास्ते के अवरोध को मिटाकर जनजागरण की स्वर को बुलन्द किया। जनवादी विचारधारा का प्रचार किया। मानवतावादी दृष्टिकोण पनप उठा। पौराणिक कृष्ण लौकिक भावभूमि पर उतर आये। राम की उपासना से भय मिश्रित स्नेह-सरिता का प्रवाह मन्द हो गया। नयनाभिराम राम लोकाभिराम बन गये।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध म भारतेन्दुयुगीन कविता मे भक्ति धारा पर सविस्तार वर्णन किया गया है। इसके विषय का अध्ययन छ परिच्छेदो म सम्पन्न हुआ है। ये परिच्छेद निम्नाकित हैं—

अध्याय १—आधारभूत सामग्रिया का सर्वेक्षण

अध्याय २—भक्ति का स्वरूप और हिन्दी साहित्य म उसकी विवृत्ति

(क) भारतेन्दु पूर्व हिन्दी साहित्य मे भक्ति का स्वरूप विकास

(अ) निर्गुणधारा। (ब) सगुणधारा।

(ख) भक्ति का दर्शन साहित्य और उसके आचार्य।

अध्याय ३—भारतेन्दु युग की प्रमुख काव्यधारायें और उनकी प्रवृत्तियाँ।

अध्याय ४—भारतेन्दुकालीन भक्तिकाव्यधाराएँ और उनकी विविध विशेषताएँ।

अध्याय ५—भारतेन्दुकालीन प्रमुख भक्ति कवि एव उनकी भक्तिभावना।

अध्याय ६—भारतेन्दुयुगीन अल्पज्ञात भक्तकविया का जीवन और उनकी भक्तिपरक रच

प्रथम अध्याय का शीर्षक है आधारभूत सामग्रियों का सर्वेक्षण। इसमे भारतेन्दु और भारतेन्दु युग पर उपलब्ध समस्त आधारभूत सामग्रियो का सर्वेक्षण किया गया है। भक्ति का स्वरूप विकास नामक दूसरे अध्याय का अध्ययन तीन भागो मे किया गया है। प्रथम मे भक्ति की परिभाषा और हिन्दी साहित्य म उसकी विवृत्ति किस प्रकार हुई, इसकी चर्चा है। दूसरे भाग मे भारतेन्दु पूर्व भक्ति के स्वरूप विकास की कथा को व्यक्त करने के लिये वेद, सहिता उपनिषद् पुराण आदि ग्रन्थो मे भक्ति तत्व को खोजने का प्रयत्न किया गया है। तीसरे भाग म दार्शनिक सभी सम्प्रदायो का सक्षिप्त परिचय दिया गया है।

अध्याय तीन का शीर्षक है 'भारतेन्दु युग की प्रमुख काव्यधारायें और उनकी प्रवृत्तियाँ' (भक्तिधारा के अतिरिक्त) इसमे भारतेन्दुयुगीन प्रमुख काव्यधाराओ (राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक और प्राकृतिक) की विशद् विवेचना की गई है।

अध्याय चार का शीर्षक 'भारतेन्दुकालीन भक्तिकाव्यधाराएँ और उनकी विविध विशेषताएँ' है। इस परिच्छेद के प्रारम्भ मे भारतेन्दुकालीन कवियो ने अपने पूर्ववर्ती कवियो से कहाँ तक प्रेरणा ली है, इसका उल्लेख किया गया है। इसके बाद निर्गुण काव्यधारा, सगुणकाव्यधारा (नवधाभक्ति) रामकाव्यधारा और कृष्णकाव्यधारा की तद्युगीन कविता पर कहाँ तक प्रभाव पडा है, इसकी विवेचना की गई है। तद्युगीन कविता को कृष्णकाव्यधारा म प्रचलित सम्प्रदायो की कसौटी पर कसने की चेष्टा की गई है। परिच्छेद के अन्त म तद्युगीन बहुदेवोपासना की विशेषताओ पर विचार किया गया है। यह अध्याय शोधकर्त्ता का स्वतन्त्र गवेषणा एव व्यापक अध्ययन का फल है।

पचम अध्याय का शीर्षक 'भारतेन्दुयुगीन प्रमुख भक्त कवि एव उनकी भक्तिभावना' है। इस अध्याय मे तद्युगीन बारह भक्त कवियो का परिचय एव उनकी भक्तिभावना पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार एक साथ विस्तार के साथ उनकी भक्तिभावना पर प्रकाश डालने का यह पहला प्रयास है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का षष्ठ अध्याय 'भारतेन्दुयुगीन अल्पज्ञात भक्त कवियो का परिचय एव उनकी भक्तिपरक रचनाए है। इस परिच्छेद की सामग्री शोधकर्त्ता की मौलिक गवेषणात्मक उपलब्धि है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की रचना करते समय शोधकर्त्ता को अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थो की खोज म बहुत सग्रहालयों एव पुस्तकालयो में जाना पडा। नागरीप्रचारिणी सभा का सग्रहालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का पुस्तकालय, राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना सग्रहालय, पटना विश्वविद्यालय का पुस्तकालय एव स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय का विभागीय पुस्तकालय, भारतकलाभवन वाराणसी, काशी विद्यापीठ का पुस्तकालय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन पटना, नागरीप्रचारिणी सभा, आरा आदि सस्थाओ के अधिकारियो के प्रति शोधकर्त्ता कृतज्ञता प्रकट करता है जिन्होंने बडो उदारतापूर्वक सहयोग प्रदान करके इस कार्य को सम्पन्न कराया।

प्रस्तुत विषय पर अनुसधान कार्य करने की प्रेरणा गुरुवर डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' निदेशक राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, (वर्तमान रीडर, मगध विश्वविद्यालय, गया) से मिली। गुरुवर डा० ब्रह्मदेव मण्डल, प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय से इस विषय पर कार्य करने की आज्ञा प्राप्त हुई। उनकी असीम कृपा और स्नेह से यह शोधप्रबन्ध सम्पन्न हुआ। उन्ही के आशीर्वाद का यह सुमनगुच्छ है।

अनुसंधान कार्य म अनेक विद्वानो के ग्रन्थो, लेखो और खोज निबन्धो से शोधकर्त्ता ने लाभ उठाया है, अत यह उन सभी यशस्वी साहित्यकारो का अनुगृहीत है।

लेखक

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

अ ध्याय १

(क) आधारभूत सामग्रियो का सर्वेक्षण

अतस्साक्ष्य

यही मैंन भारतेन्दुयुगीन कविता की भक्तिधारा का अध्ययन प्रस्तुत करने मे जिन पुस्तको, पत्र पत्रिकाओ और हस्तलिखित प्रतिया से सहायता प्राप्त की है उनका सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर यह दिखलाने का प्रयास कर रहा हूँ कि मेरे अध्ययन म उनका कितना योगदान है। भारतेन्दुजी इस युग के युग नेता हैं। अत हम उन्ही के ग्रन्थ से अध्ययन-सूत्र की प्राप्ति प्रारम्भ करते हैं—

(१) भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग १-२ सपादक श्री ब्रजरत्नदास, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी —इसका दूसरा सस्करण स०२०१० वि मे प्रकाशित हुआ। तद्युगीन कविता को भक्तिकाल की कसौटी पर कसन के लिये इस पुस्तक से काफी उद्धरण प्रस्तुत किये गये हैं।

(२) प्रेमघन सर्वस्व, सपादक, प्रभाकेश्वरप्रसाद उपाध्याय, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, १९९६ वि० —प्रस्तुत पुस्तक म 'प्रेमघनजी की कवित्व शक्ति को समझने म तथा अपने अध्ययन सिद्धान्तो की पुष्टि म इस पुस्तक की विशेष उपयोगिता सिद्ध हुई है।

(३) राधाकृष्णदास ग्रन्थावली, सपादक श्रीश्यामसुन्दरदास, प्रकाशक इण्डियन प्रेस, प्रयाग १९३० —इस पुस्तक की राधाकृष्णदास की काव्य प्रतिमा एव अध्ययन सूत्रा की प्रामाणिकता सिद्ध करने म सहायता ली गई है जिसके उदाहरणा का विशेष महत्व है।

(४) हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, सपादक, शिवपूजन सहाय, प्रकाशक, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद् पटना सन् १९६३ ई० — प्रस्तुत पुस्तक की मेरे अध्ययन मे विशेष महत्ता है। इसमे १९ वी शताब्दी के पूर्व के उन साहित्यकारा के विवरण दिये गये हैं जिनकी रचनाओ के उदाहरण अथवा पुस्तको के नाम उपलब्ध हैं। इसमे राधाबल्लम जोशी, रामफल राय, ठग मिश्र, ससार नाथ पाठक, कामदमणि, नमदेश्वरप्रसाद सिंह, बिहारीलाल चौबे, और अक्षय कुमार आदि कविया का सक्षिप्त परिचय एव उनकी रचनाएँ दी गई हैं।

(५) सतकाव्य, लेखक परशुराम चतुर्वेदी, प्रकाशक, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९५२ — प्रस्तुत पुस्तक से सत सालिगरामजी की काव्य प्रतिमा एव उनकी रचनाओ पर प्रकाश डालने मे सहायता ली गई है। अत यह मेरे लिये महत्वपूर्ण है।

(६) शिवाशिव शतक, लेखक नमदेश्वर सिंह, सपादक नकछेदी तिवारी, 'अजान कवि,' प्रकाशक भारतजीवन प्रेस, काशी १८९८ इस पुस्तक म नर्मदेश्वर सिंह की शिव उपासना सम्बन्धी सभी कविताएँ सग्रहीत है।

(७) रसिकविलास रामायण, लेखक, अक्षयकुमार, प्रकाशक, बिहार बन्धु प्रेस, बाकीपुर १९३६ — यह पुस्तक भारतेन्दु युग मे रामकाव्य का प्रकाश-स्तम है।

(८) सुकवि सरोज, लेखक, गौरीशकर द्विवेदी, प्रकाशक सनाढ्यादश ग्रन्थमाला, बुन्देलखण्ड १९९० —इस पुस्तक म विभिन्न कविया का सक्षिप्त जीवन और उनकी रचनाएँ दी गई हैं। इसी क्रम मे हम अडकूलाल जी वैद्य का परिचय प्राप्त होता है। ये भारतेन्दुकालीन भक्त कवि हैं।

(९) कविता कौमुदी, भाग २ सपादक रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक, हिन्दी रत्नमाला कार्यालय प्रयाग, १९७७ —यह पुस्तक आधुनिक युग के विभिन्न कवियों की रचनाओ का सग्रह है

इससे मुझे भारतेन्दुयुगीन कवियो की रचनाओ का अध्ययन करने में सहायता मिली। विशेषकर कवि विनायकराव का परिचय यही से प्राप्त होता है।

(१०) प्रताप लहरी सपादक, नारायणप्रसाद अरोडा, प्रकाशक, भाष्म एण्ड ब्रदर्स कानपुर —प्रस्तुत पुस्तक मे प० प्रतापनारायण मिश्र की समस्त कवितायें सग्रहीत है, इनसे मुझे उद्धरण देने म काफी सहायता प्राप्त हुई है।

(११) स्फुट कविता —यह बालमुकुन्द गुप्त जी की कविताओ का सग्रह है। इसका प्रकाशन भारत जीवन प्रेस, कलकत्ता से यशोदानन्द अखौरी ने करवाया। इस पुस्तक से गुप्त जी की भक्तिपरक रचनाओ का उद्धृत करने मे सहायता प्राप्त हुई।

(१२) रत्नेश शतक, लेखक रामरतन सनाढ्य, प्रकाशक, नेशनल प्रेस, कानपुर — रामरतन सनाढ्य भारतेन्दुयुगीन अल्पज्ञात महान् कवि हैं। इस पुस्तक म उनकी रचनाएँ सगृहीत हैं।

(१३) ब्रजमाधुरी सार, सपादक, वियोगी हरि, प्रकाशक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, स० २००६ वि०, —प्रस्तुत पुस्तक ब्रजभाषा के प्राचीन एव अर्वाचीन भक्त कवियो के जीवन तथा उनकी रचनाओ पर प्रकाश डालती है। मुझे नारायण स्वामी, ललितकिशोरी और ललितमाधुरीजी की रचनाओ से उनकी भक्तिभावना को समझने म विशेष सहायता मिली है।

पत्र एव पत्रिकाएँ

(१) सतवाणी अक (कल्याण विशेषाक), वर्ष २६, स०२०११ गीता प्रेस गोरखपुर —प्रस्तुत पत्र सतो की वाणी का सग्रह है। इससे मुझे भारतेन्दुयुगीन युगलानन्दशरण, नारायण स्वामी, गुरुदत्त दास जी दीनदास जी आदि सतो की वाणियो का अवलोकन करने का मौका मिला।

(२) भक्तचरिताक (कल्याण विशेषाक), वर्ष २६, २००८, गीता प्रेस, गोरखपुर —इस अक मे भक्तो का चरित्र प्रकाशित किया गया है। मुझे भारतेन्दुयुगीन रामसनेही रघुराज सिंह, युगलानन्द, बनादास, जानकीवरशरण आदि का प्रामाणिक जीवनचरित इस अक से प्राप्त हुआ।

(३) कविवचन सुधा, सपादक, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र —इसके १८८३ नवम्बर अक म राधा चरन जोशी की रचनाए प्रकाशित हैं। ये भारतेन्दुयुगीन अल्पज्ञात भक्त कवि हैं।

(४) साहित्य —यह पटना से प्रकाशित होने वाला त्रैमासिक पत्र है आजकल बन्द है। इसके वर्ष, ३,१९५२ अक १ म नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह का जीवन चरित्र प्रकाशित मिला। यह मेरे लिये काफी उपयोगी हुआ।

(५) ब्रजभारती —ब्रज-साहित्य मडल, मथुरा से प्रकाशित होने वाला यह त्रैमासिक पत्र है इसके सम्पादक प्रभुदयाल मीतल जी हैं। इसके वर्ष २ अक १, स० २०११ म ब्रजभाषा के अमर गायक 'राधावल्लभदेव जी' का सक्षिप्त जीवन प्रकाशित है। ये भारतेन्दु युगीन अल्पज्ञात कवि हैं। अत यह अक मेरे लिये अध्ययन सूत्र प्रस्तुत करता है।

(६) सरस्वती —इसका हीरक जयन्ती अक सन् १९०० काफी लाभप्रद है। इसम बिहारी चौबे का जीवन चरित्र एव उनकी कविता प्रकाशित है।

(७) सुधा —यह एक मासिक पत्र है। इसके वर्ष २, खड २, जुलाई १९२६ ई० में दामोदर सहाय का एक निबन्ध 'ससारनाथ पाठक' छपा है। इस निबन्ध मे लेखक ससारनाथ पाठक का जीवन एव उनकी रचनाएँ उद्धृत करता है।

(८) हरिश्चन्द्र कौमुदी —इसके सम्पादक बाबू पचम सिंह है। इसका १९५० का अक बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसमे वामनाचार्य गिरी का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। गिरी जी प्रेमघन जी के समकालीन थे और एक आशु कवि थे।

(९) हिन्दी प्रदीप —यह प० बालकृष्ण भट्ट के सम्पादकत्व मे प्रयाग से निकलता था। इसके जिल्द ३० सख्या ३, १९०२ ई० मे कवि छेदालाल जी का जीवन प्रकाशित है तथा उनकी रचनाएँ दी गई हैं।

(१०) हरिश्चन्द्र चन्द्रिका—भक्तरत्न हरिदास जी की कवितायें १८७४ के खड १०, सख्या १ पृष्ठ ३६ पर प्रकाशित है। अत यह मेरे लिये उपयोगी सिद्ध हुई।

(११) परिषद पत्रिका बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना की देखरेख मे—यह छपने वाला पत्र है, इसके अक ३, १९६१ मे 'बिहार के रसिक सत' निबन्ध प्रकाशित है। इससे हमे भारतेन्दुयुगीन रसिक कवियो के बारे जानकारी प्राप्त होती है।

(१२) श्रीरामदास महिमा—यह एक हस्तलेख है। मुझे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् से प्राप्त हुआ। इसमे रामलोचन मिश्र की कविताएँ सगृहीत हैं।

(१३) हसदूत—यह ठाकुर जगमोहन सिंह का लिखा हुआ एक हस्तलेख हैं जो मुझे नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्राप्त हुआ। इसम ठाकुर साहब की कविताएँ सगृहीत है।

(१४) बालकृष्ण भट्ट की डायरी—यह मुझे डा० मधुकर भट्ट, प्राध्यापक ज्ञानपुर डिग्री कालेज के सौजन्य से प्राप्त हुई। इसमे भट्टजी की कुछ कविताएँ सगृहीत हैं। भट्ट जी की भक्ति-परक रचनाएँ इसी से उपलब्ध हुइ।

(१५) पारिजात रामायण—यह अडकूलाल जी वैद्य द्वारा लिखित हस्तलेख है। यह राममक्ति का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। मुझे नागरीप्रचारिणी सभा काशी स प्राप्त हुआ।

ह्यसाक्ष्य

यहा हम भारतेन्दु के काव्य और तत्कालीन कविता पर आलोचना साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत : यह देखने का प्रयास करेंगे कि कहाँ तक हमारे अध्ययन से सम्बन्धित विचार विमश हो चुका है। वसिह हिन्दी के प्रथम इतिहासकार और भारतेन्दुजी के समकालीन थे। अत हम उन्ही से अपने यन-सूत्र की प्राप्ति प्रारम्भ करते हैं—

(१) शिवसिंह सरोज, लेखक शिवसिंह सेंगर —शिवसिंह सरोज का प्रकाशन स० १९३४ ० म हुआ। यद्यपि शिवसिंह जी भारतेन्दु के समकालीन थे फिर भी उन्हें भारतेन्दु जी के सभी ग्रन्थ न को नही मिले। सरोज के प्रकाशन क समय तक भारतेन्दुजी की अधिकाश पुस्तकें निकल चुकी । सरोज मे केवल भारतेन्दुजी के प्रेममाधुरी के ४६, १०८ सख्यक दो सवैयो का उदाहरण प्रस्तुत या गया है। भारतेन्दुजी के बारे मे उन्होंने केवल इतना ही लिखा है, जो निम्नांकित है—

'यह विद्या के प्रचार मे रात दिन लगे रहते हैं। सब विद्याओ की पुस्तकें अपन सरस्वती भडार इकट्ठी की हैं। सब प्रकार के गुणीजन इनकी सभा मे विराजमान रहते हैं। यह भाषा और उर्दू नो जवानो के कवि हैं। 'सुन्दरी तिलक' नामक बहुत ही ललित सग्रह छपवाया है और जो ग्रथ होंने बनाये हैं उनके हालत से हम नावाकिफ हैं।'[1]

(१) सचित्र भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का वृहत् जीवन लेखक श्रीशिवनन्दन सहाय—प्रस्तुत । का प्रकाशन खडगविलास प्रेस बाकीपुर से १९०५ ई० म हुआ। इसम कुल २८ परिच्छेद हैं।

१ शिवसिंह सेंगर शिवसिंह सरोज, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सस्करण १८९९ ई०, पृ० ५०९ ५१०।

इस पुस्तक के अध्याय ६ म कविता शक्ति और अध्याय २० मे उनके धम पर विचार विमश किया गया है।

कविता शक्ति वाला अध्याय मेरे कुछ काम का है। लेखक ने वहाँ निम्नलिखित प्रकाश डाला है—

'भारतेंदुजी जन्मजात प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार थे, इससे वे नवरसो के अतिरिक्त वात्सल्य, सख्य, भक्ति एव आनन्द नामक चार अन्य रसो को पुष्ट तर्कों द्वारा प्रतिपादित किये।

विशेष कर भारतेंदु की प्रतिमा सम्बन्धी बातो मे ही इस अध्याय की इतिश्री हो जाती है। काव्य ग्रथो की समालोचना एक अध्याय है। वहा लेखक ने धम एव राजभक्ति सम्बन्धी ग्रन्थो को छोड शेष काव्य-ग्रन्थो का सक्षिप्त आलोचनात्मक परिचय दिया है।

(३) हिन्दी नवरत्न, लेखक मिश्रबन्धु—मिश्रबधुआ ने हिन्दी नवरत्न के २५ पृष्ठा मे भारतेन्दु साहित्य की विशेषताएँ और उनके गद्य पद्य के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। प्रमुखत भारतेंदु काल के बारे मे मिश्रबन्धु की स्थापनाएँ बडे काम की है। उनम निम्नांकित मेरे अध्ययन की सीमा म है—

(क) भारतेंदु के काव्य मे जातीयता के पीछे सबस अधिक और बढिया वणन प्रेम का है। इनमें ईश्वरीय तथा सासारिक दोना प्रकार का प्रेम विशेष रूप से था।

(ख) इनमे विविध विषयो की यथावत प्रकार से वणन करने की क्षमता थी। प्राकृत तथा अन्य विषयो का वणन भी इनकी कविता म प्रचुर माना मे हुआ है।

(ग) प्राचीन रीति पद्धति का अनुसरण कर इन्होन किसी भी पथ का सृजन नही किया।

(घ) इन्होने राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सुधारो पर प्रकाश डाला है।

(ङ) इन्होने भक्ति तीथ, व्रत और धम पर विशेष रूप से कविता लिखी है।

(४) हिन्दी साहित्य का इतिहास, लेखक रामचन्द्र शुक्ल—आचाय शुक्ल के पूव हिन्दी साहित्य का क्रमबद्ध अध्ययन नही प्रस्तुत किया गया था। इस अभाव की पूर्ति शुक्ल जी ने की। इसके पूर्व वे भारतेन्दु जी के बारे म नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १४, सख्या १० और भाग १५ सख्या १० मे अपने विचारो को व्यक्त कर चुके थ। इसे ही उन्होने चिन्तामणि के प्रथम भाग मे सुनियोजित ढग से प्रस्तुत किया। इसी सामग्री का सशोधित एव परिवर्धित रूप हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उपयोग किया गया है। भारतेन्दु जी के बारे मे आपने निम्नांकित दृष्टिकोणो से अध्ययन किया है—

१ जीवन और साहित्य का पुनस्थापन—भारतेंदुजी ने साहित्य के क्षेत्र मे उतर कर हमारे जीवन के साथ हमारे साहित्य को फिर से लगा लिया और बडे भारी विच्छेद से उन्होंने बचाया।

२ प्राचीन और नवीन का अपूव सामजस्य—भारतेंदुजी अपनी सवतोमुखी प्रतिमा के बल से एक ओर तो पद्माकर और द्विजदेव की परम्परा मे दिखाई पडते थे दूसरी ओर बगदेश के मधुसूदन दत्त और हेमचन्द्र की श्रेणी मे एक ओर तो राधा-कृष्ण की भक्ति मे झूमते हुए नई भक्तमाल गूँथते दिखाई देते थे, दूसरी ओर टीकाधारी बगुला भगतों की हँसी उडाते तथा स्त्री शिक्षा समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर सामजस्य भारतेंदु की कला का विशेष माधुय है।

३ राष्ट्रीयता—कविता की नवीनधारा के बीच भारतेंदु की वाणी का सबस ऊँचा स्वर देशभक्ति का था।

(५) हिन्दी साहित्य, लेखक श्यामसुन्दर दास—इसका प्रकाशन १९३० मे हुआ। बाबू श्याम सुन्दर दासजी भारतेन्दु को शृगारी कविता के प्रतिकूल आदोलन का श्रेय देते हैं। उनका विश्वा है कि—

'हिन्दी की हास्यकारिणी शृगारी कविता के प्रतिकूल आन्दोलन का श्रीगणेश उस दिन से समझा जाना चाहिये जिस दिन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने भारतदुर्दशा नाटक के प्रारम्भ मे समस्त देशवासियो को सम्बोधित करके देश की गिरी हुई अवस्था पर उन्हें आसू बहाने को आमन्त्रित किया

'रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा, हा ! भारत दुदशा न देखी जाई॥'

रीति कविता की शताब्दियो से चली आती हुई गन्दी गली से निकल शुद्ध वायु म विचरण करने का श्रेय हरिश्चन्द्र को पूरा पूरा प्राप्त है *शृगारिक कविता की प्रबल वेग से बहती हुई जिस धारा* का अवरोध करने म हिन्दी के प्रसिद्ध वीर कवि भूषण समथ नही हुए थे, भारतेन्दु उसम पूणत सफल हुए। इसमे भी उनके उच्च पद का पता लग सकता है।

आचाय रामचन्द्र शुक्ल और बाबू श्यामसुन्दर दास जी दोना हिन्दी के मूधन्य आलोचक थे, लेकिन दोना ने भारतेन्दु और उनके काल के साथ न्याय नही किया। या तो आप दोनो ने भारतेन्दु की कुछ कविताओ को देकर सस्ती स्थापनाएँ की लेकिन उनके युग पर उन लोगो ने दृष्टिपात नही किया। यह एक भारी भूल हो गई है।

(६) **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र**, लेखक व्रजरत्न दास —इस पुस्तक का लेखन हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग के आग्रह पर हुआ। यह पुस्तक ३५० पृष्ठो मे भारतेन्दुजी का सर्वाङ्ग जीवन प्रस्तुत करती है। यह पुस्तक पाँच अध्याया मे है। हर भाग के अध्यायो का विषय क्रम से सूची है। चतुर्थ अध्याय मे उनकी कविता की आलोचना की गई है। यह पहली पुस्तक है जिसम भारतेन्दु काव्य पर न्याय-पूवक इतना विषद समीक्षा प्रस्तुत की गई है। अध्याय चार मेरे काम का है। इसम उनकी भक्ति या ईश्वरोन्मुख प्रेम की चर्चा करते हुए लेखक ने लिखा है —

'निश्चय ही भारतेन्दु बाबू पद-परम्परा के अन्तिम महान् कवि हैं। परन्तु पदा की सख्या का अनुमान भ्रान्त है। भारतेन्दु ने ८५० और ८७५ के बीच पदो का निर्माण किया है। यदि उनकी कजलियो होलियो एव अन्य गाना को भी भूल से पद मान लिया जाय तो भी यह सख्या १२५० से अधिक नही जाती। भारतेन्दु के पदा को दो ही प्रमुख भागो मे बाटा जा सकता है। विनय और कृष्ण चरित। कृष्णचरित म भी बाललीला सम्बन्धी पद बहुत कम हैं। गोपिया के प्रेम का ही यहा प्राधान्य है। पदों के मुख्य रस हैं शान्त शृङ्गार तथा शृङ्गार म भी सयोग की प्रमुखता है।''

(७) **आधुनिक हिन्दी साहित्य (१९४१)**, लेखक डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय —यह पुस्तक *१८५० से १९०० तक की हिन्दी साहित्य की गति विधियो पर प्रकाश डालती है।* इसमे काव्य की नवीन धारा पर ७६ पृष्ठो का एक अध्याय है। इस अध्याय म लेखक का सारपूण मतव्य इस प्रकार है—

''काव्य की नई धारा के विकास की इस सक्षिप्त समीक्षा से यह प्रगट हो गया होगा कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उसके गुरु थे। उन्होने निश्चय किया और पूण रूप से हिन्दी साहित्य मे नवीनता को जन्म दिया। इस काय मे उनको अपन सहयोगियो से बहुत सहायता मिली। इन कविया की विचार धारा ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक आन्दोलना का अनुसरण किया। परन्तु आलोच्य काल में कविता को पुरानी धारा का ही प्राधान्य रहा। राधा कृष्ण की प्रेम लीला और भक्ति के घने जगल मे नवीनता स्वच्छ और चमकती हुई पतली जलधारा के समान है। उसम प्रचारात्मक रहते हुए भी सरलता, स्पष्टता स्वभाविकता, हृदय की सच्ची अनुभूति, शैली की मनोहरता या आधुनिक विचार धारा की जन्मदात्री होने की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उनका स्थान सदैव ऊँचा रहेगा।'

सात वर्षों के बाद १९४८ मे इस ग्रथ का सशोधित एव परिवर्द्धित सस्करण निकला। इसके एक परिशिष्ट मे कविता की पुरानी धारा पर २७ पृष्ठो का नया अध्याय जोड दिया गया है। यह अध्याय भारतेदुयुगीन भक्तिकाल पर सक्षिप्त प्रकाश डालता है। यह मेरे विशेष काम का है। लेखक ने भक्तिकाल के बारे मे लिखा है

'वह भक्तिकाल की रचनाओ का अनुकरण मात्र है और उनकी अपेक्षा अत्यत शिथिल और और हीन है। यद्यपि अब भी अनेक नये धार्मिक सम्प्रदाय जन्म ले रहे थे तो भी वैष्णव और शैव सम्प्रदायो का ही अधिक जोर था। राम और कृष्ण की भक्ति के अतिरिक्त अब के कवियो ने दास्य और विनय भावनाओ से प्रेरित होकर अन्य देवी-देवताओ, जैसे भैरव, दुर्गा काली आदि तथा लीलाओ और तीर्थ क्षेत्रो की रचना करना आरम्भ कर दिया था। भक्ति के इसी रूप का इस काल मे विशेषता रही।'

(८) हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, लेखक आचार्य चतुरसेन शास्त्री, १९४६ ई० पहली बार इस पुस्तक म १८६७ से १८८८ तक के २१ वर्ष को भारतेदु युग के नाम से पुकारा गया। लेखक ने इस युग के गद्य एव पद्य पर सक्षिप्त रूप से विचार किया है। साथ ही भारतेदु युग के गद्य के लेखक और कवि के बारे मे लेखक ने अपना विचार प्रकट किया है। कुल १ अध्यायो म इस युग की सारी साहित्यिक विधा की रूप रेखा तैयार की गई है। भक्ति के विषय म लेखक का मतव्य निम्नाकित है—

(१) रामचरित्र —राम के पौराणिक चरित्र के आधार पर कुछ रचनाए हुई। नई बात यह हुई कि रामचरित्र को शृगार मे अतिरजित करके कुछ रचनाएँ की गई जो अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गई।

(२) कृष्णचरित्र —इस युग मे कृष्ण का पौराणिक रूप लुप्त होने लगा। बहुत कवियो ने कृष्ण के पौराणिक चरित्र की चर्चा की। अधिकाश मे गोपीवल्लभ कृष्ण का ही विषय वर्णन किया गया।

(३) शिव-साहित्य —यद्यपि हिन्दू धर्म म शिव का माहात्म्य अति महान् है और प्राचीन है पर वह रामकृष्ण की भाति बाद म आकर फीका पड गया। इस युग मे शिव पूजा सम्बन्धी दो रचनाएँ हुई।

(४) पौराणिक-काव्य —इसकी रचनाएँ बहुत हुई परन्तु कोई उत्कृष्ट काव्य नही लिखा गया। "सत चरित्र और स्तुति काव्य की भी इनी गिनी साधारण रचनाए हुई।

(६) आधुनिक काव्य धारा १९४३ ४४, लेखक डा० केसरीनारायण शुक्ल —प्रस्तुत पुस्तक म २३४ पृष्ठ है। इनम ८२ पृष्ठो को आधुनिक काव्य का प्रथम युग भारतेन्दु युग ने घेरा है। भारतेदुकालीन आधुनिक काव्य का विवेचन डा० शुक्ल ने आठ अध्यायो मे किया है। इसम छठा अध्याय (धार्मिक कविता) मेरे काम का है। विद्वान् लेखक ने चार पृष्ठो म तद्युगीन भक्तिकाल पर विचार विमर्श किया है। लेखक का विचार है— भारतेदु युग की धार्मिक कविता मे भक्तिकाल की परम्परा का निर्वाह मात्र हुआ है। इस समय के कवियो मे इस दृष्टि से ऐसी स्वतत्र उद्भावना के दर्शन नही होते जिससे इनकी कविता अल्पकाल की धार्मिक भावना स रजित होकर राम और कृष्ण की स्तुति प्राचीन भक्त कवियो के समान ही करते थे। पुरान भक्त कवियो के सदृश्य इन कवियो ने भी अपने उपास्यदेव के प्रति अपनी कामनाएँ निवेदित की है। इनकी भक्तिपूर्ण रचनाओ म विनय और आत्म समर्पण की भावना है इतना निर्विवाद है कि भारतेदु युग म भक्तिकाल की उपासना की पद्धति और आदर्श का चलन था और व्यापक शक्ति के रूप मे धर्म की सूक्ष्म भावना का अभाव था।

(१०) आधुनिक काव्यधारा का सास्कृतिक स्रोत, लेखक डा० केसरीनारायण शुक्ल, १९४७ – इस पुस्तक म, भारतेन्दु काव्य, नामक एक अध्याय है जो ४३ पृष्ठो मे है। इसम लेखक ने भारतेन्दु के काव्य पर तो विचार किया है साथ ही साथ उसने युगीन कविता पर भी विचार किया है। उप सहार मे लेखक का जो विचार है वह द्रष्टव्य है।

'भारतेन्दु काल का सबस बडा महत्व इस बात म है कि इस युग के कवियों ने न तो शता ब्दियो से आती हुई भारतीय सस्कृत की धारा से अपना सम्बन्ध विच्छेद किया और न वे उन्नति के मार्ग के कटक बने। इससे क्रान्ति काल मे भारतीय सस्कृति के सद् स्वरूप को सामने रखते हुए उन्होंने सास्कृतिक रक्षा का जो सदेश दिया उसका आज भी महत्व है।'

(११) भारतेन्दु युग, लेखक डा० रामविलास शर्मा —प्रस्तुत पुस्तक डा० शर्मा के लेखो का सग्रह है। इसम तद्युगीन कविता पर एक आलोचक की दृष्टि से विचार नही किया गया है। यद्यपि भारतेन्दु युग पर डा० शर्मा की यह पहली पुस्तक है। इसके १४ वें अध्याय मे भारतेन्दु और प्रताप नारायण मिश्र की कविता पर विचार किया गया है तथा १५ वें अध्याय मे प्रेमघन तथा अन्य कवि पर विचार हुआ है लकिन मेरे अध्ययन से कोई सम्बन्ध नही है। लेखक का दृष्टिकोण नवीनता की तरफ विशेष है।

(१२) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, लेखक डा० रामरतन भटनागर, १९४३ —प्रस्तुत पुस्तक मे ४८ पृष्ठो का एक परिशिष्ट है। इसी म भारतेन्दु की कविता पर विचार हुआ है। ब्रजरत्नदास जी ने जो प्रयास किया था उसी प्रयास का सुदृढ आकार प्रस्तुत पुस्तक में झलक मारता है। तत्कालीन भक्ति परक रचनाओ के बारे मे लेखक का निम्नाकित वक्तव्य है—"भक्ति, शृगार और ससार की नश्वरता के कवित्त सवैये जिनमें परम्परा का पालन मात्र था, नवीनता नही।"

(१३) भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, लेखक डा० किशोरी लाल गुप्त, प्रकाशक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, २०१३ वि० —इस पुस्तक म डा० गुप्त न भारतेन्दु की समस्त कविताओ का क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत किया है। साथ ही साथ अन्य सहयोगी कवि म तद्युगीन ९ प्रमुख कवियो का सक्षिप्त जीवन परिचय और उनके काव्य की समीक्षा दी गई है। पुस्तक बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है।

(१४) हिन्दी साहित्य (उद्भव और विकास), लेखक डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक, अतरचन्द कपूर एन्ड सन्स, देहली —इस पुस्तक म भारतेन्दु साहित्य पर दृष्टिपात करते हुए विद्वान् लेखक ने यह स्वीकार किया है कि भारतेन्दु ने कविता को इन दानो अधोगतियो (साम्प्रदायिक व्याख्यायें और कविता का राज-दरबारो की तरफ आकर्षण) के पथ से उबारा। उन्होंने एक तरफ काव्य को फिर से भक्ति की पवित्र मन्दाकिनी म स्नान कराया और दूसरी तरफ से निकाल कर लोक-जीवन से सामने खडा कर दिया।

(१५) २०वीं शताब्दी हिन्दी साहित्य-अधूरे सदर्भ, लेखक डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रकाशक साहित्य भवन प्रा० लि० इलाहाबाद, १९६६ —इस पुस्तक म डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय न सम्भवत स्वतन्त्रता के पूर्व और भारतेन्दु युग के बीच लिखी जाने वाली सामग्री स राजनीतिक दृष्टि से धार्मिक, सास्कृतिक, तथा सामाजिक सन्दर्भ स्पष्ट किये हैं। मेरे अध्ययन से सम्बन्धित विचार नही प्रस्तुत किये गये हैं।

(१६) भारतेन्दु की कविता, लेखक श्रीशिवनाथ, प्रकाशक युगाश्रय, वाराणसी, स० २००८— इस पुस्तक म कुल १८ शीर्षक है। भक्तितत्व शीर्षक मेरे अध्ययन का है। इसम वल्लभ के व्यावहारिक सिद्धान्तो की कसौटी पर भारतेन्दु की कविताओ को कसने का प्रयास अच्छा है। लेखक का

विश्वास है कि भारतेन्दु की भक्ति भावना म साम्प्रदायिकता का पुट है, और अच्छा पुट है।

(१७) भारतेन्दु काव्यादर्श, लेखक कृष्णकिशोर मिश्र, पीयूप प्रकाशन, कानपुर, १९६२ ई० प्रस्तुत पुस्तक मे ५ अध्याय है। चौथे अध्याय म भारतेन्दु की कविता का अध्ययन विभिन्न शीर्पको मे प्रस्तुत किया गया है। भारतेन्दु की कविता के अध्ययन मे इससे बडी मन्द मिलती है।

(१८) पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, सम्पादक डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, ब्रज साहित्य मण्डल, २०१० वि० —इस पुस्तक म 'आधुनिक युग के ब्रज भाषा कवि 'नामक एक निबन्ध है। इस निबन्ध म नारायणस्वामी कवि का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। यह निबन्ध मेरे अध्ययन से सम्बन्ध रखता है।

(१९) हिन्दी साहित्य को विदर्भ की देन, लेखक श्रीप्रयागदत्त शुक्ल, प्रकाशक, विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन नागपुर, १९६० इस ग्रन्थ म भारतेन्दुयुगीन अल्पज्ञात भक्त कवियो म करताल कर जी का सक्षिप्त परिचय है।

(२०) हिन्दी साहित्य को बिहार की देन, लेखक कामेश्वर शर्मा, प्रकाशक, सुहृद सघ, मुजफ्फर पुर, स० २०१२ —प्रस्तुत पुस्तक भारतेन्दुकालीन बिहारी कवियो के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है।

(२१) प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य, लेखक डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल, प्रकाशक अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर, २०१९ वि० यह पुस्तक दो खण्डो म विभक्त है। प्रथम म उनका जीवनवृत्त, तत्कालीन परिस्थिति और कृतियो का सक्षिप्त परिचय है। दूसरा खण्ड समीक्षा का है। इस खण्ड म भक्ति भावना एक शीर्षक है जो मेरे लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह पुस्तक मेरे लिये लाभप्रद है। विद्वान् लेखक ने इनकी भक्ति भावना के बारे म जो विचार प्रस्तुत किया है, वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। लेखक के शब्दो म—'इनम यदि एक ओर कबीर की सी प्रेमाकुलता है तो दूसरी ओर तुलसी और सूर की सी अनन्यता, तन्मयता और सगुणोपासना के प्रति निष्ठा है—

(२२) हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास लेखक अयोध्या सिंह उपाध्याय, प्रकाशक पुस्तक भण्डार लहेरिया सराय, पटना प्रस्तुत पुस्तक म सुमेर सिंह साहब जी का वर्णन प्रथम बार आया है। ये भारतेन्दु मण्डल के प्रसिद्ध कवि थे। इनके जीवन और काव्य के प्रामाणिक अधिकारी हरिऔध' जी ही है। मुझे सुमेर सिंह की कविता तथा उनके जीवन के बारे मे इसी पुस्तक से जानकारी प्राप्त होती है।

(२३) श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, लेखक डा० रामचन्द्र मिश्र, प्रकाशक, रणजीत प्रिंटर्स देहली, प्रस्तुत पुस्तक से श्रीधर पाठक के जीवन तथा उनकी कविताओ को समझने मे बडी मदद मिलती है। विद्वान् लेखक ने श्रीधर पाठक के जीवन सम्बन्धी सभी सूत्रो का उद्घाटन किया है।

भक्तिपरक ग्रन्थ, तत्व दर्शन, सम्प्रदाय आदि

(१) भक्ति का विकास, लेखक डा० मुशीराम शर्मा, प्रकाशक चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, १९५८ प्रस्तुत ग्रन्थ मे भक्ति एव भक्ति के तत्वो और नवधा भक्ति के बारे मे विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। हिन्दी वैष्णव भक्ति को समझने के लिये यह आधार ग्रन्थ है।

(२) भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, लेखक डा० रतिभानु सिंह नाहर प्रकाशक, किताब महल, इलाहाबाद —भक्ति आन्दोलन और सगुण सम्प्रदाय के प्रमुख तत्वो का विवेचन प्रस्तुत किया है।

(३) सत साहित्य की सास्कृतिक एव सामाजिक पृष्ठभूमि लेखिका, डा० सावित्री शुक्ल,

विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ विश्वविद्यालय —अद्वैत दशन, सूफी दर्शन एव भक्ति सम्प्रदायो की विवेचना प्रस्तुत की गई हैं।

(४) श्रीमद्भगवदगीता रहस्य कर्मयोगशास्त्र, लेखक, बाल गगाधर तिलक, प्रकाशक, सिमला हाउस, चौपाटी, बम्बई, सन् १९२८ ई० प्रस्तुत पुस्तक के तेरहवें प्रकरण म 'भक्ति मार्ग' एक अलग से शीर्षक है। इसम भक्ति के अगो उपागो का वणन किया गया है।

(५) गीता प्रवचन, लेखक, आचाय विनोबा भावे, ग्राम सेवा मडल, गोपुरी, वधा, नवम्बर १९६० ई० इस पुस्तक के सातवें अध्याय म प्रपत्ति अथवा ईश्वर शरणता पर प्रकाश डाला गया है भक्ति के बारे में विशद् चर्चा की गई है और बारहवें अध्याय मे सगुण और निर्गुण भक्ति की पूर्ण व्याख्या की गई है। सगुण एव निगुण भक्ति पर प्रकाश डाला गया हैं। इसी प्रसग में सगुण एव निगुण का भेद स्पष्ट करन म लेखक को काफी सफलता मिली है।

(६) हिन्दी काव्य मे निगुण सम्प्रदाय लेखक डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल, अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ प्रस्तुत पुस्तक मे निगुण सम्प्रदाय की चर्चा की गई है।

(७) निगुण काव्य-दशन, लेखक सिद्धनाथ तिवारी, प्रस्तुत पुस्तक मे निर्गुण साहित्य को समुचित व्यवस्था की गई है। साथ ही लेखक ने सगुण एव निर्गुण को समझने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

(८) अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, लेखक डा० दीनदयाल गुप्त, प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग —प्रस्तुत पुस्तक म वल्लभ सम्प्रदाय सम्बन्धी सारी बातो को लेखक ने एक जगह एकत्र कर दिया हैं। इस पुस्तक से वल्लभमत के अनुसार भक्ति, भक्तित्व तथा भक्तिदशन को समझने म काफी सहायता मिलती है। वल्लभ सम्प्रदाय मे पुष्टि भक्ति की प्रधानता है। लेखक ने पुष्टि भक्ति की विशद् विवेचना प्रस्तुत की है।

(९) राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य लेखक डा० विजयेन्द्र स्नातक, प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली १९५९ —इस ग्रन्थ म राधावल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्त और साहित्य दोनो पक्षो का मौलिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस सम्प्रदाय की समस्त मान्यताओ का विशद् अध्ययन प्रस्तुत करने के लिये प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रन्थो का अध्ययन और मनन किया है। भारतेन्दु युग पूव तथा भारतेन्दु युग मे उसका प्रभाव कहाँ तक रहा है, इसे समझने के लिये पृष्ठभूमि प्रमाणिक तथा उपादेय है, साथ ही अन्य वैष्णव सम्प्रदायो के मतो का तुलनात्मक अध्ययन ग्रन्थ की उपादेयता बना देता है।

(१०) भागवत सम्प्रदाय लेखक श्री बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१० वि० —प्रस्तुत ग्रन्थ म भारतभूमि मे पलने वाले प्रधान वैष्णव सम्प्रदायो के ऐतिहासिक विकास एव तात्विक सिद्धान्तो का विशिष्ट परिचय प्रदान करने का सफल प्रयास है। वैष्णव साधना के गम्भीर तत्वो का सहज एव सुमधुर भाषा म उद्घाटन पहली बार हुआ है। यह अपने विषय का प्रामाणिक और उपादेय ग्रन्थ है।

(११) रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय—लेखक डा० भगवती सिंह, प्रकाशक, अवध साहित्य मन्दिर, बलरामपुर, २०१४ वि० —प्रस्तुत पुस्तक म रसिक भावना पर विशेष प्रकाश डाला गया है। साथ ही साथ रसिक सम्प्रदाय स सम्बन्ध रखन वाले भक्त कवियो का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक म महात्मा बनादास और जानकीवरशरण जी की रसिक भावना पर प्रकाश डाला गया है। बनादास के बारे म लेखक का विचार उत्तम है।

(१२) रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना—लेखक डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र, प्रकाशक,

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना —यह पुस्तक मधुर उपासना पर विशेष प्रकाश डालती है। इसमे वैजनाथ कुरमी के बारे मे विशेष चर्चा की गई। यह मेरे लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है।

(१३) **उत्तरी भारत की सत परम्परा**—लेखक परशुराम चतुर्वेदी, प्रकाशक, भारती भडार, प्रयाग १९५१—प्रस्तुत पुस्तक से सत सालिगराम जी का सक्षिप्त जीवन तैयार किया गया है। 'यह पुस्तक उत्तर भारत मे प्रचलित सभी सम्प्रदायो का अध्ययन प्रस्तुत करती है।

(१४) **भक्ति साहित्य मे मधुरोपासना**—लेखक परशुराम चतुर्वेदी, प्रकाशक भारती भडार, इलाहाबाद, २०१८ वि० —प्रस्तुत ग्रथ तीन निबन्धो का सग्रह है। प्रथम निबन्ध मे भक्ति साहित्य मे मधुरोपासना के आविर्भाव तथा विकास का वर्णन लेखक ने विस्तारपूर्वक किया है। भारतवर्ष की विभिन्न प्रान्तीय भाषाओ के साहित्य मे उस विकास का सक्षिप्त विवेचन है। अन्य निबन्धो मे लेखक का कृष्णोपासको मे सखी सम्प्रदाय और रामोपासको मे रसिक सम्प्रदाय का अध्ययन द्रष्टव्य है।

(१५) **हिन्दी भक्ति शृगार का स्वरूप**—लेखक डा० मिथिलेश कान्ति, प्रकाशक चैतन्य प्रकाशन, कानपुर, १९६३ ई० —भक्ति के शृगारात्मक रूप का विस्तृत एव गहन अध्ययन प्रस्तुत करने वाला यह शोध प्रबन्ध है। विद्वान लेखक ने भक्ति-शृङ्गार के विभिन्न रूपो एव विभाजनो का गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। भक्ति के शृङ्गारात्मक परिवेश, जो भारतेन्दु युग की पृष्ठभूमि है, का विचारोत्तेजक एव गम्भीर वर्णन है।

(१६) **१६ वीं शती के हिन्दी और बगाली वैष्णव कवि**—लेखक डा० रत्नकुमारी, प्रकाशक भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली, १९५६ ई० —प्रस्तुत ग्रथ मे १६ वी शती के हिन्दी और बगाली वैष्णव कवियो का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

(१७) **हिंदी सगुण काव्य की सास्कृतिक भूमिका**—लेखक डा० रामनरेश वर्मा, प्रकाशक, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, २०२० वि० —प्रस्तुत ग्रन्थ से देवालयीय परम्परा तथा आगमिक भक्ति का, सास्कृतिक प्रेरणा के रूप मे तथा मध्यकालीन हिन्दी सगुण भक्तिकाव्य पर पडने वाले प्रभाव का विस्तृत परिचय मिलता है।

(ख) प्रबध का विषय-सीमा निर्धारण और उद्देश्य

प्रस्तुत प्रबध का उद्देश्य भारतेन्दुकालीन काव्य-साहित्य के आधार पर तत्कालीन काव्य मे भक्ति धाराओ का अध्ययन करना है। इस उद्देश्य का प्रतिपादन दो दृष्टियो से किया गया है—पहला दृष्टिकोण है, तद्युगीन कवियो ने अपने पूर्ववर्ती कवियो से कहा तक प्रभाव ग्रहण किया है। दूसरा यह देखने का प्रयत्न किया गया है कि तद्युगीन कविता मे विभिन्न भक्ति साधनाओ का सैद्धान्तिक एव व्यवहारिक विवेचन कहाँ तक हुआ है। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर हमने भारतेन्दु युगीन कविता को निर्गुण-काव्य धारा और सगुण-काव्य धारा (रामकाव्य एव कृष्णकाव्य) दो शीर्षको मे रखकर अध्ययन किया है। इस शोध प्रबन्ध में, ब्रजमडलीय सभी सम्प्रदायो के सिद्धान्तो की चर्चा करते हुए भारतेन्दुयुगीन कविता पर उनका क्या प्रभाव पडा है, तथा तद्युगीन कवि उससे कहाँ तक प्रभावित रहे है की खोज करना प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य है।

प्रस्तुत प्रबध मे भक्ति के ऐसे कई कवियो का साहित्यिक परिचय उनकी रचनाओ के साथ प्रस्तुत किया गया है जिनसे हिन्दी साहित्य के पाठक अभी तक अपरिचित हैं। अपरिचित रहने का मुख्य कारण यह है कि इनकी रचनाएँ अब तक उनके हस्तलिखित ग्रथो मे या तद्युगीन पत्रिकाओ की सचिकाओ को ही सुशोभित करती रही। इन अल्पज्ञात कवियो की रचनाओ से भी तद्युगीन भक्ति धाराओ का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। □□

अध्याय २

भक्ति का स्वरूप और उसका विकास

भक्ति

'भज सेवायाम्' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्'[1] इस सूत्र के अनुसार 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने से भक्ति शब्द बनता है। वस्तुत 'क्तिन्' प्रत्यय भाव अर्थ मे होता है—भजनं भक्ति । परन्तु व्याकरण के आचार्यों के यहा कृदन्तीय प्रत्ययो के अर्थ परिवर्तन एक प्रक्रिया के अग हैं। अत वही 'क्तिन्' प्रत्यय अर्थान्तर म भी हो सकता है।

भक्ति शब्द की व्युत्पत्तियाँ

'भजन भक्ति' 'भज्यते अनया इति भक्ति', 'भजन्ति अनया इति भक्ति, भज सेवायाम् भक्ति' इत्यादि भक्ति शब्द की व्युत्पत्तियाँ हैं।

भक्ति की परिभाषा

हिंदू धर्म के क्रम विकास के इतिहास को स्थूल रूप से तीन भागो मे विभक्त किया गया है—(१) कर्म प्रधान, वैदिक युग (२) ज्ञान प्रधान औपनिषदिक युग, तथा (३) भक्ति प्रधान पौराणिक युग। इसम भक्ति माग का भारतीय धम-साधना मे अपना विशिष्ट सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक महत्व रहा है। इस माग ने सर्वप्रथम व्यापक रूप से भारतीय समाज के प्रत्येक अंग को प्रभावित कर एक बहुत लम्बी अवधि तक पथप्रदर्शन करते हुए जन जीवन मे स्थायी मोड़ दिया। कारण यह है कि यह वही माग है जो सर्वप्रथम हृदय को स्पश करता है। आलोचकप्रवर आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, 'जहा से कम मे हृदय तत्व को कुछ अधिक स्थान देन की प्रवृत्ति हुई वही से भक्तिमाग का आरम्भ मानना चाहिये।[2] फलत भक्ति को परिभाषा मे बाँधने की अपार चेष्टा हुई और आज भी होती जा रही है, लेकिन जहाँ हृदय पक्ष की प्रधानता है वहाँ शब्दो की क्या बिसात ?

भक्ति मे सर्वप्रथम सेवा की भावना जागृत होती है, जिससे हृदय का निजी सम्बन्ध है। भक्ति की विस्तृत एव शास्त्रीय व्याख्या प्राचीन मनीषियो ने की है। साथ ही साथ इसके अगा उपागा के चिह्न भी उनकी व्याख्या म परिलक्षित होते हैं। भगवद्गीता के रचयिता तथा भक्तिशास्त्र के आचार्यों—*शाण्डिल्य, नारद एव भक्तिभावना पर विचार करने वाले अन्यान्य प्राचीन और अर्वाचीन चिन्तकों ने* भक्ति के लिये जिन तत्वा का निरूपण किया है उनमे ईश्वर मे अत्यन्त अनुरक्ति[3] या ईश्वर के प्रति परम प्रेम[4] के साथ अहेतुकी भाव[5] का होना ही नितान्त आवश्यक है।

---

१ लघु सिद्धान्त कौमुदी, पा० सू० ३।३।९४

२ सूरदास रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मन्दिर, जतनबर, वाराणसी, सन् १९६१ ई०, पृ० १८।

३ सा परानुरक्तिरीश्वरे। —शाण्डिल्यभक्ति सूत्र

४ सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। —नारदभक्ति सूत्र २, प्रेमदर्शन हनुमान प्रसाद पोद्दार, पृ० २०।

५ स वै पुंसा परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्य प्रतिहता यया त्मा संप्रसीदति ॥ —भागवत, १।२।६

श्रीआद्याप्रसाद मिश्र के शब्दों में पराभक्ति ईश्वर में अनुरक्ति या अनुराग है। अनुरक्ति का अनुदान है। अनुरक्ति का अनु इस बात का द्योतक है कि वह राग, प्रेमभाव, ध्येय के महत्व, अनन्य नित्यत्व आदि के जान लेने के बाद ही उत्पन्न होता है। और जैसे ध्येय के महत्वादि गुण आत्मदर्शन का रूप धारण करते जाते हैं वैसे ही रागात्मिका वृत्ति या प्रेमभाव भी प्रगाढ़ और अद्वितीय होती जाती है, यहाँ तक कि परिपाक की चरम सीमा पर पराभक्ति का नामान्तर हो जाता है।[१] वस्तुत भक्ति का प्रधान तत्व है परमात्मा से अनुराग उस राग में तल्लीनता तथा आत्म समर्पण का भाव भी नितान्त आवश्यक है।

मनुष्य का मस्तिष्क विकासशील है। उसके सारे कार्य ईश्वर के सन्निकट पहुँचने के हैं। इसी हेतु वह बुद्धि-व्यायाम में अहर्निश रत है। मोक्ष ही उसका प्रधान लक्ष्य है। 'अत सिद्धावस्था की प्राप्ति कर लेना ही इस संसार में मनुष्य का परम साध्य या अन्तिम ध्येय है। और उसके लिये केवल यह कोरा ज्ञान कि ब्रह्म निर्गुण है, किसी काम का नहीं, दीर्घ समय के अभ्यास और नित्य की आदत से इस ज्ञान का प्रवेश हृदय में तथा देहेंद्रियों में अच्छी तरह हो जाना चाहिये, और आचरण के द्वारा ब्रह्मात्मैक्य बुद्धि ही हमारी देह स्वभाव हो जाना चाहिये, ऐसा होने के लिये परमेश्वर के स्वरूप का प्रेमपूर्वक चिन्तन करके मन को तदाकार करना ही एक सुलभ उपाय है। यह मार्ग अथवा साधन हमारे देश में बहुत प्राचीन समय से प्रचलित है इसी को उपासना या भक्ति कहते हैं।[२] इसी तरह भक्ति के श्रद्धा, रुचि, लौ, लगन, प्यार और इश्क पर्यायवाची शब्द हैं।[३] उपासना प्रार्थना का ही नाम है। प्रार्थना से हम प्रभु को रिझाते हैं। प्रार्थना करना धर्म है प्रार्थना और भजन एक ही तरह के शब्द हैं। पैगम्बर मुहम्मद साहब ने एक जगह कहा है— प्रार्थना धर्म का स्तम्भ है स्वर्ग प्राप्ति के लिये सुलभ मार्ग है और मोक्ष मन्दिर के द्वार को खोल देनेवाली सुनहली चाभी है।[४]

नारदीय पाँचरात्र के अनुसार सम्पूर्ण इन्द्रियों को माया के बन्धनों से सर्वथा मुक्त करके अनन्य मनसा हृषीकेश भगवान का आराधन करना ही भक्ति है। भक्ति के साम्राज्य में भोक्ता और भोग्य— दोनों ही पारस्परिक साहचर्यजन्य आनन्द का उपभोग करने के लिये चिन्मय देहेंद्रिय विशिष्ट होते हैं।[५] भक्ति स्वत पूर्ण है। वह कर्म ज्ञान अथवा अन्य किसी प्रकार की साधना की अपेक्षा नहीं रखती। साथ ही साथ वह हृदय की भूख है जो कभी भी शान्त नहीं होती और न उसका नाश ही होता है बल्कि उसका उत्तरोत्तर विकास ही सम्भव है। इसके विकास का क्रम भी दोनों तरफ बराबर ही रहता है। ऐसा नहीं कि भक्ति का विकास केवल भक्त में ही दृष्टिगोचर होता है बल्कि इसका *विकास तो जिसके प्रति भक्ति की जाती है उसमें भी स्पष्ट रूप से अंकुरित होता है। भक्ति जिसके प्रति* होती है उसे भी नित्य नव रस मिलता है और जिसको होती है उसे भी रस मिलता है क्योंकि भक्ति 'भक्त का जीवन' और उनका स्वभाव है, जिनकी वह भक्ति है। इतना ही नहीं भक्त का अस्तित्व

---

१ नारद और शांडिल्य की भक्ति पद्धति आद्याप्रसाद मिश्र हिन्दुस्तानी, अक्टूबर १९५६।

२ गीतारहस्य बालगंगाधर तिलक, अनु० माधवराव सप्रे शिमला हाउस बम्बई १९२८ ई०, पृ० ४०६।

३ हिन्दी प्रदीप, जिल्द २२, सं० ६ ७।

४ भक्ति सुन्दर श्री रंगनाथ जी वाग्ईं, कल्याण, भक्ति अंक, वर्ष ३२ सं० १, माघ २०१४, पृ० ३११।

५ भक्ति भक्ति विशालतीर्थ जी महाराज, कल्याण, भक्ति अंक, पृ० १५।

भक्ति होकर ही उनसे अभिन्न होता है जिनके प्रति भक्ति उदय होती है।[1]

परवर्ती शास्त्र प्रणेता तथा धर्माचार्यों ने भक्ति की व्याख्या श्रीमद्भागवत को आधारशिला मान कर की है। आधुनिक पण्डितो मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बलदेव उपाध्याय, गोपीनाथ कविराज, डा० मुशीराम शर्मा, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० मोती सिंह, डा० माधव और आचार्य विनोवा भावे आदि ने भक्ति की व्याख्या स्पष्ट शब्दों में की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तो भक्ति को धर्म का हृदय माना है। उन्होंने भक्ति की परिभाषा देते हुए लिखा है कि धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है।[2] आचार्य बलदेव उपाध्याय का विचार है—'भक्ति के द्वारा भक्त भगवान् के साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है।[3] डा० मुशीराम शर्मा ने इसे ही इन शब्दों में प्रकट किया है—'रचनाक्रम मे परमात्मा से भाव और भाव से तप रूप ज्ञान तथा कर्म प्रकट होते हैं, जो पीछे नाम-रूपात्मक जगत् में परिणत हो जाते हैं। विलोनीकरण में यह क्रम विपरीत हो जाता है। नाम तथा रूप भाव मे और भाव परमात्मा मे लय को प्राप्त होते हैं। भक्त भी इसी प्रकार चित्तवृत्तियों को नाम रूप के सहारे भाव मे, फिर भाव के सहारे परमात्मा मे लीन कर देता है। भक्तियोग इसी भाव-पद्धति का दूसरा नाम है।[4] अन्त मे डा० मुशीराम शर्मा के शब्दों मे 'भक्ति भजन है। किसका भजन ब्रह्म का, महान का, महान वह है जो चेतना के स्तरों मे मूर्धन्य है यानियो में यनिय है, पूज्यनीयों में पूज्यनीय है, सत्वितो, सत्व सम्पन्नो मे शिरोमणि है और एक होता हुआ भी अनेक का शासक, कर्मफलदाता तथा भक्तो की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाला है'।[5] जो भी हो भक्ति का मार्ग काफी सुलभ एव सुगम है। यह भगवान् के सन्निकट पहुँचने का वह मार्ग है जिसमे किसी प्रकार की झंझट नहीं। वहाँ सभी पहुँच सकता है, केवल लालसा की लौ तो चाहिए। जन्म और मृत्यु के भय से बचाने का सच्चा साथी भक्ति ही है। मानव मन मे उपासना के जो भाव है उनमे स्वभावत वैयक्तिक और प्राकृतिक भिन्नता के कारण भक्ति के स्वरूपो में भिन्नता पाई जाती है। उसकी सच्ची अनुभूति तो भक्त को होती है। इसे प्रकट करना गूँगे के आस्वाद की भाँति है। भक्ति की लपटें साधन और साध्य की सीमाओं के पार जा प्रकाश की किरणे विकीर्ण करती है।

भक्ति की महिमा

भारतीय धर्म चेतना के इतिहास मे भक्ति का स्थान सर्वोपरि है। भक्ति की पुण्य सलिला में अवगाहन करने से जीवन-मरण के कष्ट से मुक्ति मिल जाती है। ईश्वर के शाश्वत सान्निध्य भक्ति की भागीरथी प्रवाहित होती है। भक्त प्रवर सूरदास भक्ति को सर्वोपरि स्थान देते थे। यही नहीं, भक्ति ही उनके लिये व्रत, संयम, योग, स्वाध्याय तीर्थ आदि सब कुछ था। उन्होंने लिखा है—

> यहै जप यहै तप यम नियम व्रत यहै मम प्रेम फल यहै पाऊँ।
> यहै मम ध्यान, यह ज्ञान सुमिरन यहै सूर प्रभु देहु हौं यहै पाऊँ[6] ॥

---

१ भक्ति का विकास डा० मुशीराम शर्मा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १९५८ ई०, पृ० ७३।
२ भक्ति डा० मुशीराम शर्मा, हिन्दी विश्वकोष, खंड ८, १९६७ ई०, पृ० ८२०।
३ भक्ति का स्वरूप: शरणानन्द जी महाराज, कल्याण, भक्ति अंक, पृ० ५१।
४ चिन्तामणि रामचन्द्र शुक्ल, पहला भाग, इंडियन प्रेस, प्रयाग १९६१, पृ० १६।
५ भागवत सम्प्रदाय प० बलदेव उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, स० २०१० वि० पृ० ४५।
६ नन्ददुलारे वाजपेयी (सपा०) सूरसागर भाग १, नागरी प्रचारिणी सभा, पद १०६।

भक्तमाल मे प्रताप सिंह न भक्ति की महिमा को पुराण वेद और श्रीमद्भागवत् का उदाहरण देते हुए अपने शब्दो मे व्यक्त किया है जो बहुत ही मार्मिक एव गौरवपूर्ण है। 'भगवत् मे व भक्ति में कुछ अन्तर नही परन्तु एक विशेष विचार स्मरण हो आया जिस करके भगवद्भक्ति की बडाई प्राप्त हुई किन्तु भगवत् सो कर्म के अनुसार सबको सुख-दुख दोनो देता है व भक्ति महारानी दुखों का दूर करके सुख ही देती है व दु ख को समीप नही आने देती[1]। सूरदास ने लिखा है कि भक्ति के बिना मनुष्य आवागमन की चक्की मे पिसता है[2]।

भक्ति का उदभव और विकास

भक्ति के उद्भव और विकास के बारे म विद्वान एक मत नही है। फिर भी यह प्रमाणित रूप से कहा जा सकता है कि आस्तिक भाव से ईश्वरोपासना करने वाले आर्यों मे भक्ति के मूल बीज विद्यमान थे और आंशिक रूप मे भक्ति के विविध रूपो का आभास उन्हे वदिक काल म ही मिल गया था। लेकिन भक्ति के उद्भव के बारे मे एक बात स्पष्ट है जिसे अस्वीकार नही किया जा सकता। भक्ति के उद्भव की कोई सीमा रेखा नहीं खीची जा सकती। आचाय बलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि वेद जैसे कर्म तथा ज्ञान का उत्पत्तिस्थल है उसी प्रकार भक्ति का भी उद्गम स्थान है[3]।

भारतीय मनीषि अनुराग सूचक भक्ति-परक अभिव्यक्तिया से वल्कि ऋचाओ का सामजस्य स्वीकार करते हैं। दूसरी तरफ पाश्चात्य विद्वानो ने इसे भारतीय तत्व सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उन लोगो के बुद्धि के व्यायाम को देखकर तो बडा ही आश्चय होता है। पाश्चात्य चिन्तक वेबर कीथ और ग्रियसन इसे ईसाई धम की देन स्वीकार करते हैं। पाश्चात्य पडितो का यह कथन कि संसार के इतिहास मे सर्वप्रथम ईसाई मत मे ही भक्ति का उदय हुआ और यही से भारतवष मे भक्ति की भागीरथी प्रवाहित हुई, सवथा निराधार और नितान्त निर्मूल है। यही तक नही वेवर महोदय तो कृष्ण को भगवान् के रूप मे कल्पना का श्रेय क्राइस्ट को देते हैं। अपने इस भ्रम मूलक सिद्धान्त के प्रतिपादन में जाज ग्रियसन का मत है कि प्राचीन काल मे ईसाईयो की एक बस्ती मद्रास प्रान्त मे थी, उन्ही के प्रभाव से हिन्दुओ मे भक्तिमाग आया और बाद मे दक्षिण भारत से समस्त भारतवष मे फैल गया[4]।

सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव के अन्तस्तल म भक्ति की सुधा सलिला प्रवाहित है वाक्य चातुय के कौशल के रहते भी उसकी अभिव्यजना शक्ति इस भाव के प्रकटीकरण मे मूक है। अत इस भवसागर में आदिम काल से ही वह कभी सुख की घडिया मे उछलता कभी दु ख के भवर म पड आसुओं की धारा बहाता। सुख दु ख की इस आँखमिचौनी म उसका प्रयत्न सुख की तरल तरगो स अठखेलिया करने मे बराबर रहता। पर साथ ही वह दु ख से बचने की कोशिश भी करता। इस प्रयत्न के क्रम म उसे परोक्ष शक्ति का आभास हुआ। बस क्या था ? वह उस परोक्ष शक्ति के साथ शाश्वत् सम्बन्ध स्थापित करने को लालायित हुआ। फिर तो वह उसे कुल देवता बनाकर घर मे पूजने लगा।

१ प्रताप सिंह (सपा०) भक्तमाल नवलकिशोर प्रेस लखनऊ स० १६२६, पृ०४।

२ पुनि दु ख पाइ पाइ सो मरे बिनु हरि भक्ति नरक मे परे।
नरक जाइ पुनि बहु दुख पावै पुनि पुनि या ही आव जाव ॥
नन्ददुलारे वाजपेयी (सपा०) सूरसागर भाग १ ना० प्र० सभा, पद २६।

३ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय काशी प्र० स० २११० वि० पृष्ठ ६४

४ जनल आव रायल एशियाटिक सोसाइटी १६०७ ई०, पृ०३११-२६।

इसी पूजा भाव स भक्ति की उत्पत्ति हुई। यह भक्तिभाव की धारा वेद से उपनिषद्, उपनिषद् से पुराण, पुराण से सहिता आदि शास्त्रो के तटो को स्पश करती हुई हिन्दी साहित्य सागर मे आ मिली। पुराण की पावन वनस्थली मे एकेश्वरवाद की धारा प्रवाहित हुई। यही धारा उपनिषद् की उपत्यका मे निवृत्तिपरक ज्ञान माग और कमपरक ज्ञान माग की दो धाराओ म विभक्त होकर प्रवाहित हुई। आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—'इसी कम-परक ज्ञानमाग से जिसमे कर्म के साथ, बुद्धि और हृदय दोनो का योग आवश्यक ठहराया गया था, आगे चलकर भक्ति का विकास हुआ[1]।'

भारतीय भक्तिमाग मे ब्रह्म से उभयात्मक स्वरूप को प्रतिष्ठा की गई है। उस उभयात्मक स्वरूप म ब्रह्म के दो रूप हैं—सगुण और निगुण। परमात्मा के ये दोनो रूप नित्य और सत्य है। उपनिषत्काल मे इस भावना का विकास हुआ। फलस्वरूप इस काल मे उपासना की पद्धति मे भी परिष्कार हुआ। वैदिक युग म पूजा की भावना थी जिसमे भेंट स्वरूप कुछ वस्तुएँ प्रदान की जाती थी। उस पद्धति म स्वरूपचिन्तन या दशन की भावना का पूणत अभाव था। इस आलोच्य काल म पूजा के साथ ही साथ स्वरूपबोध या दशन की भावना जगी। इस तरह ज्ञान का कपाट खुला। ज्ञानचक्षु के खुलते ही कम के साथ मन का योग सम्भव हुआ। इस सयोग म मन की बोधवृत्ति और रागात्मिका वृत्ति दोनो सम्मिलित थी। आचाय शुक्ल न लिखा है कि जहा स कम म हृदय तत्व को कुछ अधिक स्थान देने की प्रवृत्ति हुई वही स भक्तिमाग का आरम्भ मानना चाहिये[2]।' भक्ति की उत्पत्ति के बारे मे आचार्य शिवपूजन सहाय न लिखा है कि सत्सगति के प्रभाव स सतो की अमरवाणियो का मनन करते रहने से, हरि कथा-कीतन स, सासारिक प्रपच स मन को धीरे धीरे हटाते रहने के अभ्यास स और शास्त्रचिन्तन स मनुष्य का हृदय क्रमश निमल होता जाता है। हृदय के शुद्ध होन पर उसम ईश्वर की भक्ति का सचार होता है, तब भक्त प्रेम विह्वल होकर भगवान् को पुकारने लगता है[3]।

वेदो की सहिताओ मे भक्तितत्व

वेद भक्ति के मूल स्रोत है। भक्तिभावना की भागीरथी वेद से ही प्रवाहित हुई। अत इसम भक्ति तत्वो की विशद व्याख्या हुई है। वदो की सहिताओ म भक्ति तत्व का निरूपण किया गया है। शुक्ल यजुर्वेद सहिता म सर्व प्रथम मगलाचरण मे ही स्तुतिपरक श्लोक की अभिव्यजना हुई है। यथा—

मङ्गलाचरण

ॐ नम शम्भवाय च मयोभवाय च।
नम शकराय च मयस्कराय च।
नम शिवाय च शिवतराय च॥[4]

इसी प्रकार अथर्ववेद सहिता म भी मोक्ष-कामना-हेतु प्रार्थना हुई है। सहिता म कहा गया है कि जिससे मोक्ष-सुख प्राप्त होता है तथा जिससे इस लोक एव परलोक के विविध सुख प्राप्त होते हैं, उस भगवान् को नमस्कार है। जो पारमार्थिक अनन्त महान् सुख का प्राप्त कराता है तथा जो सर्व प्रकार के सुखो का दाता है उस परमपिता को नमस्कार है। जो परमेश्वर कल्याण स्वरूप है तथा स्वभक्तो का

---

१ रामचन्द्र शुक्ल सूरदास, सरस्वती मन्दिर, वाराणसी, पृ० १२।
२ वही, पृ० १८।
३ शिवपूजन सहाय शिवपूजन रचनावली, ३ बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९६३, पृ० १०८।
४ शुक्ल यजुर्वेद सहिता, १६।४१

भी कल्याणकर हों। वे हमारे परम कल्याण रूप हैं उनको नमस्कार है। इन मंत्रों में मानसिक शान्ति सुख के लिए परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना की गई है कि दिन एवं रात्रि हमारे लिए प्रसन्न हों। उनकी प्रसन्नता में ही मानसिक शान्ति सुख निहित एवं स्थित है। प्राणों के प्रेरक एवं शरीरों के अन्तर्यामी महाप्रभु हमारे कल्याण के लिए अनुकूल हों।

ॐ शं नो मित्र शं वरुणः शं नो अस्तु
शं नो हिरण्यं शं सहुत्र।
शं नो अश्वाय पशवे
शं न पृथिवी देवेन॥[1]

इन मन्त्रों के अनुशीलन से स्पष्ट ज्ञात हो सकता है कि लोगों का हृदय भक्ति भाव से ओत प्रोत रहा था। भक्ति-भावना की व्यापकता सबसे अधिक ध्यान के युग में उत्पन्न हुई है क्योंकि वैदिक देवताओं में ध्यान का स्थान सर्वप्रमुख एवं सर्वाधिक है।

उपनिषद में भक्ति

उपनिषद् ज्ञान भक्ति तथा कर्म का त्रिवेणी संगम है। यह वह दिव्य है जिससे मनुष्य प्रभु का सान्निध्य प्राप्त करने में समर्थ हो सके। उपनिषदों में स्थान-स्थान पर प्रभु भक्ति का रस छलकता रहता है। उपनिषदों के अनुसार प्रभु तर्क का विषय नहीं, वह भक्ति द्वारा ही जाना जाता है। प्रभु भक्ति की विशद विवेचना ही उपनिषदों का विषय है। वे भक्ति के आगार ही नहीं आकर भी हैं। इनमें विविध अप्रस्तुत योजनाओं द्वारा भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। उदाहरणस्वरूप भक्ति रूपी की ओर, कठोपनिषद्[2], मुण्डकोपनिषद्[3], ऐतरेय उपनिषद् श्वेताश्वतर[4] उपनिषद् आदि में भक्ति और भक्त के सम्बन्ध एवं भाव के तत्वों का बड़ी ही रोचक एवं मार्मिक व्याख्यान प्रस्तुत की गई है। प्रभु की भक्ति में बड़ा रस है। इसी भक्ति रस की अजस्र धारा उपनिषदों में प्रवाहित होती है। तैत्तिरीय उपनिषद में इसकी पुष्टि प्राप्त है—'रसो वै सः रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।' अर्थात् प्रभु भक्ति सबसे उत्कृष्ट और सर्वोत्तम रस है। यह वह रस है जो अपने साधक के मन प्राण को मतवाला कर देता है।

---

१ ऋ० सं० ७।३५, अथर्व सं० १६।११।२

२ (क) अणोरणीयान् महतो महीयान्, आत्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतु पश्यति वीत शोको, धातु प्रसादान्महिमानमात्मनः॥
कठोपनिषद् १।२।२०

(ख) ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं विश्वेदेवा उपासते॥
कठो० २।२।३

३ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥
मुण्डकोपनिषद् २।२।४

४ मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् ६।१८
ता एता देवता सृष्टा अस्मिन् महत्यर्णवे प्रापतंस्तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत् ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति। —ऐतरेयोपनिषद्
कल्याण, उपनिषद् अंक, वर्ष २३, माघ २००५, पृ० ३००।

केनउपनिषद् से ब्रह्म की उपासना पर बल दिया गया है और यह भी बतलाया गया है कि ब्रह्म की कृपा होने पर उसको प्राप्त कर सकते हैं।[१]

मुण्डकोपनिषद् तथा कठोपनिषद् भक्तिभावना के ओतप्रोत हैं। इनमें भक्ति के तत्त्वों से लबालब भरी श्लोकों की अगम सरिता का प्रवाह देखते ही बनता है। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि यदि देवतागण ब्रह्म की उपासना करते हैं तो मनुष्यों को उसकी उपासना करनी चाहिये। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासा निशितं सन्धयीत।
आयम्य तद् भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि॥[२]

उपनिषदुक्त धनुष ग्रहण करके उस पर शर को योजित करें। पहले से ही उपासना के द्वारा उस शर को तेज धारवाला बना ले। ब्रह्म में तन्मयता युक्त अन्तःकरण के द्वारा उस धनुष को आकर्षित करें और उसका लक्ष्य अक्षर ब्रह्म को ही जाने। छान्दोग्य उपनिषद् और तैत्तिरीय उपनिषद् में प्रतीक उपासना का स्पष्ट उल्लेख है। उस मंत्र में कहा गया है कि 'मन की ब्रह्म रूप में उपासना करें' जैसे ब्रह्म को इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता उसी प्रकार मन भी इन्द्रियों के द्वारा गृहीत नहीं होता। इसी सादृश्य के कारण मन की ब्रह्म से उपासना करने को बताया गया है। सूर्य जैसे ज्योतिर्मय है ब्रह्म भी उसी प्रकार प्रकाशमान है। इसी सादृश्य के कारण सूर्य की भी ब्रह्म रूप में उपासना करने की बात कही गई है।

मनो ब्रह्मेत्युपासीत (छा० ३। १८। १)
आदित्यो ब्रह्मेत्युपासीत (छा० ३। १९। १)

पुराणों में भक्ति

पुराण पंचम वेद के नाम से धार्मिक साहित्य में अभिहित किये जाते हैं। वेदों के निगूढ अर्थ का सम्यक् अनुशीलन करने के लिये पुराणों की सहायता ली जाती है। उपनिषदों की भांति ही पुराणों में भी भक्ति के तत्त्व पाये जाते हैं। पुराणों के अध्ययन के बिना विद्या का पढ़ना और पढ़ाना अपूर्ण माना जाता है। अतः इनका अध्ययन आवश्यक है। पद्मपुराण,[३] वायुपुराण,[४]

---

१ तद्वनमित्युपासितव्यम्। —केनोपनिषद् ४।६

२ मुण्डकोपनिषद् २।२।३

३ वेदेभ्य उद्धृत्य समस्त धर्मान् यो य पुराणेषु जगार देव ।
व्यास स्वरूप जगद्धिताय वन्दे तमेन कमलासमेतम्॥
पद्मपुराण, क्रियायोगसार, १।३

४ यो विद्याच्चतुरोवेदाम् सागोपनिषन्दो द्विजः ।
न चेत पुराण संविद्यान्नैव स स्याद् विचक्षणः ॥
इतिहास पुराणाभ्याम् वेद समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥
—वायुपुराण

शिवपुराण,[१] देवीभागवतपुराण,[२] विष्णुपुराण बृहन्नारदीय पुराण[३] और कूमपुराण[४] आदि मे भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। अत भक्ति की जो धारा वैदिक युग से प्रवाहित होती हुई पुराणो के पावन तटो को स्पश करती है, उसी विकास क्रम की पुराण एक कडी है। अब हम नीचे इनके संबध म विचार करगे।

गीता मे भक्तितत्त्व

विद्वानो ने श्रीमद्भगवद्गीता को समस्त शास्त्रो का सार माना है। इसीलिये इसे सवशास्त्र मयी गीता शास्त्रीय प्रवाद सववादि सम्मत है। परिणाम-स्वरूप सवशास्त्रो से सम्पन्न गीता भक्तिभावनाओं से ओत प्रोत है। इसम कर्मयोग, सांख्ययोग, ध्यानयोग, ज्ञानयोग की विशद व्याख्या के साथ ही साथ भक्तियोग की चर्चा भी हुई है। भक्तियोग पर इसका एक अध्याय ही है जिसम भक्ति के समस्त तत्त्वो, महत्वा और उपादेयता पर प्रकाश डाला गया है। समस्त योग साधना म भक्तियोगका स्थान सर्वोपरि है। इस भक्तियोग साधना म समस्त साधनाएँ विलीन होकर साधक के लिये अमृतत्व समान प्राण-दायिनी शक्ति प्रदान करती हैं। इस अध्याय के बारे म आचार्य विनोबा भावे न कहा है कि भगवद् गीता आदि से अन्त तक सभी जगह पवित्र हैं। परन्तु बीच मे कुछ अध्याय ऐसे हैं, जो तीर्थ-क्षेत्र बन गये हैं।[५] स्वय भगवान् ही इसे 'अमृतधारा' कहते हैं—येतु धर्म्यामृतमिद यथोक्त पर्युपासते। इस अध्याय मे भगवान् ने खुद ही भक्तिरस की महिमा का तत्त्व गाया है—

ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्।[६]

इसी प्रकार सगुणभक्ति मार्ग का रहस्योद्घाटन गीता के नवें अध्याय मे भगवान् ने किया है—

इदं तु ते गुह्यतम प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञान विज्ञानसहित यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥

---

१ पतितो वापि धर्मात्मा पण्डितो मूढ एव वा।
प्रसादे तत्क्षणादेव मुच्यते नात्र सशय॥
अयोग्याना च कारुण्याद् भक्ताना परमेश्वर।
प्रसीदति न सदेहो निगृह्य विविधान् मलान्॥
—शिवपुराण, वायवीय सहिता, उत्तर भाग ८। २५-२६

२ यथा तु व्यज्यते वर्णैर्विचित्र स्फटिको मणि।
तथा गुणवशाद् देवी नाना भावेषु वण्यते॥
एकोभूत्वा यथामघ पृथक्त्वेनावतिष्ठते।
वर्णतो रूप तश्चव तथा गुणवसाज्जया॥
—देवीभागवतपुराण, ३७। ९४ ९५।

३ नम शुकलाशवे तुभ्य द्विजराजाय ते नम।
रोहिणीपतये तुभ्य लक्ष्माभ्रात्रे नमो स्तु ते॥
—बृहन्नारदीयपुराण, १८।१७

४ सर्वेषामेव भक्तानामिष्ठ प्रियतमो मम।
याहि ज्ञानेन मा नित्यमाराधयति नान्यथा॥
—कूमपुराण उत्तराध ४। २५

५ विनोबा भावे गीता प्रवचन, मालती दास्ताने ग्रामसेवा मडल वर्धा, पृ० १७२।

६ श्रीमद्भगवद्गीता, ४। ११

राजविद्या राज गुह्य पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगम धर्म्यं सुसुख कर्तुमव्ययम ॥[1]

दुराचारी को भी आश्वासन देते हुए भगवान ने कहा है कि अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है—

अपिचेत् सुदाराचारो भजते मामनन्यभाक ।
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवसितो हि स ॥
क्षिप्र भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त प्रणश्यति ॥[2]

इसी प्रकार भगवान् ने भक्ति की महिमा, तत्त्व और उसकी उपादेयता का रहस्योद्घाटन किया है ।

भक्ति के प्रकार

भक्ति के प्रकार को स्पष्ट करने मे मानवीय वृत्ति और साधना पक्ष से काम लिया गया है । मानवीय वृत्ति के अनुसार भक्ति के चार भेद हैं—१ सात्विकी, २ राजसी, ३ तामसी, और ४ निर्गुण ।[3] प्रथम तीन को काम्य और चतुर्थ को निष्काम्य की सज्ञा से अभिहित किया जाता है । काम्य भक्ति को अनन्य भक्ति और निष्काम्य को सुधासार भक्ति भी कहते हैं ।

रामायण और गीता में भी भक्ति के चार भेद कहे गये हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मा जना सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतपम ॥
तेषा ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमह स च ममप्रिय ॥[4]

राम भगत जग चारि प्रकारा । सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥
चहूँ चतुर कहुँ नाम अधारा । ग्यानी प्रभुहि विसेषि पियारा ॥[5]

साधनापक्ष को ध्यान म रखते हुए श्रीमद्भागवत् के सातवें स्कन्ध म प्रह्लाद ने भक्ति के नौ अग बताते हुए कहा है—

श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम् ।
अर्चन वन्दन दास्य सख्यमात्मनिवेदम् ॥[6]

रामचरितमानसकार ने भी इस नवधा भक्ति को स्वीकार किया है । शबरी को भक्ति का उपदेश देते हुए उन्होंने कहा है—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाही । सावधान सुनु धरु मनमाही ॥
प्रथम भगति सतन्ह कर सगा । दूसरि रति मम कथा प्रसगा ॥
गुरुपद पकज सेवा तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति मम गुनगन करइ कपट तजि गान ।

१ श्रीमद्भगवद्गीता, ९ । १-२
२ वही, ९ । ३० ३१
३ श्रीमद्भागवत्, तृतीय स्कन्ध, अध्याय २९, श्लो० ७ १४ ।
४ श्रीमद्भगवद्गीता, ७। १६ १७
५ गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस, बालकाण्ड २१। ६ ७
६ श्रीमद्भगवद्गीता, ७। ५। २३

मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा ॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा । निरत निरन्तर सज्जन धरमा ॥
सातव सम मोहि मय जग देखा । मोते सत अधिक करि लेखा ॥
आठव जथा लाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ॥
नवम सरल सबसन छलहीना । मम भरोस हिय हरष न दीना[1] ॥

वेदों में भी इस नवाभक्ति का अनेक स्थलों में निरूपण है—

भद्रं कर्णोभि शृणुयाम[1] ।
इमा उ त्वा[2] ।
भर्गो देवस्य धीमहि[3] ।
पर देवस्य[4] ।
इन्द्राय मद्वने[5] ।
अभि त्वा शूर नोनुम[6] ।
मन्द्य मन्द्व[7] ।
स न पितेव सूनवे[8] ।
उत वात पितासिन[9] ।

परमानन्ददास जी ने तो प्रेमलक्षणा, माधुर्यभाव की भक्ति को एक अलग से भक्ति का प्रकार मानकर दसधाभक्ति की योजना कर दी है[10] ।

---

१ शुक्ल यजुर्वेद २५।२१
२ समावेद पूर्वार्चिक २।२।१।२
३ ऋग्वेद, ३।६२।१०
४ वही, ८।१०।१५
५ वही, ८।९२।१९
६ वही, ७।३२।२२
७ वही, ८।९३।४
८ वही, १।१।९
९ वही, १०।१८६।२
१० ताते दसधा भक्ति भली ।
जिन जिन कीनी तिनके मन ते नेकु न अनत चली ।
'स्रवन' परीक्षित तरे, राजरिषि 'कीर्तन' करि सुकदेव ।
'सुमीरन' करि प्रह्लाद निभय भयो कमला करी पद सेव ।
प्रभु 'अरचन' सुफल्क सुत वदन दासभाव हनुमंत ।
सखा भाव अर्जुन बस कीने श्रीहरि श्रीभगवंत ।
बलि आत्मसमर्पन करि हरि राखे अपने पास ।
अबिरल प्रेम भयो गोपिन को बलि परमानद दास ॥
—परमानन्द सागर, हस्तलिखित प्रति, नागरीप्रचारिणी सभा पुस्तकालय संग्रह सं० ३१४ ।

महर्षि नारद ने इसी भक्ति के ग्यारह भेद बताये हैं। यह भेद आसक्ति भाव के कारण हैं[१]।

साहित्य मे भक्तिरस की उद्भावना

भक्ति की लताएँ वैष्णव धर्म में अबाध गति से विकसित हुई। हिन्दी साहित्य मे प्रेम और भक्ति को कुछ लोग पर्यायवाची मानते हैं।[२] लेकिन पर्यायी होने हुए भी दोनो मे अन्तर है। प्रेम अपने निर्विकार रूप में प्रेम है किन्तु श्रद्धा से युक्त हो जाने पर वही भक्ति में परिणत हो जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।[३] अत जिसे देखकर प्रेम उत्पन्न होता है, उस ही देखकर भक्ति का उमड़ जाना सम्भव नहीं। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य मे भक्ति को अलग से स्थायी भाव माना गया है। कुछ लोग इसे देवादि विषयक रति मानते हैं। यही कारण है कि इसे शृंगाररस में समाहित कर लेते हैं। कुछ आचार्यों ने तो इसे शान्तरस में समाहित कर दिया है। किन्तु ससार की निस्सारता की प्रतिक्रिया जिस प्रकार वैराग्य की ओर ढकेलती है, उसी प्रकार वैराग्य की अतिशयता देवदेवियाकी ओर झुकाती है। वैराग्य में जहाँ निवृत्ति है, भक्ति मे प्रवृत्ति। अत इसे स्वतन्त्र रस मानने मे कोई अयुक्ति नही है।

वैष्णव धर्म की विशिष्टता तो भक्तिरस की शास्त्रीय विवेचना करने में ही है। सभी विद्वानो ने स्वीकार किया है कि भक्तिशास्त्र का जितना प्रामाणिक विवरण वैष्णव धर्मावलम्बी लेखको और भक्तो द्वारा हुआ है उतना किसी अन्य धर्मावलम्बी द्वारा सम्पन्न नही हुआ है। वैष्णव धर्म में भक्तिरस की सर्वाधिक प्रधानता है। वैष्णव साधको और विचारको ने भक्ति की भावदशा से ऊपर उठकर रस दशा में स्थापित किया और भक्तिरस को सर्वश्रेष्ठ रस निर्धारित किया[४]।'

वैष्णवभक्तो ने भक्तिरस से एक विलक्षण आनन्द की प्राप्ति बताया है तथा इस विषय को बड़ा ही व्यापक और सुरुचिपूर्ण बनाया है। उन्होने भक्तिरस को आधार मानकर मधुर भाव की रचना की। बाद में रूपगोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि और हरिभक्तिरसामृत ग्रन्थो की रचना की जो इस विषय का गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। इसमे भक्तिभाव का विवेचन बहुत ही पाडित्यपूर्ण ढग से किया गया है। भक्तिरस समस्त रसो का मधुर निर्यास एव समस्त सौन्दर्यों का सौन्दर्य है। इसके स्वाद के सम्मुख लोक-परलोक का कोई भी आनन्द नही ठहर सकता। भक्तिरस के आनन्दातिरेक से साधक भक्त आत्मसम्पृक्त और परसम्पृक्त भावनाओ से सर्वथा असन्तुष्ट और निराचिन्तानन्दमय हो जाता है। भक्ति रस की जैसी उदात्त एव मजुल व्याख्या वैष्णव ग्रन्थों मे है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।

---

१ गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति स्मरणसक्ति दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्त्यात्मनिवेदनासक्ति तन्मयतासक्ति परमविरहासक्ति, रूपा एकधाप्येकादशधा ॥
नारदभक्ति सूत्र, ८२।

२ परानुरक्ति इस वरणन मे जिज्ञासू की होई।
भक्तिसूत्र म शाडिल्य ऋषि न भक्ति बनाई सोई॥
प्रेम और अनुरक्ति अर्थ म नहीं भेद कछु ताता।
ताते प्रेम अरु भक्ति को जानहु एकहि बाता ॥४२॥
नारायणदास अरोड़े भक्ति और प्रेम, पृ० ४१।

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि, प्रथम भाग, पृ० ३२।

४ डा० सावित्री शुक्ल सत साहित्य की सामाजिक एव सास्कृतिक पृष्ठभूमि, लखनऊ विश्वविद्यालय, प्रथम सस्करण, पृष्ठ २४।

भक्ति विषयक काव्य की सामाजिक प्रेरक स्थितियाँ

जनता की समष्टि का दूसरा नाम ही समाज है। जन-जीवन की स्पष्ट छाप समाज पर परिलक्षित होती है। समाज जन जीवन के साथ ही पतनोन्मुख और विकासोन्मुख होता है। जन-जीवन के विकास के साथ ही समाज उन्नति के शिखर पर अग्रसर होता है। वरना वह पतन के गर्त म गिर कर स्वाहा हो जाता। परिणामस्वरूप समाज की प्रतिक्रिया ही साहित्य के पन्नो पर दृष्टिगोचर होती है। जन-जीवन अपने क्रिया कलापो द्वारा समाज को प्रेरित करता है। समाज उसकी समस्त प्रतिक्रियाओं को आत्मसात कर लेता है और तब साहित्य उसे समाज के सामने रख देता है। जन-जीवन को प्रेरित करने वाले तत्व एव देशकाल की परिस्थितिया समाज को बहुलाश मे प्रभावित करती है। फलत जन जीवन का रूप सवर भी जाता है और बिगड भी जाता है। अत जन-जीवन की प्रतिच्छाया समाज पर और समाज की प्रतिच्छाया साहित्य पर पडती है।

समष्टि के ये तीनो तत्त्व (जनजीवन, समाज और देशकाल) का घनिष्ट सम्बन्ध है। एक दूसरे के परिपूरक हैं। एक दूसरे पर आश्रित और निर्भर हैं। समाज और साहित्य दोनो म अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। एक के अभाव म दूसरे की कल्पना असम्भव है। मानव जीवन क्या है? एक प्रकार के विकास का व्यापार है। इसी व्यापार को साहित्य सचित तथा अक्षुण्ण रखता है। और साहित्य समाज के विकास एव विनाश की कहानी प्रस्तुत करता है। स० ८०० से इसका क्रमबद्ध इतिहास हम उपलब्ध होता है। आचार्य चतुरसेन ने हिन्दी साहित्य का आदिकाल स० ८०० स ही माना है।[1] इसके पहले वैदिक युग है जिसे हम प्राचीन युग की सज्ञा से अभिहित कर सकते हैं।

प्राचीन युग का समाज भक्ति भावनाओ से ओतप्रोत था। सृष्टि के विकास के साथ ही साथ भक्ति की उत्पत्ति हुई। समाज की एक सस्कृति थी एक पेशा था और समाज विभिन्न वर्गों में नही बँटा था। परिणामस्वरूप जन जीवन काफी दुरूह एव जटिल था। दूसरी तरफ प्राकृतिक शक्तियो के अलौकिक क्रियाकलाप प्राकृतिक अभिराम छटा, चपला की चमक, नभ का बादलो से आच्छादित होना और पुन सूर्य की रश्मियो से उनका लोप हो जाना आदि मानव मन म अलौकिक परम सत्ता के प्रति विश्वास हो गया। यही कारण है कि वैदिककाल का जन-जीवन उस अलौकिक सत्ता के प्रति आकृष्ट हो गया। वेद उपनिषद्, पुराण और ब्राह्मणो मे भक्ति के मन्त्रो की विपुलता है।

समाज मे शान्ति से रहना बडा ही दुरूह कार्य है। मानव मन शान्ति की खोज म सदैव चिन्ता तुर रहता है। समाज का विकास ज्यो-ज्यो होता गया उसकी आवश्यकताएँ बढती गइ। आवश्यकताओ के बढने से उनकी पूर्ति के लिये सघर्ष शुरू हुआ जिससे युद्ध की भावना जगी। युद्ध मे विजय हेतु प्रार्थना की गई। भक्ति की धारा उमड पडी।

अब हम मध्ययुगीन सामाजिक परिस्थितियो का अध्ययन करेंगे। हिन्दी साहित्य के विकास के इतिहास के साथ ही साथ उत्तर भारत पर मुसलमानो के आक्रमण आरम्भ हो गये थे और राजपूतो के पतन के पश्चात् क्रमश दासवश (१२०६ १२९० ई०) खिल्जी (१२९०-१३२० ई०), तुगलक (१३२० १४१२ ई०), सैयद (१४१४ १४५१) तथा लोदी वशो का (१४५१-१५२६) तक आधिपत्य रहा। इस ३२० वर्ष के राजनीतिक हलचल मे समाज म विद्रोह की भावना एव विषमता का नग्न नृत्य होता रहा। इनके राजनीतिक उत्कर्ष के मूल मे धार्मिक प्रेरणायें ही हँसती खेलती रही। सुल्तानो की धार्मिक असहिष्णुता न अनेक बार अपना नग्न रूप प्रदर्शित किया। इन ३२० वर्षों मे पाँच बार

१ चतुरसेन शास्त्री हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, १९४९ ई०, पृ० १६।

राजवश परिवतन हुआ। इम परिवर्तन के मूल मे आन्तरिक विद्रोह एव घातक षडयन्त्रो का ताँता लगा रहा। इस विद्रोह एव अशान्त वातावरण का हिन्दू प्रजा पर प्रत्यक्ष प्रभाव पडा। मुसलमान आपस मे विद्रोह की आग फूकते थे और हिन्दुओ को लूटते थे। हिन्दू प्रजा पर अत्याचार किया जाता था, अत दरिद्रता के मार या प्राण मोह म धम च्युत होना या धम की दुहाई देना ही प्रबल होता है।

मध्ययुग का समाज इसी तरह अनेक अभिशापो मे ग्रस्त था। समाज म नैतिक नियन्त्रण का नाम ही नही था। नैतिकता की जगह पर उच्छृङ्खलता और बर्बरता बढ गई थी। मुसलमान उन्हें घृणा की दृष्टि स देखते थे। वे अपन धम और राज्य का तलवार के बल पर प्रचार और प्रसार कर रहे थे। हिन्दुओं के मस्तिष्क मे सदैव विरोध की भावनाएँ जग रही थी। मुसलमानों की कट्टरता तथा उनका राज्य के लोभ म आपस का वैमनस्य देश की दशा का और भी दुखद बना रहा था। हिन्दुओ के पास अब पौरुष नहीं रह गया था। उत्साह और उमग तो मुसलमानो न दमन की भट्टी मे झोक दिया। इतना होने पर भी धर्म के प्रति उनका दृढ विश्वास था, अटल आस्था थी।

मुसलमानो के आने स भारत भूमि दो संस्कृतियो का सगम स्थल बना। उनकी व्यक्तिगत भौतिकता और विलासिता आचरण को और दूषित कर रही थी। दोनो अपनी भिन्न संस्कृतियो के कारण आपस म मिल न सके। सारा समाज अनाचार और अनैतिकता का अड्डा बन गया। सुरा, सुन्दरी, सौन्दय की खोज म समाज खोखला हो गया। दूसरी तरफ अपनी पराधीनता और निधनता के कारण हिन्दू समाज अपने उच्चादर्शों स चिपका रहा। फलस्वरूप वैदिक काल की ग्राम्यसभ्यता का पुनर्जीवन प्राप्त हुआ।

भक्ति विषयक काव्य की राजनीतिक प्रेरक स्थितियाँ

किसी देश के समाज पर वहा के वातावरण, वायु एव राजनीतिक परिस्थितियो का प्रभाव पडना अवश्यम्भावी है। राजनीति से समाज और साहित्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। समाज के विकास मे राजनीति का हाथ स्पष्ट होता है। राजनीतिक हलचल का समाज पर ही प्रभाव पडता है। राजनीतिक प्रेरक स्थितियो स समाज का सर्वाधिक अग चेतनशील बनता है। राजनीति समाज के जीवन-दर्शन, चिन्ता-पद्धति एव दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवतन उपस्थित कर देती है। कवि समाज का चेतनशील प्राणी है। वह अन्य जनो से काफी भावुक एव चिन्तनशील होता है। अत वह अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक एव आर्थिक परिस्थितियो स अधिक प्रभावित होता है। फलत वह अपनी प्रतिक्रियाओ और अनुभूतियो को भाषा के माध्यम स अभिव्यक्त करता है। उसकी अभिव्यंजना शैली मे तत्कालीन परिस्थितियों का स्पष्टत प्रभाव परिलक्षित होता है। किसी कवि या साहित्कार की रचनाओ को उसकी तत्कालीन परिस्थिति का अध्ययन किये बिना समझना भ्रामक होगा।

समाज के साथ राजनीति का सम्बन्ध आदि युग से चला आ रहा है। प्राचीन युग से ही यह देश धर्म प्रवण रहा है। धम ही हिन्दू समाज का प्राण है। इसके प्रचार एव प्रसार से यहाँ के राजाओ ने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। गार्हस्थ्यमूलक चारो आश्रमो म नर-नारायण की पूजा की प्रधानता थी। भागवत धर्म ही प्राचीन धम था, इसका अभ्युदय मथुरा म हुआ था। भगवान् श्रीकृष्ण का जन्म सात्वत वश म हुआ था। इसी वश द्वारा इस धर्म का प्रचार समस्त भारत मे हुआ। सात्वत लोग दक्षिण के निवासी थे। सात्वतो ने ही भागवत धम का प्रचार उत्तर भारत से ले जाकर दक्षिण मे किया।[1] सात्वत बाद म उत्तर से दक्षिण म जा बसे थे। इस प्रकार समस्त भारत भागवत धर्म के सूत्र म बँध गया तथा यह भी स्पष्टता परिलक्षित होता है कि भगवत धर्म के प्रादुर्भाव क साथ-साथ ही उसे

---

१ डा० सावित्री शुक्ल सतकाव्य की सास्कृतिक एव सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० २५।

राजाश्रय प्राप्त हो गया। डा० नाहर ने भी भागवत धर्म के राज्याश्रय के बारे मे लिखा है कि "महाभारत युग तक आते-आते पहले से जाने वाले भागवत सम्प्रदाय को कही-कही राज्याश्रय प्राप्त होने लगा था"[1]। इस तरह भक्ति को राजनीतिक का सहारा प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप इसके प्रचार एव प्रसार मे राजनीति की प्रेरणा-दायिनी शक्ति प्रबल है। उसके प्रचार प्रसार म लोकमत था।

भागवत धर्म का सम्बन्ध प्रसिद्ध सात्वत कुल से था। लेकिन उसे कभी भी किसी राज्याश्रय की अपेक्षा नही थी। यह ब्राह्मण धर्म की भाँति लचीला नही था। आध्यात्मिक जगत् मे इस धर्म म भगवान् विष्णु के अवतारो के शरण की सर्वाधिक आवश्यकता थी और व्यावहारिक जगत् म इसे जनता-जनार्दन पर काफी भरोसा था। राज्याश्रय प्राप्त धर्म तो अपने प्रचार प्रसार मे राजनीति के तराजू पर भूलते दिखलाई पडते थे। भागवत धर्म लोकमत का धर्म था।

बाद मे जैन एव बौद्ध धर्म की स्थापना हुई। इन्हे भी राज्याश्रय प्राप्त था। इनके अभ्युदय काल से ही धर्म राजनीति का विषय बना। इन दानो धर्मों का विकास राजघराना द्वारा तथा इनके सस्थापको के सबधियो द्वारा बहुत बडा योग मिला।

भक्ति को गुप्तकालीन इतिहास एक नया परिच्छेद प्रदान करता है। चौथी शताब्दी म इस शक्ति का उदय होता है और आगामी दो शताब्दी तक इस भक्ति को सर्वश्रेष्ठ राजनीतिक शक्ति बनाने का प्रास रहा। इस युग म भक्ति के प्रचार एव प्रसार म चारचाँद लग जाता है राजाओ द्वारा विष्णु मन्दिर बनाने का उल्लेख भी मिलता है। समाज इनसे काफी प्रभावित था। इनसे प्रेरणा प्राप्त कर भक्ति साहित्य काफी सबल बना। 'भागवत धर्म सम्बन्धी साहित्य के सृजन एव अभिवर्द्धन का स्वर्णिम अवसर प्रदान हुआ था। यह गुप्ता के साहित्यानुराग का ही प्रतिफल रहा कि अनेक दार्शनिक एव पौराणिक ग्रथो की रचना हुई जिससे भागवत धर्म गतिशील एव शास्त्रानुमोदित हुआ। अश्वघोष जैसा मेधावी ब्राह्मण इसी युग मे हुआ था जो भक्ति एव उसके सार्वजनिक प्रभावो को जानकर बौद्ध हो गया। गुप्तकालीन इतिहास बताता है कि वैष्णव तथा शव तत्व प्रतिपादक एव असख्य मन्दिरो और मूर्तियो के निर्माण के फलस्वरूप सगुण काव्यधारा के प्रचार के कार्य म सहयोग प्रदान किया। इस काल म भक्ति काव्य के प्रचार एव प्रसार मे आश्चयजनक प्रगति हुई।

हर्षोपरान्त भारत म हिन्दू राजनीतिक शक्ति प्राय लुप्त हो गई। राज्य छिन्न भिन्न हो गये। आपसी वैमनस्य, विरोध एव निजी राज्य प्रसार की भावना का बोलबाला हुआ। सगठित राजनीतिक शक्ति का ह्रास हो गया। देश पर अत्याचार के बादल मँडराने लगे। अशाति एव सघर्ष का काल आया। तेरहवी शताब्दी स लेकर अठारहवी शताब्दी तक देश की राजनीतिक धार्मिक एव सामाजिक परिस्थितियो म पर्याप्त परिवर्तन हो गया। इस आलोच्यकाल म तुगलक वश और लोदी वश के उपरान्त बाबर ने मुगल वश की नीव डाली। भारतीय राजनीति इस अवधि मे काफी क्षुब्ध असतुलित एव अशान्त बनी रही। बाहर निरतर आक्रमण के कारण राजनीति की नीव डगमगा चुकी थी। गौरी गजनवी की लूट-खसोट की नीति से भारतीय जनता को नतमस्तक होना पडा। भारतीय राजनीति पर बाहरी शक्तियो न बराबर नये-नये प्रयोग किये। अलाउद्दीन व्यक्तिगत समृद्धि को रोकने के लिये अथक परिश्रम करता रहा। सामूहिक शक्ति को वह कुचल कर बादशाह बन बैठा। बाद म व्यक्तिगत समृद्धि को भी वह नष्टप्राय करने के लिये उसने शक्ति अपहरण को निशाना बनाया तथा उसने घोषणा करवा दिया कि हिन्दू लोग तब तक विनम्र और आज्ञाकारी नही होगे जब तक उन्हे पूर्णतया दरिद्र

१ डा० रतिभान सिंह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, पृ० ५२।

नही बना दिया जायगा ।'[1] तत्कालीन हिन्दू समाज को कुचल एव शक्तिविहीन कर देने के लिये इन सुल्ताना न जो कुछ किया इतिहास के पृष्ठ उसके साक्षी हैं। उसकी नीति साहसपूर्ण एव क्रान्तिकारी तो थी ही लेकिन हिन्दुओ के प्रति उसके व्यवहार को धर्मान्धतापूर्ण ही कहा जायगा। अलाउद्दीन हिन्दुओ को अपनी प्रजा उस रूप मे नही समझता था जिस रूप मे वह मुसलमानो को समझता था और हिन्दुओ के हित तथा कल्याण के लिये अपने को उत्तरदायी नही मानता था। हिन्दुओ का दमन उसके क्षणिक आवेश का परिणाम न था वरन् उसकी नीति का अभिन्न अग बन गया था।[2]

खिलजीवंश के पतन के बाद तुगलकवश का आधिपत्य १३२० १४१२ ई० तक रहा। मुहम्मद तुगलक अलाउद्दीन की अपेक्षा बडा साहसी एव विद्वान् था। वह हृदय से बुद्धिवादी था। परिणाम स्वरूप उसने नये-नये प्रसगो मे अपनी रुचि दिखलायी। उसने रूढिवादिता पर कसकर प्रहार किया। उसका शासन स्वेच्छाचारी तथा निरकुश था। शक्ति अनियन्त्रित थी परन्तु उसने परामर्शदातृ परिषद की व्यवस्था की थी। लेकिन उसका शासन असफलताओ का ही इतिहास प्रस्तुत करता है। इसके पश्चात् फिरोज तुगलक गद्दी पर बैठा। वह सामरिक प्रवृत्ति का व्यक्ति नहीं था और न सेनानायक की सगठन शक्ति ही उसके पास विद्यमान थी। हिन्दुओ के साथ उसका व्यवहार अच्छा नही था यद्यपि कि वह एक राजपूत माता नैला का पुत्र था।[3] उसने हिन्दुओ को मुसलमान बनने के लिये प्रोत्साहित किया। उसके आत्म कथा के अश से इस बात की पुष्टि हो जाती है। उसने लिखा है कि मैंने काफीर प्रजा को पैगम्बर का धर्म अगीकार करने के लिये प्रेरित किया और घोषणा की कि जो भी व्यक्ति कलमा पढ़ेगा, उसे जजिया से मुक्त कर दिया जायेगा।[4]

तुगलकवश के पतन के बाद राजनीति के मैदान मे पुन विशृखलता आ गई। तैमूर आदि विदेशी आक्रमणकारियो ने देश की जड को झकझोर दिया। तुगलकवश की गौरव-श्री सर्वथा के लिये विलीन हो गई। उसने अपने आक्रमण के उद्देश्य को स्पष्ट किया है—'भारत पर आक्रमण करने का मेरा उद्देश्य काफिरो के विरुद्ध युद्ध करना है, पैगम्बर की आज्ञानुसार उन्हें सच्चा धर्म (इस्लाम) स्वीकार करने के लिये बाध्य करना, बहुदेववाद तथा अन्धविश्वास से मुक्त करके पवित्र करना तथा मन्दिरो और मूर्तियो का उन्मूलन करना जिससे हम धर्म तथा ईश्वर के समर्थक और सैनिक बनकर गाजी तथा मुजाहिद का पद प्रदान करेंगे।'[5] तैमूर का आक्रमण बडा ही विनाशकारी था। इतिहासकारो ने बताया है कि तैमूर के अनन्तर देश मे भुखमरी, विनाश और अकाल के लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे। मुस्लिम सत्ता छिन्न भिन्न हो गई। कुछ वर्षो तक राजधानी मे अशाति का साम्राज्य रहा। बाद मे सैयद एव लोदी खानदान वालो ने शक्ति सचित कर सिंहासनारूढ हुए। इन दोनो खान्दानो मे कोई ऐसा राजा नही हुआ जो शाति कायम कर सकता। इसी खानदान मे सिकन्दर लोदी नाम का बादशाह हुआ। निर्गुण भक्ति के आदि आचार्य कबीरदास जी को इसी का समकालीन बताया जाता है। लोदी वश के साथ ही साथ गुलामवश की इतिश्री हो जाती है। इब्राहिम लोदी के समय पानीपत की पहली लडाई से मुगलवश एव गुलामवश के भाग्य का फैसला हो जाता है। बाबर देश का सम्राट बनता है।

---

१ एस० आर० शर्मा भारत मे मुगलशासन का इतिहास आगरा, प्र० स० १९५४, पृ० ११५
२ श्रीनेत्र पाण्डेय भारत का बृहद् इतिहास स्टुडेन्टस फ्रेन्ड्स बनारस, तृ० स० १९५५, पृ०२३९।
३ श्रीनेत्र पाण्डेय भारत का बृहद् इतिहास, तृ० स० १९५५ ई०, पृ० ३३३।
४ एस० आर० शर्मा भारत मे मुगल शासन का इतिहास, पृ० २७२।
५ वही, पृ० १५८।

मुगलवंश की राज्य स्थापना के पश्चात् देश में कुछ दिन तक शांति के सुखद बादल दिखलाई पड़ते हैं। राजनीति में उथल पुथल तो रहा लेकिन कोरा विनाशकारी प्रभाव नहीं पड़ा। मुगलों की साम्राज्यवादी नीति ने राज्यविस्तार में हिंदुओं का सहयोग सहज ही में प्राप्त कर लिया। अकबर ने तो वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया। उसके सामने क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी ने घुटने टेक दिये। अकबर और जहांगीर ने मुगल साम्राज्य को अत्यन्त विशाल रूप प्रदान किया।

तत्कालीन राजनीति में विद्रोह दमन, अत्याचार एवं विनाश की अग्नि प्रज्ज्वलित होती रही। शासक वर्ग में राज्य प्राप्ति के लिये अनेक गृहयुद्ध होते रहे और निमम हत्याओं का क्रम चलता रहा, उत्तराधिकार का कोई नियम नहीं था। मुसलमान शासन सर्वथा अनुदार नहीं थे। अकबर ने विशेषरूप से धार्मिक उदारता का परिचय दिया। उसके दरबार में हिंदी के कवियों का भी सम्मान हुआ।

मुगल शासन के पतन के बाद ईस्ट इंडिया कम्पनी की व्यापारी नीति का दमनचक्र चला। कम्पनी व्यापारी बनकर आई और बादशाह बन गई। यह भारतीय इतिहास की आश्चयजनक घटना है। इस प्रकार शोषण-दमन एवं अत्याचार से भारतीय जनता बराबर त्राहि त्राहि के दिगन्तव्यापी नारों से भगवान् की दुहाई देती रही। इस दुहाई ने ही भगवद् भक्ति की ओर प्रेरित किया। मिशन का धर्म प्रचार कार्य राज्यविस्तार के साथ ही सम्पन्न हुआ।

ऊपर हमने प्राचीन युग से लेकर ईस्टइण्डिया कम्पनी तक राजनीतिक स्थिति का अवलोकन किया। तत्कालीन धार्मिक गतिविधियों का जो विवरण प्राप्त किया है उससे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अधिकांश भारतीय नरेश धार्मिक सहिष्णुता की नीति को अपनाते रहे। भारतीय नरेशों ने जिस प्रकार भागवतधर्म, ब्राह्मणधर्म, जैनधर्म और बौद्धधर्म के प्रचार एवं प्रसार में जिस लगन एवं उत्साह से काम लिया, इस्लाम के प्रवर्तकों ने भी उसी लगन एवं उत्साह से काम लिया। मिशन के प्रचार में भी राजनीतिक शक्ति का ही श्रेय है। शासकों की धार्मिक सहिष्णुता का प्रजा पर उपयुक्त प्रभाव पड़ा। हाँ गुलाम एवं मुगलवंश के राजाओं के समय जन विद्रोह का अवसर प्राप्त था लेकिन केन्द्रिय शक्ति के अभाव में धार्मिक जागरण का बीज अंकुरित नहीं होता रहा। धार्मिक क्रांति की चिनगारी मनोव-मस्तिष्क को झकझोर रही थी। उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर भक्ति आन्दोलन का बीज फूट पड़ा। परिणामस्वरूप वैष्णव सम्प्रदायों का विकास हुआ। डा० नाहर ने लिखा है कि उत्तर मध्यकालीन भक्ति की प्रधान भूमि दक्षिण में तो अनेक नरेशों ने वैष्णव सन्तों तथा कवियों को राज्याश्रय प्रदान कर दक्षिण भारत के भक्ति आन्दोलन में एक नई लहर ला दी थी।[१] इस प्रकार राजनीतिक अशान्ति ने भारतीय भूमि पर धर्मध्वज फहराने के लिये प्रेरणास्वरूप उन समस्त तत्वों को प्रदान किया जिनकी आवश्यकता थी। विद्रोह एवं दमन में ही अलौकिक सत्ता की तरफ ध्यान आकर्षित होता है। जनता का मस्तिष्क हलचलों से उद्वेलित होकर प्रभु सत्ता की तरफ केंद्रित हो गया।

भक्ति विषयक काव्य की धार्मिक प्रेरक स्थितियाँ

धर्म, समाज और साहित्य का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। ये तीनों एक दूसरे के विकास में सहायक होते हैं। साथ ही यह प्रायः निश्चित ही है कि एक के भ्रष्ट होने पर दूसरे का भ्रष्ट होना अवश्य

---

१ डा० रतिभान सिंह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, किताब महल, इलाहाबाद पृ० १६१।

प्रभावी है। इन तीनो का विकास एवं ह्रास एक दूसरे पर निर्भर है। प्राचीन युग से लेकर आज तक साहित्य समाज एव धर्म की यही दशा है।

प्राचीन युग से भारतवर्ष धर्म प्राण देश है। धर्म का स्वर यहाँ के वायुमण्डल में गूंज रहा है। यहाँ की पृथ्वी के कण-कण में धर्म व्याप्त है। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने इसे इसी से धर्मप्रधान न कहकर धर्मप्राण कहा है।[1] यह देश प्राचीन काल से ही धार्मिक सम्प्रदायों का क्रीडास्थल रहा है। वैदिक धर्म की दोनों शाखायें शैव धर्म तथा वैष्णव धर्म इसी भू भाग में प्रस्फुटित हुई। इन धर्मों का प्रचार प्रसार यहीं हुआ तथा इनके उच्च आदर्श ने भारत का बहुत कल्याण किया। आर्य संस्कृति चिर काल तक इनका ऋणी रहेगी। धर्म ही मानव समाज के जीवन स्तर को उन्नत बनाने तथा संकीर्ण भावनाओं को हटाकर उदार एव उन्नत तथा विशाल भावनाओं का उद्रेक करने में समर्थ होता है। धर्म वही श्रेष्ठ है जो मानव हृदय में सौन्दर्य एव माधुर्य भावों की वृद्धि कर उसे सरल विकासशील एव रसस्निग्ध बनाता हो।

वैष्णव धर्म अपनी उदारता के लिये पृथ्वी पर श्रेष्ठ है। इसकी औदार्य दृष्टि के सामने संसार के समस्त धर्म नतमस्तक हो जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता इस धर्म का प्रधान ग्रन्थ है। इसकी समन्वय दृष्टि की समता के सामने भारतीय साहित्य में कोई भी धर्म नहीं है यद्यपि कि वर्णाश्रम धर्म मे प्रस्तुत धर्म की पूर्णत आस्था है। वर्णाश्रम धर्म मे आस्था रखते हुए भी इसने भगवत्प्रेम से किसी को वंचित नहीं किया है। शूद्र भी भक्ति के राज्य में ब्राह्मणों के समान ही अधिकारी है। यह धर्म भक्ति प्रधान धर्म है। भक्ति की प्रेरक स्थितियाँ इस धर्म के मूल में व्याप्त हैं। कर्मकाण्ड के अनेक विधानों में शूद्र अधिकार से वंचित रखा गया है, परन्तु भक्ति के राज्य में वह ब्राह्मणादिकों के समान ही सच्चा अधिकारी माना गया है।[1] यह धर्म बहुत ही पुराना धर्म है। इसके साथ ही साथ ब्राह्मण, शाक्त, जैन तथा बौद्ध धर्म भी प्रचलित थे। ब्राह्मण धर्म मे, वैदिक धर्म मे वैदिक धर्म की अवस्था में कुछ परिवर्तन परिलक्षित होता है।

आठवीं शताब्दी धर्मशास्त्र के इतिहास में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का परिच्छेद जोडती है। यहीं पर देवी-देवताओं की पूजा की प्रधानता तथा अनेक देवी देवताओं के बारे में रहस्यपूर्ण उद्घाटन एवं मन्दिरों का निर्माण होने लगा। प्राचीन देवी देवताओं के लिये मन्दिर तथा नवीन देवी-देवताओं के लिये वेदी, चौरा आदि का प्रबन्ध होने लगा। राजाओं द्वारा सहयोग एवं सार्वजनिक सहयोग भी प्राप्त होने लगा। इस प्रकार मन्दिर आर्थिक लाभ के कारण बने डा० नाहर ने लिखा है कि मन्दिरों में 'सोना बरसने' की बात सभी साक्ष्यों से सिद्ध होती है और मुलतान में अरबों ने तो केवल इसी आर्थिक लाभ की दृष्टि से अपने यहाँ सूर्योपासना की आज्ञा दे दी थी।'[2] देवी-देवताओं का बाहुल्य हो गया। तत्कालीन समाज की प्रार्थना एव उपासना तथा पूजा पर पूर्ण आस्था थी। इस धर्म की संख्या ४२ तक पहुँच गई थी। सुरा का रिवाज समाज में शूद्रों को छोडकर और कहीं नहीं था।

शैव सम्प्रदाय की शक्ति का विकास इसी शताब्दी में हुआ। करीब दो सौ वर्षों तक इसे राज्याश्रय प्राप्त रहा। सभी राजपूत नरेश शैवोपासक थे। समाज में शैवोपासकों का काफी सम्मान था। लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि वैष्णव धर्म लुप्त ही हो गया। कुछ राजवंशों में दोनों धर्मों की ध्वजा फहरा रही थी।

---

१ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण, २०१०, पृ० ३।

२ डा० रतिभान सिंह नाहर भक्ति-आन्दोलन का अध्ययन, पृ० २६७।

जैन एवं बौद्ध धम का प्रचार समाज की हिंसात्मक प्रवृत्ति के कारण हुआ। इन दोना धर्मों का सम्बध राजघराना से था। इनके प्रचार एव प्रसार म राजवशो के सगे सम्बन्धियो ने काफी सहयोग प्रदान किया। समाज म विषमता का प्रश्न बहुत ही जोर पकड रहा था, ब्राह्मण धम का जातिवाद इस धम के आगमन के समय स्वागत किया। वश्य एवं कृषक स्वेच्छा से जैन धम और बौद्ध धर्म म दीक्षित होने लगे। राष्ट्रकूट नरेशो द्वारा इसे प्रश्रय मिला। जैन धर्म का विकास दक्षिण भारत में ही हुआ। उत्तर भारत सवथा वचित रहा।

बौद्ध धम की अहिंसावादी प्रवृत्ति ने समाज को झकझोर दिया। दूर-दूर देशों म इसके प्रचारक गये और वहाँ उन्हे सफलता मिली। लेकिन बाद मे इसकी अवस्था शोचनीय होने लगी। इनके दो दल हो गये। इस शताब्दी म महायान कभी हीनयान पर हावी हो जाता था, तो कभी हीनयान महायान पर। डा० नाहर ने इसे स्वीकार किया है कि यह बौद्ध धर्म को हिन्दू धम म विलीन करने का प्रथम अनजाना प्रयास और महत्त्वपूर्ण सोपान था। इसी समय शकराचार्य का प्रादुर्भाव हुआ। शकराचार्य का उत्कर्ष ईसा की आठवी शताब्दी के आस-पास हुआ। उनके मत की छाप सर्वसाधारण पर पडी।'[1] मायावाद के प्रवर्तक शकराचार्य ने इसकी शक्ति को मिट्टी म मिला दिया। कुमारिल भट्ट का सहयोग भी इसके विनाश करने म मिला।

दसवी से बारहवी शताब्दी का इतिहास राजनीतिक उथल-पुथल का इतिहास है। लेकिन धार्मिक दृष्टि से यह युग बहुत ही क्रियाशील रहा। अन्तर्जातीय प्रवृत्ति प्रवल होती जा रही थी। बौद्ध धम एव ब्राह्मण धर्म दोना साथ साथ चल रहे थे। बौद्ध धम पतनावस्था की तरफ झुक रहा था। धम की क्रियाशीलता केवल तार्किक थी। वह बाल की खाल निकालन म व्यस्त था। समाज खोखला हो गया था। साहित्यकार, कवि, आचार्य सभी इसी रोग के शिकार थे। धार्मिक अवस्था म ठेकेदारी की प्रथा आ गई थी। धम मे पाखंड एव दम्भ का बोलबाला था। सम्प्रदाय के सम्प्रदाय बनते जा रहे थे। शकर के अद्वतवाद के प्रतिक्रियास्वरूप भक्ति प्रधान धार्मिक सम्प्रदायो का विकास हुआ। रामानुज का विशिष्टाद्वैतवाद, माध्वाचाय का द्वतवाद, निम्बार्क का द्वैताद्वतवाद, विष्णुस्वामी तथा बल्लभाचार्य का शुद्धाद्वतवाद भक्ति प्रधान वादो की अवतारणा हुई। विष्णु के अवतारो, रामकृष्ण आदि का विकास हुआ। रामानन्द ने रामभक्ति का प्रचार किया।

तेरहवी शताब्दी मे बाहरी आक्रमण ने भारतीय जनता को पददलित कर दिया। भारतीय जनता समस्त मौलिकता, स्वातन्त्र्य और प्रगतिशीलता को भूलकर किसी तरह जीवन के शेष दिनो को काटने के लिये सोचने लगी। देश म मुसलमानी राज्य कायम हो गया। इस्लाम का झडा फहराने लगा। सूफी धम के प्रचार प्रसार मे मुसलमानी शासको ने जी तोड़ कर परिश्रम किया। डा० नाहर ने आठवी से पन्द्रहवी शताब्दी तक के इतिहास को विश्व इतिहास मे आध्यात्मिक प्रगति का युग माना है। उन्होंने लिखा है कि इसी युग म ईरान के सूफियो, भारत के वेदान्तिया तथा यूरोप के रहस्यवादिया का उदय हुआ था।[2] यह युग बडा ही भयावह एव भयकर था। हिन्दू धर्म पर बडे से बडे प्रहार हो रहे थे। सामान्य जानता की धर्म भावना दबती जा रही थी। विनाश के बादल हिन्दू जाति के मस्तक और क्षितिज पर सदैव विद्यमान रहते थे। हिन्दुआ की जीवन नौका इन पाँच सौ वर्षों म राजनीतिक

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी ग्रथरत्नाकर बम्बई, चतुर्थ सस्करण, १९५०, पृ० २८।

२ डा० रतिभान सिंह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, किताब महल, इलाहाबाद, पृ० ७५२।

उत्पातों, वात्याचक्रा, उत्पीडनो के कारण निरन्तर अस्थिर ही बनी रहती थी।[1] राजनीति धम का गला दबा रही थी और धम मागन की कोशिश कर रहा था। वह जितना ही मागता राजनीति उतना ही पीछा पकडती। आचाय रामचद्र शुक्ल ने लिखा है कि धम की भावात्मक अनुभूति भक्ति जिसका सूत्रपात महाभारत काल मे और विस्तृत प्रवतन पुराणकाल म हुआ था, कभी कहीं दबती कभी कहीं उभरती, किसी प्रकार चली भर जा रही थी।[2]

हिन्दू जनता अपने विनाश से कराह रही थी। धम छटपटा रहा था। राजनीति केवल इस्लाम धर्म के प्रवत्तन मे थी। कभी जजिया उठता तो कभी लगाया जाता। धार्मिक दृष्टि से देश परमुखापक्षी वन चुका था। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद अग्रेजा का आगमन होता है। इस्लाम की जगह ईसाई धर्म ने ले ली। ईसाईया न अपने धम के प्रचार प्रसार म अथक परिश्रम किया। देश धम के ही लिये नही बल्कि आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से भी अब परमुखापेक्षी बना। इस प्रकार देश में धम के नाम पर अत्याचार ही अत्याचार दिखलाई पडने लगे।

हिन्दू अपने धार्मिक जीवन का मूल वेदो, उपनिषदो, ब्राह्मणा आदि म मानते थे। उनम त्रिमूर्ति, बहुदेववाद, भाग्यवाद, मूर्तिपूजा, तीथ, पुनजम आदि का प्रभाव था। सदियो के सघष में पला हुआ समाज इनसे अभी भी वचित न था। बौद्ध धर्म, जन मता तथा इस्लाम का हिन्दू धम पर प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचार हो रहा था। भक्ति की दो धारायें, सगुण एव निर्गुण मे फूट पडी। शैव, शक्ति आदि मतावलम्बी अपन क्रियाकलापा से जनता को चकाचौंध मे डाल देते थे। हिन्दू धम में उच्च आदर्शों का अभाव था। शिक्षित समुदाय ही अपने को भक्ति का ठेकेदार समझता था। फलत हिन्दी भाषा भाषियो का धार्मिक जीवन किसी नवीन आदश से प्रेरित न होकर निस्पद पडा रहा। हिन्दू धम के उच्च दाशनिक एव धार्मिक सिद्धान्तो का प्रचार केवल मुट्ठीभर शिक्षित व्यक्तियो तक ही सीमित था। समाज के अधिकाश में धर्म का बाह्य परम्परा विहित, रूढिग्रस्त अधविश्वासो और मूर्तिपूजा, बहुदेववाद तथा सर्वदेववाद के अत्यन्त गर्हित और विकृत रूप से सचालित और कमकाण्डावाला रूप प्रचलित था।[3] धम का रूप विकृत एव विकलाग था। इसम कुत्सित असामाजिक सारहीन एव कुरीतिया और प्रथाएँ थीं। लोगा का विश्वास पडिता एव ब्राह्मणो पर था जो धम के ठेकेदार थे। इन्हे खुद भी हिन्दू शास्त्र का ज्ञान नही था। दुर्भाग्यवश जनता शिक्षाविहीन थी, उन्ह प्रायश्चित्त के रूप म नाना प्रकार की असहनीय यातनाएँ दी जाती थी। रूढिग्रस्त परम्परा का विकास ही सदा होता रहा। इसी से इस सन्दम में डा० वार्ष्णेय न लिखा है कि बिना समझे बूझे मोक्ष की आशा से शरीर को अधिकाधिक और विविध प्रकार की यातनाएँ और कष्ट देने मे लोग धम की साथकता समझ बैठे थे[4]। इस्लाम और ईसाई धम को इन्ही परिस्थितिया ने पनपने के लिय बाध्य किया। हिन्दू धर्म की कमजोरी स इनके विकास को बल मिला।

विगत पृष्ठा म हमने वैदिक काल से १८ वी शताब्दी तक की राजनैतिक, सामाजिक एव धार्मिक प्रेरक स्थितिया का अध्ययन किया। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल से

---

१ डॉ० सावित्री शुक्ल सत काव्य की सास्कृतिक एव सामाजिक पृष्ठभूमि, लखनऊ विश्वविद्यालय, पृ० ७६।

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ५७।

३ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिषद् इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, प्र० स० १६५४, पृ०६।

४ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ०१०।

लेकर दशवी शताब्दी तक देश मे राजनीतिक, धार्मिक एव मामाजिक एकता थी। लेकिन ग्यारहवी शताब्दी से अठारहवी शताब्दी तक की स्थिति अत्यन्त शाचनीय एव दयनीय थी। इन आठ सौ वर्षों म देश की राजनीतिक, सामाजिक एव धार्मिक स्थितियाँ पूणत विकृत हो गई थी। जनता एक प्रकार से निराश एव उदासीन हो चली थी। विघटन, विद्रोह, विनाश विध्वंश, विच्छेद विभग आदि का ताण्डव नृत्य चतुर्दिक दिशा मे व्याप्त था। हिन्दी के भक्त कवियो ने इन विकृत स्थितिया के फलस्वरूप समुत्पन्न विषमताओ को दूर करने के लिये एक ऐसी साधना के मार्ग का द्वार उन्मुक्त किया जिससे ऊँच, नीच, कुलीन अन्त्यज सभी को प्रवश मिले सके। एक तरफ मूर्तिपूजा[1] का खण्डन किया गया तो दूसरी तरफ रोजा और नमाज का तिरस्कार किया गया। हिन्दू और मुस्लिम ऐक्य की भावना तत्कालीन भक्ति काव्या मे दृष्टिगोचार होती है। हिन्दुओ की रूढिवादी नीति पर कठोर आघात का समन्वय की सुरसरि मे समाज को गोता लगाने का स्पष्ट सकेत परिलक्षित हाता है।

भक्तिकाव्य की प्रवृतियां

हिन्दी साहित्य मे भक्ति की परम्परा, भक्तिकाल मे आकर दो धाराओ मे बहने लगी। एक का नाम सगुण तथा दूसरी नाम धारा निगुण के नाम से प्रसिद्ध है। इन दोनो धाराओ में कोई खास अन्तर नही है। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि 'सगुनहिं अगुनहिं नहि कुछ भेदा[2]।' आचाय विनोबा भी अपने गीता प्रवचन मे लिखते हैं कि सगुण और निर्गुण, दाना एक दूसरे म गुथे हुए हैं। सगुण निगुण का आधार सवथा तोड नही सकता और निगुण का सगुण के रस की जरूरत होती है[3]। सगुण और निगुण वस्तुत भक्तिरूपी वृक्ष की दो शाखायें हैं जिससे एक ही प्रकार का फल उपलब्ध होता है और होगा भी। सगुण के अन्तर्गत राम और कृष्ण की भक्ति और निगुण मे सूफी और सतकाव्य धारा आती है। आचाय रामचन्द्र शुक्ल न निर्गुण धारा के सतकाव्य का नाम 'निगुण ज्ञानाश्रयी शाखा' दिया है,[4] लेकिन इस नाम से इस धारा मे ज्ञानत्व की भ्राति होती है जबकि निगुण कवियो न प्रेम के सम्मुख ज्ञान को विशेष महत्व नही दिया। आध्यात्मिक प्रेम ही उनकी साधना का मूलमत्र है।

भक्ति की लहर देश की दो दिशाओ, उत्तर दक्षिण और दक्षिण से उत्तर की तरफ आग की लपट की भाँति फैल गयी। मध्ययुग इस लहर से द्रवीभूत हो उठाता। एक तरफ राजनैतिक उथल पुथल ने उत्तर भारत मे भक्ति का उपयुक्त वातावरण तैयार किया तो प्रकृति ने भी राम और कृष्ण को जन्म इसी क्षेत्र म दिया। दूसरी तरफ पौराणिक धर्म के रूढिग्रस्त हो जाने के कारण लोकधम अपना आसन झाड फूक कर बिछा रहा था। अध्यात्म के नाम पर दम्भ का बोलबाला हो रहा था। शकर का मायावाद फुफकार रहा था। भक्ति के लिये उपयुक्त भूमि तैयार हो चुकी थी। मुसलमानो के धर्म म छुआछूत का आभव बौद्ध सिद्ध और नाथपथियो का अनुकरण करना भक्ति को व्यापक बना दिया।

---

१ काकर पाथर जोरि के मस्जिद लिया बनाय।
तामे मुल्ला बाग दे क्या बहरा हुआ खुदाय॥
—कबीर।

२ गोस्वमी तुलसीदास रामचरितमानस, बालकाड, पृ०१०१।

३ आचार्य विनोबा भावे गीता प्रवचन पृ०१८६।

४ आचाय रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, बारहवाँ सस्करण स० २१५ पृ०६६।

इस प्रकार भक्ति काव्य की प्रवृतिया का अध्ययन करने का पूणत मौका मिल जाता है। काफी आलोडन विलोडन के बाद हम निम्नांकित निष्कप निकालते है। भक्तिकाव्य के अध्ययन से निम्नोक्त प्रवृतियाँ दिखलाई पडती हैं—

१ निजी सम्बध की दृढ़ता
२ आध्यात्मिक विपयो की अभिव्यक्ति
३ सगुण और निगुण का समन्वय
४ अलौकिक प्रेम की अभिव्यजना
५ विभिन्न प्रान्तीय भापाआ मे चित्रण
६ जनभावना से प्रेरित काव्य
७ गुरु की महानता
८ भावपक्ष की प्रचुरता
९ आत्मसमपण की भावना
१० अनन्यता
११ गीतिपरक रचनाआ का बाहुल्य

भक्ति-आन्दोलन और विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय

भारतीय सनातन दर्शन के दो विचार ही भारत के विचारको का प्रभावित करते चल आये है—प्रवृत्तिमूलक कममाग तथा निवृत्तिमूलक ज्ञानमाग। प्रथम मत के समथक हैं कमकाडी मीमासक तथा दूसरे मत के समर्थक हैं वेदान्ती। कर्मकाड का लोप भारतीय आर्य सस्कृति के विनाश के साथ ही साथ हुआ। साधारण मनुष्यो के लिय यज्ञादि अनुष्ठान भी कठिन प्रतीत होन लगा और ज्ञान मार्ग का बीहड माग भी दुर्गम एवं क्लेशकारी बना। फलस्वरूप एक ऐसे मार्ग की आवश्यकता पडी जो दोना के समन्वित रूप का प्रचार कर सके जिससे माग अति गहन एव अगम्य प्रतीत न हो सके। इसी समस्या का समाधान भारतीय भक्ता तथा सन्तो न किया। इस मार्ग का नाम भक्तिमार्ग पडा। प्रसिद्ध लोकोक्ति—

मक्ति द्राविड उपजी लाए रामानन्द।
कबीर ने परगट करी सात दीप नवखड ॥

—साखी ग्रथ, पृ०१०, दो० १।

पद्मपुराण के प्रस्तुत श्लोक की इस पर स्पष्ट छाप है—

उत्पन्ना द्रविड़े साह वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीणता गता ॥

—पद्मपुराण।

इस प्रकार भक्तिमार्ग का प्रादुर्भाव दक्षिण म हुआ और इसे शास्त्रीय समथन उत्तर भारत म प्राप्त हुआ। द्रविड में भक्ति के प्रादुर्भाव पर आशकाएँ प्रकट की जा सकती हैं, क्योकि इनके रस्म रिवाज तथा धार्मिक विश्वास सभी अवैदिक थ। रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दो में—अपने मूल रूप मे भक्ति आर्येतर प्रवृत्ति थी और वह आर्यों और द्राविडो के भारत आगमन के पहले ही भारत म विद्यमान थी। चूँकि द्राविड भारत मे आर्यों से पहले आये इसलिये भक्ति तत्व पहले द्रविड धम मे समाविष्ट हुआ। वैदिक आर्यों में भक्ति का प्रस्फुटित रूप नही मिलता, क्योकि उनका धर्म, हवन और यज्ञ तक ही सीमित था[१]। इस भक्ति मार्ग का विकास भारत की पावन भूमि पर अबाध गति से महाभारत युग

१ रामधारी सिंह 'दिनकर' सस्कृति के चार अध्याय, पृ० २८९।

तक होता रहा। बाद मे भक्ति का क्षेत्र बहुत विकसित हो गया। फलस्वरूप एक ही वृक्ष की बहुत सी शाखायें निकल आयी और अपने सुरभि सुगन्ध से भारतीय चिन्तन के इतिहास के पृष्ठो को सींचने लगी। ज्यो ज्यो चिन्तन का विकास होता गया भक्ति म क्रान्ति की कडी जुटती गई।

गोता की रचना के साथ ही इसने एक सम्प्रदाय का रूप धारण कर लिया[1] जिसे पाँचरात्र या भागवत सम्प्रदाय कहा जाने लगा। ईसा की पहली शताब्दी से आठवी शताब्दी तक अपने इसी रूप मे चलता रहा। इसी समय मायावाद के प्रवतक शकराचार्य का भारतीय धर्म साहित्य के इतिहास म प्रादुर्भाव हुआ।

निर्गुण सम्प्रदाय

नि + गुण = निगुण शब्द का अथ कोश के अनुसार 'गुणो से रहित' है। व्याकरण के अनुसार 'निर्गुतो गुणेभ्य' अर्थात् गुणा से शून्य या गुणा से विहीन' होता है। दशन साहित्य मे गुण शब्द ब्रह्म के लिये प्रयोग होता है। लेकिन साहित्य म यह व्यापक अर्थ रखता है। सगुण, सद्गुण, प्रत्यचा प्रभाव, धर्म, शील, दुगुण आदि के रूप म होना है। ब्रह्म के अर्थ म जब इसका प्रयोग होता है तब रजस, तमस एव सत्व गुणो से इसका सम्बध स्पष्ट हो जाता है। धार्मिक साहित्य म वैदिक काल से लेकर आज तक इसका प्रयोग होता आया है। कालातर म यही निगुण जब अनान और अध परम्परा के निराकरण के निमित्त एक क्रान्ति की आवश्यकता महसूस हुई तो, सम्प्रदाय का रूप पकड लिया।

मध्यकालीन भारत मे आज्ञान एव अध परम्परा से एक तरफ मुसलमानी धर्माधता का जन्म हुआ तो दूसरी तरफ समाज ने शूद्रा पर अत्याचार किया। समाज की यह विषमता भारतीय धर्म साधना एव चिन्तन के विकास म गतिरोध उपस्थित करती थी। साम्प्रदायिक ऐक्य और सामाजिक न्यान भावना को विकास नही मिल रहा था। इन्ही दो बाता के कारण समाज मे कलह एव अत्याचार पनप रहे थे।

वैष्णव धम और इस्लाम धर्म दोनो की धारा समानान्तर अबाध गति से बह रही थी। सामाजिक अत्याचार स पीडित दोनो धर्मों के विरक्त महात्मा जनसाधारण म धार्मिक स्वच्छन्ता के द्वारा सहानुभूति, सौहार्द्र और उदारता के भावो को भरन को सतत चेष्टा कर रहे थ। इस आध्यात्मिक आन्दोलन म सामाजिक ऐक्य की भावना के बीज अन्तर्निहित थे। दोना धर्मों के समन्वित धारा की आवश्यकता थी जिसके परिणाम स्वरूप निगुण सम्प्रदाय का जन्म हुआ। 'इस समागम मे एक ऐसे आध्यात्मिक आन्दोलन के बीज अन्तर्निहित थे, जिसम समय की सब समस्यायें हल हो सकती थी, क्योकि इसी समागम मे दोना धर्म वाले अपने अपन सधर्मियो की भूलें समझना सीख सकते थ, और यही दोना धम एक दूसरे के ऊपर शान्त रूप स प्रभाव डाल सकते थे। यही समय पाकर धीरे धीरे विकसित होकर यह आध्यात्मिक आन्दोलन निगुण सम्प्रदाय के रूप म प्रकट हुआ।'[2] हिंदू धर्म और इस्लाम धर्म के सघर्ष से भारतीय धर्म-साधना का इतिहास नया मोड लेता है। इस नये मोड मे दोना धर्मों की समानता ही मार्ग की बाधक परिस्थितियो से युद्ध करती है। इस समानता के भाव दोना धर्मों के मूल तत्त्व म विद्यमान थे।

---

१ डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल हिन्दी काव्य म निर्गुण सम्प्रदाय सपादक डा० भगीरथ मिश्र, अनुवादक परशुराम चतुर्वेदी अवध पब्लिशिग हाउस, लखनऊ पृ०८६।

२ डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल हिन्दी काव्य म निगुण सम्प्रदाय सपादक डा० भगीरथ मिश्र, अनुवादक, परशुराम चतुर्वेदी, अवध पब्लिशिग हाउस, लखनऊ, पृ० ८६।

किया है—'इनके स्मात सम्प्रदाय के लिये पचदेव अथात् शिव, विष्णु शक्ति, सूर्य व गणेश की समान आराधना आवश्यक थी, और स्मृतियो द्वारा विहित जप, तप, व्रत, उपवास, यज्ञ, दान सस्कार, उत्सव, प्रायश्चितादि का करना भी प्रत्येक मनुष्य के लिये परम कर्तव्य समझा गया था।'[1]

अद्वैतवाद का सिद्धान्त

शकर के अद्वैतवाद म जगत् माया, आत्मा और ब्रह्म, इन चारो पर तर्क का करारा प्रहार हुआ है। इन चारो की समन्वित धारा का नाम ही अद्वैतवाद है। यह ससार भी भ्रम है। उस भ्रम का कारण अज्ञान है। अज्ञान के कारण आवरण और विक्षेप होता है। अर्थात् ब्रह्म का स्वरूप आच्छादित होकर जगत् की प्रतीति होती है। सृष्टि का प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है। इस ससार के पहले असख्य ससार हो चुके है। उनके सस्कार ही जीवो म रह जाते हैं। ससार का तो विनाश हो जाता है। शुद्ध सत्ता ही ससार का मूल कारण है। इसी सत्ता को स्वामी शकराचार्य ब्रह्म कहते हैं। माया ईश्वर की शक्ति है। इसी माया के द्वारा मायावी ईश्वर वैचित्र्यपूण सृष्टि की अद्भुत लीला दिखलाते हैं। मोक्षावस्था को ब्रह्मानुभूति इस मत के प्रवत्तक मानते है। केवल क्लेशो से छुटकारा पाना ही मुक्ति नहीं है।

आचाय शकर का अद्वैतवाद और भागवत सम्प्रदाय के प्रवत्तको का द्वैतवाद भारत की पावन भूमि पर समानान्तर ही चल रहे थे। अद्वैतवाद ज्ञान की कठोर भूमि पर खरहे की भांति छलाग मार कर अपनी प्रतिष्ठा कायम करना चाहता था। द्वैतवाद कछुवे की भाँति मद-मद मस्तानी चाल स अद्वैतवाद पर करारा प्रहार कर भक्ति की भागीरथी मे समस्त ससार को डुबो देना चाहता था। अद्वैतवाद के विरोध मे शुद्धाद्वैतवाद के प्रवत्तक वल्लभाचाय ने जो नारा बुलन्द किया उसको भुलाया नही जा सकता। शकर ने माया सम्बन्धो स युक्त ब्रह्म को जगत् का कारण स्वीकार किया था किन्तु वल्लभाचाय ने जोरदार शब्दो म व्यक्त किया—

माया सम्बन्ध रहित शुद्धमित्युच्यते बुधै।
कायकारण रूप हि शुद्ध ब्रह्म न मायिकम्॥[2]

यहाँ ब्रह्म के तीन भेद प्राप्त हैं—अधिभौतिक, आध्यात्मिक अधिदैविक। अर्थात् जगत् अक्षर ब्रह्म और परब्रह्म। वल्लभ ने अक्षर ब्रह्म म सच्चिदानन्द ब्रह्म के अश का किंचिन्मात्र तिरोधान स्वीकार किया है और आनन्द से परिपूण केवल परब्रह्म को ही माना है।

इस प्रकार शकर के अद्वैत पर प्राय सभी सगुणवादी आचार्यों ने करारा प्रहार किया। शकर का मायावाद दशन की दिव्यभूमि से उचक गया, और दूर चला गया।

दाशनिक सिद्धात

आचाय शकर का दाशनिक सिद्धान्त भाष्य एव सूत्रो मे दशन की दिव्य भूमि पर दृष्टिगोचर होता है। दु ख से घृणा करना जीव का धर्म है। वह दु ख स छुटकारा पाने के लिय अहर्निश प्रयत्नशील है। अविद्या के नाश की इच्छा रखता है। इस प्रयत्न म वह आत्मा और परमात्मा का सम्मिलन चाहता है। आत्मा जीव का ही रूप है। आत्मा की उपेक्षा नही की जा सकती है। जब तक मानव अविद्या रूपी राग स ग्रसित रहेगा तब तक उसे उपलब्ध नहीं हो सकता।

---

१ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत परम्परा, भारती भडार, प्रयाग, प्रथम सस्करण स० २००८ पृ० ३८।

२ दे० रतिमान सिंह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, पृ० १८६।

शंकर शाक्त पहले हैं वैष्णव पीछे। उनका दर्शन अद्वैत दर्शन के नाम से प्रसिद्ध है। उपनिषद् ही इस दर्शन के मूल स्रोत हैं। आपने ब्रह्मसूत्र मे अपने विचारो को व्यक्त किया है। इसके अलावे आपने गीता माया विवेक चूडामणि, विष्णुस्तोत आदि पुस्तकों का सजन किया है।

अद्वैत दर्शन के अनुसार इस भूमि मे एक ही तत्त्व विद्यमान है, उसे ब्रह्म या आत्मा कहा जाता है। आत्मा या ब्रह्म दोनो एक हैं। दोनो आनन्दमय हैं। सत्+चित्+आनन्द सच्चिदानन्द ब्रह्म है। इसके अलावे वे किसी चीज की सत्यता पर विश्वास नही करते हैं। उनका कहना है ब्रह्म ही सत्य है—

सर्पादौ रज्जु सत्तेव ब्रह्मसत्तव केवलम्।
प्रपञ्चा धार रूपेण वर्तते तद् जगन्न हि॥[1]

ब्रह्मानन्द की अनुभूति के लिए अज्ञान और माया का ज्ञान आवश्यक है। शंकर ने सत्ता को तीन भागो मे विभाजित किया है—

१ पारमार्थित सत्ता —ब्रह्म
२ प्रतिभासिकी सत्ता —रस्सी और सर्प
३ व्यावहारिकी ज्ञान —व्यवहार के लिये सत्य मानने की दशा ही व्यावहारिक सत्ता है।

चैतन्य स्वरूप दो हैं—(१) चैतन्य रूप
(२) माया रूप

चैतन्य रूप मे विशुद्ध सत्व की प्रधानता है और लेकिन माया रूप मे नही। वहाँ रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता है।

कोश पाँच होते हैं—(१) विज्ञानमय
(२) प्राणमय } सूक्ष्म
(३) मनोमय
(४) अन्नमय स्थूल
(५) आनन्दमय कारण[2]

विज्ञानमय कोष म पाँच ज्ञानेन्द्रिय और बुद्धि के सहयोग से कार्यवस्तु शरीर मे उत्पन्न होती है, वह चैतन्य जीव की सज्ञा प्राप्त करता है। जगत् के कारण हो वह आनन्दमय कोष की सज्ञा प्राप्त करता है। यहाँ एसी हालत म सभी लय रहता है। मनोमय कोष म मन को उत्पन्न कर संकल्पात्मक विकल्पात्मक भावों की उत्पत्ति होती है।

शब्द ही इस दर्शन का प्रमुख कारण है। प्रमाण है—(१) प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि। अद्वैतवेदान्त के आचार्यों ने ब्रह्म और उसकी माया से ही दर्शन शास्त्र की इतनी बडी इमारत बनायी। आचार्य शंकर ने स्पष्ट स्वीकार किया है—एकमेवाद्वितीय नेह नानास्ति, ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, सर्वखल्विदं ब्रह्म।

आचार्य शंकर ने मुक्ति की कारण रूप सामग्री म भक्ति ही को सबसे बढकर माना है और अपने वास्तविक स्वरूप का अनुसधान करना ही भक्ति है—

मोक्षकारण सा मग्र्या भक्तिरेव गरीयसी।
स्व स्व रूपानुसधानं भक्तिरित्यभिधीयते॥[3]

यही शंकर का अद्वैत दर्शन है।

---

१ सतवाणी विशेषांक, कल्याण वर्ष २८ संख्या १, माघ २०११, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ० १४६।
२ बलदेव उपाध्याय भारतीय दर्शन, पृ० ४३०।
३ कल्याण, सतवाणी अक, वर्ष २८ सख्या १, माघ २०११, पृ० १४६।

सूफी सम्प्रदाय (प्रेमाश्रयी) का आविर्भाव

आठवीं शताब्दी स १५वी शताब्दी तक का युग शक्ति साहित्य मे क्रान्ति का युग है। भारतीय धर्म साधना एव चिन्तन मे इस क्रांति से नई प्रगति आती है। इसी युग मे ईरान के सूफियो, भारत के वेदान्तियो, यूरोप के रहस्यवादियो का उदय हुआ। भारत से मुसलमानी सत्ता के साथ ही साथ सूफी सेघन्त यहाँ आने लगे थे। यह मत इस्लाम धम का अग है। जिस प्रकार हिदू धम की वैदिक कमकाण्ड की प्रतिक्रिया वैष्णव मत म देखी जाती है। उसी प्रकार सूफीमत इस्लाम धम की शरीयत (कमकाण्ड) की प्रतिक्रिया है। सूफीमत को फारसी म तसव्वुफ कहते हैं। इसका प्रवेश भारत मे सातवी शताब्दी म हुआ और इसका प्रचार विशेष रूप से १५ वी शताब्दी तक भारत की शस्यश्यामला भूमि पर रहा। डा० नाहर ने सूफिया का उद्गम स्थान मिश्र माना है।[१]

सूफी शब्द की व्युत्पति के सम्बन्ध मे विद्वान् एकमत नही है। आचाय चन्द्रबली पाण्डेय ने सूफी शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे जो विचार व्यक्त किया है वह विशेष रूप से द्रष्टव्य है—

"कुछ लोगो की धारणा है कि मदीना के मस्जिद के सामने एक सुफ्फा (चबूतरा) था। उसी पर जो फकीर बैठते थे वे सूफी कहलाए। दूसरे लोगा का कहना है कि सूफी शहर के मूल म 'सफ' (पक्ति) है। निणय के दिन जो लोग अपने समाचार एव व्यवहार के कारण औरा से अलग एक पक्ति म खड़े किये जायेंगे, वास्तव म उन्ही को सूफी कहते हैं। तीसरे दल का कथन है कि सूफी वस्तुत स्वच्छ और पवित्र होते हैं। 'साफा' हाने के कारण उनको सूफी कहते हैं। चौथे दल के विचार म सूफी शब्द सोफिया (ज्ञान) का रूपान्तर है। ज्ञान के कारण ही उनको सूफी कहा जाता है। पर अधिकतर विद्वानो का मत है कि 'सूफी शब्द वास्तव मे सूफ (ऊन) से बना है। सूफधारी ही वास्तव मे सूफी के नाम से ख्यात हुए। निकल्सन, ब्राउन, मारगोलियथ प्रभृति विद्वाना ने सिद्ध कर दिया है कि वास्तव म सूफी शब्द सूफ स बना है। अनेक मुस्लिम प्रतिभाआ न भी इसे स्वीकार किया है। अस्तु हमको यह व्युत्पत्ति मान्य है। *वपतिस्मा देने वाला जान या यूहन्ना भी सूफीधारी था, पर अब सूफी का प्रयोग* मुस्लिम सत या फकीर के लिये ही नियत समझा जाता है[२]।'

वस्तुत सूफी शब्द की व्याख्या सम्बन्धी उपयुक्त मान्यताएँ उस व्यापक अर्थ को अभिव्यक्ति प्रदान नहीं करती जो कि सूफी धर्म का मूलाधार है। इस्लामधम म 'अल्लाह' की अनन्यता का प्रति *पादन किया गया है, अर्थात् उसके अतिरिक्त अन्य किसी को इस्लाम देवता नही मानता।* मुहम्मद साहब अल्लाह के दूत हैं और 'इस्लाम' क रूप म उसके आदेशों का जीव तक पहुँचाते है। इस प्रकार ईश्वर (अल्लाह) को अनन्य देवता मानते हुए भी इस्लाम धम मे उसकी मान्यता का अन्तर्रात्मा की पुकार नही माना गया, जीव से उसका सम्बन्ध मुहम्मद साहब के बाहरी उपदेशो स जोडा गया है।

सूफीमत का विकास सूत्र इस्लाम के मूल म है। इस्लाम एक नया मजहब बन कर आया जिसमे शैतान को भी ईश्वर से भयंकर बताकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है कि ईश्वर परम सत्ता

---

१ डा० रतिभान सिंह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, पृ० २३५।

२ चन्द्रबली पाण्डेय तसव्वुफ अथवा सूफीमत, सरस्वती मन्दिर, बनारस, द्वितीय संस्करण १९४८, पृ० १।

नही हो सकता। ईश्वर अनन्य देवता हो सकता है। भारतीय चिन्तकों ने जिस प्रकार आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध जोडा है उसी प्रकार इस धर्म मे भी अल्लाह और मुहम्मद को समन्वित किया गया है। अल्लाह अन्तर्यामी बन जीवधारी के हृदय पर आसीन हो गया। यही सूफी धर्म है। इसके विकास की कहानी के सम्बन्ध मे मतैक्य नही है। फिर भी चिन्तकों ने सूक्ष्म विवेचन के आधार पर अन्तर स्पष्ट करने की भरपूर चेष्टा की है।

सातवी शताब्दी मे अरब की पवित्र भूमि धर्म के नाम पर मानव रक्त से रंजित थी। धर्म के ठेकेदार शासन के ठेकेदार भी बनने के इच्छुक थे। मुहम्मद साहब के पावन उपदेश उनके अनुयायी भूलते जा रहे थे और अहर्निश पारस्परिक संघर्ष मे रत थे। इस्लाम का उज्ज्वल प्रकाश क्षीण होता जा रहा था। खलीफा का पद भयंकर संघर्ष का कारण बन गया। मुहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् इस धर्म की पतनावस्था बिल्कुल ही अकल्पनीय थी। चिन्तक चिंतन चक्र की धुरी को परिचालित कर मुहम्मद साहब के उपदेशो का पुनर्मूल्यांकन कर उनके गम्भीर एवं गूढ रहस्यों को जन साधारण मे प्रचार करने लगे। इस चिन्तन के प्रतिक्रिया स्वरूप सूफी धर्म का उदय हुआ।

सूफीमत के उद्भव के सम्बन्ध मे डा० सावित्री शुक्ल का मत उल्लेखनीय है—"कुछ सूफी चिन्तकों का कथन है कि सूफीमत का आदम मे बीजवपन, नोह मे अंकुर, इब्राहीम मे कली, मूसा मे विकास, मसीह मे परिपाक एवं मुहम्मद मे मधु का फलागम हुआ। एक और प्रवाद है कि सूफियों के आठ गुणो का आविर्भाव क्रमश इब्राहीम, इस्लाक अमूब, जकरिया, यहीमसा ईसा एवं मुहम्मद साहब मे हुआ। इसी प्रकार अन्य मत भी प्रचलित है। साराश रूप मे हम यह कह सकते हैं कि सूफी सम्प्रदाय का सम्बन्ध शामी विचारधाराओं से प्रभावित इस्लाम धर्म से है[१]।

सूफी सम्प्रदाय के भेद

सूफी सम्प्रदाय कई एक उपसम्प्रदायो मे आगे चलकर विभक्त हो गया। ये सभी उपसम्प्रदाय इस्लाम मतावलम्बी देशो मे सूफी धर्म का प्रचार एवं प्रसार करते रहे। अब इनमे करामतें दिखाने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी थी। सूफी धर्म के मूल मे जो बातें सन्निहित थी, इस युग मे आकर विस्मृति के गर्त मे जाने लगीं। परशुराम चतुर्वेदी ने इस बात को स्वीकार किया है कि भारत मे सूफी मत का चिर-स्थायी प्रभाव इन्ही उपसम्प्रदायो द्वारा पडा[२]। अब हम उन्ही सम्प्रदायो का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। वे निम्नोक्त है—

(१) चिश्ती सम्प्रदाय
(२) सुहरवर्दी सम्प्रदाय
(३) कादरी सम्प्रदाय
(४) नक्सावन्दी सम्प्रदाय
(५) शत्तारी सम्प्रसाय
(६) जुनदी सम्प्रदाय
(७) मदारी सम्प्रदाय
(८) मौलवी सम्प्रदाय

---

१ डा० सावित्री शुक्ल सतकाव्य की सास्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ० १८३।
२ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ० ७१।

सुहरवर्दी सम्प्रदाय

सुहरवर्द नगर के नाम पर ही इस सम्प्रदाय का नाम सुहरवर्दी या सुहर्वदिया सम्प्रदाय पडा। सर्वप्रथम सुहरवर्दी सूफी ही भारत की पवित्र भूमि म प्रवेश किये और अपने ख्याति प्राप्त सम्प्रदाय की स्थापना की। सुहरवर्दिया का प्रथम प्रचारक जियाउद्दीन अबुल नजीब, अब्दुल कादिर, इब्न अब्दुला माने जाते हैं जिनका जन्म सुहरवद नगर म सन् १६५४ हुआ था और जिनकी मृत्यु सन् १२२५ मे बगदाद नगर मे हुई थी। इन्होने तथा उनके भतीजे शिहाबुद्दीन (१२०२ १२६१) मिलकर इस सम्प्रदाय की नीव डाली थी और इसका प्रचार भी किया था। भारत म इस सम्प्रदाय का प्रचार विशेष रूप से बहाउद्दीन जकारिया ने किया। ये शिहाबुद्दीन के ही शिष्य थे और मुलतान के निवासी थे। आप मक्का मदीना से हज्ज करके लौट रहे थे कि बगदाद मे शिहाबुद्दीन स उक्त सम्प्रदाय की दीक्षा ले ली। इसके बाद भारतीय सुहरवर्दियो का इस सम्प्रदाय के प्रचार एव प्रसार म हाथ रहा। सय्यद जलालुद्दीन सुर्ख पोश का नाम भुलाया नही जा सकता। आपने सिंध, गुजरात, पजाब आदि प्रान्तो मे घूम घूम कर प्रस्तुत सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का प्रचार किया। इनके पौत्र जल्लाल इब्न महमद कबीर को मखदूमे जहानिया की उपाधि से विभूषित किया जाता है। ये हज करने के बडे शौकीन थे। धार्मिकता इनकी नस-नस मे व्याप्त थी। अन्य सुहरवर्दियो ने अथक परिश्रम करके बगाल, बिहार और हैदराबाद म भी सूफी सम्प्रदाय का प्रचार किया।

इस प्रकार यह उप-सम्प्रदाय समस्त भारत म फैल गया। राजा महाराजाओ तक ने दीक्षा ली और इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तो के प्रचार म जो योगदान दिया उसे भुलाया नही जा सकता है। हैदराबाद के निजाम का आसफजाही वश भी इसी उपसम्प्रदाय का अनुयायी कहा जाता है।[1] शेख तकी अब्दुल अकबर और वलीउल्ला नामक कवि भी इसी सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

चिश्ती सम्प्रदाय

ख्वाजा अब्बू अब्दुला चिश्ती इस उपसम्प्रदाय के प्रवतक थे। इन्होने इस सम्प्रदाय का नाम चिश्ती सम्प्रदाय रखा था। लेकिन भारत मे आप द्वारा इस सम्प्रदाय का प्रवेश नही हुआ। भारत म मुइनुद्दीन चिश्ती द्वारा यह सम्प्रदाय प्रादुर्भूत हुआ। आप इरान प्रदेश के निवासी थ। शहाबुद्दीन गोरी की सेना के साथ आपका प्रवेश हुआ। सूफी आचार्यों के साथ शास्त्रार्थ करते हुए आप कुछ दिन तक दिल्ली और पजाब म रहे बाद मे अजमेर को चले गये। यही चिश्तिया सम्प्रदाय का प्रचार करते हुये। मृत्यु को प्राप्त हुए। आपका प्रभाव हिन्दुओ और मुसलमानो मे बराबर था। आपकी योग्यता की सभी सराहना करते थे और लोहा मानते थे। आप एक ऐसे फकीर थे जिसके सामने होने पर सर अनायास ही श्रद्धा स झुक जाता था। आपकी प्रसिद्धि का पता सिर्फ इसीसे चल जाता है कि आपके मरने के बाद अजमेर म जो दरगाह बनी, वहाँ आज भी प्रति वष ६ दिनो तक मेला लगता है। अपार जनसमूह चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान आपके दरगाह के दर्शनार्थ उमड पडता है। इस दरगाह के बारे मे परशुराम चतुर्वेदी का मन्तव्य द्रष्टव्य है। 'इनके दरगाह के निकट प्रतिदिन प्रत्येक तीन घटे पर सगीत हुआ करता है और अच्छे से अच्छे गवैये आकर उसम भाग लेते हैं। बनिया लोग नित्य प्रति अपनी कुजिया दूकान खोलने के पहले दरगाह की सीढिया पर लेते हैं और उसके निकट हडे से भात भी लुटाया जाता है। कहा जाता है कि उक्त दरगाह तक सम्राट अकबर भी नगे पैर गये थे[2]। चिश्तियो का प्रचार उत्तरी एव दक्षिणी भारत म था। आगे चलकर इस उपसम्प्रदाय म भी दो दल हो गये—चिश्तिया और स्बिर चिश्तिया।

१ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सन्त परम्परा पृ० ७३।
२ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ७२।

कादरी सम्प्रदाय

इस उपसम्प्रदाय के प्रवर्तक बगदाद के निवासी शेख अब्दुल कादिर जीलानी थे। इनका समय स० ११३५ स० १२२३ है। इस शाखा का भारत मे प्रचार १६३६ मे हुआ। सयद बन्दगी मुहम्मद गौस इस सम्प्रदाय के प्रचारक थे। आप बडे ही धर्मात्मा व्यक्ति एव योग्य तथा विद्वान् वक्ता थे। आज भी काश्मीर म आपकी विद्वत्ता स्तुत्य है। यही कारण है कि आप वहाँ एक प्रमुख सत के रूप म पूजे जाते हैं। काश्मीर प्रदेश मे इस धम का प्रचार आपके शिष्य मिया मीर के शिष्य मुल्ला शाह न किया। मिया मीर और मुल्ला शाह भी बडे ही योग्य एव विद्वान् पुरुष थे। बडे-बडे राजा महाराजा भी इस मत में दीक्षित थ। शाहजादा दारा शिकोह भी इसी शाखा का अनुयायी था और उसने 'रिसाल ए-हक्नुमा' तथा सूफी नात औलिया की रचना फारसी म की थी[1]।" शाह जलाल और मखदूमशाह ने बगाल बिहार म इसका प्रचार किया। बगाल और बिहार मे आज भी सूफीमत के मानने वाले पाये जाते हैं।

नक्सबन्दी सम्प्रदाय

इस सप्रदाय के प्रवतक जरी का काम करते थे। जरी के काम करने वाले को तरह तरह के नक्शे बनाने की आवश्यकता पडती है फलस्वरूप ये नक्सबन्द कहलाये और इनका मत नक्सबन्दी सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुआ। इस सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक ख्वाजा बहाउद्दीन नक्सबद थे। ये तुर्किस्तान के रहने वाले थे। अत नक्सबन्दी सम्प्रदाय का सवप्रथम प्रादुर्भाव तुर्किस्तान म हुआ। भारत मे तो ख्वाजा मुहम्मद बाकी बिल्लाह बेरग ने इस मत का प्रचार किया। इनका मृत्युकाल स० १६६० है। विद्वान् प्रचार का श्रेय शेख अहमद फारूखी 'सरहिन्दी' को देत हैं। इनका देहान्त स० १६८२ मे हुआ था। परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि थ हजरत मुहम्मद के अनन्तर दूसरी सहस्राब्दी के आरम्भ काल के प्रधान धम सुधारको म गिने जाते न। फिर भी इनके द्वारा प्रतिपादित बातो का प्रचार यहाँ सफलतापूवक नही हो सका।[2] यह सम्प्रदाय सवसाधारण के लिये नही था। अत इसका प्रचार बहुत कम हो सका। केवल शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रहा।

अन्य उप-सम्प्रदाय

विगत पृष्ठो म हमने सूफी धम साधना के प्रसिद्ध उप सम्प्रदायो का आलोडन किया। पर जिन चार उपसम्प्रदायो के बारे मे अध्ययन किया गया वे ही विशेष रूप से प्रचार व प्रसार पा सके थे। मदारिया, जुनैदी और शत्तारी सम्प्रदायो के बारे म कोई विशेष बातें नहीं मालूम है। इन सभी उपसम्प्रदायो मे किसी प्रकार का विरोध नहीं था। यदि विरोध था भी तो प्रमुख,गुरुओ की विशेपता एव साधना के फलस्वरूप गौण रूप मे। एक शाखा का व्यक्ति दूसरे सम्प्रदाय म बिना हिचक दीक्षित हो,जाता था। राजकीय सहायता सभी को प्राप्त हुई। फलत सभी का भारत म सवथा प्रचार हुआ। इन लोगो मे कट्टरपन अधिक था और अपने सम्प्रदाय म दीक्षित करने के लिये हिन्दुओ के साथ व्यवहार अच्छा नही था। सूफी आचाय विद्वान होते और अपने उपदेशो को बडी सरलता से समझाते थे। इनका हृदय पवित्र था। ईश्वर के प्रति अगाध श्रद्धा, बाह्याचरण की पवित्रता, विश्वबन्धुत्व की भावना व पारस्परिक सम्बन्ध का स्रोत इनकी धमनियो मे तीव्र गति से प्रवाहित होता था। व्यवहार कुशलता ही इनकी लोकप्रियता का कारण बनी। अत सर्वसाधारण न इन्हे पीर, 'शकरगज, बाबा दातागज आदि उपाधियाँ

१ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, पृ० ७४।
२ वहीं, पृ० ७५।

जीवितावस्था मे ही प्रदान की । 'परिणाम स्वरूप हमे आज पता चलता है कि भारतीय मुसलमानो के कम से कम दो तिहाई भाग म वे लोग हैं जो किसी न किसी सूफी शाखा के भीतर भी आ जाते हैं[1] ।

सूफी सम्प्रदाय का प्रभाव

भारतीय साहित्य और समाज पर उपर्युक्त विवेचित सम्प्रदायो ने पर्याप्त प्रभाव डाला । हिन्दी साहित्य के उद्भव के साथ ही सूफी सम्प्रदाय की प्रेमोपासना का प्रभाव परिलक्षित होने लगता है । फलस्वरूप हिन्दी साहित्य मे प्रेमाख्यानक साहित्य परम्परा का विकास हुआ । प्रेमगाथा की परम्परा का जब आविर्भाव हुआ । इसके बारे म किसी ने ठोस मत नही दिया है लेकिन यह तो स्पष्टरूपेण स्वीकार किया जा सकता है कि इसका विशेष प्रचलन महाकवि जायसी के पद्मावत के सृजन के बाद मे ही हुआ । पद्मावत के कतिपय उल्लेखो से यह ज्ञात होता है कि इस रचना के पूर्व भी बहुत से सूफी कवि अपनी प्रेम की पीर सुना चुके हैं । 'फिर भी हम गाथा की परम्परा के प्रारम्भ होने का समय सतमत के आविर्भाव काल से पहले जाता हुआ नही दीख पडता । कम से कम हिन्दी अथवा उर्दू में इस प्रकार की रचना करने वाले सूफी कवि विक्रम की १५वी या १६वी शताब्दी से पुराने नही मिलते और सत परम्परा मे अब तक गिने जाने वाले प्रथम व्यक्ति जयदेव का जीवन काल विक्रम की १३वीं शताब्दी म पड जाता है[2] ।' यहीं यह बता देना विषयान्तर नही होगा कि निर्गुण मत के आदि प्रतिष्ठाता के बारे मे विद्वानो म मतभेद से लगता है । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी कबीर[3] को, डा० विनय मोहन शर्मा नामदेव को[4] डा० साविनी शुक्ल रामानन्द[5] को और परशुराम चतुर्वेदी जयदेव[6] को निर्गुण मत के आदि प्रतिष्ठाता मानते हैं ।

सूफी साधना की अवस्थाएँ

सूफी मत मे सबसे प्रमुख भावना प्रेम है । सूफियो की मुख्य साधना है कल्ब (हृदय) और रूह द्वारा नफ्स । इन्द्रियो पर रोब गालिब करना आध्यात्मिक प्रेम इनकी पूँजी है । आलमलाहूत मे आत्मा मे आत्मा और परमात्मा का चिरन्तन प्रणय, मिलन की उपलब्धि इनकी साधना का मुख्य उद्देश्य है । इस साधना म आत्मा आशिक है और परमात्मा माशूक । दोनो के मधुर सम्बन्ध मे जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती है । इस साधना म साधक अपने को पुरुष और परमात्मा को स्त्री मानता है । दाम्पत्य के मधुर भावभूमि पर इसकी चार अवस्थाएँ हैं—

(१) शरीयत
(२) तरीकत
(३) हकीकत
(४) मारिफत

शरीयत—धर्म ग्रन्थो के विधि निषेध का विधिवत पालन अर्थात् भारतीय तत्वज्ञान के अनुसार कर्मकाण्ड । यह हमारे यहाँ का कमकाण्ड है ।

---

१ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरीभारत की सत परम्परा, पृ०८० ।
२ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ०८० ।
३ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ०३१ ।
४ डा० विनयमोहन शर्मा हिन्दी को मराठी सतो की देन पृ०५५ ५७ ।
५ डा० साविनी शुक्ल सत काव्य की सास्कृतिक एव सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ० २६ ।
६ परशुराम चतुर्वेदी : उत्तरी भारत की सत परम्परा, पृ०८० ।

तरीकत—यह उपासना काण्ड है। इसमें बाहरी क्रियाकलापा से परे होकर केवल शुद्ध हृदय से परमेश्वर का ध्यान करना बताया जाता है। हृदय की शुद्धता इसका प्रधान तत्व है।

हकीकत—अर्थात् भक्ति और उपासना के प्रभाव से सत्य का सम्यक् बोध, जिससे साधक तत्व दृष्टि सम्पन्न और त्रिकालज्ञ होता है। इसे ज्ञानकाण्ड की संज्ञा दी जा सकती है।

मारिफत—यह अवस्था जब कठिन व्रत और मौनावस्था से साधक की आत्मा परमात्मा मे लीन हो जाती है। इसे मुक्तिकाण्ड कहा जा सकता है।

सूफी साधको की भक्ति

प्राचीन काल म सूफिया म बहुदेववाद की उपासना प्रचलित थी। कालक्रमानुसार इस उपासना पद्धति में बहुत मतभेद दिखाई पड़ने लगा। फलस्वरूप हजरत मुहम्मद ने एकमात्र अल्लाह मे विश्वास करने का आदेश दिया। तभी से एकेश्वरवाद का सिद्धान्त सूफी धर्म साधना के इतिहास मे प्रचलित हो गया। वही जगत् का पालक एव सहारक और नियामक है। इसलिये उसके प्रति आत्म-समर्पण की भावना का विकास हुआ। उनके अनुसार अल्लाह सर्वशक्तिमान किन्तु न्यायशील शासक है, जो अपने मार्ग से विपन्न हो जाने वालो को कठोर दंड की व्यवस्था किये हुए हैं। दंड की व्यवस्था से भय की उत्पत्ति होती है, और भय म प्रेम के बीज सन्निहित हैं—

विनय न मानत जलधि जड, गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होय न प्रीति॥[1]

अतएव उसकी दयालुता म विश्वास कर उसके प्रति भक्तिभाव प्रदर्शित करना और उसकी महत्ता सूचित करने वाले शब्दो म नित्य प्रार्थना करना वे इसे अत्यन्त आवश्यक और महत्वपूर्ण समझते थे। कहा जाता है कि हजरत मुहम्मद साहब न उस अल्लाह के आदेशो को सदेशवत् ग्रहण किया और इन्ही आदेशो को सगृहीत कर कुरान की रचना की गई। कुरान इस्लाम धर्म का वेद है।

सूफीमत इस्लाम धर्म का अंग होने के कारण प्राय उन सभी मुख्य बातो को स्वीकार करता है जिनका वर्णन कुरान शरीफ म है। इस मत म भी माया, ईश्वर और जगत् के बारे मे विशेष रूप से आलोडन विलोडन किया गया है। एक परमात्मा के प्रश्न को लेकर ही सूफिया का तीन दलो मे विभक्त हो जाना सर्वमान्य है। वे निम्नांकित हैं—

१—शुहूदिया
२—वुजूदिया
३—इजादिया

शुहूदिया परमात्मा को जगत् से सर्वथा पर मानते हैं। प्रतिबिम्ब की भाँति सारी चीजें दिख लायी पडती हैं। ऐसा उनका विश्वास है कि इस सृष्टि और ब्रह्म म विशिष्टाद्वैतवाद की भाँति अंश अंशी का सम्बन्ध नहीं बल्कि बिम्ब प्रतिबिम्ब का सम्बन्ध है। निम्बार्क भी इसे ही मानता है। वुजूदिया विचारधारा वाले परमात्मा के अतिरिक्त किसी और का अस्तित्व नहीं स्वीकार करते हैं। परशुराम चतुर्वेदी ने इस एक तत्ववादी शब्द का प्रयोग बतलाया है।[2] इजादिया विचारधारा के सूफी संत ईश्वर का अस्तित्व सृष्टि से भिन्न मानते हैं। अल्लाह या ईश्वर सर्वशक्तिमान है। मनुष्य उससे प्रेम नही करता बल्कि भय के कारण उसके प्रति श्रद्धा व्यक्त करता है। यह भय प्रारम्भ काल से ही उसमे

१ गोस्वामी तुलसीदास रामचरित मानस, अयोध्याकाण्ड, दो० ५७, पृ० ५००।
२ परशुराम चतुर्वेदी सूफी साधना की भक्ति, कल्याण, भक्ति अंक, वर्ष ३२, सं० १, माघ २०१४, पृ० ५६६।

व्याप्त था। इस मत म भय की भावना की प्रधानता के कारण ही ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है।

इस्लाम और सूफी धर्म के साधको की भक्ति मे यही अन्तर स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। एक इस्लाम धर्म को मानने वाला अल्लाह से भयभीत होकर श्रद्धा उस परमात्मा के प्रति व्यक्त करता है। दूसरा वही अनुराग की सृष्टि करता है। सूफी परमात्मा का अपना परम आत्मीय समझता है और अपने को उससे वियुक्त या बिछुड़ा भी अनुभव करता है। वह अपने के विरह म तडफा करता है और उस प्राप्त करने के लिये आकुल और व्याकुल हो जाता है। यह साधना सदियो से इसी तरह चली आ रही है। मिलन की आकाक्षा मे वह पागल हो जाता है। जब तक उसकी यह आकाक्षा पूरी नही होती उसे शान्ति नही मिलती।

इस प्रकार हम सूफी साधको की भक्ति को 'रागानुगा' की कोटि म रख सकते हैं। प्रेम की प्रधानता ही उसकी भक्ति की कुजी है। परमेश्वर के प्रति परानुरक्ति की भावना से उसमे प्रेमलक्षणा भक्ति के लक्षण विद्यमान प्रतीत होते हैं। रागानुगा भक्ति के दो रूप सूफी भक्ति म दिखलाई पडते हैं। रागानुगा भक्ति के बाह्य लक्षण उनके श्रवण एव कीर्त्तन से स्पष्ट होता है तथा अन्त साधना के अभ्यास से जब पूर्णरूपेण हृदय का परिवर्तन हो जाता है तो हमारी मनोवृत्ति मे आप ही आप परिवर्त्तन हो जाता है। इस परिवर्त्तन के फलस्वरूप हम अपने इष्टदेव को पिता, मित्र, स्वामी, सखा और पति के रूप मे देखने लगते हैं। लेकिन सूफी साधको की भक्तिभावना म अर्चन, दास्य वन्दन, साख्य और पाद सेवन को कोई स्थान नही है। श्रवण का भी वह रूप नही है जिसका अध्ययन आपने नवधा भक्ति के प्रसग मे किया है। आत्मनिवेदन भी इस भक्तिभावना मे यदि प्राप्य है तो वह केवल पति पत्नी या प्रेमी प्रेमिका के रूप मे ही। इस तरह सूफियो की कुछ अपनी निजी विशेषताएँ हैं।

सूफी साधको की भक्ति के भेद

सूफियों की भक्ति साधना मे केवल अत साधना के ही विविध रूप हैं, जिनसे उनकी अन्तवृत्ति के एकान्त निष्ठ बनने में सहायता मिलती है। अन्त साधना के वैविध्य रूप के कारण इसे निम्न कोटियों मे रखा जा सकता है—

१—तिलवत
२—अवराद
३—समा
४—जिक्र

तिलवत—यह श्रवण का ही रूप है। नवधा भक्ति के श्रवण और इस श्रवण मे केवल इतना ही अन्तर है कि एक म सुनना से ही मतलब है चाहे वह प्रभु का गुण किसी प्रकार सुना जाय। लेकिन तिलवत म कुरानशरीफ का गुणानुवाद दूसरो से सुनना नही है बल्कि स्वय धर्म ग्रन्थो का पारायण करना ही मान्य है। साधक प्रभु की सत्ता म विश्वास कर उनके गुणो का नियमित पाठ करता है।

अवराद—तिलवत की भाँति ही अवराद सूफी भक्ति भी है। दोनो म पारायण को प्रधानता है। अवराद म चुने हुए भजनो का दैनिक पाठ किया जाता है।

समा—सूफी भक्ति मे कीर्तन को समा कहा जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ सुनना है। इसमें श्रवण की भाँति केवल फर्ज अदायगी नही की जाती बल्कि तल्लीनता इसका प्रधान गुण है। इस्लाम ने सगीत का विरोध किया था लेकिन सूफी-साधना मे सगीतादि को सुनकर तल्लीन हो जाने को विशेष महत्व दिया जाता है। चिश्तिया और कादरिया सम्प्रदाय म इसका विशेष प्राधान्य है। मौलवी सम्प्र

दाय मे इसे प्रमुख साधना के रूप मे अपनाया गया है। समा का आयोजन उर्स के समय किया जाता है।[1] समा की प्रशसा म आचाय परशुराम चतुर्वेदी का मत है कि समा के अवसरों पर उठने वाली मधुर ध्वनि में लीन हो जाने वाला की अन्तद्दृष्टि आप से आप खुल जा सकती है और वह प्रियतम के निकट भी चला जाता है।[1]

जिक्र—सूफियो की भक्ति-साधना में जिक्र वा स्मरण का भी विशेष स्थान है। जिक्र का शाब्दिक अर्थ स्मरण है। इसके दो भेद हैं—जिक्रजली जिक्र खफी। जिक्र सूफी एक प्रकार का गुप्त जप है। जिक्र जली भक्तिभावना मे आसन की विशेष महत्ता है। जिक्र जली के साधक गुप्त जाप के समय दाहिने बायें मुडा करते हैं।

सगुण सम्प्रदाय

सगुण सम्प्रदाय का आविर्भाव

ब्रह्म सम्बन्धी गम्भीर चिन्तन का प्रारम्भ वेदों से ही देखा गया है। वहाँ यदि एक ओर उषा, वरुण आदि प्राकृतिक तत्वो की स्थूल पूजा भावना है तो पुरुष की सूक्ष्म व्यजना भी मिलती है। उपनिषद् मे दोनों स्वर स्पष्ट हो गये हैं। सन्तों को यदि निर्गुण की भावनाएँ उपनिषदो तथा परवर्ती ग्रन्थों के विरासत रूप मे मिली तो भक्ता ने भी उसी उद्गम स्थल से अपने सगुण वाद की स्रोतस्विनी पाई। प्रश्न उठता है कि ब्रह्म है क्या? सगुण या निर्गुण।[2] जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म का स्रोत वेदों से प्रवाहित है उसी प्रकार सगुण ब्रह्म का भी वही उद्गम स्थल है। ब्रह्म की सूक्ष्मता म विश्वास करते हुए भी वहाँ से उसे रूपात्मक भूमिका पर खडा करने की चेष्टा की गई है। इस प्रवृति ने भगवान् की दिव्य शक्तियो के आरोप को सहज सुगम बनाकर उसे मानव जीवन के पग से पग मिलाकर चलने का सुन्दर अवसर दिया। रूपा के माध्यम से अरूप का परिचय दिया जाने लगा और परमात्मा अब अवतार लेकर मानव लीलाएँ[3] करने लगा।[4] इस प्रकार सगुण एव निर्गुण दोना का उद्गम स्थल वेद ही है। यही से निर्गुण एव सगुण की धारायें प्रवाहित हुइ। कालान्तर मे जब भागवत् धम की भावभूमि पर अवतारवाद की कल्पना की गई तो उपासना विधि मे अन्तर आ गया। यही अन्तर सगुणोपासना के उत्थान एव प्रसार प्रचार मे सहयोग देता है। कुषाण वंशी राजाओ के युग मे सगुणोपासना का पथ विशेष विस्तृत हो गया।

सगुण मत ने भक्ति के द्वितीय उत्थान काल मे सम्प्रदाय के रूप में परिवर्तित हो गई। भक्ति की धारा दक्षिण स प्रवाहित होकर उत्तर भारत की शस्य श्यामलाम् भूमि पर कई एक धाराओ म अबाध गति से प्रवाहित हुई। इस भक्तिधारा के प्रवाह म आलवर और आचार्य भक्तो का योगदान विशेष प्रशसनीय एव स्तुत्य है। आलवार सतो से यह धारा प्रस्फुटित होकर वैष्णव आचार्यों के साथ साथ अपने कई रूपा मे विश्राम पाती है। आचार्य शकर का मायावाद ज्ञान का गम्भीर चिन्तन प्रस्तुत कर भगवद्भक्ति को उपलब्धि प्रदान करता था, परन्तु भक्ता न अनुराग रग से रजित अपनी मधुर

१ परशुराम चतुर्वेदी सूफी साधको की भक्ति, कल्याण, भक्ति अक, वर्ष ३२, स० १, माघ २०१४, पृ० ५६८।

२ सिद्धिनाथ तिवारी निर्गुण काव्य-दर्शन, अजन्ता प्रेस, पटना, प्रथम सस्करण १९५३, पृ० ६५।

३ लीलावतार २४ है—चतुस्सन नारद, वराह, मत्स्य, यज्ञ, नर-नारायण, कपिल, दत्तात्रेय, हयशीर्ष, हस ध्रुव प्रिय, ऋषभ, पृथु नृसिंह, कूर्म, धन्वतरि, मोहिनी, वामन, परशुराम, राघवेन्द्र, व्यास, बलराम, बुद्ध और कल्कि।

४ सिद्धनाथ तिवारी निर्गुण काव्य-दर्शन, अजंता प्रेस, पटना, प्रथम सस्करण, १९५३, पृ०८० ६६।

वाणियों मे यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि भक्ति सगुण ही सुलभ है और सवजनाहितकारी है तथा भक्ति हृदय मस्तिक और शरीर का त्रिवेणी सगम है। भक्ति मानव अन्तस्तल का वह तत्त्व है जो आत्मा (शरीर) परमात्मा (अशरीर) को निकट ला देता है। निगुण की कठोरता ही सगुण का आवाहन करती है। सतो की साधना के सार तत्त्व भक्तो की भावना के भक्ति तत्त्व के सामने टिक न सके। इन भक्तो की भावुकता ने भक्ति के उदर म ज्ञान की उपस्थिति मानी। आचाय विनोबा भावे तो भक्ति रूपी लता मे ज्ञान के पुष्प खिलने की कल्पना करते हैं।[१] अत वष्णव भक्ति साधना मे भक्ति ज्ञान का चरम लक्ष्य है। यही वष्णव धम साधना का मूल स्रोत है जिसके उन्नर म विभिन्न सम्प्रदाय सगुण साधना के पुष्प की भाँति प्रस्फुटित हो रहे थे। वे निम्नाकित है—

	सम्प्रदाय	सस्थापक		काल
१	श्रीसम्प्रदाय	रामानुजाचाय	विशिष्टाद्वत	ग्यारहवी शताब्दी
२	*हस या सनकादि सम्प्रदाय*	*निम्बार्काचार्य*	द्वताद्वैत	बारहवी शताब्दी
३	ब्रह्म सम्प्रदाय	मध्वाचाय	द्वतवाद	चौदहवी शताब्दी
४	रुद्र सम्प्रदाय	विष्णु स्वामी	शुद्धाद्वत	,,
५	चैतन्य सम्प्रदाय	चैतन्य (बलदेव गोविन्द)	द्वताद्वत	सोलहवी शताब्दी
६	पुष्टि सम्प्रदाय	वल्लभाचाय	शुद्धाद्वत	,,
७	राधावल्लभ सम्प्रदाय	हितहरिवश		,,

विष्णुस्वामी के रुद्र सम्प्रदाय की परम्परा में ही वल्लभाचाय का प्रादुर्भाव हुआ था। उन्होंने सोलहवी शताब्दी म पुष्टि सम्प्रदाय की स्थापना की।

श्री सम्प्रदाय

श्री सम्प्रदाय के सस्थापक वैष्णव मत के आचार्यों के शिखामणि श्रीरामानुजाचाय थे। आपने भक्तिभावना को सुसगठित एव शास्त्र सम्मत साधना का रूप प्रदान किया। इनका जन्म मद्रास के निकट १०१७ ई० मे तेरुकुदूर नामक गाँव म हुआ था।[२] इनके पिता का नाम केशव तथा माता का नाम कान्ति मती था। सवप्रथम ये शकर मतानुयायी यादव प्रकाश जी के शिष्य थे लेकिन गुरु शिष्य मे अद्वैतवाद के मूल सिद्धान्तो के सम्बध म मतभेद हो गया। परिणाम स्वरूप आपने उनका शिष्यत्व त्याग दिया और यमुनाचाय जी का शिष्यत्व ग्रहण किया। उनके निधन के पश्चात् भारत की पावन भूमि मे समस्त तीर्थों का भ्रमण कर श्रीसम्प्रदाय की स्थापना की। इन्होने अपने सिद्धान्तो का प्रतिपादन करने के लिये अनेक ग्रथो का सृजन किया। आपका व्यक्तित्व बहुत ही प्रभावशाली था। आपके व्यक्तित्व के बारे में डा० नाहर ने लिखा है कि रामानुजाचाय का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि देखते-देखते दक्षिण

१ आचार्य विनोबा भावे गीता प्रवचन, अनुवादक हरिभाऊ उपाध्याय अखिल भारत सर्वसेवा सघ, काशी, सस्करण १६, १९६०, पृ० १८०।

२ डा० रतिमान सिंह नाहर ने १०१६ माना है।
रतिमानसिंह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, किताब महल, इलाहाबाद पृ० १७०।

भारत के कुछ भागो मे प्राचीन आलवार भक्तों के युग का सा वातावरण पुन सृजित हो उठा।[१] उस समय दक्षिण भारत शव और वैष्णव भक्तो का प्रमुख स्थल था। रामानुजाचाय को इस शैव और वैष्णव के द्वन्द्व का दण्ड भुगतना पडा। तत्कालीन चोल सम्राट कुलोतुग प्रथम वैष्णव भक्ता पर खूब अत्याचार करता था। वह वैष्णव भक्ति साधना के प्रचार मे अवरोध उपस्थित करता था। रामानुजाचाय के साथ भी उसका व्यवहार बडा कठोर रहा। अत वे श्रीरगम छोडकर उत्तर भारत की तरफ बढे। रास्ते मे कर्नाटक का हायसल राजाने उनका काफी सम्मान किया।

प्रचार कार्य

भक्ति साधना के प्रचार के निमित्त आपने दो प्रधान काय किया—तीर्थ यात्रा और साहित्य सृजन। तीथ यात्रा का उद्देश्य था आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्त। यही कारण था कि आपने उत्तर एव दक्षिण के समस्त प्रमुख तीर्थों का पर्यटन किया। साहित्य सृजन का उद्देश्य था मायावाद का खण्डन पर भक्ति की सुधा सलिला को प्रवाहित करना। इसम भाष्य टीकायें और मौलिक है जो वष्णव सम्प्रदाय के आधार शिला है। वे हैं—

(१) वेन्ाथ सग्रह — शंकर तथा भेदाभेदवादी भास्कार का खण्डल
(२) वेदात सार — ब्रह्मसूत्र की टीका है।
(३) गीताभाष्य — यह गीता का भाष्य है।
(४) गीतात्रय — ईश्वर तथा प्रपत्ति का वणन है।
(५) श्रीभाष्य — ब्रह्मसूत्र पर भाष्य है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

दाशनिक सिद्धात

रामानुज का मत है कि जगत् सत्य है, यह ईश्वर का अचित अश है। अन्तर्यामी ईश्वर का यह शरीर है। ईश्वर का शरीर असत् कैसे होगा ? ससार पारमार्थिक दृष्टि म सत्य है।

ब्रह्म विजातीय सजातीय भेदा से शून्य है। ईश्वर के स्वगत तीन भेद हैं—

१ चित — भोक्ता जीव
२ अचित— भोग्य जगत्
३ ईश्वर — सर्वान्तर्यामी

ब्रह्म सगुण और सविशेष है, वह सवशक्तिमान और सविशेष है। ब्रह्म को सृष्टि के सृजन म माया की आवश्यकता नही है, आचाय शकर मायोपाधिक ब्रह्म को ही ईश्वर मानते हैं। ब्रह्म ही ईश्वर है, यह रामानुज का मत है। जीव जगत् उसके शरीर हैं। सृष्टि का उद्देश्य लीला है।

ईश्वर व जीवात्मा इस मत म दो पदाथ भिन्न भिन्न हैं। ईश्वर प्रान है तो जीव अश। ईश्वर अनन्त और जीव स्वल्प है। जीव नित्य है पर शुद्ध नही। अज्ञान के पाश से अशुद्ध है। वह मुक्त नही बधनग्रसित है। जीवात्मा के तीन रूप हैं—

(१) बुद्ध जीव —सासारिक जीव
(२) मुक्त जीव —जो ससार मे रहते हुए भी, भक्ति, आराधना व कत्तव्य का पालन करने वाले हैं।
(३) नित्य जीव—जो कभी ससार मे न आया हो।

शरीर भी सत्य और जीवात्मा भी सत्य तथा नित्य है। आत्मा अणु है, वह नित्य होता है, उसकी

---

१ वही, पृ० १७०।

उत्पत्ति नहीं होती। वह ईश्वर का अंश है। शरीर और आत्मा दोनों ईश्वर का अंश होने के कारण सीमित होते हैं। आत्मा चैतन्य है, सर्वव्यापी नहीं।

कर्मकाण्ड अनिवार्य है। कर्म और ज्ञान से भक्ति की प्राप्ति होती है। भक्ति केवल चित्त शुद्धि का साधन नहीं है बल्कि मुक्ति का साधन है। मुक्ति केवल अध्ययन और तर्क से नहीं होती बल्कि मुक्ति ईश्वर की कृपादृष्टि पर निर्भर है। तत्वमसि आचार्य शंकर और रामानुज दोनों में यहाँ भी मत भेद है। शंकर के अनुसार महावाक्यों के श्रवण मात्र से उत्पन्न ज्ञान ही मुक्ति प्रदान करता है। रामानुज के मतानुसार भक्ति ही मुक्ति का एक मात्र साधन है।

विशिष्टाद्वैतवाद

यह दो शब्दों के संयोग से बना है—विशिष्ट और अद्वैत। विशिष्ट का अर्थ है चेतन और अचेतन विशिष्ट ब्रह्म और अभेद या एकत्व अद्वैत का अर्थ है। अतएव चेतनाचेतन विभाग विशिष्ट ब्रह्म के अभेद या एकत्व का निरूपण करना ही इस सिद्धान्त का लक्षण है। यह बहुत प्राचीन सिद्धान्त है। *कहा जाता है कि भगवान् श्रीनारायण ने श्रीमहालक्ष्मी को उपदेश दिया, दयामई माता से विश्व* सेन, उनसे शठकोप स्वामी, इनसे श्रीनाथमुनि को नाथमुनि से पुण्डरीकाक्ष स्वामी को इनसे श्रीराम मिश्र से यमुनाचार्य जी को प्राप्त हुआ। यही तो श्रीरामानुजाचार्य के परम गुरु थे।[1]

श्रीरामानुजाचार्य की भक्ति

रामानुजाचार्य भेद एवं अभेद प्रतिपादक तथा निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रह्म की प्रतिपादक दोनों ही प्रकार की श्रुतियों को प्रमाण और सत्य मानते हैं। उनका कहना है कि अभेद और भेद प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों में पारस्परिक विरोध नहीं है। अभेदप्रतिपाद्य ब्रह्म, जीव, प्रकृति का वर्णन एक ही साथ प्रस्तुत करते हैं और भेद प्रतिपाद्य इनका अलग अलग। जहाँ निर्गुण है वहाँ प्राकृत गुण का अभाव है और जहाँ सगुण की कल्पना की गई है वहाँ ब्रह्म में अलौकिक गुण विद्यमान है। रामानुजाचार्य ब्रह्म को पाँच प्रकार का स्वीकार करते हैं—(१) पर, (२) व्यूह, (३) विभव, (४) अन्तर्यामी और (५) अर्चा। आप मुक्ति के पाँच उपायों की कल्पना करते हैं—कर्मयोग, भक्तियोग, प्रपत्तियोग, आचार्याभिमानयोग। ये पाँचों भक्ति के अंग हैं। आचार्याभिमानयोग नये ढंग की भक्ति है जिसमें गुरु के चरण-कमलों में आत्मा का समर्पण ही प्रमुख है।

न्यास विद्या को ही आप प्रपत्ति बताते हैं। अनुकूलता का संकल्प प्रतिकूलता का त्याग भगवन् में सम्पूर्णतया ही आत्मार्पण ही प्रपत्ति है। प्रपत्ति का अर्थ भगवान् के शरण में हो जाना है।

इस प्रकार आपने दक्षिण में वैष्णवभक्ति का वह सागर लहरा दिया जिसके तट बैठकर परवर्ती आचार्यों ने भक्ति को सर्वसाधारण के लिए सहज एवं सुलभ करा दिया। भक्ति साहित्य का इतिहास इसके लिए चिरऋणी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दू धर्म के इतिहास पर उनका व्यापक और विस्तृत प्रभाव पड़ा है तथा अद्वैतवाद के विरोध एवं भक्तिमार्ग के प्रचारक परवर्ती वैष्णव आचार्यों पर विशिष्टाद्वैत का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।[2]

रामानुज के मतानुसार भक्ति परमानन्दरूपिणी अनुरक्ति नहीं है, वरन् उसका तात्पर्य ब्रह्म का निरन्तर ध्यान करना है। इसकी प्राप्ति में पवित्र भोजन जितेन्द्रियता, पूजन, दान, दया, अहिंसा, सत्य

---

१ रामनाथ गौड़ विद्युत्, ज्ञानमण्डल प्रकाशन काशी प्रथम संस्करण, १९६२, पृ० ६४३।
२ दुर्गाशंकर मिश्र हरिराम व सूरदास, मधुरा प्रकाशन लखनऊ, पृ० १५४।

आदि सहायक होते हैं। परमेश्वर की प्राप्ति का साधन उसकी प्रीतिपूर्वक भक्ति तथा उपासना है। किन्तु ज्ञान इस भक्ति का सहकारी हो सकता है। परमेश्वर के दिव्य गुणों के ज्ञान से उसके प्रति भक्ति उत्पन्न हो सकती है। ज्ञानमूलक भक्ति दृढ़ होती है। इस मत में भक्ति ही मोक्ष का परम साधन है। इसके अतिरिक्त प्रपत्ति और ईश्वरानुग्रह प्राप्ति की योग्यता का साधन है, किन्तु प्रपत्ति इसका परम साधन है। प्रपत्ति का अर्थ शरणागत है। सब कुछ छोड़कर ईश्वर का आश्रय ग्रहण करना पूर्ण प्रपत्ति है।[1]

इस प्रकार भक्ति ही रामानुज मत की आधार शिला है। ज्ञान भक्ति की प्राप्ति में सहायक है। ज्ञान की सहायता से भक्ति की प्राप्ति हो सकती है और भक्ति की प्राप्ति होते ही मोक्ष का अधिकारी हो जाना अति आवश्यक है। इसीलिये रामानुज ने निर्गुण की कल्पना नहीं की है। सगुण ही उनके मत का मूल है। सावलियाबिहारी लाल वर्मा ने लिखा है कि 'निर्गुण वस्तु की कल्पना असम्भव है, क्योंकि संसार में समस्त पदार्थ गुण विशिष्ट ही प्रतीत होते हैं। यहाँ तक कि निर्विकल्पक प्रत्यक्ष के अवसर पर भी सविशेष वस्तु की ही प्रतीति होती है। रामानुज का इस सिद्धांत पर बड़ा आग्रह है। अतः ईश्वर सदा सगुण ही होता है। ईश्वर प्राकृत गुण रहित निखिल हेय प्रत्यनीक, कल्याण-गुण गुणाकर, अनन्तज्ञानानन्द स्वरूप ज्ञान भक्ति आदि कल्याण गुण विभूषित तथा सृष्टि स्थिति संहार करता है।[2] रामानुज के भक्ति सिद्धान्तों का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि आप परमेश्वर के सतत ध्यान पर बल देते हैं, जो उपासना के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। इनकी भक्ति में वासुदेव और नारायण नामों की प्रधानता है। व्यूहों के साथ वासुदेव की कल्पना की जाती है, पर राधा और गोपालकृष्ण का इनकी भक्ति साधना में कोई अस्तित्व नहीं है। इस तरह असीम प्रेमभाव या माधुर्य भाव का अभाव है। इसलिये स्पष्ट स्वरों में कहा जा सकता है कि रामानुज की भक्ति वल्लभ और चैतन्य की भक्ति से बिलकुल अलग रास्ता अपनायी है। कालान्तर में इनके मतानुयायी दो दल में विभक्त हो गये—टैंकले और वडकलै।

हंस सम्प्रदाय

यह सम्प्रदाय बहुत ही प्राचीन है। आचार्यों का यह विश्वास है कि सर्वप्रथम इस सम्प्रदाय के आदि प्रवर्त्तक भगवान् हंसावतार हैं। हंसावतार भगवान् के शिष्य सनत्कुमार हैं, इनसे महर्षि नारद ने उपदेश ग्रहण किया। नारद जी से इस सम्प्रदाय के ऐतिहासिक प्रसिद्ध आचार्य श्रीनिम्बार्क को उपदेश प्राप्त हुआ। इस सम्प्रदाय के आद्य प्रवर्त्तक भगवान् ने हंस का अवतार ग्रहण कर सनत्कुमार के योग विषयक कठिन प्रश्नों का उत्तर दिया था। यह कथा श्रीमद्भागवत के ११वें स्कन्ध के १२वें अध्याय में वर्णित है।[3] यही कारण है कि इस सम्प्रदाय का हंस सम्प्रदाय (सनातन) देवर्षि सम्प्रदाय आदि विभिन्न नामों से भारतीय दर्शन के इतिहास में प्रसिद्धि प्राप्त होती है। निम्बार्क ने इसे द्वैताद्वैतवाद या भेदाभेदवाद कहकर हंस सम्प्रदाय की नींव रखी।

निम्बार्क

निम्बार्क के जन्मस्थान और जन्मकाल के बारे में विद्वानों में मतैक्य है। वे इनका जन्म

---

१ सरनाम सिंह अरुण भक्ति दर्शन, कृष्ण ब्रदर्स, अजमेर प्र० सं० १९५७, पृ० ८।

२ सावलियाबिहारी लाल वर्मा सर्वदर्शन संग्रह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना,

३ डा० गोविन्द त्रिगुणायत हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ३३८।

उत्तर भारत म मानते हैं। क्योंकि यह सुना जाता है कि ये जात्या तैलग ब्राह्मण थे और दक्षिण के वे लारी जिला के निवासी थे, पर इनके सम्प्रदाय और अनुयायियो से दक्षिण स किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है। ऐसी हालत म सन्देह का होना अति आवश्यक है। दूसरी तरफ निम्बार्क मतावलम्बियो का अखाडा वृन्दावन है और वही गोवर्धन के निकटस्थ निम्ब ग्राम भी है इससे यह पता चलता है कि इनका जन्मस्थान ब्रजमडल हो है। बलदेव उपाध्याय ने इनके जन्मस्थान और माता पिता के बारे म एक और किंवदन्ति की चर्चा की है। वह यह है–कहा जाता है कि दक्षिण देश म गोदावरी के तीर स्थित वैदूर्यपत्तन के निकट अरुणाश्रम म अरुण मुनि की पत्नी श्रीजयन्ती देवी के गर्भ स इनका जन्म हुआ था।[1] आज भी यह प्रश्न विवाद का बना है। इनके जन्मकाल के बारे म भी विद्वान सहमत नही हैं। कुछ लोग इन्हे कलियुग के प्रारम्भ म वेदव्यास के समकालीन मानते हैं, कुछ लोग १२ वी शताब्दी मानते है।[2] डा० भडारकर इनकी गुरु परम्परा के आधार पर इनका जन्म ११६२ ई० के आसपास[3] और डा० त्रिगुणायत १११२ ई० मानते हैं।[4] इनका प्रथम नाम नियमानन्द था। रात्रि में निम्ब के वृक्ष पर सूर्य का दर्शन कराने के कारण उनका नाम निम्बार्क पडा। डा० मुशीराम शर्मा इनके पिता का नाम जगन्नाथ और माता का नाम सरस्वती मानते हैं[5]।

प्रचार कार्य

आपने कृष्ण की उपासना के साथ साथ राधा की उपासना विधेय ठहरायी। इस मत के प्रचार मे आपके ग्रन्थो का योगदान स्तुत्य है विशेषकर इनके अनुयायियो ने इस मत के प्रचार का कार्य सम्पन्न किया। इनके शिष्य तो चार बतलाये जाते हैं, लेकिन इस मत म आचार्यों की संख्या बहुत ज्यादा है जो समय समय पर इस क्षेत्र म घूमकर तथा साहित्य सृजन कर कृष्ण भक्ति का प्रचार किया कृष्ण भक्ति का प्रचार करने वाला सबसे पहला मत यही है। निम्बार्काचार्य ने अपने सिद्धान्तो के प्रचार के निमित निम्नाकित ग्रन्थो की रचना की—

१—पारिजात सौरभ—ब्रह्मसूत्र के ऊपर नितान्त स्वल्पकाय वृत्ति
२—दशश्लोकी —सिद्धान्त प्रतिपादक दशश्लोको का संग्रह।
३—श्रीकृष्णस्तवराग—निम्बार्क मत के प्रतिपादक श्रीकृष्ण स्तुति पर २५ श्लोको का संग्रह।
४—मन्त्ररहस्य षोडशी–इसम १८२ श्लोक हैं जिसम १६ श्लोको मे निम्बार्क मत के पूज्य मन्त्र हैं।

दार्शनिक सिद्धान्त

आचार्य निम्बार्क ब्रह्म और जीव के सम्बन्ध म भेदाभेद या द्वैताद्वैत के प्रतिपादक हैं। इनकी अनुभूतियो से प्रसूत उद्भावनाओ पर गीता और उपनिषद् का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है। आपके मतानुसार जीव ज्ञानस्वरूप है जो नित्य ज्ञाता तथा ज्ञानाश्रय है। जैसे सूर्य आलोकमय और आलोकाश्रय है उसी प्रकार जीव ज्ञानमय और ज्ञानाश्रय है। माया के कारण ही उसका स्वाभाविक गुण क्षीण होता है जिसे वह भगवान के अनुग्रह स ही पुन प्राप्त करता है। जीव दो प्रकार के हैं—

१ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ३१४।
२ वही, पृ० ३१५।
३ डा० गोविन्द त्रिगुणायत हिन्दी की निर्गुणकाव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, पृ० ३३८।
४ डा० भण्डारकर वैष्णविज्म, शैविज्म, पृ० ८७।
५ डा० मुशीराम शर्मा भक्ति का विकास, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, पृ० ३६७।

(१) मुक्त जीव, (२) बद्ध जीव। दोनों प्रकार के जीवों में कर्तृत्व की सत्ता वर्तमान है। प्रत्येक अवस्था में उसे ईश्वराधीन रहना पड़ता है। निम्बार्क ने जीव को प्रभु का अंश माना है और प्रभु को अंशी स्वीकार किया है। बद्धजीव के भी दो भेद हैं—मुमुक्षु और बुभुक्षु। मुमुक्षु जो मोक्ष का इच्छुक रहता है तथा बुभुक्षु विषयानन्द का इच्छुक रहता है।

परमार्थ मीमांसा के अन्तर्गत आप सृष्टि को मकड़ी के जाल की भाँति ईश्वर से उद्भूत मानते हैं। इसके अन्तर्गत—(१) चित (२) अचित और (३) ईश्वर के रूपों की कल्पना की है।

आप रामानुज के मत के अनुसार ही चित्, अचित् और ईश्वर को मानते हैं। चित ज्ञानस्वरूप है, वह बिना इन्द्रियों की सहायता से भी ज्ञान प्राप्त कर सकता है। अत वह प्रज्ञान घन कहा गया है। जीव परिमाण में अणु है तथा संख्या में अनन्त है। इस प्रकार जीव भिन्न भी है और अभिन्न भी।

अचित—निम्बार्क अचित तत्व को तीन प्रकार का मानते हैं—प्राकृत, अप्राकृत और काल प्राकृत प्राकृत पदार्थों में बुद्धि से लेकर स्थूल महाभूतों तक उत्पन्न समस्त जगत् की कल्पना की गई है।

काल—काल संसार का नियामक है परं स्वयं भगवान् के अधीन है।

ईश्वर—रामानुज और निम्बार्क दोनों ने ईश्वर कल्पना एक सी की है। ईश्वर सगुण रूप है। वह जगत् के भीतर व्याप्त है। अन्तर केवल इतना ही है कि रामानुज लक्ष्मीनारायण की उपासना को स्वीकार करते हैं और निम्बार्क मत में राधा-कृष्ण आराध्य माने जाते हैं। माध्वमत में राम और कृष्ण दोनों की आराधना स्वीकार कर ली गई है।

सृष्टि की कल्पना में दोनों में अन्तर है। रामानुज जीव-जगत् विशिष्ट ईश्वर को मानते हैं और निम्बार्क जीव और जगत् को ईश्वर की शक्ति मानते हैं। जगत् को दोनों परिणाम मानते हैं। रामानुज विशेषणभूत को और निम्बार्क शक्ति को प्रकृति का परिणाम मानते हैं।

भक्ति—रामानुज की भाँति ही निम्बार्क ने भी भक्ति की स्थापना शास्त्रीय ढंग से की है। रामानुज ने नारायण के साथ श्री की कल्पना ठीक उसी प्रकार स्वीकार किया जिस प्रकार निम्बार्क ने कृष्ण भक्ति में राधा का प्राधान्य स्थापित किया। सर्वेश्वर कृष्ण की भाँति ही राधा सर्वेश्वरी है। वे कृष्ण के वामांग विराजती हैं और सभी कामनाओं को पूर्ण करती हैं।[1]

डा० नाहर ने लिखा है कि निम्बार्क की कृष्ण भक्ति पाँच प्रकार की है।[2] (१) शान्त (२) दास्य, (३) सख्य, (४) वात्सल्य, (५) उज्ज्वल या माधुर्य। इस प्रकार निम्बार्क ने कृष्ण भक्ति का प्रचार किया साथ ही राधिका को वामांग में प्रतिष्ठित कर दाम्पत्य भाव की जो सृष्टि की है उससे यह स्पष्ट होता है कि माधुर्य या प्रेमभाव अर्थात् प्रेमलक्षणा भक्ति का ही आप प्रतिपादन करते हैं। वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदायों की भाँति इसमें (निम्बार्क मत) भी मधुर भाव की उत्कृष्टता प्रदान की गई है। निम्बार्क सम्प्रदाय के उपास्यदेव व्रजकृष्ण हैं जो अपनी प्रेम और माधुर्य की अधिष्ठात्री शक्ति राधा तथा अन्य आह्लादिनी गोपी स्वरूपा शक्तियों से परिवेष्ठित रहते हैं। निम्बार्काचार्य ने युगल उपासना के साथ

---

१ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ३४४।

अंगेतु वामे वृषभानुजां मुदा
विराजमानामनुरूप सौभगाम्।
सखी सहस्रैः परिसेवितां सदा
स्मरेम देवीं सकलेष्ट-कामदाम्॥
दशश्लोकी श्लो० ५।

२ डा० रतिभान सिंह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, इलाहाबाद, पृ० १८६।

राधा की उपासना पर विशेष महत्त्व दिया है।[१] निम्बार्क रामानुज, वल्लभ और चैतन्य के बीच की कड़ी हैं जिन्होंने भेदाभेदवाद द्वारा यह स्पष्ट किया कि जनसाधारण म अपनी भेद बुद्धि के कारण ही सारी मूर्तियों की उपासना नहीं होती, इसलिये विग्रह का पूजन ही उत्कृष्ट भक्ति मार्ग का साधन है। प्रेमपूर्वक उन विग्रहों का ध्यान, स्मरण-कीर्तन और पूजन अति आवश्यक है। अन्त मे स्वामी परमानन्द दास के कथन को उद्धृत कर इस प्रसग की इतिश्री की जाती है—

निम्बार्क सम्प्रदाय के उपास्यदेव भगवान् श्रीकृष्ण होने पर भी निम्बार्कीय वैष्णव गण उनकी सशक्तिक उपासना को ही फलप्रद मानते हैं। भगवान् के पुरुष विग्रहों म जैसे श्रीकृष्ण मूर्ति प्रधान है, स्त्री मूर्तियों म श्रीराधिकामूर्ति भी उसी प्रकार प्रधान है। श्रीराधिका श्रीकृष्ण की सर्वप्रधान शक्ति हैं। सशक्तिक भगवत् मूर्ति की उपासना म जो महान् फल होते हैं, उन्हीं के अन्तर्गत एक विशेष लाभ यह देखने मे आता है कि उनसे शीघ्र साधक की कामवृत्ति निवृत्त हो जाती है भगवान् क साथ सयुक्त रूप म स्त्री मूर्ति की भक्तिपूर्वक अर्चना करने से स्त्रीमूर्ति के प्रति कामभाव तिरोहित हो जाता है और स्त्री पुरुष के मिथुनीकृत भाव का भगवल्लीला के रूप मे दर्शन करते करते साधक सहज ही शिक्षा प्राप्त करके तद्विषय म निर्मलत्व लाभ करता है, अतएव उपास्य-स्वरूप का वर्णन करते हुए श्रीनिम्बार्क स्वामी अपने वेदान्त कामधेनु ग्रन्थ मे लिखते हैं—

स्वभावतो पास्तसमस्तदोष-
मशेष कल्याण गुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म पर वरेण्य
ध्यायेम कृष्ण कमलेक्षण हरिम्॥

ब्रह्म सम्प्रदाय

ब्रह्म सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक ब्रह्मा जी हैं। मध्वाचार्य जी तो इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक नहीं बल्कि मध्ययुगीन प्रतिनिधि थे। माध्वमत का उद्गम स्थल दक्षिण भारत है और आज भी इसका वहाँ विपुल प्रचार है। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय माध्वमत की ही एक शाखा है। इस मत की उत्पत्ति रामानुज की मृत्यु के सौ वर्ष बाद हुई माध्वाचार्य दार्शनिक दृष्टि से द्वैतवाद के प्रवर्त्तक हैं और धार्मिक दृष्टि से भक्तिवाद के समर्थक द्वैतवाद। भारतीय दर्शन म द्वैतवाद का समर्थक साख्य दर्शन है। द्वैतवाद शब्द तत्वशास्त्र म उपयुक्त होता है। साधारणत दो स्वतन्त्र सत्ताओ का अस्तित्व मानने के लिए द्वैतवाद को अपनाया जाता है। इस सम्प्रदाय से हिन्दी साहित्य का प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्पष्ट नहीं है।

मध्वाचार्य (११९९)

द्वैतवाद के मध्ययुगीन प्रतिनिधि मध्वाचार्य हैं। इनका जन्म दक्षिण भारत म बेलिग्राम नामक स्थान म एक भट्ट ब्राह्मण परिवार मे ११९९ ई० म हुआ। इनके पिता का नाम मध्यगेह भट्ट तथा माता का नाम वदवती था। बचपन मे ये वासुदेव के नाम से पुकारे जाते थे। बचपन से ही वैराग्य की भावना होने के कारण सन्यास की दीक्षा लेली। सन्यास की दीक्षा देने वाले अद्वैतवाद के आचार्य अच्युत प्रेक्ष थे। इस समय इनकी अवस्था ११ वर्ष की थी। सन्यासी होने के बाद से आप पूर्णप्रज्ञ के

---

१ उषा गुप्त हिन्दी के कृष्णाभक्तिकालीन साहित्य मे संगीत, दिल्ली, पृ० ६।

२ रामानुज श्री स्त्रीचक्रे मध्वाचार्य चतुर्मुख।
श्रीविष्णुस्वामिन रुद्रो निम्बादित्य चतु सन॥
दे० बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृ० १२२।

नाम से पुकारे जाने लगे। इसके बाद आप वेदान्त मे पारगत हो गये। आचाय जी ने आपका नाम आनन्दतीर्थ रखकर मठाधीश बना दिया, लेकिन कुछ ही दिनो के बाद आप अपने अध्यवसाय और कमपरायणता से प्रेरित होकर सन्यास का परित्याग कर लोकरुचि के साथ सम्बन्ध जोड लिया। फिर क्या था। द्वैतवाद की गङ्गा-यमुनी छवि भक्ति की भागीरथी के कूलो पर देखने लगी। श्रीसावलिया विहारी लाल वर्मा ने लिखा है कि 'इन्होंने सन्यास माग का परित्याग कर लोकरुचि के अनुकूल द्विवधा तत्त्व युक्त द्वैतमत का प्रतिपादन किया। इन्होंने विष्णु को जगत् का नियन्ता और परमेश्वर बतलाया[1]।' यथा—

एको नारायण ह्यासीत न ब्रह्मा न च शकर।
आनन्द एक सवाग्र आसीनारायण प्रभु ॥

प्रचार काय

अपने मत के प्रचार म आपने साहित्य सृजन, तीर्थयात्राएँ और मन्दिरा की स्थापना भी की। सन् १२२८ ई० म आपने अपने गुरु के साथ दक्षिण भारत के समस्त तीर्थों की यात्रा की, इस यात्रा मे आपने अद्वतवाद के आचार्यों से शास्त्रार्थ कर मायावाद का खण्डन किया। यात्रा करते हुए आपने उन्तीपिनगर मे विश्राम लिया, जहाँ पर प्रसिद्ध ग्रथ 'गीताभाष्य' का प्रणयन हुआ। गीताभाष्य की रचना की पूर्णाहुति के अनन्तर उत्तरी भारत के तीर्थों का दर्शन करते हुए बदरिकाश्रम जा वेदव्यास जी को अपना भाष्य दिखला उनसे अनुकम्पा और शालिग्राम की तीन मूर्तियाँ प्राप्त की।

इस प्रकार तीर्थयात्रा काल मे आपन साहित्य सृजन, शास्त्रार्थ और मन्दिरो की स्थापना की। आपके ग्रथो में गीताभाष्य, ब्रह्मसूत्रभाष्य, अनुव्याख्यान, दशोपनिषद्भाष्य, गीतातात्पर्य निणय आदि विशेष प्रमुख हैं। मायावाद की कटु आलोचना के सम्बन्ध मे भी आपने कई एक ग्रन्थ लिखा।

कहा जाता है कि समुद्रतल से निकासी गयी जो कृष्णमूर्ति इन्हे वेदव्यास जी से प्राप्त हुई, उसकी स्थापना उदीपि मे की। यह स्थान माध्वमतावलम्बियो का मुख्य तीर्थ है। इसके अतिरिक्त आपने बडे बडे आठ मन्दिरो का भी निर्माण कराया। आपके हृदय मे उमडती हुई भक्ति की पावनधारा इन रूपो म प्रवाहित हो जगत् का कलुष आज भी धो रही है।

दार्शनिक सिद्धान्त

आचाय बलदेव उपाध्याय न माध्वमत को जानने के लिये एक श्लोक उद्धृत किया है[2] जिसमे उनके सभी दार्शनिक सिद्धान्त समाहित हैं। श्लोक मे माध्वमत के नौ सिद्धान्तो का उल्लेख है। वे ये हैं—

(१) हरि परतर — श्री विष्णु ही सर्वोच्च एव परमतत्त्व हैं।
(२) सत्य जगत् — जगत् सत्य है।
(३) तत्त्वभेद — माध्वाचाय का यह प्रमुख सिद्धान्त है।

---

१ सावलिया बिहारीलाल वर्मा : विश्वधर्म दर्शन, पटना, पृ० २८५।
२ श्रीमन्मध्वमते हरि परतर सत्य जगत् तत्त्ववेता।
भेदोजीवगणाहरेरनुचरा नीचोच्चभावगता ॥
मुक्तिनैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधनं।
ह्यक्षादित्रितय प्रमाणमखिलाम्नायैकवेद्यो हरि ॥
—बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, पृ० २२४।

भेद पाँच प्रकार के हैं—

(क) ईश्वर का जीव से भेद (ख) ईश्वर का जड से भेद (ग) जीव और जड का भेद (घ) जीव जीव का भेद (ङ) जड का जड से भेद

(४) जीवगण हरेरनुचरा —समस्त जीव हरि के अनुचर हैं अर्थात् उनका प्रयत्न भगवान् के अधीन है।

(५) नीचोच्चभावगता —जीव सभी बराबर हैं। वह कर्म भिन्नता के कारण ऊँच नीच नही है। इनके तीनभेद हैं—

(ख) मुक्तियोग (ख) नित्य ससारी (ग) तमो योग्य।

(६) मुक्तिनैज सुखानुभूति —अपने सच्चे सुख की अनुभूति ही मुक्ति है। मोक्ष चार प्रकार का होता है—

(क) कमक्षय, (ख) उत्क्रान्ति (ग) अचिरादि मार्ग (४) भोग।

(७) अमलाभक्ति—निर्दोष भक्ति। भक्ति बिना स्वार्थ की जो हो वही सच्ची और श्रेष्ठ है। स्वार्थपूर्ण भक्ति को हेतु भक्ति कहते हैं तथा स्वार्थ रहित भक्ति को अहेतु की। अहेतु की भक्ति का दूसरा नाम अनन्य भक्ति है।

(८) अक्षादित्रिप्रमाणनितयम्—माध्वमत मे तीन प्रमाण हैं प्रत्यक्ष अनुमान और शब्द। इन्ही तीनो के सहयोग से समग्र प्रमेयो की सिद्धि होती है।

(९) आम्नाय वेद्यो हरि —वेद का समस्त तात्पर्य हरि है। वेद म केवल हरिगुणगान ही वर्णित है। इस मत मे विष्णु ही सर्वश्रेष्ठ देवता हैं।

भक्ति

श्रीमाध्वाचार्य ने भक्ति के बारे मे अपने ग्रन्थो मे जो विचार दिया है वे बहुत ही मुख्य है। अहेतुकी भाव की भक्ति को आप श्रेष्ठ मानते हैं तथा विष्णु की भक्ति म ही आपका विश्वास है। भक्ति को ही आप मुक्ति का साधन मानते हैं। आपने भक्ति साधना का निरूपण करते हुए बताया है कि अपने आराध्यदेव की प्रतिष्ठा की कल्पना कर अपने स्त्री पुत्रादि परिवार की अपेक्षा भगवान् म दृढ और अधिक स्नेह रखना ही भक्ति है। अमला भक्ति ही मोक्ष का सर्वोच्च साधन है। आपने गीताभाष्य मे लिखा है—

> यथाभक्तिविशेषो ना दृश्यते पुरुषोत्तमे।
> तथा मुक्तिविशेषोऽपि ज्ञानिना लिङ्ग०भेदेन॥
> योगिना भिन्नलिङ्गा नामाविर्भूतस्वरूपिणाम्।
> प्राप्ताना परमानन्द तारतम्य सदैव हि॥[1]

भगवान् श्रीहरि के प्रति भक्ति जितनी होती है उतने ही प्रमाण से लिङ्ग० देह का भग होते ही ज्ञानियो को मोक्ष अर्थात् आनन्द का अनुभव होगा। लिंगभेद के बाद ही स्वरूपानन्द प्राप्त योगियो को सदा तारतम्य ज्ञान और परमानन्द की प्राप्ति होती है। मोक्ष की प्राप्ति के लिये भक्ति आवश्यक है। इसलिये भगवान् विष्णु की भक्ति मुख्य कर्त्तव्य है। इस मत मे दान तप सेवा, यज्ञ, तीर्थ, स्नान आदि सत्कार्य भक्ति के अग माने जाते हैं। इस प्रकार भक्ति की प्राप्ति के लिये बहुत साधन है पर मोक्ष की प्राप्ति के लिये भक्ति ही एक मात्र साधन है। अत माध्वाचार्य की भक्ति मे ज्ञान की महिमा का यशोवर्णन उप

---

१ रामकृष्णाचार माध्वाचार्य की भक्ति, गीताभाष्य कल्याण भक्ति अक पृ० १८९।

लब्ध होता है। ज्ञान रहित भक्ति और भक्ति रहित ज्ञान दोनो से मोक्ष की प्राप्ति नही हो सकती। माध्वमत की भक्ति म भगवान् के बाद उनकी अर्द्धांगिनी उनका परिवार अन्य देवतागण, गुरु और ज्ञान वयोवृद्धजन के प्रति भी भक्ति रखनी चाहिए।

इस प्रकार माध्वमत ससार के सभी जीवधारियो के प्रति योग्यतानुसार भक्ति की व्याख्या प्रस्तुत करता है। हिन्दू धर्म-दर्शन की दिव्य भूमि पर माध्व मत की भक्ति की पयस्विनीधारा प्रेमपथ-का-माग प्रशस्त कर सभी जीवो को योग्यताक्रम के अनुसार चलने को आमन्त्रित करती है।

चैतन्य सम्प्रदाय

चैतन्य मत का विकास पूवमध्यकाल म जबकि वगभूमि शाक्तो, शैवो तथा बौद्धो की क्रीडास्थली थी, माध्वमत के अन्तगत हुआ। कालान्तर मे इसने अपना स्वतन्त्र स्वरूप निर्माण कर गौणीय वैष्णव सम्प्रदाय के नाम से हिन्दी दशन साहित्य के इतिहास मे विख्यात हुए। इसके आदि अधिष्ठाता माध्वाचाय की सोलवी पीढी के आचाय माधवेन्द्रपुरी को बताया जाता है। माध्वमत के सभी प्रबल समथक बगाल मे हुए हैं।[1] चैतन्य इसी परम्परा के १८ वी पीढी म हुए जिन्होंने बगाल म जन्म लेकर समग्र उत्तरी भारत को भक्ति से आप्लावित किया।

इनका आविर्भाव स० १५४२ म होली के दिन बगाल के नवद्वीप नगर म हुआ। इनके पिता का नाम प० जगन्नाथ मिश्र तथा माता का नाम शची देवी था। बाल्यकाल म आपका नाम विश्वम्भर मिश्र था लेकिन माता पिता प्यार से आपको निमाई कहा करते थे। कहा जाता है कि आप १३ माह तक अपनी माता के गर्भ मे रहे।[2] अपने जीवन की विलक्षणता आपने गर्भ से ही प्रकट करना शुरू कर दिया था। खेल खेल मे ही आपने अपने पिता के सामने गीता उठा ली। इससे यह स्पष्ट होता है कि आपके हृदय म भक्ति का जो बीज था वह प्रकृति द्वारा विरासत म प्राप्त था। आप बड़े ही चचल और सुन्दर स्वभाव के थे। बुद्धि आपकी बडी प्रखर थी। फलत समस्त शास्त्रो मे पारगत होने मे विशेष समय नही लगा। सन् १५०७ ई० मे आपने गया यात्रा की। इस यात्रा से आपके हृदय मे भक्ति का जो अगाध स्रोत था तथा जो प्रपचो के कारण प्रस्फुटित नही हो पाता था, वह सारे प्रपचो को हटाकर भगवद्भक्ति की ओर स्वत अग्रसरित हुआ। आपने यही केशवपुरी से सन्यास की दीक्षा ली। तरुण पत्नी के यौवन और वृद्धामाता की दयनीय अवस्था का ख्याल न कर कृष्णभक्ति के प्रचार मे लीन हो गये। अब आपको कृष्ण चैतन्य के नाम से पुकारा जाने लगा। गया यात्रा का आपके जीवन मे महत्व पूण स्थान है। इसने आपको गृहस्थ न बनाकर भगवत्प्रेम के सच्चे प्रेम पथिक के रूप म आपके जीवन के साथ उस अध्याय को जोडा जहाँ से केवल वग प्रदेश को ही नही समस्त उत्तरी भारत को भगवद्भक्ति का वह पुष्प मिला जिसकी सुरभि से समस्त ससार सुरभित है।

यात्रा एव प्रचार

सन्यास की दीक्षा लेने के उपरान्त आप धम से उदासीन रहने लगे। आप भक्ति मे अहर्निश लीन रहने लगे। भक्तो के समूहो मे श्रीकृष्ण की भक्ति और नाम कीतन का प्रचार करने लगे। कीतन की मधुर ध्वनि स भक्तो की अपार भीड ने तामसी प्रवृत्तिवालो के समस्त विरोध के बावजूद भी प्रेमपथ को अपना लिया। इस तरह शव, शाक्त और बौद्ध पथियो का सहयोग आपको प्राप्त हुआ। इन लोगो के

---

१ प० बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, सं० २०१० पृ० २२८।

२ चैतन्य महाप्रभु, सस्ता साहित्य मडल, दिल्ली, प्र० स० १९५४, पृ० ५।

सहयोग से कृष्णभक्ति और कीतन की ऐसी पावन धारा प्रवाहित की जिसम अवगाहन कर बंगीय जनता कृतकृत्य हो गई।[1] आपने आठ वर्षों तक समस्त उत्तरी भारत और दक्षिण भारत के तीर्थस्थानों की यात्रा की। इस यात्रा मे बल्लभ से मुलाकात हुई। कृष्णतत्त्व पर आपने वल्लभ जी से वार्ता करते हुए अपार सुख का अनुभव किया। आप की यात्रा वडी ही सुखप्रद हुई। आप जहाँ गये भक्तो की अपार मडली साथ लग गई। हरि बोल, हरि बोल की ध्वनि से आकाश को गुंजित कर दिया। 'आप जहाँ भी गये काशी, मथुरा, प्रयाग श्रीरगम सब जगह भगवत् प्रेम के प्रवाह म योगदान मिला। प्रभुदयाल मीतल ने लिखा है कि 'वे जहाँ भी गये उन्होंने प्रेमभक्ति की पावन सरिता बहा दी और हरि कीर्तन की मधुर ध्वनि गुजा दी। वे साधारण सन्यासी और दीन भिक्षु की भाति विचरण करते थे। कृष्णभक्ति और कृष्ण कीर्तन का प्रचार इनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। व कीर्तन करते हुए प्रेमावेश म इतने तन्मय हो जाते थे कि इनको बाह्य जगत् का तनिक भी ज्ञान नही रहता था।[2]

दार्शनिक सिद्धान्त

माध्व सप्रदाय की शाखा होने के कारण माध्वमत की स्पष्ट छाप इस मत के सिद्धान्तो पर परिलक्षित होती है। दर्शन की क्रिया भावभूमि पर विधि विधान की आवश्यकता इन्हे नही प्रतीत हुई। इसलिए इन्होने किसी सिद्धान्त का निरूपण ग्रथ नही रचा। इनके रचे केवल १० श्लोक ही प्राप्त हैं। डा० नाहर ने लिखा है कि 'भगवान् कृष्ण की स्मृति म उनके कीर्तन म विह्वल हो मूर्च्छित तक हो जाने वाले महाप्रभु को अपने मत के लिये किसी भाष्य की आवश्यकता नही प्रतीत हुई—प्रेममार्ग म विधि विधान कैसा ?'[3] फलत इनके सिद्धान्तो के निरूपण के लिए इनके द्वारा दिए हुए प्रवचनो को ही आधार माना जाता है जिससे यह पता चलता है कि माध्व मत के साथ सबध रखते हुए भी इसका स्वतन्त्र विकास हुआ जो द्वैतवाद से सर्वथा भिन्न है। इसे अचिन्त्यभेदाभेदवाद का सज्ञा से दार्शनिक जगत् म अभिहित किया जाता है। इसके सम्बन्ध मे चैतन्य[4] महाप्रभु यह कहते हैं कि—

जीवेरे स्वरूप हय कृष्ण रे नित्यदास
कृष्ण रे तटस्था शक्ति भेदाभेद प्रकाश।

श्रीकृष्ण का नित्य दासत्व ही जीव का स्वरूप है। यह भेदाभेद प्रकाश द्वारा श्रीकृष्ण की तटस्था शक्ति रूप है। श्रीकृष्ण विभुपति हैं और जीव अणुपति। दोनो का धर्म चेतनता होने से दोनो मे अभेद है। श्रीकृष्ण विभु हैं और जीव अणु है इसलिये दोनों मे भेद है। इस तरह जीवात्मा और परमात्मा का भेद अलग स्पष्ट किया गया है। इस मत म माध्व की भाति ही ब्रह्म और जीव की भिन्नता स्वीकार की गई है जगत् को सत्य और ब्रह्म का परिणाम माना जाता है तथा प्रभु को सगुण सविशेष और जीव का अणुचेतन और भगवान् का सेवक माना जाता है। इसके लिये श्रीकृष्ण ही सर्वोच्च तत्त्व है। कृष्ण ही पूर्णावतार हैं, वे स्वय भगवान् हैं, दूसरे उनके अशावतार हैं। कृष्ण ही एक मात्र उपास्य है। कालान्तर म चैतन्य को ही चैतन्यमतावलम्बी कृष्ण का अवतार मानने लगे।[5] इस मत के अचिन्त्य भेदाभेदवादी होने का कारण यह है कि जब माध्व ब्रह्म और चिर जीव की भिन्नता मानता है तो चैतन्य वहा गुण-गुणी

---

१ प्रभुदयाल मीतल चैतन्यमत और व्रज-साहित्य, मथुरा पृ० ५।
२ प्रभुदयाल मीतल चैतन्यमत और व्रज-साहित्य, मथुरा पृ० ६।
३ डा० रतिमान सिंह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन इलाहाबाद, पृ० ३००
४ भक्ति अक (कल्याण विशेषाक) चैतन्य महाप्रभु का भक्तिपथ, ले० हरिपद विद्यारत्न, वर्ष ३२, सख्या १—२०१४, पृ० २०२।
५ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, काशी, पृ० ५०३।

भाव से जीव और ब्रह्म की भिन्नता के साथ अभिन्नता स्वीकार करता है। इस मत मे देवताओ के श्रेष्ठत्व को स्वीकार न कर ब्रजगोपिकाओ की श्रेष्ठता स्वीकार न कर माधुर्य भाव की भक्ति की विशेषता मान शान्त, सख्य, वात्सल्य और दास्य के प्रमुत्व की सृष्टि की गई है। अत श्रीकृष्ण को भक्ति के आधार पर तीन रूपों की कल्पना की गई है—(१) भगवान् रूप जब श्रीकृष्ण की अनन्त शक्ति प्रकट होती है, (२) ब्रह्म रूप जब शक्ति अप्रकट रहती है, और (३) जब प्रकट और अप्रकट दोनो शक्तियो का रूप दिखलाई पडता है। यह परमात्मा रूप है। डा० नाहर ने लिखा है कि तत्त्व मीमासा के क्षेत्र म इस सम्प्रदाय की कोई मौलिक देन नही है। किन्तु भक्ति आन्दोलन[१] मे अपनी साधना पद्धति के लिये इस सम्प्रदाय का अपना पृथक महत्वपूर्ण स्थान है।[२] इस प्रकार दार्शनिक सिद्धान्तो के आलोडन विलोडन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि चैतन्य पर अपने पूर्ववर्ती भक्ति सम्प्रदायो का स्पष्ट प्रभाव है। उन्ही से सार तत्त्व ग्रहण कर उसके रूप म निखार ला दिया। हा कीर्तन आदि पद्धति मे जो नृत्य का समावेश कर दिया उससे इस मत का प्रचार अधिक हुआ और प्रेमाभक्ति का स्वतन्त्र मार्ग तैयार हो गया जो शैव और शाक्त सम्प्रदायो के कठोर और अगम पथ से बिल्कुल ही सुगम था। सर्वसाधारण लोगों मे इसका प्रचार इसी कारण से हुआ।

भक्ति

चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओ का अध्ययन करने से पता चलता है कि उनकी शिक्षा का मूल तत्त्व है कृष्ण की भक्ति। कृष्ण के साथ ही उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा की कल्पना की गई है। प्रस्तुत श्लोक मे इस मत का सार सन्निहित है—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनय स्तद्धाम् ।
रम्याकाचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता ।
शास्त्र भागवत प्रमाणमल, प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मे तामद तत्रा दरो न पर ॥[३]

ब्रजस्वामी नद के पुत्र श्रीकृष्ण ही आराध्य भगवान् हैं। उनका धाम वृन्दावन है। व्रज गोपिकाओ द्वारा की गई उपासना ही प्रामाणिक उपासना है। भागवत निर्मल प्रमाण शास्त्र है और प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है। यही प्रेम चैतन्यमत की आधार शिक्षा है। प्रेमाभक्ति का विकास इसी प्रेम तत्त्व के आधार पर हुआ। इसमे चैतन्य की कीर्तन पद्धति भक्तिभावना को पावन सा बना देती है। अत इस मतमे भक्ति साध्य भी है और साधन भी। श्रीकृष्ण की रागात्मिका भक्ति को ही इस सम्प्रदाय के मतावलम्बी लोग मानते हैं—'चैतन्य का मत है कि केवल भक्ति ही ईश्वर की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। हरि नाम ही हमारा जीवन है। कलियुग म कोई दूसरा उपाय ही नही है।'[४] अन्त म डा० उषा गुप्त के कथन को उद्धत कर इस प्रसग की इतिश्री की जाती है— 'इस सम्प्रदाय म राधाकृष्ण युगल रूप के

रुद्र सम्प्रदाय

रुद्र सम्प्रदाय के प्रवर्तक विष्णुस्वामी थे। इनका जन्म दक्षिण भारत मे मदुरा नगरी म हुआ

---

१ वही, पृ० ५०२।
२ डा० रतिभान सिंह नाहर भक्ति आन्दोलन का अध्ययन, इलाहाबाद, पृ० ३०३।
३ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, काशी, पृ० ५१६
४ हरिर्नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौनास्तैव नास्तैव, नास्तैव गतिरन्यथा।
प्रदीप, जिल्द २० (सख्या १, २, ३, ४,) सितम्बर दिसम्बर, पृ० ३२।

मर्यादा भक्ति —मर्यादा भक्ति वह है जो भजन-पूजन आदि साधनों से उपलब्ध हो। इसमें फल की अपेक्षा भक्ति की इच्छा अधिक होती है। यह भक्ति सायुज्य प्रदान कराने में सहायता प्रदान करती है।

पुष्टि भक्ति —यह भक्ति साधन निरपेक्ष है। प्रभु का अनुग्रह ही इस भक्ति के लिये आवश्यक है। पुष्टि भक्ति द्वारा जीव को पूर्ण मोक्ष प्राप्त हो जाता है और पूर्ण मोक्ष ही वल्लभ सम्प्रदाय का परम लक्ष्य है। भगवान् की तीन शक्तियाँ हैं—(१) स्वरूप शक्ति, (२) तटस्थ शक्ति, (३) माया शक्ति। सत् चित् आनंद से युक्त शक्ति को स्वरूप शक्ति, जीवों का आविर्भाव करने वाली शक्ति को तटस्थ शक्ति और प्रकृति और जगत् का जिस शक्ति से निर्माण होता है, उसे माया शक्ति कहते हैं।

सेवा तीन प्रकार की है—मानसी, वित्तजा और तनुजा। मानसी मन के द्वारा सेवा, तनुजा तन से और वित्तजा धन से या सम्पत्ति से की जाती है।

पूजा के आठ प्रकार हैं—(१) मंगला रीति, (२) शृङ्गार, (३) गोपाल, (४) राजभोग, (५) उत्थान, (६) भोग, (७) साध्य, (८) शयन।

इस प्रकार आचार्य वल्लभ ने भक्ति मार्ग का शिलान्यास साधारण जनता के लिए किया। आपने संन्यास धर्म का खंडन कर यह बता दिया कि गृहस्थ रहकर भी भगवद्भक्ति सम्भव है। संन्यास धर्म का मार्ग अगम है। उसे सभी स्वीकार नहीं कर सकते हैं। गृहस्थ को संन्यासी की दीक्षा नहीं दी जा सकती। अतः *आचार्य जी द्वारा प्रतिपादित भक्ति मार्ग संन्यास धर्म से अधिक सामाजिक है।* गृहस्थ का कृष्ण मन्दिर में जाकर पूजा की विविध विधियों में शारीरिक होना पूर्णतया सम्भव है। वह दैनिक पूजा में सम्मिलित होकर कीर्तन में हरिलीला श्रवण आदि द्वारा प्रभु के निकट जा सकता है। कीर्तन एक सामूहिक पूजा है। यह अधिक सामाजिक है, क्योंकि यह सामूहिक साधन है। इस तरह आपकी भक्ति रागात्मिक भक्ति है जो सर्वसाधारण के लिये सुलभ और सहज है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्रीहितहरिवंश जी हैं। प्राचीन काल से इस सम्प्रदाय का कोई संबंध नहीं है। आपको इस सम्प्रदाय वाले श्रीकृष्ण की मुरली का *अवतार मानते हैं।* इस मत का स्वतंत्र विकास ब्रज की वैभवशालिनी भूमि में हुआ। इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति में किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध नहीं है। इस सम्प्रदाय की जो साधना पद्धति है उसके अध्ययन से हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि न तो यह निम्बार्क की वृन्दावनी शाखा है और न तो चैतन्य मत की उस पर मुहर ही है। दार्शनिक दृष्टि से आज इसे सिद्धान्त के विषय में द्वैतवाद कहने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस मत के लिए इस नये शब्द का प्रयोग करने के लिये प्राचीन काल से नहीं बल्कि विगत चालीस पचास वर्षों से बुद्धि का व्यायाम किया जा रहा है।[1] गोस्वामी मुकुन्दवल्लभाचार्य जी ने सर्वप्रथम अपनी पुस्तक व्यास वाणी में विभिन्न भारतीय सम्प्रदायों के दार्शनिक तत्वों का निरूपण करते हुए लिखा है कि श्रीहिताचार्य जी के अनुयायियों का सिद्धान्त सिद्धाद्वैत है।[2] सिद्धाद्वैत का शाब्दिक अर्थ है सिद्ध + अद्वैत = सिद्धाद्वैत। सिद्ध है अद्वैत जिसमें। इसे ही राधावल्लभ सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण का जहाँ अद्वैत सिद्ध हो। इस प्रकार राधा और कृष्ण का अद्वैत स्वतः सिद्ध स्वीकार किया जाता है। यहाँ शंकर के अध्यास या किसी भ्रम की प्रतीति नहीं होती है।

---

१ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, काशी, पृ० ४२१।
२ व्यास वाणी (पूर्वार्द्ध), पृ० ८

हितहरिवंश जी के जन्म स्थान और जन्म संवत् दोनों पर मतैक्य नहीं प्राप्त हो पाया है। कुछ लोगों ने इन्हें सहारनपुर के निकट देवबंद नामक स्थान का निवासी माना है।[1] लेकिन ऐसी बात नहीं। इनका जन्म वृन्दावन के निकट बाद ग्राम में हुआ था। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने प्रमाण में एक दोहा गोस्वामी जी के अनुयायी का उद्धृत किया है।[2] हाँ इतना तो अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि सहारनपुर से इनके कुल वालों का सम्बन्ध नहीं है। इनके कुल वाले सहारनपुर के ही रहने वाले थे। इनका जन्म संवत् १५३० है।[3] आपके पिता का नाम केशवदास मिश्र और माता का नाम तारावती था। हितहरिवंश जी एक गृहस्थ थे। गार्हस्थ्य धर्म को स्वीकार करने पर भी इनमें भक्ति की वह धारा बहती थी जो इन्हें तो सुधा स्नान करती ही थी साथ ही जनसाधारण भी इससे लाभान्वित होते थे। पूजा अर्चा में ये सदा मग्न रहा करते थे। कहा जाता है कि स्वप्न में ये श्रीराधिका जी से मंत्र ग्रहण कर उनका शिष्यत्व स्वीकार किये थे।[4] अतः युगल उपासना ही इनके सिद्धान्त का सार था। ये राधाकृष्ण की युगलमूर्ति के उपासक थे। यही कारण था कि अबके सभी सम्प्रदायों की अपेक्षा इनकी भक्ति भावना में प्रेम तत्व का समावेश अधिक था।

दार्शनिक सिद्धान्त

हितहरिवंश जी कवि हृदय के उपदेशक थे। आपके हृदय की अनुभूतियाँ बड़ी ही कोमल और सुखदायिनी हैं तथा हृदय के उन कोरों को स्पर्श कर जाती हैं जहाँ शास्त्रीय उपदेशक की अनुभूतियों का प्रवेश नहीं हो सकता। यही कारण है कि आपके सिद्धान्त सम्प्रदाय जगत् में अपनी नूतनता लेकर उपस्थित हुए हैं। दार्शनिक जगत् की दिव्य भूमि पर आपके सिद्धान्तों की नवीनताएँ अपनी नूतनता के लिये युग-युग तक प्रसिद्ध रहेंगी। श्री सम्प्रदाय, निम्बार्क और बल्लभ तथा चैतन्य की साधना में संयोग की सुरसरि का प्रवाह देखते ही बनता है, लेकिन संयोग के बाद वियोग की दारुण कल्पना से हृदय विचलित हो जाता है। हितहरिवंश जी ने संयोग और वियोग के संगमस्थल से अपने सिद्धान्तों का प्रचलन किया है। जहाँ नित्य ही संयोग और वियोग का क्रम चला करता है। यह हितहरिवंश जी के सिद्धान्त की नवीन कड़ी है जिसके सामने सभी सगुण सम्प्रदाय बगलें झाँकने लगते हैं। आप उस प्रेम पथ के राही हैं, जहाँ चकई की दृष्टि में सारस का प्रेम[5] एकांगी न हो और न सारस की दृष्टि में

---

१ मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद, लखनऊ (द्वितीय संस्करण), पृ० २५०।

२ धर्म रहित जानी सब दुनी। जहाँ बाद प्रगटे जग धनी॥
बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, ना० प्र० सभा, वाराणसी, पृ० ४२२।

३ मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद, १ लखनऊ पृ० २५१।

४ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय, ना० प्र० सभा, वाराणसी, पृ० ४२३।

५ चकई प्रान जु घट रहै पिय बिछुरत निकज्ज।
सर अंतर अरु काल निसि तरफ तेज घन गज्ज॥
तरफ तेज घन गज्ज लज्ज तुव वदन न आवै।
जल विहून करि नैन भोर किहि भाव बतावै॥
हितहरिवंश विचारि बादि अस कौन जु चकई।
सारस यह सन्देह प्रान घट रहै जु चकई॥
—हितहरिवंश

चकई का जीवित रहना प्रेम की न्यूनता हो।[1] सारस का प्रेमानुभव भी अधूरा और अपूर्ण ही है। इस तरह की जहाँ स्थिति हो वहाँ साधक की साधना की स्थिति बड़ा ही निराली हो जाती है। आचार्य हितहरिवंश जी ने इस विषम स्थिति से उबरने के लिये रास्ता निकाल लिये हैं।[2]

आचाय बलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि 'स्वकीया-परकीया, विरह मिलन एवं स्व-पर भेद रहित नित्य विहार रस ही श्रीहित महाप्रभु का इष्ट तत्त्व है।'[3] इस प्रकार आपके सिद्धात मे रास की प्रधानता है जिसमे कृष्ण को इष्टदेव और श्रीराधिका को परकीया मानते हैं। परिणाम-स्वरूप रास मण्डल की स्थापना हुई। आप श्रीकृष्ण को इष्टदेव न मानकर श्रीराधा को अपना इष्ट मानते हैं। आप श्रीराधा को स्वतन्त्र पराशक्ति-रूपा मानते हैं। वह महासुख रूपा भी हैं। वही मेरी सेव्या आराध्या हैं।[4]

आचाय हितहरिवंश जी के सिद्धातो का सम्बन्ध सीधे हृदय से नही था। यही कारण है कि उनके ग्रथो म कही भी कमकाण्ड की चर्चा नहीं मिलती। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है कि 'आचाय जी ने अपने ग्रथो मे बाह्य कमकाण्ड को प्रधानता नही दिया है। वे लौकिक कर्मों के प्रति प्राय अनास्था बुद्धि से ही चलते रहे और जो कुछ उन्ह कत्तव्य कर्म प्रतीत हुआ उस भी कमकाण्ड की उलझन मे न फँसा कर सहज रूप से कहा।[5]

हितहरिवंश जी ने ब्रह्म, जीव, जगत् और माया आदि के सम्बन्ध मे विचार नही किया है। इनका धरातल दार्शनिक है और चिरकाल से इनका चर्चा होती आई है, फिर भी इस विषय पर मतैक्य नही हो पाया। यही कारण है कि आचाय जी ने सभी ओर से अपनी दृष्टि को मोड़कर प्रेमा भक्ति का प्रतिपादन किया। शुष्क विषयो की विवेचना से शून्य इस सम्प्रदाय के सिद्धात और मोहक है। आपने प्रेमाभक्ति का जो रूप प्रस्तुत किया है वह बिलकुल ही नवीन है। अन्य वैष्णव सम्प्रदायो की भाति केवल युगल सरकार की कल्पना न कर आपने विलक्षणता, व्यापकता और मोहकता का त्रिवेणी सगम उपस्थित कर दिया है। रस की जिस धारा का यहाँ प्रवाह है वह अनन्त भावो मे अनन्त रूप की कल्पना कर प्रेम तत्त्व को ही परात्पर तत्त्व सिद्ध करता है। इसे यदि रस-सम्प्रदाय कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

श्री सम्प्रदाय मे विष्णु को इष्ट मानकर दास्यभाव की भक्ति की कल्पना की गई है, तो बल्लभ सम्प्रदाय मे बालगोपाल को इष्ट मान रति की सृष्टि।

निम्बार्क, मध्व और गौडीय इस रति से एक कदम और आगे बढ किशोर श्रीकृष्ण के साथ स्वकीया और परकीया भाव की भक्ति की भावना अपनी मोहकता से भक्तो के हृदय को आलोकित करती है। हरिवंश जी बाल रति और कैशोर्य रति म जो भक्ति के भाव हैं उन्ह अपूण बताते हैं। उनका

---

१ सारस सर बिछुरत को जो पलु सहै सरीर।
अगिनि अनग जु तिय भखै तौ जानै पर पीर॥—वही

२ जै श्रीहितहरिवंश बिचारि 'प्रेम बिरहा' बिनु वा रस।
निकट कत नित रहत मरम कहाँ जानै सारस॥—वही,

३ बलदेव उपाध्याय भागवत सम्प्रदाय ना० प्र० सभा वाराणसी पृ० ४४०।

४ ईशानी च शची महासुख तनु शक्ति स्वतन्त्रा परा।
श्रीवृन्दावननाथ पट्टमहिषी राधैव सेव्या मम॥ —राधासुधानिधि, श्लो० ७८।

५ डा० विजयेन्द्र स्नातक राधावल्लभ सम्प्रदाय और सिद्धात, दिल्ली पृ० १३२।

कहना है कि स्वकीया में मिलन है पर विरह नहीं। उसी तरह परकीया में विरह है पर मिलन का पूर्ण सुख उपलब्ध नहीं होता। अतः प्रेम पथ के राही को स्वकीया और परकीया की भावनाओं में एकांगी तथा एकदेशीय भावनाएँ ही विद्यमान हैं। अतः स्वकीया और परकीया की गंगा यमुनी छटा ही आपके मन की मोहक छटा है जिसमें न जाति है न बंधन न रुदन है न मिलन। बल्कि अखण्ड प्रेम का सागर लहराता है जिसमें युगल सरकार विराजते हैं।

इस सम्प्रदाय में कवियों की संख्या अधिक है। हरिवंश जी स्वयं ही एक भावुक कवि थे। उनकी कविता कामिनी भक्ति के भावों से लथपथ उस नायिका की भाँति है जिसका द्विरागमन नित्य होता है। आपकी कविता भावुकता तथा भक्ति की दृष्टि से उन्नत और ललित भावमयी है। कलापक्ष की कमजोरी से हृदयपक्ष का सौन्दर्य काफी सम्मोहक दीखता है। आपकी भावुकता ही उदात्त नहीं थी बल्कि आप स्वयं भावों के मूर्तिमान नगर थे। आपके उपदेशों का सार निम्नांकित पद में है—

तनहिं राखि सत्संग में मनहिं प्रेम रस भेव।
सुख चाहत हरिवंश नित, कृष्ण कल्पतरु सेव॥
सबसों हित निष्काम मन वृन्दावन विश्राम।
राधावल्लभ लाल को हृदय ध्यान मुख नाम॥[1]

इसे आचार्य बलदेव उपाध्याय ने हरिवंशी मत का चतुःसूत्री कहा है। हरिवंश जी की उपासना-पद्धति अन्यान्य सम्प्रदायों की भक्ति पद्धति से बिलकुल ही भिन्न थी। इसे कोई विरला ही जान सकता है। इस मत की प्रधान उल्लेखनीय बातें इस प्रकार हैं—

१—विधि निषेध का सर्वथा त्याग।
२—किंकरी और सखी भाव की प्रधानता।
३—श्रीराधा चरण की प्रधानता।
४—महाप्रसाद की निष्ठा
५—अनन्य दास भाव।

हिन्दी साहित्य में भक्ति की परम्परा

समाज और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों का विकास एक दूसरे पर निर्भर हैं। मानव जीवन अनन्त शक्तियों का स्रोत है। साहित्य इसी स्रोत की बाढ़ है, प्रगति है। अतः जीवन के साथ लौकिक परम्पराएं संघर्ष करती हैं। यह संघर्ष आदिकाल से चलता आ रहा है, और चलता ही जायगा। युद्ध का अन्त नहीं और न होने को है। यही कारण है कि जीवन परम्परा का अनुचर है। इन परम्पराओं के संघर्ष में ही जीवन का परिष्कार एवं परिवर्द्धन होता है। जिस प्रकार जीवन महान् परम्पराओं का अनुकरण करता हुआ प्रगति के कल्याणकारी पथ पर विश्वबंधुत्व की भावना की सुरभि प्रदान करता हुआ पूर्णता को प्राप्त करता है उसी प्रकार साहित्य महान् परम्पराओं के सम्बन्ध से सौजन्य प्राप्त कर (सजीवता, संवेदनशीलता प्रगतिशीलता मानवता, शाश्वतता जातीयता और धार्मिकता) जनहित की भावना का सृजन करता है। तभी तो उसे साहित्य साहित्य की उपाधि से विभूषित करते हैं। परम्परायें हमारे जीवन की पथप्रदर्शिका हैं, इनसे प्रेरणा प्राप्त साहित्य सपुष्ट होता है। इन परम्पराओं से जीवन में क्रांति की भावना भी जगती है। मानवीय रूढ़ियों के प्रति विद्रोह की भावना का परिचालन और परिपालन दोनों होता है। अतः परम्पराओं में जीवन के उत्कर्षापकर्ष की कहानी विद्यमान है। परम्पराओं में साहित्य का सर्वांगीण विकास स्पष्ट परिलक्षित है। भक्ति साहित्य

१ बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ४२७।

मान्यताओं का अपूर्व समन्वय है, जिसे भविष्य की संचित निधि कहा जा सकता है।

परम्पराभूत और वर्तमान का वह संगम है जहाँ भविष्य नित्यप्रति अवगाहन की धवल ज्योति विकीर्ण करता है। परम्परा भूत और वर्तमान का पार कर भविष्य के पथ का निर्णायक हैं। दूसरे शब्दों में लोकानुभूति का यह प्रवाह जो वर्तमान और भविष्यत के कगारों के बीच बहता हुआ भविष्य के (जो आज और अना) अथाह सागर मे करता है। अतीत का अचल उसका उद्गम स्थल है। परम्परा अतीत से भविष्य की ओर प्रगति की मूल धारा है जो क्रमश चली आ रही है और यही उसकी जीवनदायिनी शक्ति है।[1]

हिन्दी भक्ति साहित्य की परम्परा सुदीर्घ है, जिसके अन्तर्गत आने वाले भक्त कवियों की संख्या भी अधिक है। यह परम्परा वेद से ही निःसृत होती है। वेद ही भक्ति साहित्य के उद्गम स्थल हैं। यहाँ से इस परम्परा का विकास निर्गुण और सगुण दो धाराओं में प्रवाहित होता हुआ आज २१वीं शताब्दी में महान् भक्त आचार्य विनोबा भावे तक है। इस अवधि में इस परम्परा ने कई बार नये मोड लिये और अपनी छोटी मोटी विशेषताओं के साथ भिन्न भिन्न रूपों में प्रवाहित हुई।

भक्ति साहित्य की परम्परा का स्रोत न तो राज दरबार है, न मन्दिर और न मस्जिद। इस परम्परा का आदि स्रोत तो प्रभु का आशीर्वाद है। इस विशाल संसार सागर में प्रभु ने मानव के निर्माण में अपनी सारी कलायें लगा दी हैं। यह उसकी कला की अन्तिम परीक्षा है। अत मानव हृदय ही हर एक प्रकार की परम्पराओं का आदि स्रोत है। यहीं से इसके प्रवाह मार्ग का कहीं अवरोध होता है, तो कहीं प्रगति का पथ प्रशस्त मिलता है, जहाँ से यह प्रवाह चल पड़ता है आज चला जा रहा है। पता नहीं मंजिल कहाँ है और कब मंजिल पर पहुँचेगा। इस परम्परा में प्रभु सद्य जात बालक[2] की भाँति प्रतीत होता है। वह जन्म लेकर संसार में सांसारिक बन्धनों के बीच पैंग अपने उद्धार का रास्ता ढूंढता है। जीव ठीक उसी बालक की भाँति सांसारिक मायाजाल में लिपट कारी पीन्ग बढ़ते हुए अपनी तत्व तक पहुँचता है। अन्त मे वास्तविक पर परमेश्वर को प्राप्त कर किलकारियाँ भरने लगता है। इस प्रकार भक्ति की एक महान् परम्परा परमपिता परमेश्वर की सत्ता में मिल जाता है। मानव जीवन का यही लक्ष्य है। भक्ति साहित्य की समस्त परम्पराओं की मूल धारा यहा है। समस्त धारायें *यहीं आकर विश्राम लेती हैं।*

---

१ डा० सावित्री सुक्ल संत साहित्य की सास्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि, दिल्ली, पृ० २४७।

2 our birth is but a sleep and a forgetting
The soul that rises with us, our life s star,
Hath had else where its setting,
And cometh from a far,
Not in entire forgetfulness,
And not in utter nakedness,
But trailing clouds of glory do we come
From God, who is our home
Heaven lies about us in our infancy
Shades of the prison house begin to close
Upon the growing boy '

(Contd)

Odes on Intimation of Immortality from Recollections of Early Childhood

Golden Treasury, p 310, Line 57 68

भक्ति का असली मर्म या स्पिरिट यही है कि मनुष्य किसी शुद्ध व ऊँचे ध्येय के लिये अपने आपको समर्पण कर दे व दिन रात प्रेम अनुराग, उत्साहपूर्वक उसी की सिद्धि मे लवलीन रहे। इससे उन्हे भी भगवद् भक्त की तरह तुष्टि, पुष्टि व मुक्ति तीनो का लाभ होगा।[1] प्राचीन काल ज्ञान, कर्म और उपासना तीनो की समन्वित धारा का संगम था। भक्ति साहित्य का सृजन नाम मात्र का था, लेकिन उसकी परम्परा अक्षुण्ण थी। भक्त जन वैदिक भक्ति की भूमिका जिस मूल तत्त्वो का अन्वेषण किया है वे आज भी ब्राह्मण उपनिषद् और पाचरात्र साहित्य मे वर्तमान है। भक्ति की महान् परम्परा वेद से नि सृत होकर उपनिषद् और ब्राह्मण के कगारो के बीच बहती हुई पाचरात्र साहित्य की चुनौती पर आज के जातीय साहित्य का परिष्कार और परिवद्धन कर रही है। ब्रह्म चिन्तन की धारा ने ही भक्ति का रूप पकड लिया। यह धारा वेदो से निकली और उपनिषदो एव परवर्ती युगो के तट का स्पर्श करती हुई जन और बौद्ध काल म विस्तृत होती हुई चौदहवी-पन्द्रहवी शताब्दी म सतो के नान क्षेत्र मे सिमट गई।[2] वैदिक युग मे भक्ति साहित्य की जिन परम्पराओ का दिग्दर्शन होता है उनकी स्पष्ट छाप आज के साहित्य मे है। कालान्तर मे सूत्रो की रचना हुई जिन पर किसी प्रकार का जातीय सस्कार नही है। गीता का स्पष्ट करारा प्रहार गुण कर्मों के बीच प्रवाहित होता है।[3] क्या उसे भुलाया जा सकता है। जगन्नियन्ता भी धर्म की हानि होने पर उसके पुनरुद्धार के लिये अवतार ग्रहण करता है।[4]

इस प्रकार भक्ति साहित्य म हम सर्वप्रथम ही क्रान्ति के बीज दिखलाई पडते है। समस्त भक्ति साहित्य के प्रणेताओ ने रूढियो के विरोध म अपनी आवाज बुलन्द की। उन्होंने धार्मिक अन्धविश्वास के प्रति अवास्था प्रकट की तथा नवीन आदर्शों की स्थापना के प्रति उनकी जागरूकता देखते ही बनती है।

इस परम्परा की लहर समस्त भारत मे व्याप्त है। उत्तर से दक्षिण एव पूरब से पश्चिम वह अपनी धर्म ध्वजा को फहराये दीर्घ काल से चली आ रही है। इस विशाल भूखण्ड के निवासी अपनी बोलियो के कारण अलग-अलग जान पडते हैं लेकिन भक्ति की परम्पराओ की एकसूत्रता म उन्हे आपने विचारो के प्रकटीकरण के लिये हिन्दी को ही आमन्त्रित किया। इसके अलावा यहाँ एक और विभिन्नता की विभीषिका थी। यहाँ के भक्तो की जातियो भी विभिन्न थीं। वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र से लेकर अहीर, नाई, चमार, मोची, धुनिया व जुलाहे तक हैं। लेकिन ये जाति की भावनाओ की उपेक्षा कर शुद्ध मानव के रूप भक्ति साहित्य के परिवद्धन मे जुट गये। परिणामस्वरूप इनसे प्राप्त समानता सुरभि की सुधा से जगत् खिल उठा। इनके आदर्श ऊँचे थे। इनकी भावनाओं मे जन-कल्याण की भावना निहित थी। इनका निष्कपट व्यवहार जन साधारण के मस्तिष्क को उद्वेलित कर देता है।

---

१ हरिभाऊ उपाध्याय भागवत धर्म, दिल्ली, पृ० ५३।

२ सिद्धनाथ तिवारी निर्गुण काव्य दर्शन, पटना, पृ० ११।

३ चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागश।
श्रीमद्भगवद्गीता, ४ १३

४ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
वही, ४ ७

और विश्व बन्धुत्व का युग युग से मानव का सम्बन्ध है। मनुष्य शान्तिमय वातावरण की सृष्टि के लिये बराबर प्रयत्नशील रहा है वह संघर्षमय वातावरण को त्याग कर आध्यात्म के अंचल मे विश्राम लेना चाहता है। यही कारण है कि भक्ति साहित्य स्वान्त सुखाय और बहुजन हिताय की भावना से सराबोर है। भारतेन्दुयुगीन कवि भी स्वान्त सुखाय की भावना से बचे नहीं। विश्वबन्धुत्व की भावना तो उस युग की प्रबल धारा थी ही।

रीतिकालीन शृङ्गारधारा का भारतेन्दुकालीन भक्ति साहित्य पर प्रभाव

हिन्दी साहित्य मे रीतिकाल का आगमन सामन्ती व्यवस्था की उपज है। यह भारतीय समाज और संस्कृति की ह्रासोन्मुख विलासपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति है। भक्तिकाल का 'संतन को कहाँ सीकरी सो काम' वाला सिद्धान्त विस्मृत हो गया। स्वान्त सुखाय का आदर्श अन्धकार में विलीन हो गया। सुरा और सुन्दरी का सौन्दर्य कविता को स्वान्त सुखाय से स्वामिन सुखाय की बेडी मे बाँध दिया। कविता विलासियो के विलास का उपकरण बन गई। परिणाम स्वरूप प्रेम वासना में परिवर्तित हो गया। रीतिकालीन कवि की कला नखशिख वर्णन मे कमाल उपस्थित करने लगी। इस प्रकार शृगार के इस हाट मे अनुप्रासप्रियता, चमत्कार प्रदर्शन, वाग्विदग्धता, ऊहात्मकता, वासना की बहार की छटा गजब ढा देती है। लगता था कि भक्ति रीतिकाल से पलायन ही कर चुकी थी। लेकिन हाँ परम्परा का निर्वाह सूक्तियो के रूप में हुआ। विलास जर्जर मन भक्ति के लिये व्याकुल हो जाता था। जब लोग रसिकता से घबरा जाते थे तो राधाकृष्ण का अनुराग उनके धर्मभीरु मन को सान्त्वना देता था। डा० नगेन्द्र के शब्दो मे 'रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति भावना से हीन नही है हो भी नही सकता था, क्योंकि भक्ति उसके लिये मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए उसके विलास जर्जर मन में इतना नैतिक बल नही था कि भक्तिरस में अनास्था प्रकट करे अथवा सैद्धान्तिक निषेध कर सके'[1]।

भारतेन्दु युग काव्य की दृष्टि से सक्रान्ति का युग है[2]। इस युग में प्राचीन काव्यधारा पूर्णता वेग से थी लेकिन नवीन काव्यधारा का सूत्रपात भी इसी युग मे हुआ। रीतिकालीन वातावरण का प्रभाव पर्याप्त परिलक्षित होता है। शृङ्गार का अदम्य उत्साह नवीन भावनाओ के साथ मेल न खा सका और नवीन भावनाओ की धारा अनायास ही फूट पडी जिस के किनारो पर वतमान काल की काव्य क्यारियाँ पुष्पित हैं। भारतेन्दु बाबू जिस समय हिन्दी साहित्य में पदार्पण किये रीतिबद्ध शृगार साहित्य का सृजन प्रचुर हो रहा था। रीतिशास्त्र प्रस्तुत करके आचार्य पद प्राप्त करने के लिये लोग प्रयत्नशील थे। भारतेन्दु बाबू को इसी प्रकार के साहित्य से प्रेरणा प्राप्त हुई। रीतिकालीन कवि लक्षण ग्रन्थो के प्रणयन मे दोहा, सवैया और कविता का सहारा लेते थे। वह लक्षण तो दोहो में और उदाहरण कवित्तो या सवयो में प्रस्तुत करते थे। इस युग मे लक्षण ग्रन्थो की रचना तो नही हुई लेकिन इस युग मे कवित्त और सवैया की रचना अधिक हुई है जो रीति रचना के सफल उदाहरण हैं। भारतेन्दु बाबू तो इस युग के प्रवर्तक ही हैं। अत इस युग मे इनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट मिलती है। भारतेन्दु ने सुन्दरी तिलक काव्य ग्रन्थ मे रीतिकालीन नायिका भेद परम्परा का अच्छा निर्वाह किया है। यह सवैया का सग्रह है। इसमे नायिकाभेद का वर्णन शृगाररस की मधुर झाकी प्रस्तुत करने में किसी भी शृङ्गार काव्य से पीछे नही है। इस युग मे रीतिबद्ध काव्य को भी एक नये मोड पर आने

---

१ डा० नगेन्द्र रीतिकाल की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ०११०।

२ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, काशी, पृ०३२५।

के लिये भारतेन्दु ने आमन्त्रित कर दिया था लेकिन हिन्दी के दुर्भाग्यवश वह मोड दुर्भेद्य दुर्ग की भाँति आज भी अभेद्य ही रहा। आपने लक्षण ग्रन्था को दोहे वाली परिपाटी को खत्म कर पदा म प्रस्तुत करने की नूतन प्रणाली का आविष्कार किया पर भारतेन्दु के बाद किसी अच्छे उत्तराधिकारी की खोज मे यह नई प्रणाली ज्यो की त्यो पडी है। तत्कालीन, सभी कवियो ने भारतेन्दु के माग का अनुसरण किया।

भारतेन्दु युग के साथ हिन्दी कविता मे एक नई क्रान्ति आ जाती है। इस क्रान्ति के बीज रीतिकालीन कविता के विलासप्रिय साज सज्जा म थे। इस युग मे प्रम, वासना का पर्याय बन गया था। रीतिकालीन कवि बाह्य सौन्दय का सच्चा पारखी था उसकी अन्तर्दृष्टि अन्त करण के सौन्दय का वर्णन करने म पूर्ण असमर्थ रही। रीतिकाल का अधिकाश कवि सौन्दय की खोज में इधर उधर भटकता है। उसे बाहरी सौन्दय से ही मतलब है। प्रकृति के साथ भी वह आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित न कर सका। वह उन्ही ऋतुओ का वणन करता है जिनसे प्रम व्यापार मे सहायता मिलती है। इस प्रकार भारतेन्दु युगीन काव्य साहित्य का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि इस काल मे भी रीतिकाव्य रचने वाले कवियो की विशाल परम्परा है। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है कि स० १९५० तक ऐसे अनेक रससिद्ध कवि हुए जिन्होंने रीतिकाव्य शली को स्वीकार कर वैसी ही रचना की जैसी रीतिकालीन कवि करते थे[१]।

रीतिकालीन कविता धार्मिकता का जामा पहन कर अपने सौन्दय का निखार भारतेन्दु युग मे देखने को प्रस्तुत हुई। उसके शृङ्गार सागर मे यह युग अवगाहन तो करता है लेकिन उस जल को गगा के जल के समान मस्तक पर नही चढाता बल्कि जिस प्रकार वह उछालता है उसमे बालक्रीडा का आभास मिलता है और कुछ नही। कारण यह है कि रीतिकालीन कवि राधा और कृष्ण के नाम की दुहाई देकर भक्ति परम्परा का स्थायित्व कायम करता है।

इस प्रकार भारतेन्दु युग एक विस्तृत मैदान मे विचरण करता है, उसे न राज दरबार की फिक्र है और न सामन्ती प्रथा मे विश्वास उसे तो लोक के निर्माण के लिये एक क्रान्ति की आवश्यकता है, जिसने नव निर्माण म वह देशभक्ति का स्वर बुलन्द कर देता है। वह रीतिकाल की शृंगार प्रधान रीति शली की कविता करने मे लीन होने पर भी शृङ्गार को तत्कालीन काव्य की प्रमुख प्रवृति बनाने मे पूर्णतया असमर्थ रहा।

अध्याय ३

भारतेन्दु युग की प्रमुख काव्यधारायें और उनकी प्रवृत्तियां

भारतेन्दु युग

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे भारतेन्दु युग रीतिकाल और वर्तमान काल के बीच मध्यवर्तिनी कडी की भाँति है। यह युग नवीन चेतना का युग है। रामगोपाल सिंह ने इसे सक्रान्ति का युग माना है[१]। १८५० से १९०० तक के ५० वर्ष के समय को युग ने अपनी सीमा मे घेरा है। भारतेन्दु का जन्म ई० सन् १८५० के ९ सितम्बर को हुआ था। किंवदन्ती है कि आपने पाच वर्ष की अवस्था मे ही

"ले ब्योडा ठाढे भये श्रीअनिरुद्ध सुजान।
बाणा सुर की सैन को हनन लगे भगवान॥

दोहे को रच डाला था। पर इसका कोई ठोस प्रमाण अब तक प्राप्त नही हो सका है। आपका साहित्यिक जीवन कवि वचन सुधा से प्रारम्भ होता है जिसका प्रकाशन सन् १८६९ ई० (स० १९२६) म हुआ[२]। इसके प्रकाशन के एक वष बाद ही भक्त-सर्वस्व का प्रकाशन हुआ। यह आपकी पहली रचना थी, जो क्रमबद्ध रूप में प्रकाश मे आई[३]। इस प्रकार आपका साहित्यिक जीवन १९ वष की अवस्था से शुरू होता है। ६ जनवरी, १८८५ ई० (माघ कृष्ण ६ स० १९४१) को इनका देहावसान हुआ। ३५ वष के अल्पवय मे ही आप इस ससार से विरल हो गये। केवल १६ वष तक आप साहित्यिक जगत् के नेता रहे लेकिन आपकी साहित्य-साधना का प्रसून स० १९५० तक अपनी सुरभि सुधा से साहित्य जगत् को प्लावित करता रहा। डा० रामचद्र मिश्र के शब्दो मे 'यद्यपि भारतेन्दु जी का निधन सन १८८५ मे ही हो गया था तथापि उनके काव्य की प्रवृत्तियाँ १९०० ई० तक अपरिवर्तित रूप म चलती रही[४]। जयकिसन प्रसाद ने १८६८ से १९०३ तक के समय को भारतेन्दु युग माना है[५]। भारतेन्दु युग नूतन विचारो को लेकर साहित्य जगत् मे प्रवेश करता है। डा० केसरी नारायण शुक्ल ने इस युग की स्थापना के बारे म निम्नांकित तर्क देते हैं जो काफी प्रशसनीय हैं। उन्होंने लिखा है कि जब आधुनिक काव्य रीतिकाल की भावना और मनोदृष्टि की पुरानी पद्धति त्याग कर नूतन पथ को ग्रहण करने की चेष्टा कर रहा था। आधुनिक काव्य का उद्धार ऐसे ही त्याग और ग्रहण से हुआ और भारतेन्दु युग आधुनिकता के प्रथम प्रयास के रूप म दिखाई पडा। नूतनता विधायक इस प्रथम युग का नाम भारतेन्दु युग अनुपयुक्त न होगा। क्योकि सभी हिन्दी प्रेमी जानते हैं कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चद्र और उन्ही के रग म रगे हुए उनके सहयोगियो के सतत परिश्रम से ही इस युग का प्रवर्त्तन सम्भव हो सका। भारतेन्दु युग सन् १८६५ से १९०० ई० तक माना जा सकता है[६]। डा० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल ने १८६५

---

१ रामगोपाल सिंह भारतेन्दु साहित्य आगारा, प० २५५।
२ कृष्णकिशोर मिश्र भारतेन्दु का काव्य, पीयूष प्रकाशन, कानपुर, प० २७।
३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली भाग २, भक्त सर्वस्व, नागरीप्रचारणी सभा, काशी, मुखपृष्ठ।
४ डा० रामचद्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छदतावादी काव्य, दिल्ली पृ० ४९।
५ जयकिसन प्रसाद हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल, आगरा, प० ३०।
६ डा० केसरी नारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, पृ० ३।

से १८६३ ई० तक भारतेन्दु युग माना है[१]। कृष्णनारायण मागध ने १९०९ १९५० तक माना है[२] और आचाय चतुरसेन शास्त्री १८६७ से १८८८ तक केवल २१ वष को ही भारतेन्दु युग मानते हैं[३]।

। इस प्रकार उपयुक्त तिथियो मे केवल पाच सात वष का ही अन्तर परिलक्षित होता है। अत हम कविवचनसुधा के प्रकाशन से लेकर १९०० ई० तक की अवधि को इस युग के घेरे मे आबद्ध करते हैं डा० रामरतन भटनागर के शब्दो मे, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र न लगभग आधी शताब्दी के हिन्दी साहित्य की भिन्न भिन्न प्रवृत्तियो को इतना प्रभावित किया है कि इन पचास वर्षों को स्वभावत उन्ही का युग कह दिया जाता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य का सबसे पहला युग यही भारतेन्दु युग है। १८५० ई० म भारतेन्दु का जन्म हुआ और १८८५ म वह गोलोकवासी हो गये, परन्तु अट्ठारह वष के अपने लेखक जीवन मे उन्होंने हिन्दी भाषा, हिन्दी कविता हिन्दी कथा वार्ता सबम नये प्राण डाल दिये। यही नही उन्होंने अपने युग की धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक चेतना को अपने समय के सब लेखको और विचारका से अधिक प्रगतिशील रूप मे अपनाया। वे अधिक जिये नही, उन्होंने अपने जीवन से खेल किया और उसका फल पाया, परन्तु हिन्दी साहित्य मे जिन नई शक्तियो को उन्होंने गति दी, वे शताब्दी के अन्त तक उन्ही के दिखलाए हुए मार्ग पर बल प्राप्त करती रही।[४]

भारतेन्दु युग आधुनिक कविता का प्रवेश द्वार है। भारतेन्दु पूव कविता रीतिकाल की सकरी गली मे भ्रमण करती थी। भारतेन्दु के प्रयास से कविता ने रीतिकालीन दरबारी तथा शृगार प्रधान वातावरण से निकल कर जनता से सीधा सम्पक स्थापित किया। रीतिकालीन कविता का जनता से सम्पक टूट चुका था। भारतेन्दुयुगीन कवियो ने इस सम्बन्ध को पुन स्थापित किया। इस आलोच्यकाल के कवियो में प्राचीन और आधुनिक काव्य प्रवृत्तियो और धाराओ का समन्वय मिलता है। प्राचीन एव नवीन का यह काल सगम है। यहा एक तरफ भक्तिकालीन भक्ति भावना की पावन भागीरथी हिलोरे मारती हैं तो दूसरी तरफ रीतिकालीन शृङ्गार भावना की भव्य छटा मन को मोह लेती है। साथ ही साथ राष्ट्रीयता हास्य और व्यग्य सामाजिक जागरण और प्रकृति चित्रण का पुट आधुनिकता की ओर इगित भी करते हैं। इस युग की कविता की महत्ता इस बात म विशेष है कि इसम देश और जनता की भावनाओ और समस्याओ को पहली बार अभिव्यक्ति मिली है। इस काल के कवि देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक तथा सास्कृतिक दशा के करुण चित्र खीचे हैं। समाज-सुधार और देशभक्ति का स्वर बहुत प्रबल है। प्राय सभी कवि राष्ट्रीयता की आग मे कूद पडे हैं। डा० सुषमानारायण के शब्दो मे 'भारतेन्दु युग राष्ट्रीय भावना के प्रादुर्भाव का युग था।[५] भारतेन्दु और उनके युग के कवियो ने अतीत के सास्कृतिक गौरव का चित्र प्रस्तुत करके लोगो मे आत्म-सम्मान की भावना भरने का प्रयत्न किया।

भारतेन्दु युग नये उत्थान और मोड का युग है। इस युग की कविता म समाज और सामाजिक प्रवृत्तियो का स्वर मुखर है। यह मुखरित स्वर तत्कालीन राजनीतिक चेतना, सामाजिक एव आर्थिक स्थिति और साहित्यिक एव सास्कृतिक पृष्ठभूमि के अवलोकन से ही प्राप्त होता है।

---

१ डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम और सौन्दर्य, दिल्ली, प० १८०।
२ कृष्ण नारायण मागध हिन्दी साहित्य युग और धारा भारती भवन, पटना प्रथम सस्करण, २०२१, प० २३८।
३ चतुरसेन शास्त्री हिन्दी भाषा साहित्य का इतिहास, दिल्ली, प० ६३।
४ रामरतन भटनागर भारतेन्दु हरिश्चन्द, प्रयाग, १९४६, पृ० १४।
५ डा० सुषमानारायण भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य म अभिव्यक्ति, दिल्ली

अब हम भारतेन्दुकालीन प्रमुख साहित्यधाराओ का विवेचन करेंगे। वे इस प्रकार हैं—

राजनीतिक काव्यधारा

१८५७ ई० का विद्रोह, भारतीय राजनीति के रगमच पर प्रथम स्वतन्त्रता सग्राम था। इस समय भारतेन्दु की अवस्था केवल सात वर्ष की थी। यह विद्रोह नवचेतना एव जागरण का प्रथम प्रयास था। देश की सदियों से सोई राजनीति अंग्रेजो के सम्पर्क म आकर उद्बुद्ध हो उठी थी, किन्तु इस विद्रोह का अन्त बहुत ही अमानवीय ढग से किया गया। गाव गाव म पेड़ा की डाली से फासी का काम लिया गया। स्वतन्त्रता की भावना को बहुत बुरी तरह कुचला गया। लोगो मे आतक छा गया, अंग्रेजो का रोब सब पर हावी हो गया।'[1]

इस विद्रोह के पश्चात् देश इग्लैण्ड के राजा के सीधे सम्पर्क मे आ गया। ईस्ट इडिया कम्पनी सदा के लिये तोड दी गई। उस समय सौभाग्य से महारानी विक्टोरिया इग्लैण्ड की रानी थी, इसीलिये भारतवर्ष की वही महारानी बनी। उनका घोषणापत्र पढा गया और भारतवासी फूले नही समाये। महारानी विक्टोरिया के शासन से नई व्यवस्था का जन्म हो जाता है और देश म राजनीतिक जीवन का सचार होता है। विक्टोरिया की घोषणा का जनता ने अभिनन्दन किया और वह राजनीतिक जीवन के प्रति उत्सुकता तथा उत्साह दिखाने लगी। देशवासियो को पूर्ण विश्वास हो गया कि घोषणा के वचन पूरे किये जायेंगे। फलस्वरूप वह आशान्वित होकर राजनीतिक सुविधाओ के स्वप्न देखने लगी।[2] किन्तु हुआ ऐसा नही। जनता का विश्वास अविश्वास मे परिवर्तित हुआ और उसके विद्रोह का स्वर मुखरित होने का अवसर ढूँढन लगा। इस अविश्वास ने केन्द्रीय एकता के भाव का आह्वान किया। फलस्वरूप राष्ट्रीय भावना का बीज भारतीय राजनीति की सुषुप्त प्रगति म पड गया।

राष्ट्रीय भावना

स्वतन्त्रता सग्राम के पश्चात् का हिन्दी साहित्य राष्ट्रीय भावना का प्रारम्भिक इतिहास कहा जा सकता है। अब हिन्दी साहित्य निद्रा का मोह त्याग कर नवीन दिशा की ओर मुड चला। साहित्याकाश मे भारतेन्दु के उदय नवजीवन की शख ध्वनि मुखरित की। तत्कालीन साहित्य ने जीवन की परिस्थितिया का अनुगमन किया।[3] इस युग के साहित्य को सामाजिक एव सास्कृतिक पुनर्जागरण का साहित्य कह सकते हैं।[4] भारतेन्दु और उनके सहयोगी कवियो ने इस अवसर से लाभ उठाया। देश की प्रगति का प्रश्न सामने लाकर उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया तथा साहित्य को माध्यम बनाकर सुधार का व्रत लिया गया। देश, समाज तथा सस्कृति को नवीन दृष्टि से देखा।[5] भारतेन्दु इस आन्दोलन के नायक थे। डा० वार्ष्णेय के शब्दो म उन्होने देशभक्ति लोकहित समाज सुधार, मातृभाषोद्धार, स्वतन्त्रता आदि की वाणी सुनाई।[6]

---

१ डा० किशोरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी कवि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, काशी, २०१३ पृ० २०५।

२. डा० केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा, काशी पृ० २८।

३ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय' आधुनिक हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिषद् इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, द्वितीय सस्करण, १९४८ ई० पृ० १६।

४ रामगोपाल सिंह भारतेन्दु साहित्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा प्रथम सस्करण १९५७,

५ डा० सुषमानारायण भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी-साहित्य मे अभिव्यक्ति, दिल्ली।

६ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य, प्रयाग, पृ० २७७।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नेतृत्व में इस काल के साहित्य का पथ निर्दिष्ट होता है। भारतेन्दु में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। परिणाम स्वरूप उनके अन्य सहयोगियों ने भी कदम से कदम मिलाकर चलना सीखा। देश एक नई सभ्यता एवं संस्कृति के सम्पर्क में आ जाने के कारण अपनी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और ज्ञान के नींव को हिलते हुए पाया। भारत के प्राचीन संस्कृति की आधार-शिला पर, पाश्चात्य संस्कृति घातक प्रहार कर रही थी। फलस्वरूप तत्कालीन कवियों का अन्तस्तल विक्षोभ एवं ग्लानि से परिपूर्ण हो गया। इन्होंने प्राचीन गौरव-गाथा की कलात्मक अभिव्यक्ति से देशवासियों के सुषुप्त विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया। अतीत के प्रति देश को सचेत कर वर्तमान अधोगति के चित्रण से उनकी धमनियों में गर्म लहू का संचार किया। भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, अम्बिकादत्त आदि कवियों ने अपने साहित्यिक ग्रन्थों में रचित अतीत के गौरव को ओजपूर्ण शब्दों में वर्णित किया। भारतेन्दु ने अति आर्त स्वर में वर्तमान अधोगति का स्मरण कर अपने आध्यात्मिक वीर पुरुषों का आह्वान किया है—

कहँ गये विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर।
चन्द्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करिकै थिर।
कहँ क्षत्रिय सब मरे जरे सब गये कितै गिर।
कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत है चिर।
कहँ दुर्ग-सेन धन-बल गयो धूरहि धूर दिखात जग।
जागो अब तो खल-बल-दलन रक्षहु अपने आर्य मग॥[1]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अतीत ही नहीं वर्तमान की दुर्दशा का अतीत गौरव के साथ क्षोमपूर्ण शब्दों में तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है जो बहुत ही मार्मिक और हृदयग्राही है—

रोअहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीन्हो॥
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो।
सबके पहिले विद्या फल जिन गहि लीनो॥
अब सब के पीछे सोई परत लखाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई[2]॥

तद्युगीन अन्य कवियों ने भी अतीत गौरव गान के चित्र प्रस्तुत करने में पूर्णतः सफलता पाई है। अतीत गौरवगान के साथ वर्तमान अधोगति के विक्षोभ की भावना देशवासियों के अन्तस्तल में एक कसक सी पैदा कर देती है। डा० केसरी नारायण शुक्ल ने लिखा है कि "अतीत के प्रति अनुराग से उद्भुत इनके उद्‌गार कहीं भारत की भव्यता की ओर और लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं, कहीं प्रकट रूप से उज्ज्वल भविष्य बनाने का संकेत देते हैं और कहीं इन कवियों के अन्तर का क्षोभ प्रकट

---

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा भाग, काशी, पृ० ६८३ ८४।

२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, पहला खण्ड, प्रथम संस्करण, २००७ वि, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० ४६६।

करते हैं। इस प्रकार अतीत का अनुराग का य की प्रवृत्ति बन गई है[1]। अतीत और वर्तमान के स्वर का सान्निध्य पाकर इस युग का कवि देशवासियो के हृदय म राष्ट्रीय भावना का म य प्रकाश देता है।

राजभक्ति

१८५७ के प्रथम भारतीय स्वातन्त्र्य सग्राम का प्रभाव भारत के आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा सामाजिक सभी क्षेत्रो पर पडा। राज्य मुसलमानो के हाथ से निकलकर विजातियो, विदेशी तथा विधर्मी अग्रेजो के हाथ ना पहुचा। देश की राजनीति की नीव अकस्मात हिल उठी। सभी इससे विक्षुब्ध थे। दयालु लार्ड कैनिंग का इलाहाबाद म दरबार हुआ। कैनिंग न अपन ओजस्वी भाषण म महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र को पढकर सुनाया। सबको समान रूप से नौकरी मिलेगी, रगभेद नही किया जायगा और किसी के धम पर हस्तक्षेप न किया जायगा। भारतवासियो को और क्या चाहिये था। वे परम प्रसन्न हुए, उन्हें जीते जी परमपद प्राप्त हो गया और राजभक्ति का सागर उनके हृदयो म तरगें मारने लगा[2]। यह भारतीय निष्प्राण जनता के सामने चारा फेंकन का प्रयत्न था। जनता की राजनीतिक उत्सुकता को अक्षुण्ण रखन का प्रयास किया गया। भारतेन्दुयुगीन कवियो न इसे बराबर ही सजीव बनाया। युग नियामक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तो खुद ही खानदानी राजभक्त थे। उनमे राजभक्ति कूट कूट कर भरी हुई थी। अपनी राजभक्ति प्रदर्शित करने का कोई भी मौका अछूता नही छोडा है। भारतेन्दु जी अग्रेजो की शासन व्यवस्था म काफी प्रभावित थे। उनके भारत वीरत्व के निम्नलिखित छन्द म उनकी राजभक्ति दर्शनीय है—

जासु राज सुख बस्यो सदा भारत भय त्यागी।
जासु बुद्धि नित प्रजा-पुज रजन महं पागी ॥१९॥
जा न प्रजा तिय निसि सपनेहुँ चित्त चलावै।
जा न प्रजा के धमहि हठ करि कबहुँ नसावै ॥२०॥
बाँधि सेतु जिन सुरत किये दुस्तर नद नारे।
रची सडक बेधडक पथिक हित सुख बिस्तारे ॥२१॥
ग्राम ग्राम प्रति प्रबल पाहरू किये बिठाई।
जिनके भय सो चोरहु सब रहे दुराई ॥२२॥
नृप-कुल दत्तक प्रथा कृपा करि निज थिर राखी।
भूमिकोष को लाभ तज्यौ जिन जग करि साखी ॥२३॥
करि वारड-कानून अनेकन कुलहिं बचायौ।
विद्या-स्थान महान नगर प्रति नगर चलायौ ॥२४॥
सबही बिधि हित किये बिबिध बिधि नीति सिखाई।
अभय बाँह की छाह सबही सुख दियो सो आई ॥२५॥
जिनके राज अनक भाँति सुख किय सदाही।
समरभूमि तिन सो दिखनो कछु उत्तम नाही[3] ॥२६॥

---

१ डा० केसरी नारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा का सास्कृतिक स्रोत, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, काशी, पृ० ११२।

२ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी कवि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, पृ० २०६।

३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ७६३ ६४।

इसी तरह स्वर्गवासी श्रीअलवरत वर्णन, अन्तर्लापिका, श्रीराजकुमार सुस्वागत-पत्र काशी में ग्रहण के हित महाराजकुमार के आने के हेतु कवित, प्रीन्स आफ-वेल्स के पीडित होने पर कविता, राजकुमार शुभागमन वर्णन, भारत भिक्षा, मानसोपायन, मनोमुकुलमाला, रिपनाष्टक, विजय-वल्लरी तथा अन्य स्फुट कविताओं में भी आपकी राजभक्ति परिलक्षित होती है।

प्रेमघन जी भी भारतवासियों की राजभक्ति का वर्णन बड़े गर्व के साथ करते हैं—

राजभक्ति इनमें रही जैसी अकथ अनूप।
वैसी ही तुम आज हूँ पहौ पूरब रूप॥
सबै गुनन के पुंज नर भरे सकल जग माहि।
राजभक्त भारत सरिस और ठौर कहुँ नाहि॥[1]

अम्बिकादत्त व्यास विक्टोरिया का जय जयकार मानकर अपनी राजभक्ति प्रदर्शित करते हैं—

जयति धर्म सब देश जय जय भारत भूमि नरेश
जयति राजराजेश्वरी जय जय जय परमेश॥[2]

भारतेन्दु युग के समस्त कवियों का स्वर राजभक्ति का स्वर था। डा० केसरीनारायण शुक्ल के शब्दों में इस समय की अधिकांश राजनीतिक कविताएँ सुव्यवस्थित शासन की स्वीकृति और नवीन सुविधाओं की आशा से विक्टोरिया वायसराय तथा गवर्नरों के प्रति प्रदर्शित राजभक्ति से ओतप्रोत होती थी।[3] आपने आगे लिखा है कि आज भले ही हमको ऐसी राजभक्तिपूर्ण उक्तियाँ कभी कभी खटकती हों, परन्तु ये उद्गार सहेतु भी हैं और स्वाभाविक भी। विक्टोरिया के शासन द्वारा अशान्त परिस्थिति का अन्त और शान्ति एवं सुरक्षा के समय का आरम्भ होता है।[4]

देशभक्ति

देशभक्ति की भावना समाजगत एवं जातिगत होती है। यह एक मनोभाव है जिसका उद्देश्य मातृभूमि की स्वतन्त्रता और उसकी संस्कृति की रक्षा है।[5] आलोच्यकाल में देशभक्ति की भावना राजभक्ति के माध्यम से निःसृत हुई। सर्व प्रथम तद्युगीन कवियों ने राजभक्ति की व्यंजना की है। वे राजभक्त पहले हैं देशभक्त बाद में। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सं० १९३१ तक राजभक्ति के पालने पर भूल रहे थे। मैं वे गौरांग महाप्रभुओं को धर्म न्याय और दया का अवतार समझते रहे, किन्तु उनका व्यक्तित्व विशाल था और प्रतिभा के मनस्वी पुरुष थे। अतः उन्हें यह मालूम हो गया कि कोरी राजभक्ति से काम नहीं चलने को है। और वे विदेशी शासन के शासन के कट्टर आलोचक बन गये।

उनकी देशभक्ति दो रूपों में अभिव्यंजित है। इसकी अभिव्यंजना उन्होंने राजभक्ति के साथ भी की है और स्वतन्त्ररूप में भी। जहाँ उन्होंने स्वतन्त्ररूप से देशभक्ति का वर्णन किया है, वहाँ तो उनके हृदय की कसक कमाले स्पष्ट दीख पड़ते हैं। लेकिन जहाँ पर उन्होंने देशभक्ति की व्यंजना राजभक्ति की आड लेकर की है, वही राजभक्ति पर देशभक्ति हावी है। उनकी राजभक्ति और देशभक्ति

---

१ प्रेमघन आर्याभिनन्दन, पृ० ६।
२ अम्बिकादत्त व्यास दैवपुरुष दृश्य - मन की उमंग
३ डा० केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा, काशी, पृ० २६।
४ वही, पृ० ३१।
५ वही, पृ० ५१।

साथ साथ चलती रहती है। उन्होंने इन दोनों में समन्वय स्थापित करने की भरपुर कोशिश की है। यथा—

अतिहिं । अकिंचन भारत-वासा।
अतिहिं छीन हिन्दुन की आसा॥
भूलि बृटिश वन धारि सनहू।
भारत सुतन गोद करि लहू॥
कहि कृष्ण इह मति तुच्छ करौ।
नहिं कीटहु तुच्छ विचार धरौ॥
इनहूँ कहै जीवन देह दया।
इनहूँ कह मान सनेह मया॥
इनहूँ कह लाज कृपा ममता।
इनहूँ कह क्रोध सुधा समता॥
इनहूँ तन सोनित हाड त्वचा।
इनहूँ कह आखिर ईस रचा॥[1]

आंग्ल महाप्रभुओं की साम्राज्यवादी नीति

राजपूत काल के उपरान्त देश में केन्द्रीय शक्ति का अभाव हो गया। गुलामों के शासन के अन्तर्गत रहने के कारण भारतवासी मुगलों के आने के समय निष्क्रिय बैठे रहे। वे उन्हें रोक न सके। देश मे फूट का बीज पुष्पित एवं पल्लवित था। विदेशी आक्रमकों ने सहज में यहाँ के राजाओं को कुचल दिया और उन्हें अधीनता स्वीकार करने के लिये बाध्य कर दिया। निर्बलता स्वाधीनता का मूल्य खो बैठी। इसी गलती की पुनरावृत्ति अंग्रेजों के आगमन के समय हुई। अंग्रेजी शासन के जमाने में निस्सन्देह पारस्परिक द्वेषभाव ने बहुत योग दिया और देश के दुर्भाग्य से बहुत जमीचन्द और मीरजाफर भी जीवित थे, जिन्हें देश की स्वतन्त्रता बेचने में जरा भी भय और लज्जा न थी।[2]

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम तक सम्पूर्ण देश पर अंग्रेजों की ध्वजा फहरा रही थी। स्वतन्त्रता के प्रति आकर्षण रखने वाले और जो अधीनता स्वीकार करने में अपनी असमर्थता प्रकट की मरने के लिये कुचल दिये गये। क्योंकि अंग्रेजों ने विरोध बर्दाश्त नहीं किया।

संग्राम के उपरान्त इस आलोच्यकाल में लार्ड कैनिंग (१८५६ ई०) से लार्ड नार्थब्रुक (१८७६ ई०) तक देश में पूर्ण शान्ति रही। अंग्रेजी लार्ड इस बीच पश्चिमोत्तर सीमा पर उलझे रहे। पश्चिमोत्तर सीमा का प्रश्न बहुत ही पेचीदा बना गया था। अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मुहम्मद की मृत्यु से उसके उत्तराधिकारियों के बीच असंतोष की आग उभर पड़ी थी। अंग्रेज इस बीच रूस के आक्रमण से भयातुर थे। परिणामस्वरूप उन्हें इस मामले में दखल देना पड़ा। सन् १८७६ ई० में लार्ड नार्थब्रुक के उपरान्त लार्ड लिटन भारत के वायसराय बन कर आये। ये बहुत ही अनुदार व्यक्ति थे। ये भारतीय नीति की सक्रियता को बनाने में असफल सिद्ध हुए। परिणामस्वरूप इनके ही समय में अफगान युद्ध शुरू

---

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ८०६।

२ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, रणजीत प्रिंटर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९५९, पृ० ५०।

हो गया। पुन याकूब खाँ द्वारा सधि हुई और थोड़े ही दिनों के बाद अंग्रेजो के राजदूत केवेनगरी की हत्या कर दी गई। अफगानों म स्वतन्त्र भावना के कारण ही ऐसा हुआ। अफगान युद्ध शुरू हो गया। अंग्रेज शक्तिशाली थे। अत विजय उनकी हुई। लार्ड लिटन के प्रतिक्रियावादी शासन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता पनप उठी। प्रो० दीनानाथ वर्मा के शब्दों म लार्ड लिटन के शासन काल की घटनाओं ने आग मे घी का काम किया। उसके समय म कुछ ऐसी घटनाएँ घटी जिससे राष्ट्रीय असन्तोष की ज्वाला धधक उठी। लार्ड लिटन के शासन काल को भारतीय राष्ट्रीयता का बीज वपन का समय कहा गया है[1]।'

लार्ड रीपन इसी युद्धकाल मे भारत के वाइसराय बनकर पधारे। लार्ड रीपन की शान्तिप्रियता काफी मशहूर थी। भारतेन्दु राधाकृष्णदास, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' आदि ने इनकी उदारता की भूरि भूरि प्रशंसा की। इनके उपरान्त लार्ड डफरिन से लेकर लार्ड कर्जन तक पश्चिमोत्तर सीमा का विवाद चलता रहा। लार्ड डफरिन के समय मे ही १८ दिसम्बर १८८५ ई० को भारतीयों की एक सभा डा० ह्यूम ने बुलायी। इसी ने कांग्रेस का रूप धारण कर लिया। अंग्रेजो की साम्राज्य वादी नीति के फलस्वरूप ही राष्ट्रीयता का जन्म हुआ।

उपर्युक्त परिस्थितियों न भारतीय राजनीति को झकझोर दिया। डा० ह्यूम के सहयोग से नेशनल कांग्रेस की स्थापना की गई। सर्वप्रथम कांग्रेस का पहला अधिवेशन उमेश चन्द्र बनर्जी के सभापतित्व म हुआ। प्रारम्भिक काल म सुधार सम्बन्धी प्रश्न ही इसके सामने था। बाद मे दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी फिरोजशाह मेहता, गोपालकृष्ण गोखले और मदनमोहन मालवीय जी आदि नेताओं के सहयोग से शासन व्यवस्था मे भी सुधार की माँग की गई। इन लोगो के सहयोग से यह राजनीतिक आन्दोलन जन आन्दोलन मे परिवर्तित हो गया।

राजनीतिक अवस्थायें और साहित्य में उसका स्वर

रीतिकाल के समाप्त होने से पूर्व ही सम्पूर्ण देश पर अंग्रेजो का एकाधिपत्य हो चुका था, परन्तु देश ने अभी पूर्णरूप से विदेशी शासन को स्वीकार नही किया। जनता मे असन्तोष तथा क्षोभ की अग्नि भड़क रही थी, वह ब्रिटिश दासत्व को स्वीकार करने को प्रस्तुत नही थी। इसी के फलस्वरूप १८६७ ई० की राज्यक्रान्ति हुई। इस राज्यक्रान्ति का हिन्दी प्रदेश से घनिष्ठ सम्बन्ध था। कानपुर, लखनऊ, दिल्ली, आगरा, मेरठ आदि इसके मुख्य केन्द्र थे। इसे अंग्रेजो ने भारतीय फूट की मदद से कुचल दिया। परन्तु राजनीतिक अवस्था म पूर्ण परिवर्तन हो गया। भारत का शासन कम्पनी के हाथ से निकल कर इंग्लैण्ड के राजा के हाथ मे चला गया।

महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र ने भारतीय राजनीतिक अवस्था म जागरण के स्वर को रखा। उस पत्र म सहृदयता, उदारता और धार्मिक सहिष्णुता थी। उससे देशी राजाओं और प्रजा को आश्वासन मिला। उनका भय और असन्तोष काफूर हो गया। अंग्रेजो के प्रति उनके अटल विश्वास न तद्युगीन कवियो और लेखकों को राजभक्ति के मधुर चित्र प्रस्तुत करने को आमन्त्रित किया। कवियो ने गद्गद् कंठ से अंग्रेजी राज का गुणगान किया[2]—

---

१ दीनानाथ वर्मा। आधुनिक भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण, १९६६, पृ०९३।

२ डा० उदयभानु सिंह महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग, विश्वविद्यालय लखनऊ, पृ० १।

परम मोक्ष फल राज-पद-परसन जीवन माहि।
वृटन देवता राज सुत-पद परसहु चित चाहि ॥[१]

अम्बिकादत्त व्यास ने तो महारानी विक्टोरिया की जय मनाई है—

जयति धर्म सब देश जय भारतभूमि नरेश।
जयति राजराजेश्वरी जय जय जय परमेश ॥[२]

महारानी विक्टोरिया जब भारत की साम्राज्ञी बनी तो दिल्ली दरबार बहुत ही शौक एव शान से मनाया गया। उस समय वायसराय राजाओ की महती सभा मे भडा और तगमा का वितरण करते हुए जो भाषण कर रहे थे उससे यही स्पष्ट होता था कि वे गुलामी का तमगा बाँट रहे हैं। उनके शब्द थे—"मैं श्रीमती महारानी की तरफ से यहा भडा खास आपके लिये देता हू जो उनके हिदुस्तान की राजराजेश्वरी की पदवी लने की यादगार रहेगा। श्रीमती को भरोसा है कि जब कभी यह भडा खुलेगा आपको उसे देखते ही केवल इसी बात का का ध्यान न होगा कि इगलिस्तान के राज्य मे साथ आपके खैरख्वाह राजघराने का कैसा दृढ सम्बन्ध है, वरन् यह भी कि सरकार की यह बडी भारी इच्छा है कि आपके कुल को प्रतापी भारत्री और अचल देखे। मैं श्रीमती महारानी हिदुस्तान की राजराजेश्वरी की आज्ञानुसार आपको यह तगमा भी पहनाता हूँ। ईश्वर करे आप इसे बहुत दिन तक पहनें और आपके पीछे यह आपके कुल मे रहकर उस शुभ दिन की याद दिलावे जो इस पर छपा है।[३] यह तगमा देते समय वायसराय की यह धारणा थी कि युग युग तक यहा गुलामी बनी रहे।

यह युग राजनीतिक परिवर्तन का युग था। भारतीय जनता को पश्चिमी राजनीति के सम्पर्क मे आ जाने के कारण एक नये ढग का समाज, नूतन अर्थ व्यवस्था, नई शासन प्रणाली से परिचय हुआ। हमारा सम्पर्क अंग्रेजी साहित्य और संस्कृति से हुआ। परिणामस्वरूप समस्त प्राचीन का नव्य मूल्याकन होने लगा। समस्त प्राचीन स्थापनाएँ नवीन का आह्वान् करने लगी। इस सब नवीन के सम्पर्क से हमारे देश जीवन के हर क्षेत्र समाज, उद्योगधन्धो, राज्य, सभ्यता और संस्कृति एव धार्मिक मान्यताओ मे, सब मे एक सक्रमण आरम्भ हो गया और देश एक सक्रान्ति से गुजरने लगा।[४] कवियो और लेखको की वाणी मुखर हो उठी। उन्होंने देश की राजनीतिक अवस्था का चित्रण नवीन ढग से किया। उनके स्वर मे नवीनता का पुट है अतीत तो केवल आचल के ओट से भांकता नजर आता है। राजनीतिक अवस्था के बिगड जाने से देश की दुर्दशा हो जाती है—

छाई जहाँ अति अपार दरिद्रता है।
प्राचीन धान्य धन का न कही पता है।
सुप्राप्य पेट भर नित्य जहाँ न दाना[५]
क्या चाहिये धिग् वहा पर या लुटाना ॥

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, ना० प्र० सभा, काशी, भाग २, पृ० ७०३।
२ अम्बिकादत्त व्यास मन की उमग—देव पुरुष दृश्य, पृ० १६।
३ सप्लिमेन्ट टु द हरिश्चन्द्र मैगेजिन आव् द जनवरी १८७७, दिल्ली दरबार दपण, पृ० १०।
४ रामगोपाल सिह चौहान भारतेन्दु साहित्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा प्रथम सस्करण १९५७, पृ० २३।
५ आनन्द कादम्बिनी, माघ-फाल्गुन, सं० १९६३ वि०, पृ० २०६।

अत भारतीय राजनीति म मोड आ जाता है। हलचल मच जाती है और अतीत के आचल से नवीन आँखें मीचने लगता है, वह अब अंग्रेजों को पराया समझना है। उनकी वस्तु को परायी वस्तु समझता है और उसके त्याग की चेतावनी देता है—

हे देश विदेशन वस्तु छोडो,
सम्बन्ध सर्व उनसे तुम शीघ्र तोडो।
माडो तुरन्त उनसे मुँह आज म ही
कल्याण जान अपना इस बात म ही ॥[1]

डा० केसरीनारायण शुक्ल ने लिखा है कि 'इन कवियो की रचनाएँ आरम्भ मे राजभक्ति से ओतप्रोत हैं, परन्तु क्रमश मोह का पर्दा हटता गया और समय एव दासता की कठोरता सामने आती गई जिससे बाद की रचनाओ मे असन्तोष की स्पष्ट झलक मिलने लगी।

भारतेन्दु के आविर्भाव के साथ ही साथ भारतीय राजनीति मे राष्ट्रीयता का स्वर मुखरित हो उठा। सारा राष्ट्र और समाज अंग्रेजी राज्य प्रदत्त राजनीतिक अवस्था मे ऊब उठा था। राष्ट्र की सारी समस्यायें भारतीय राजनीति की परिधि म आ गई थी। भारतेन्दु अपनी मातृभूमि के सच्चे सपूत थे। वे अपनी मातृभूमि की परतन्त्र जनता को अत्याचारो स परित्राण दिखाने के लिये या राम और कृष्ण की पावन भूमि के उद्धार के लिये भारतेन्दु न शखनाद किया। भगवान् को उन्होने पुकारा—

कहाँ करुणानिधि केशव सोये
जगत नेक न जदपि बहुत विधि भारतवासी रोये ॥

उन्होने देश की भयकर आर्थिक शोषण की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया—

अंग्रेज राज सुखसाज सजे अति सब भारी
पै धन बिदेश चलि जाति इहै अति ख्वारी[2] ॥

सास्कृतिक और धार्मिक धारा

भारतीय जनता की मूलत भावना धार्मिक रही है। क्योकि देश धर्म प्रधान देश है। यहाँ के समाज राज आदि धर्म के आधार पर ही है। धर्म के विकास के इतिहास का आलोडन विलोडन करने से यह पता चलता है कि धार्मिक धारा के रूढ हो जाने पर उनसे नई धारा का जन्म होता है लेकिन स्रोत वही रहता है। धर्म ही सस्कृति का मूल है। यह भारतीय सस्कृति की निजी विशेषता है। विश्व के विशाल फलक पर भारतीय सस्कृति प्राचीन ही नही अतिप्राचीन है। अंग्रेजो के आगमन से पूर्व भारतीय सस्कृति का सघर्ष मुस्लिम सस्कृति स था, लेकिन अंग्रेजी राज्य स्थापना के फलस्वरूप भारतीय सस्कृति स नवजीवन और नवोल्लास से परिपूर्ण एक नूतन सस्कृति का प्रवेश हुआ। इस सस्कृति के प्रवेश पाते ही देश म पुनर्जागरण का स्वर गूँज उठता है और देश की सुपुप्त राजनीति राजभक्ति से, देशभक्ति और फिर राष्ट्रभक्ति की तरफ सकेत कर आगे बढ जाती है। यह थी पाश्चात्य सस्कृति। इसम नवभक्ति और नवीन उत्साह था। देशशताब्दियो स पराधीनता की बेडी मे पड़ा कराह रहा था।

---

१ आनन्द कादम्बिनी, माघ-फाल्गुन स० १९६३ वि०, पृ० २०६।

२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१०, पृ ६३३।

३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१०, पृ० ७०५।

देश की सस्कृति की इसी कारण अधोगति थी । रामगोपाल सिह चौहान के शब्दो म 'जब अग्रेज भारत आये, उस समय जैसे राजव्यवस्था विशृखलित हो रही थी, वैसे ही सास्कृति तथा धार्मिक जीवन भी अधविश्वासो, रूढियो सडी गली मान्यताओ, कुप्रथाओ से जकडा हुआ था'[१] । भारतेन्दु तथा इस काल के हिन्दी साहित्यकारो की दृष्टि स यह छिप न सका कि अग्रेजी राज्य केवल राजनीतिक दृष्टि से ही नही वरन् धार्मिक, सास्कृतिक तथा आर्थिक दृष्टि से भी अभिशाप बन कर आया है । उन्होने सभ्यता, सस्कृति तथा ज्ञान के क्षेत्र म अति प्राचीन भारत की सुदृढ आधारशिला को हिलते देखा । इस युग के साहित्य को सामाजिक एव सास्कृतिक पुनर्जागरण का साहित्य कह सकते हैं ।[२] तत्कालीन साहित्य ने जीवन की परिस्थितियो का अनुगमन किया ।[३] वस्तुत भारतीय सस्कृति को पाश्चात्य सभ्यता एव सस्कृति ने झकझोर डाला ।

भारतीय सस्कृति सस्कृत भाषा मे अक्षुण्ण बनी रही । क्योकि भारतीय धर्म ग्रन्थ सस्कृत में थे । अग्रेजो के आगमन के साथी ही साथ सस्कृत की दशा खराब हुई । इसके आगमन के पूर्व सस्कृत को हिन्दू समाज म विशेष मान्यता थी । अग्रेजो ने मुगलकालीन फारसी भाषा को हटाकर अग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाया । परिणामस्वरूप सस्कृत का विकास अवरुद्ध हो गया । डा० रामचन्द्र मिश्र के शब्दो मे 'अग्रेजी काल म अग्रेजी शिक्षा का माध्यम होने से सस्कृत के विकास का अवसर ही समाप्त हो गया'[४] ।

इस आलोच्यकाल म हिन्दू धर्म बहुत सकीर्ण हो चुका था । धर्म के नाम पर समाज मे रूढिप्रियता बहुदेवा", अधविश्वास आदि उत्कर्ष पर थे । सभी उपासको का कर्तव्य अपने अपने देवो की श्रेष्ठता सिद्ध करना था । शैव शाक्त और वैष्णव का आपसी मतभेद समाज को गुमराह बनाये हुए था । आपसी विद्वेष के कारण मीन मेष निकालना ही इनका कर्तव्य हो गया था । धर्म मे आडम्बर इतना बढ गया था कि आध्यात्मिक विकास के शव स सडेपन की गन्ध आ रही थी । बाह्याडम्बर मिथ्याचार भ्रष्टाचार की आराधना मे नगा नृत्य हो रहा था । उपासना मे अश्लीलता का साम्राज्य था तथा उसके केन्द्र भ्रष्टाचार के अडडे बन थे । तीर्थों म व्यभिचार के अडडे बने हुए थे । महन्तो के घर पापाचार के आश्रम थे और मूर्तिया को पुजवाने वाल पण्डे विलास म डूबे हुए थे ।[५] धार्मिक एकता बिल्कुल समाप्त हो गई थी । सभी अपनी अपनी डफली अपना अपना राग अलाप रहे थे ।[६] मन्दिरो म बलि प्रथा थी । काली शक्ति और चडी के उपासना म हिंसा का मुख्य स्थान था । बिना बलि के पूजा अधूरी समझी जाती थी । उपासना और उपासको की सख्या म नित्यप्रति वृद्धि हो रही थी । वे अपना प्रचार किसी भी प्रकार से करने म हिचकते नही थे । परिणामस्वरूप नये नये नामधारी मत इस आलोच्य काल मे दृष्टगत हुए ।

ब्राह्मण धर्म के ठेकेदार थ । अधिकाश म वे सभी वैष्णव धर्म के उपासक थे । इनसे मूर्तिपूजा

---

१ रामगोपाल सिह चौहान भारतेन्दु साहित्य, आगरा, पृ० २३ ।

२ रामगोपाल सिह भारतेन्दु साहित्य, पृ० ६ ।

३ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० १६ ।

४ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छदतावादी काव्य, रणजीत प्रिन्टर्स ऐण्ड पब्लिशर्स, दिल्ली १९५९ पृ० ५३ ।

५ रामधारी सिंह 'दिनकर' सस्कृति के चार अध्याय, पटना १९५६, पृ० २३८ ।

६ डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य, युगवाणी प्रकाशन कानपुर, २०२१, पृ० १०६ ।

अन्धविश्वास, धर्मान्धता और कर्मकाण्ड का पोषण हो रहा था। इनका समाज में अच्छा स्थान था और ये भी अपने को बहुत बड़ा मानते थे। डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल के शब्दों में वे अपने आगे किसी दूसरे को कुछ समझते ही नही थे। पुरानी परम्पराओ और रूढ़ियों को ही छाती से लगाये बैठे थे। इनमे बौद्धिकता नाममात्र को भी न थी, केवल बाहरी दिखावा ही प्रमुख था[1]। इनके मनमानी के व्यवहार से समाज में कुरीतियाँ जो फैली थी उनका वर्णन करना मुश्किल है। लोग अन्धविश्वास के कारण उनका विश्वास करते थे। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त पण्डे, पुरोहित, ज्योतिषी, गुरु आदि जैसे अशिक्षित और अर्द्ध शिक्षित ब्राह्मण हिन्दू समाज पर छाये हुए थे। उनके मुख से सुनी हुई गलत या ठीक बात को समाज वेदवाक्य मानकर तदनुकूल आचरण करने के लिये प्रस्तुत रहता था।[2] जनता का पूजा-पाठ, भाग्य-वाद, अवतारवाद और तीर्थयात्रा पर पूर्ण विश्वास था। तद्युगीन कवियों पर इस सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्थिति का पूर्ण प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप उनकी लेखनी द्वारा जो उद्गार निःसृत हुए, वे द्रष्टव्य हैं—

विप्र वेद पढ़िबो तो, निन्दित कर्म करें चितलाई।
झूठ ज्ञान उपदेशत डोलें बने समाजी भाई॥[3]
× × ×
जहां देखो तहाँ सब उलटी रीति दिखाई।
सब भांति सनातन कथा सबरन बिसराई॥
निज धर्म प्रतिष्ठा बैठे लोग गँवाई।
बनि रहे नीच, कर नीचन की सबकाई॥[4]
× × ×
मुख मे चारि वेद की बातें मन पर धन पर तिय की घातें।
धनि बकुला भक्तन की करनी, हाथ सुमिरनी बगल कतरनी॥[5]

इसी समय भारत में बृटिश साम्राज्य का प्रवेश हुआ। बृटिश साम्राज्य की स्थापना के उपरान्त देश मे ईसाई धर्म का प्रचार प्रारम्भ हुआ। लेकिन भारतीयों में धर्मान्धता और अन्धविश्वास का इतना प्रचार था कि ईसाई धर्म फूल फल नही पाया। यदि हुआ भी तो केवल अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारतीय नवयुवकों में वे अंग्रेजी फैशन और नौकरी के लिहाज से काफी प्रभावित हुए। लेकिन उन लोगों ने भी ईसाई धर्म की दीक्षा नही ली। पुराने लोग ईसाई धर्म को बड़ी घृणा से देखते थे। इनके आचार व्यवहार उन्हें पसन्द न थे। मांस भक्षण और शराब आदि से इन्हें बड़ी नफरत थी।[6] नवयुवकों का ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट होना बड़ा ही घातक सिद्ध हुआ। हिन्दू समाज में मांस भक्षण शराब आदि से नाना प्रकार की कुरीतियों का प्रवेश पा जाना सम्भव हो गया। भविष्य में हिन्दू धर्म पर बड़ा भारी खतरा था। समाज में बड़ी अशान्ति फैली और स्थिति बड़ी भयंकर हो गई। समाज मे धार्मिक

---

१ वही, पृ० १०६।
२ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० ८१।
३ प्रतापनारायण मिश्र भारत दुर्दशा रूपक, अङ्क १, दृश्य पहिला, १९०२ ई०
४ प्रतापनारायण मिश्र हमीर हठ नाटक, एक्ट ६, सीन पहिला (हस्तलेख)
५ विजयशंकर मल्ल (सपादक) प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम भाग (शैव सर्वस्व), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०१४ वि०, पृ० ६१७।
६ रामधारी सिंह 'दिनकर' संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ४३७ ४३८।

जागरण की आवश्यकता महसूस होने लगी। अत धार्मिक नेताओं ने एक क्रान्ति का बिगुल फूक ही तो दिया।

ईसाई धर्म बडी चालाकी से काम ले रहा था। वह हिन्दू धर्म से किसी भी प्रकार मेल नही खा रहा था। अग्रेजी शिक्षा के प्रचार तथा हिन्दू धर्म की सकीर्णता, फूट, जातिभेद, आडम्बरप्रियता आदि के कारण भारतीय नवयुवक इस नवीन धर्म के आगमन का स्वागत कर रहे थे। प्रचार कार्य मे ईसाई धर्म और हिन्दू धर्म मे सघर्ष ने क्रान्ति का रूप धारण कर लिया। विदेशी जातियो के आने से देश मे मास भक्षण तेजी से बढ रहा था जिसके परिणाम स्वरूप गायो का वध अत्यधिक सख्या मे हो रहा था। चेतना के विकास के साथ ही भारतीयो की दृष्टि गोवध की ओर भी गई और गोवध बन्द करने के लिये अनेक आन्दोलन प्रारम्भ हुए।[1] यह काल धार्मिक पुनर्जागरण का था। अत अनेक सस्थाओ और नेताओ ने इस नवीन दृष्टिकोण को व्यापक, सुदृढ और सुसगठित रूप प्रदान किया। इस काल के धार्मिक जागरण के इतिहास मे ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, प्रार्थनासमाज, ब्रह्मविद्या, रामकृष्ण मिशन, आदि का प्रमुख हाथ है। रूढिग्रस्तता के विरोध मे समाज का जागरूक होना अति आवश्यक था। शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दो मे १९वी सदी के कशमकश मे इस परम्परागत समाज को भी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये रूढियो मे कुछ सुधार करने पडे। यो कहे कि रूढिग्रस्त समाज अपने सामयिक उपचार मे लगा। फलत उसकी रूढिग्रस्तता मे एक स्वस्थ रूढिप्रियता का सस्कार उत्पन्न हुआ।[2]

ब्रह्मसमाज आन्दोलन और नई दृष्टि

भारतीय सास्कृतिक सुधार आन्दोलन के अग्रदूत बगाल के राजा राममोहन राय (१७७२ १८३३) थे। वे सस्कृत, फारसी अग्रेजी और अरबी के विद्वान् थे। इन्होंने ब्रह्मसमाज की स्थापना २० अगस्त १८२८ ई० को की।[3] यह एक धार्मिक सस्था थी जिसने बढते हुए ईसाई धर्म के प्रचार को रोककर नवचेतना का सन्देश दिया। उस समय हिन्दू धर्म खोखला हो चला था। अंग्रेजी सभ्यता के प्रचार, प्रसार एव हिन्दू समाज के कठोर विधि विधानो से पीडित होकर बहुत से हिन्दू ईसाई धर्मावलम्बी होते जा रहे थे। इसकी रोकथाम के लिये राजा साहब ने भारतीय दृष्टिकोण से पाश्चात्य सस्कृति और सभ्यता की समीक्षा प्रस्तुत की तथा उसके गुणो का समर्थन किया। इस आलोडन विलोडन मे उन्हे तत्कालीन प्रचलित हिन्दू समाज मे मूर्तिपूजा, सतीप्रथा बाल विवाह, छुआछूत एव बहु विवाह आदि त्रुटिपूर्ण एव पाखण्डपूर्ण प्रतीत हुए। उनके हृदय मे भारतीय सस्कृति और सभ्यता के लिये उच्चतम स्थान था। अत उन्होने सास्कृतिक जागरण के लिये एक ब्रह्म की सत्ता की स्थापना की। यही कारण है कि उन्हे आधुनिक भारत का जनक कहा जाता है।[4] उन्होंने वेदो और उपनिषदो का गम्भीर

---

१ सावलियाविहारी लाल वर्मा विश्वधर्म-दर्शन, १९५३ पृ० ३३५।

२ शान्तिप्रिय द्विवेदी युग और और साहित्य, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९४१, पृ० १४६।

३ रामवृक्ष सिंह उमाशकर सिंह भारतीय धार्मिक पुनर्जागरण नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, प्र० सस्क० १९५७ पृ० ४५।

४ रामवृक्ष सिंह उमाशकर सिंह भारतीय धार्मिक पुनर्जागरण, वाराणसी, प्रथम सस्करण, १९५७, पृ० ४५।

अध्ययन किया। इनसे प्रेरणा लेकर अपनी प्रतिभा द्वारा समाज में प्रसारित कुरीतियों, अंध विश्वासों, पाखण्डों आदि के उन्मूलन के लिये कमरकस कर तैयार हो गये

ब्रह्मसमाज पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं करता और सर्वव्यापी ब्रह्म को ही अपना इष्टदेव मानता है। यह एक ऐसी संस्था थी जिसके रंगमंच पर तीन सांस्कृतिक धारायें—हिन्दू, मुस्लिम और अंग्रेजी हिलोरें मारती थी। रामवृक्ष सिंह के शब्दों में, 'ब्रह्मसमाज तीन सभ्यताओं—हिन्दू, मुस्लिम तथा यूरोपीय एवं तीन धर्म—इस्लाम, हिन्दू तथा ईसाई का संगम है।[1] विश्व के इतिहास में सर्वप्रथम एक स्थान पर ऐसा समन्वय हुआ था। इस समाज के मुख्य उद्देश्य थे—मूर्तिपूजा, जातिपात तथा छुआछूत का विरोध करना। राजा राममोहन राय ने अंग्रेजी शिक्षा, विदेश यात्रा, स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह इत्यादि का समर्थन किया और सतीप्रथा, बाल विवाह, बहुविवाह, बुरी प्रथाओं का विरोध किया। भारतीय कुरीतियों और अंधविश्वासों पर इस समाज ने कसकर प्रहार किया। सांस्कृतिक नवजागरण का यह पहला कदम था और राजा राममोहन राय ही पहले व्यक्ति थे जिनके दिल में वेदों तथा उपनिषदों के अध्ययन से इन सुधारों की आवश्यकता मालूम पड़ा। उनका ब्रह्म समाज एक सहनशील संस्था थी, जिसमें दया, उदारता तथा अन्य सभी धर्मों के विश्वस्त सिद्धान्तों का समावेश था।[2]

ब्रह्मसमाज का तत्कालीन कवियों, लेखकों और साहित्यिक संस्थाओं पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा। उन लोगों ने खुलकर जात-पात, सती प्रथा, बहुविवाह आदि का वर्णन किया। डा० केसरीनारायण शुक्ल के शब्दों में धार्मिक विवाद बालविवाह विधवा विवाह, जातिभेद, अंधविश्वास, समुद्रयात्रा निषेध आदि समस्यायें हरिश्चन्द्र के सामने थी। हरिश्चन्द्र ने यथाशक्ति इन समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया।[3] आपने स्त्री शिक्षा के बारे में लिखा है—

जो हरि सोईराधिका, जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष या में कछु न विभक्ति॥
सीता अनुसूया सती अरुन्धती अनुहारि।
शील लाज विद्यादि गुण लहौ सकल जग नारि॥
वीर प्रसविनी बुध-बधू होई हीनता खोय।
नारी-नर-अरधंग की साचेहि स्वामिनि होय॥[4]

छुआछूत की तरफ नजर सर्वप्रथम इन्हीं की जाती है—

बहुत हमने फैलाये धर्म, बढ़ाया छुआछूत का कर्म।[5]

राजा राममोहन राय की मृत्यु के उपरान्त देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द सेन के हाथ में नेतृत्व आया। इनके समय ब्रह्मसमाज की काफी प्रगति हुई। अब वह पर्दाप्रथा, अन्तर्जातीय विवाह आदि के बारे में भी सोचने लगा। केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में आर्यसमाज, ईसाई धर्म से काफी प्रभावित हुआ।

---

१ वही, पृ० ४५।
२ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० ५४।
३ डा० केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा, पृ० ७०।
४ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बाला-बोधिनी, पृ० ३६।
५ ब्रजरत्नदास (सम्पादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, (भारत दुर्दशा), नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ६१६।

१८७८ ई० म उक्त समाज की तीन शखायें पनप उठीं। आदि ब्रह्म समाज,' टैगोर परिवार इससे सम्बन्धित है, 'नवविधान —ईसाई धम की इसम प्रमुखता है, 'साधारण समाज'—यह अधिक प्रभावशाली और क्रियाशील है। आदि समाज म भारतीयता प्रमुख है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ब्रह्मसमाज के कर्मठ सदस्य थ जिनकी गीताजलि विश्व साहित्य के रगमच पर रहस्यवाद का प्रेरणास्रोत है। शान्ति प्रिय द्विवदी ने लिखा है कि 'ब्रह्मसमाज न मध्ययुग के रहस्यवाद को आग्ल समाज के सहयोग से एक रोमैटिक रूप दे दिया। साथ ही मुस्लिम काल म जैसे एक मुगल कला आई थी, वैसे ही ब्रह्मसमाज के द्वारा हमारे जीवन और साहित्य म एक अग्रेजी कला भी आयी। इस कला म भारतीयता वैसी ही है जसी ठाकुर शली की चित्रकला मे। १

आयसमाज आन्दोलन और पुनरुत्थान काल

सास्कृतिक और धार्मिक क्षत्र म ब्रह्म समाज स क्रान्ति की आवाज बुलन्द करने का श्रेय आय समाज को है। सामाजिक क्षेत्र मे तो आयसमाज के कायकलापो को देखकर यही कहा जा सकता है कि यह समाज तत्कालीन समाज के लिये दैवी वरदान स्वरूप था। समाज जिस अधोगति की तरफ अग्रसर था आयसमाज ने मध्य माग म खडा होकर चेतावनी का स्वर दिया। इस काल को यदि हम पुनरुत्थान काल कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। गतानुगतिकता के विरोध और बौद्धिकता के समावेश म आयसमाज और ब्रह्मसमाज दोनो समान हैं किन्तु जहाँ ब्रह्मसमाज' के उच्चस्तर म बौद्धिक और आत्मिक चेतना ला सका वहाँ आयसमाज ने निम्नस्तर म भी जागरण को स्थान दिया। २

आय समाज के सस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती थ। इनका जन्म सन् १८२४ ई० मे हुआ था। इनका पारिवारिक नाम मूलशकर था। आपने सत्य और ज्ञान के अन्वेषण म अपन जीवन के १५ वर्ष व्यतीत किये। इस अवधि म आपन समस्त सुख-साधनो को परित्याग कर अनवरत भ्रमण करते हुए व्यापक अनुभव अर्जित किये। आपके समाज म वेद की प्रधानता है। वैदिक सास्कृतिक भावना के प्रचार मे आपके सिद्धान्तो को पूणत सफलता प्राप्त हुई। प्रमाण म आपको समाज की समस्त कुरीतियो को देखन का नजदीक स मौका मिला। परिणाम स्वरूप आपके अतस्तल म छिपी क्रान्ति की अग्नि अनुकूल हवा की तलाश म घूम रही थी, जिसे पडितो के मिथ्या ज्ञान न भभका दिया। अत उन्होंने वेदो की और लौटने का सन्देश देन के लिये १८७५ ई० म आयसमाज की स्थापना कर दी। सत्यार्थ प्रकाश आप द्वारा प्रणीत ग्रथ है जिसका प्रकाशन १८७४ ई० म ही हो चुका था। इसम ही आपके सिद्धान्तो का वणन है।

आय समाज न हिन्दू जाति के अन्दर नवजीवन का सचार किया। आय समाज के पूर्व धर्म पतित हिन्दू पुन हिन्दू जाति म प्रवेश नहीं पा सकते थे। लकिन आलोच्यकाल म आय समाज ने पुन हिन्दू समाज म प्रवश का द्वार खोल दिया। स्वामी दयानन्द के बताये उपदेशो के प्रचार पर आर्य समाज ने शिक्षा स्त्री शिक्षा हरिजनोद्धार, शुद्धि और वेद प्रचार के आन्दोलनो को चलाया। स्त्रियो की अवस्था म सुधार लान के लिए आय समाज की ओर से बहुत से विद्यालयो अनाथालयो, विधवाश्रमो, इत्यादि की स्थापना हुई। आर्यसमाज की महत्वपूर्ण देन हिन्दी भाषा को जनप्रिय बनाने म है। डा० रामकृष्ण के शब्दो म, 'हिन्दी न आर्य भाषा को जन धम बनाया और आय समाज न हिन्दी को देश की सर्वाधिक जनप्रिय भाषा।'३

---

१ शान्तिप्रिय द्विवेदी युग और साहित्य, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, पृ० १४५।

२ डा० सुधीन्द्र हिंदी कविता म युगान्तर, दिल्ली, पृ० १६।

३ डा० रामवृक्ष सिंह भारतीय धार्मिक पुनर्जागरण, पृ० ७४।

आयसमाज का प्रभाव थोडे ही समय म देश तथा विदेश मे फैल गया। इसके सिद्धान्तो के प्रचार प्रसार म हिन्दी साहित्य का प्रयास स्तुत्य है। तत्कालीन कवियो पर आय समाज का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। आय समाजी कवि सामाजिक रूढि के विरुद्ध हैं। व मूर्ति पूजा का तीव्र प्रतिवाद करते हैं। भारतीय पडे और पुजारी भारतीय धर्म के ठेकेदार हैं। वे अपने कथन को वेद की प्रमाणित बात मानते हैं। फलस्वरूप समाज म फैले हुए इस ढोग से विक्षुब्ध होकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इन्हे भला बुरा कहते हैं और इन्हे पोप की उपाधि से विभूषित करते हैं। यहा तक कि इनके व्यवहार से चिढकर इन्होंने हिन्दी साहित्य म पोप छन्द की रचना ही कर डाली। उदाहरण स्वरूप नीचे पोप छन्द उद्धत है जिसमे मूर्तिपूजा के विरोध का स्वर गुजित है।

ये चाल चलावें क्या उलटी जो पत्थर को पुजवाते हैं।
क्या पत्थर फिर भगवान मिले जब उनका ध्यान छुडाते हैं।
सब नदी नाले ढूँढ चुके तब रेती पर हो वार करें।
ये गौर पुजावें देवी की फिर रेती का भरमार करें।
क्या पडे फेर मे पोपों के तुम नाहक जन्म गँवाते हो।
जजाल तजो जगदीश भजो क्यो भटके भटके फिरते हो॥[1]

आर्य समाज मे वेद की प्रधानता थी। मूर्ति पूजा का विरोध करना आय समाज का आवश्यक सिद्धान्त था। प्रतापनारायण मिश्र आडम्बरो से घृणा करते थे। एक दफा पडितो ने आय समाज के मूर्तिपूजा के विरोध मे मूर्ति पूजा का समर्थन किया। इस सघष मे वेदो पर वाग्विवाद चला। तर्क की तुला पर ब्राह्मणो के विचार हल्के प्रतीत होने लगे। बाद में वेद की माग हुई लेकिन किसी भी ब्राह्मण के यहाँ वेद नही प्राप्त हुआ। मिश्र जी ने लिखा है —

पोथी केहि के घर ते आवै, कबहूँ सपनेयो देखी नाहिं।
रिगविद जुजर्विद साम, अथरबन सुनियत आल्हखड के माहि॥
वेद न देखे हम कबहूँ हैं मोरे अन्नदाता जजमान।
पेटु चलैयत है कलयुग मा तुम्हारे धरन पाप के दान॥
तब लगि लीला फिर उठि बोले कहुना वेद मिले महाराज।
वेद बिना तुम पडित कैसे दछिना लेत न आवै लाज॥
धरम के अगुआ ब्राह्मण देउता तिन घर वेद न निकरे हाय।
इतना सुनते परलो परिगा सब रहि गये सनाका खाय॥[2]

जिन कवियो पर आयसमाज का प्रभाव पडा था उनकी रचनाओ म समाज सुधार का स्वर बहुत ही तीव्र है। समाज सुधार के उपायो का निर्देशन तथा प्रचलित कुरीतियो के कुप्रभाव का वणन उनकी रचनाओ म प्राप्त होता है। नीचे की पक्तियो म बाल विवाह के कुप्रभाव का वणन स्पष्ट है। यथा—

बाल-ब्याह जब कियो तज्यो सतकाम सकल विधि
जार-पथ चित दियो तिया शुचि लाज लेन बुधि।
भये सुमूरख सकल विधि तियमय लागे जग लखन,
सब मर्यादा धम तजि लगे मातु पितु से लडन।

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भारत दुदशा, प्रवत्तक खड ४ न० २।
२ नारायणप्रसाद अरोडा (सपादक) प्रताप लहरी, कानपुर १९४९ ई०, पृ० २०९।

याते करिय बिचार बाल-ब्याह नहिं कीजिये,
वय विद्या अनुहारि पूर्ण अवस्था व्याहिए॥[१]

भारतेंदु युग सुधारवादी युग था। मानवतावादी दृष्टिकोण के फलस्वरूप यह युग हर क्षेत्र मे सुधार लाना चाहता था। आर्य समाज ने सुधारवादी आंदोलन म जागृति डाल दी। आय समाज के ही कारण तत्कालीन प्रचलित गोवध के विरोध म राजाज्ञा प्राप्त हुई जिसकी सराहना तो अवश्य करनी पडेगी। राजाज्ञा इस प्रकार है—

बगाल की गवर्नमेंट ने बिहार और बगाल की सब म्युनिसिपैलटिया को गोवध के विषय मे यह सराहनीय आज्ञा दी है—

(१) जिन पशुआ को वध करना अभीष्ट है, ऐस रास्ते से जाय जिससे सवसाधारण का ध्यान न पडे।

(२) एकात स्थान म घरा डालकर मारा जाय।

(३) गोमास खुल्लम खुल्ला न बेचा जाय।[२]

गोरक्षा का आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था। आयसमाजियो का सहयोग इस कार्य म चार चाँद लगा रहा था।

आयसमाज ने भारतीय सास्कृतिक उत्थान के लिये धम प्रचार का सहारा लिया। इसने धार्मिक एकता से देश को राजनीतिक एकता के सूत्र म बाध दिया। मनुष्य के अतस्तल म बठकर मानव मानव के बीच की खाई को पाटने का प्रयत्न आर्य समाज ने ही किया। पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव प्रस्तुत समाज पर नही था, बल्कि भारतीय शिक्षा के गहन अध्ययन का सार रूप ही आय समाज का सिद्धान्त था। डा० केसरीनारायण शुक्ल के शब्दो म, 'वे चाहते थे कि हिंदू अपने रूप को पहचान लें जिससे उन्हें दूसरे बहकाकर अपनी सस्कृति से विमुख न कर सकें[३]।' इसी तरह के उद्गारो स भारतेन्दुयुगीन कविता ओतप्रोत है। उन पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आय समाज का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। तद्युगीन कविताएँ इसकी साक्षी हैं।

थियोसोफिकल सोसायटी और नवीन परिष्कार

यह एक प्रकार का सगठन था जिसन भारत मे धार्मिक पुनरुद्धार का काय किया। कालान्तर म इसके उद्देश्यो मे कुछ परिवतन हुआ और उसम कुछ राजनीतिक सुधार के तत्व सन्निहित कर लिय गये। असल म भारतीय सुषुप्त सस्कृति को जागृत करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य था। प्राचीन हिन्दू और सस्कृति के मुख्य तत्वो और विशेषताओ के गौरवमय स्वरूप को सामने रखकर इस सस्था ने अगरेजियत का दम भरने वालो को अपने अपने समाज के सत्स्वरूप को देखने और सोचने को बाध्य किया।[४] परिणामस्वरूप देश मे पाश्चात्य सभ्यता के प्रति बढ़ती हुई प्रवृत्ति दम भरने लगी और अपनी सस्कृति के गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिये अनुराग की भावना प्रादुर्भूत हुई।

इस सोसायटी की स्थापना भारत म नहा बल्कि न्यूयाक म हुई। मैडम ब्लेवस्की एव कर्नल आलकाट द्वारा १८७५ ई० मे इसकी स्थापना हुई। कालान्तर म इसके सस्थापको को भारत भ्रमण

---

१ शुभ चिंतक, खड १, न० १।

२ नागरी नीरद, वर्ष २, बिंदु १६, १८६४ स०, पृ० १।

३ केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा, पृ० ७६।

४ केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा का सास्कृतिक स्रोत पृ० ४४।

करने का सुअवसर मिला। भारत भ्रमण की अवधि म इन अभारतीय धार्मिक नेताओ को भारतीय कुरीतियो को नजदीक से देखने का मौका मिला। तत्कालीन देश मे प्रचलित बुराइया अपने चरम उत्कर्ष पर थीं। भारतीय सुधारको का प्रयत्न भी इस तरफ था। इसी समय सोमायटी के संस्थापको ने तत्कालीन प्रचलित बुराइयो के सुधार का उपदेश दिया।

मारत मे इस सोसायटी के उपदेशो एव सिद्धान्तो का विशेष रूप से प्रचार एनीबेसेंट द्वारा हुआ। एनीबेसेंट एक आयरिश महिला थी। इनके हृदय मे भारत के प्रति अगाध प्रेम था। २० मई १८८८ ई० को आप थियोसोफिकल सोसायटी की सदस्या बनी। भारत के प्रति असीम ममता और आदर न उन्ह भारत आने के लिये बाध्य किया। वे असल मे हृदय से भारतीय थी। उनका विश्वास था कि अपने पूर्व जन्म म वे हिन्दू और भारतीय थी। इसलिये वे जीवन-पर्यन्त भारत को अपनी वास्तविक मातृभूमि और भारतीयो को अपना देशबन्धु मानती रही[१]। भारतीयो को देखने का यह सुनहला स्वप्न १६ नवम्बर १८९३ ई० को साकार हुआ।

एनीबेसेंट का भारत मे स्वागत हुआ। उनका कार्य केवल हिन्दू धर्म तक ही सीमित नही रहा। वे जैसे जैसे भारतीयो के जीवन के निकट आती गइ उनका क्षेत्र विकसित होता गया। राजनीति म होमरूल आन्दोलन उन्ही की देन है। व भारतीय प्राचीन गौरव से सहमत थी और पाश्चात्य सभ्यता एव तत्त्वदर्शन को भारत के सामने नगण्य समझती थी। उनका यह कथन पूर्णतया सत्य है कि आर्य समाज तथा थियोसाफिकल सोसायटी के प्रसार से गोरी जाति की उच्चता का विश्वास रसातल को चला गया[२]।

इस सोसायटी के सिद्धान्तो का प्रभाव भारतीय समाज पर पडा। भारतीय समाज में सांस्कृतिक जागृति की लहर फैल गई। यह एक सुधारवादी आन्दोलन था। अत तत्कालीन कवियों म आलोचना का स्वर विद्यमान है लेकिन इस मत का स्पष्ट साहित्यिक प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है। हरिश्चन्द्र प्रेमघन, अम्बिका दत्त व्यास आदि कविया मे सामाजिक उन्नति के भाव लबालब भरे थे। राधाकृष्ण दास तो भारत से अविद्या का नाश करने के लिये प्रभु से अवतार लेने की प्रार्थना करते हैं। कवि प्रभु की प्रार्थना मे भावविभोर हो जाता है—

> प्रभु हो पुनि भू-तल अवतरिए।
> अपने या प्यारे भारत के पुनि दुख दारिद हरिए।
> महा अविद्या राक्षस ने या देसहि बहुत सतायो।
> साहस पुरुषारथ उद्यम धन सब ही निधिन गवायो।
> जो कोउ हित की बात कहत तो कोपै सबही भारी।
> धरम-बहिरमुख मूरख नास्तिक कहि कहि देवें गारी॥[३]

इस प्रकार भारतेन्दु युग सामाजिक जागृति का युग था। तत्कालीन कविया की वाणी मे सुधार के शब्द ही मुखरित होते हैं। युग के माग की पूर्ति आवश्यक थी।

---

१ डा० रामवृक्ष सिंह भारतीय धार्मिक पुनर्जागरण, पृ० ९६।

२ "The undermining of the belief in the superiority of the white race is to be spreaeding Aryasamaj and Theosophical Society"— डा० केसरी नारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा का सास्कृतिक स्रोत, पृ० ४४।

३ श्यामसुन्दर दास (सपादक) राधाकृष्ण ग्रन्थावली, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, १९३०, विनय

रामकृष्ण मिशन आन्दोलन और नवीन सम्बल

रामकृष्ण मिशन की स्थापना सन् १८६६ ई० म हुई। इसके सस्थापक रामकृष्ण के शिष्य स्वामी विवेकानन्द थे। रामकृष्ण परमहस का जन्म बगाल मे हुआ था। अपनी एकान्त साधना के बल पर उन्होने धार्मिक तत्त्वो का ज्ञान प्राप्त कर लिया। आपने त्यागमय जीवन के कलकत्ता के शिक्षित नवयुवको को आकृष्ट कर लिया। बालक नरेन्द्र नाथ दत्त इन्ही नवयुवको मे से एक थे। कालान्तर मे यही स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

स्वामी रामकृष्ण ने धर्म और सेवा के क्षेत्र मे भारत का नये सिरे से पथ प्रदर्शन किया। आपने हिन्दू धर्म के प्राचीन और सर्वमान्य सत्यो को अपने जीवन मे चरितार्थ किया। आपका जीवन तप-त्याग और सेवा का मधुर समन्वय है। दूसरो की सेवा को ही आप सच्चा धर्म समझते थे। इसके लिये आपका कहना था कि वासना और लोभ का परित्याग करना होगा।

स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण के सिद्धान्तो और उपदेशो को ग्रहण कर उनके प्रचार एवं प्रसार के लिए रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। मिशन भारतीय जागरण के इतिहास मे क्रान्ति की आवाज बुलन्द तो नही करता लेकिन नवीन दिशा की ओर देश को जागृत अवश्य करता है। डा० राम चन्द्र मिश्र के शब्दो म "रामकृष्ण मिशन एव थियोसोफिकल सोसायटी के सिद्धान्तो ने देश मे इसाई धर्म के प्रचार को रोका। रामकृष्ण परम हस के सिद्धान्त भारतीय आध्यात्मिक जीवन के सम्पोषक थे[1]।

स्वामी विवेकानन्द एक महान् व्यक्ति थे। १८६३ ई० म उन्होने विश्वधर्म सम्मलन मे भाग लिया और विश्व मे हिन्दू धर्म के गौरव की प्रतिष्ठापना की। विश्वधर्म सम्मेलन के रगमच से आपका यह परिचय भाषण "अमेरिका की बहनो तथा भाइयो, भ्रातृत्व का मधुर सम्बन्ध पल भर मे ही भारतीयता की ओर आकर्षित कर दिया। आपने अमेरिका वालो को भारत मे जाकर भौतिक उन्नति एव सगठन की शिक्षा देने और भारतीयो को पश्चिम म धर्म की शिक्षा देने के लिये आमन्त्रित किया।

आपका व्यक्तित्व बडा ही विशाल था। आपके व्यक्तित्व के सामने अमेरिका का धर्म ज्ञान और गौरव नतमस्तक हो गया। यह बात इसी से स्पष्ट हो जाती है कि स्वामी जी का सम्मान जितना अमेरिका ने किया उतना देश नही कर सका। स्वामी जी सत्य पर पर्दा कभी नहीं डालते थे। किसी बात को कहने मे उनके मन मे हिचक लेश मात्र भी नही थी। विरोध के तुमुल चक्रव्यूह मे आपका स्वर गूजता रहता। अन्त मे विरोधी आप ही आप चारो खाने चित्त हो जाते थे। एक दफा आपने अमेरिका वासियो से कहा कि 'यदि आप जीना चाहते हैं तो ईशु के सिद्धान्तो पर चलें आप ईसाई नही है। आपका धर्म अब सासारिक सुखो का धर्म हो गया है। कैसी विडम्बना। इस सबका परिवर्तन कर दीजिये। आप देव तथा दैत्य की साथ-साथ पूजा नही कर सकते। अन्त म उन्होने एक वाक्य मे मिशनरियों के हिन्दू धर्म पर आक्रमण कर उत्तर दिया। यदि भारत हिन्द महासागर के समस्त कीचड को उठाकर पश्चिम के ऊपर फेक दे तिस पर भी वह आप लोगो के कार्यों का एक शताश भी नही हो सकता।[2] उनके व्यक्तित्व के बारे म उनके ही शब्दो मे सुने, मुझे एक सन्देश देना है। मेरे पास विश्व के प्रति मृदुल बनने के लिये अवकाश नही है मैं सहस्रो बार मरना पसन्द करता हूँ चाहे वह देश हो अथवा विदेश।'[3]

---

१ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० ५५

२ डा० रामबृक्ष सिंह भारतीय धार्मिक पुनर्जागरण, पृ० १२१।

३ वही, पृ० १२१।

स्वामी जी के सिद्धान्तो का प्रभाव भारतीय राष्ट्रीय जागरण के इतिहास मे एक अध्याय के समान है। उन्होंने भारत को जगाने के लिये भारतीयो को ही नही बल्कि पश्चिमी अनुयायियो स भी अपने आचार विचार तथा रहन-सहन म हिन्दू बन जाने का कहा। उनका विश्वास था कि भारतीय बनना ही भारत को जगा सकना सम्भव है। भारतीयो को एकान्त साधना की ओर से मोडकर आपने समाज सेवा करने की माँग की। इस प्रकार पुरातनता के प्रति अधिक मोह रखने वाला भारत का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण परिवर्तित हो राष्ट्रीय धार्मिक सिद्धान्त पर केन्द्रस्थ हो गया। व्यक्तिगत मोक्ष की कामना देश की सेवा के रूप म मुखरित हुआ।

उपर्युक्त धार्मिक सुधारो से देश की निद्रा भग हुई। सदियो से सोया भारत जगा। उसे अपना अस्तित्व समझने का बल मिला। जो भारतीय पाश्चात्य शिक्षा एव सस्कृति से प्रभावित हो भारतीय धम को रूढि का अखाडा समझ रहे थे, उन्ह विश्वास हो गया कि अतीत पुण्य जो उनमे अभी भी अवशेष है—के आधार पर भारतीय जीवन का विकास हो सकता है। भारतेन्दु युग का यह ऋण भुलाया नही जा सकता कि तत्कालीन परिस्थितिया ही नये विकास और नवीन विचारधारा की प्रेरक हैं। इन धार्मिक आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप ही प्राचीन परम्परायें ध्वस्त हुइ और अनेक नये आदर्शों ने जन्म लिया। प्राचीन आदर्श जब नये के साथ मेल न कर सके तो अपने रूप को परिवर्तित कर स्वय ही नवीनता मे मिल गये। तत्कालीन कवियो मे इस भाव की कमी नही है। युग विधायक कलाकार भारतेन्दु ने ही अतीत-गौरव को युगानुरूप प्रस्तुत कर साहित्य को एक नया मोड दिया जिससे एक नवीनधारा ही प्रवाहित हो गई।

भक्ति-धारा

भक्ति धारा का विवेचन अगले अध्यायो मे विस्तार के साथ किया गया है।

सामाजिक जागृति

भारत मुगल शासन के उपरान्त आग्ल महाप्रभुओ के हाथ बिक गया। देश कम्पनी द्वारा शासित होने लगा। देश यूरोप का बाजार बना। भारतवर्ष ईस्ट इण्डिया क० के हाथ मे बहुत दिना तक बधक था। ब्रिटिश सरकार ने उसे छुडा लिया, लेकिन दाम भारत को ही देना पडा। अग्रेजी राज आर्थिक शोषण का चक्रव्यूह था। भारतेन्दु ने इस आर्थिक शोषण को स्पष्ट शब्दो मे चित्रित किया है—

अगरेज राज सुख-साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात यहै अति ख्वारी।[1]

समाज का ढांचा पूर्णत विशृखलित था। जातिभेद का ज्वर समाज पर प्रचड रूप से चढा था। एक दूसरे की बुराई करना ही उनका लक्ष्य था। दृष्टिकोण मे इतनी सकीर्णता आ गई थी। लोग निरन्तर अधोगति की तरफ जा रहे थे। ब्राह्मण अतीत के गौरव के मद मे अन्य जातियो को हेय समझते थे। वे अपने कुल के कारण भारतीय समाज म असन्तोष फैला रहे थे। ब्राह्मणो की विभेद-नीति के कारण सभी निम्न जातियाँ अपने कामो के प्रति उदासीन होती जा रही थी। ब्राह्मण नवीनता के प्रतिद्वन्द्वी थे। वे अपने प्राचीन गुरुत्व और पापाचार के सरक्षण मे व्यस्त थे।[2] बालहत्या और नर

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, पहला खड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ५६८।

१ डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य, अनुसधान प्रकाशन, कानपुर, प्रथम सस्करण, २०२१, पृ० ६३।

बलि तक धर्म-सम्मत मानी जाती थी।[1] रामरत्नदास के शब्दों में देश की सामाजिक दशा का जो चित्रण उपस्थित है, उसमे आँखें डबडबा जाती हैं। यथा—

कलियुग भारत घेर लियो है।
आपुस माहि मेल नहिं दीखत जह देखो तह बैर भयो है।
बेटा बाप भाइन म जोरू खसम अनबोल कियो है॥
धन के कारन कर कपावत लोभ सबन को घेर लियो है॥
धर्म की बात कोई नहिं जानत खान-पान पर ध्यान दियो है॥
छोटी वय मे व्याह करत है आयुष्य को नहिं चेत कियो है॥
ये नहिं जानत क्या करतो है, क्या कारन से जन्म लियो है॥
रामरतन क्या सोच करत है तोको प्रभु ने ज्ञान दियो है॥[2]

समाज खोखला हो गया था। धर्म के नाम पर ब्राह्मण वर्ग पेट पाल रहा था। पेट पालना ही समाज का धर्म हो गया था। द्वेष, ईर्ष्या लाम-व्यभिचार आदि स्वच्छ्न्द विचरण कर रहे थे। समाज मे कुरीतियो का जितना प्रचार था उनकी गणना नही की जा सकती। रीतिकालीन वासना का पुट शृङ्गार की तरफ समाज को अभी भी आकर्षित किये हुए था। लोग कुत्सित शृङ्गार भावना से आत्मविभोर हो उठते थे। मुगल गये तो अंग्रेज कम नही थे। उनकी कमठता म शृगार-साधना का प्रसून चन्द्रमा पर धब्बे की भांति प्रतीत होता था। तत्कालीन आंग्ल देशीय महिला के प्रति निम्नाङ्कित विचार दर्शनीय है—

'यदि अंग्रेज मिजाजी मेम ने तुम्हारे मस्तिष्क मेदिनी म मौजूद मेधा शक्ति शस्य को सर्वथा चट कर सफाचट नही कर दिये हैं तो टुक सोचिए तो कि मदिरा मदान्ध मनुष्य के अतिरिक्त और किसको इस शृङ्गार की सुगन्धि ज्ञात होगी।'[3]

भारतेंदु युग प्राचीनता के आवरण म नवीनता का स्वर देने वाला युग है। अतः इस युग के समस्त कवि समाज-सुधार के प्रति आस्थावान हैं। भारतेन्दु और प्रेमघन तो प्रमुख हैं। अन्य कवियो ने भी इस स्वर को अपनाया और सामाजिक जागृति विषयक कविता लिखकर देश म नवजागरण का सन्देश दिया। इन कवियो के दो दल था। एक दल तो रूढ़िवादी था और दूसरा दल क्रांतिवादी था। रूढ़िवादी कवि उदार थे। उनका उद्देश्य था कि समाज म किसी प्रकार का परिवर्तन सम्भव नही। दूसरा दल उन नवयुवको का दल था जो समाज मे आमूल परिवर्तन की बात सोचता था। भारतेंदु जी इन दोनों दलो से परे थे। वे न तो क्रांतिकारिता ही चाहते थे और न रूढ़िवादिता को प्रश्रय देना चाहते थ। वे दोनो के बीच की कड़ी थे।[4] उनका विचार प्राचीनता के साथ नवीनता के चूल को पकड़ने का था। तभी तो उन्होने दो रगी परिस्थिति का चित्रण बड़े ही कुशल ढग से प्रस्तुत किया है।

भारत मे एहि समय भई है सब कुछ बिनहिं प्रमान हो दुइरगी।
आधे पुराने पुरानहि माने, आधे भए किरिस्तान हो दुइरगी॥

---

१ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ८१।
२ आनन्द कादम्बिनी, जनवरी १६४२, पृ० ५८।
३ आनन्द कादम्बिनी, फाल्गुन १६६४, पृ० १०४।
४ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेंदु और अन्य सहयोगी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, पृ० २३२।

क्या तो गदहा को चना खवावै कि होइ दयानन्द जाय हो दुइ रंगी।
क्या तो पढ़ै वैथी कोठिवलियै कि होइ बरिस्टर धाय हो दुइ रंगी॥
एही से भारत नास भया सब जहाँ तहाँ यही हाल हो दुइ रंगी॥
होउ एक मत भाई सब अब छाड़हु चाल कुचाल हो दुइ रंगी॥[१]

शिक्षा आन्दोलन

आधुनिक भारतीय शिक्षा के विकास का इतिहास भारतेन्दु के आविर्भाव के चार वर्ष बाद सन् १८५४ ई० से प्रारम्भ होता है। इसी वर्ष सर चार्ल्स उड का 'डिस्पैच' प्रकाशित हुआ जिसके अनुसार प्रत्येक प्रेसीडेन्सी मे शिक्षा विभाग की स्थापना हुई और विद्यार्थियो के लिए अग्रेजी और प्रान्तीय भाषाओ को जानना अनिवार्य कर दिया गया। इस आलोच्यकाल म शिक्षा का प्रचार एव आन्दोलन के रूप म हुआ। अग्रेजी शिक्षा के प्रति भारतीय नवयुवक टिडडी दल की भाँति दौड पडे। सेवावृत्ति के मोह के कारण अग्रेजी शिक्षा के प्रचार एव प्रसार का काफी बल मिला। अग्रजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी का प्रचार अविच्छिन्न गति से हो रहा था। अन्य प्रान्तीय भाषाएँ भी उन्नति के रास्ते पर थी। डा० वार्ष्णेय के शब्दो म 'हिन्दी प्रचार आन्दोलन बड़े वेग स फैला।[२] अग्रेजी शिक्षा स दासता की भावना का विकास हो रहा था। नवीन शिक्षा के कारण देश म प्राचीन धर्म सम्बन्धी अभिज्ञता बढने और सांस्कृतिक ह्रास होने के कारण देशभक्तो को मर्मान्तक पीडा होती थी। नव शिक्षित युवक ज्ञान विज्ञान की ओर झुककर विद्योपार्जन कर रहे थे, यह ठीक है, परन्तु विदेशी शिक्षा ने भारत के इन नवयुवको को इतना मोहित कर लिया था कि वे स्वधर्माचारो स उदासीन और विदेशी पद्धतियो के गुलाम बन गये। वे अशिक्षित भारतीयो का उद्धार करने के बजाय उनसे घृणा करने लगे। यह शिक्षा उनके नैतिक जीवन के लिये भी अनुकूल सिद्ध न हुई।[३]

अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से भारतीय समाज म आर्थिक विकास एव शासन व्यवस्था के फल स्वरूप एक क्रान्ति की लहर आ गई। मध्यम वर्ग का जन्म इसी का परिणाम है। डा० वार्ष्णेय ने लिखा है कि सभी प्रकार के परिवर्तन इसी मध्यम वर्ग के कारण हुए[४]। इस वर्ग ने आग्लदेशीय शासन व्यवस्था के कारण पाश्चात्य सभ्यता के अधिक सम्पर्क म आने की चेष्टा की। नवीन विचारो से प्रेरित होकर मध्यमवर्ग ने भारतीय जीवन म अभूतपूर्व क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किये। इसी वर्ग के माध्यम से भारत आधुनिकता की ओर अग्रसर होकर ससार के अन्य देशो से सम्पर्क स्थापित कर सका है।[५]

तत्कालीन हिन्दी कविता पर आग्ल शिक्षा का काफी प्रभाव पडा है। इस प्रभाव के फलस्वरूप कई एक प्रतिनिधि सस्थायें स्थापित हुई जिनके द्वारा अग्रेजी साहित्य और विचार हिन्दी भाषा भाषी प्रदेश म प्रचार पाये। शिक्षा के प्रचार एव प्रसार म जिनकी तत्कालीन समाज म ख्याति है उनका वर्णन नीचे किया जायगा।

---

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ५०० ५०१।
२ डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ९३।
३ वही, पृ० ९३।
४ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ९१।
५ वही, पृ० ८९।

फोटविलियम कालेज

इस कालेज की स्थापना ने भारतीय शिक्षा जगत् में बडा ही सराहनीय काय किया। हिन्दी साहित्य तथा भाषा को नया रूप इसने ही प्रदान किया। इस कालेज में अरबी, फारसी और हिन्दी की अनिवाय रूप से शिक्षा दी जाने लगी। योरोपीय कमचारियों को भारतीय भाषा की तथा इतिहास और दशन की शिक्षा के लिये सरकार ने स्वयं ही बाध्य किया। हिन्दी विभाग के सर्व प्रथम अध्यक्ष डा० गिलक्राइस्ट हुए। इनके द्वारा हिन्दी और उर्दू की पुस्तकों का जनता में विशेष समादर हुआ, साथ ही इन्होंने खडी बोली में पद्य और गद्य की रचना के लिये यथेष्ट प्रोत्साहन दिया। सम्पादन और कोश निर्माण का काय भी कालेज के माध्यम से सम्पन्न हुआ। फलत भारतीय भाषाओं के प्रोत्साहन मे फोर्ट विलियम कालेज द्वारा महत्वपूर्ण काय सम्पन्न हुआ।'[1] युग विधायक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने भी हिन्दी की उन्नति के लिये जी तोड परिश्रम किया। उनका सिद्धान्त वाक्य था—

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ॥[2]

आज भी यही मूल मन्त्र है और शिक्षा विकास पथ पर अग्रसर है।

वुड का शिक्षा पत्र (वुड्स एजुकेशन डिस्पच)

स्वनामधन्य भारतेन्दु के जन्म के चार वष पश्चात् १८५४ ई० में कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के शिक्षा-पत्र ने भारतीय जनता में यूरोपीय ज्ञान के प्रसार के हेतु अनेक निश्चित योजनाएं उपस्थित की। वुड के इस शिक्षा-पत्र ने कम्पनी राज्य के प्रत्येक प्रान्त में सावजनिक शिक्षा का विभाग (पब्लिक इन्स्ट्रक्शन डिपाटमेन्ट) खोलने का प्रस्ताव रखा। इसके अतिरिक्त विश्वविद्यालयों हाई स्कूलो और मिडिल स्कूलो की संख्या बढ़ाने का प्रयास किया गया तथा इन्हें उदारतापूर्वक अनुदान (ग्रान्ट इन एड) देने का वादा किया गया। फलस्वरूप बम्बई कलकत्ता और मद्रास में विश्वविद्यालयों का सगठन काय प्रारम्भ हो गया।

इस प्रकार वतमान शताब्दी में शिक्षा का प्रसार सम्पूण देश में हो गया।

ईसाई मिशन और शिक्षा

भारत में ईसाई प्रचारकों का काय शिक्षा प्रचार में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ है। इन्होंने ईसाई धम के प्रचार हेतु विद्यालय और मुद्रण की व्यवस्था में युगान्तर उपस्थित कर दिये। भारतेन्दु के पूर्व ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ईसाई धम के प्रचारकों को भारत में अपना धर्म और प्रसार करने के लिये अनुमति दे दी थी। फलस्वरूप १९ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के अन्त तक समस्त उत्तरीभारत मे ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपना काय विस्तार कर लिया। जर्मन अंग्रेजी और अमेरिकन प्रकाशन संस्थाएँ ईसाई धम की पुस्तकों का प्रकाशन करने लगी। हिन्दी भाषा भाषी प्रदेश के प्रमुख नगरों में ईसाई धर्म प्रचार के केन्द्र स्थापित हुए और अनेक ईसाई विद्यालय और महाविद्यालय खुल गये। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आलोच्य काल मे शिक्षा की प्रगति के लिये क्रान्तिकारी कदम उठाये गये। ईसाई धम प्रचारकों द्वारा शिक्षा सम्बन्धी प्रयत्न अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। रानी के राज्य में शिक्षा

---

१ डा० सुधीन्द्र हिन्दी कविता में युगान्तर, दिल्ली १९५५ प्रथम सस्करण, पृ० १०।
२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ०७३१।

का प्रचार जितना हुआ उसके हम आज ऋणी हैं, क्योंकि सबकी उन्नति का मूल विद्या ही है। 'और वह श्रीमती के राज्य मे जैसा हुआ वैसा भोज से इधर किसी राज्य म नही हुआ[1]।'

विधवा विवाह समर्थन

सांस्कृतिक जगत् म अभ्युत्थान की चेतना तूफान की भाँति विदेशियो के आगमन से सजग हो गई थी, लेकिन व्यक्तिगत जडता का बधन बद्धमूल होकर समाज के आन्तरिक सतह को जडवत बना दिया था। यही बधन समाज का स्वभाव बन चला था। समाज-कपट, ईर्ष्या-द्वेष, विलास-वासना, भ्रूण हत्या, बाल विवाह, सतीप्रथा और व्यभिचार, आदि अगणित बुराइयो का घर है। समाज इन बुराइयो से जर्जरित हो गया था। चेतन मस्तिष्क उद्धार का मार्ग ढूँढ रहा था। शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दो म—'सामाजिक जीवन मे पौराणिक स्वप्न चलते रहे, राजनीतिक जीवन मे ऐतिहासिक सघर्ष। या कहे कि जीवन बदला था किन्तु मरण राजनीति द्वारा परिवर्तन के पृष्ठ खोज रहा था।' समाज सुधार के प्रवेश द्वार पर था। उसे इस सुधार की क्रान्ति म अनपेक्षित वास्तविकता का सामना करना पडा।

१६ वी शताब्दी मे धार्मिक पुनर्जागरण का इतिहास सामाजिक बुराइयो की तरफ दृष्टिपात करता है। सुधार की लहर सामजस्य विधायिनी बुद्धि के व्यायाम म तूफान सा ऊधम मचा देती है। प्राचीनता के प्रति तिरस्कार की भावना और नवीनता के प्रति सत्कार की भावना का बीजारोपण इसी सधिकाल म होता है। सामाजिक सुधारो के प्रति आयसमाज का काय स्तुत्य है।

विधवा विवाह को पक्का समर्थन तो आर्यसमाज ने ही किया। यो तो तत्कालीन सामाजिक जगत् म जितने भी सुधारवादी आन्दोलन हुए उन सभी आन्दोलनो का प्रमुख विषय विधवा विवाह का प्रचार था प्राथना समाज के प्रमुख सिद्धान्तो मे विधवा का प्रचार था।

विधवाओ की विकट समस्या थी। लाड बटिक ने सती प्रथा पर कानूनी रोक लगा दी जिससे देश म विधवाओ की अपार बढती हुई सख्या कलक सदृश प्रतीत होने लगी। यह सख्या पहले अधिक नही थी। १६ वी सदी के समाज-सुधारक विधवा विवाह के लिये प्रयत्न करने लगे। फलस्वरूप देश का बुद्धिजीवी वग इसे १८५६ ई० म वैध घोषित कर दिया। फिर क्या था ? देश मे विधवाओ के लिये अनेक सस्थाओ की स्थापना हुई। बढता हुआ कलक छुटा। कलक की कालिमा धुल गई। समाज मे उन्हें आदर मिला।

इस युग के कवि और लेखक समाज की इस दुबलता को मिटाने के लिये अपनी लेखनी और वाणी द्वारा प्रबल प्रेरणा प्रस्तुत करते हैं। उनके विचारो मे विधवा विवाह का समथन प्राप्त है। भारतेन्दु और प्रेमघन की वाणी म सामाजिक रूढि के प्रति विद्रोह की भावना परिलक्षित होती है। भारतेन्दु ने स्वामी जी की प्रशसा मे जो लिखा उससे विधवा विवाह को समथन प्राप्त होता है—

> दयानन्द हैं ब्रह्मचारी इन उत्तम एक विचारी
> देशोन्नति के कारण सभा बहु प्रचारी है।
> पूव वद को पसारो मिथ्या पुराण को निकारो
> व्याह विधवा को प्रचार्यो ऐस महत्त धर्माधिकारी हैं ॥[3]

---

१ कविवचन सुधा, २३ अगस्त, १८८६ ई०, पृ० ५।
२ शान्तिप्रिय द्विवेदी युग और साहित्य, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, १६४१, पृ० ५५।
३ भारत दुर्दशा, प्रवत्तक स०३, न० ८।

प्रतापनारायण मिश्र सामाजिक मामलो के सम्बन्ध म बहुत ही उग्र तथा स्वच्छ थे । आप भी विधवा विवाह के समर्थक थे । आपका विचार था कि विधावाओ से समाज म व्यभिचार बढता है, जिसका उत्तरदायित्व समाज पर है, उन्ही के शब्दो म— पाच बरस की विधवा का यौवन काल मे व्यभिचार एव भ्रूण हत्या टुकुर टुकुर देखते रहना, वरच छिपाने का यत्न करना, पर विधवा विवाह का नाम लेने वालो से मुँह बिचकाना यदि भलमसी है, तो ऐसी भलमसी को दूर ही से नमस्कार है[1] ।

भारतेन्दु युग के अम्बिकान्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, ठा० जगमोहन सिंह, लाला श्रीनिवास आदि ने सामाजिक मामलो मे अधिक रुचि नही ली । फलस्वरूप इनकी वाणी से विधवा विधवा को समर्थन प्राप्त नही हो सका । इनका रचनाओ म स्वान्त सुखाय की भावना प्रबल है ।

बाल विवाह, बेमेल विवाह, आदि का विरोध

अग्रेजो के आगमन से पूर्व का भारतीय समाज रूढिबद्ध एव अशिक्षित था । अशिक्षा, कुरीतियाँ और कुसस्कार के कारण समाज मे बाल विवाह बेमेल विवाह और बहु विवाह प्रचलित थे । बाल विवाह से समाज का नैतिक स्तर गिरता जा रहा था । नैतिक उत्थान से ही समाज का विकृत मस्तिक चेतन शील हो सकता था ।

तत्कालीन कवियो और लेखको ने इन कुरीतियो के विरोध म बडे ही ओजस्वी ढग से कहा है । धार्मिक पुनर्जागरण सवप्रथम इन्हा कुरीतियो को परिलक्षित कर अपने सिद्धान्तो का निर्माण करता है । आयसमाजी कवियो ने अपने उद्देश्य मे शीर्षस्थ स्थान बाल विवाह विरोध को ही दिया है । उनका उद्देश्य प्रस्तुत कविता म स्पष्ट है—

बाल विवाह कुदान अडबड पूजा दहेज
स्त्री शिक्षा दान व्याख्या आय समाज की ।
मनुष्य को उचित सब आपस मे मेल राखें
गृहस्थी को काय सब वेदानुकूल करिबो ।
मुरलीधर सुचित ह्वै कवित्त का बनाय कहै
हम आपने को उचित देश उन्नति को करिबो ।[2]

बाल विवाह का विरोध ही नही बल्कि नीचे के पद मे उसके कुप्रभाव का भी वणन प्रस्तुत है—

बालविवाह जब कियो तज्यो सकाम सकल विधि
जार पथ चित दियो तिया शुचि लाग लेन बुधि ।
भये सुमूरख सकल विवि तियमय लागे जग लखन ,
सब मर्यादा धम तजि लगे मातु पितु से लखन ।
याते करिय विचार बाल-ब्याह नहिं कीजिए ,
वय विद्या अनुहारि पूण अवस्था ब्याहिए ।[3]

इसी प्रकार कवियो ने भी बाल विवाह का विरोध किया है । बालकृष्ण भट्ट ने लिखा है कि 'दुहिता के जन्म दिवस के पाचवें दिन विवाह कर दिया करो ऐसा न हो कि कन्या कही रजस्वला हो जाय नही तो धम नष्ट हो जायगा और इक्कीस पुरखा नरक म पडे-पडे चिल्लाया करेंगे ।[4]

---

१ प्रतापनारायण मिश्र 'भलमसी' ब्राह्मण खण्ड ६, सख्या २ ।
२ शुभचिन्तक, खड १ न० १ ।
३ वही, खड १, न० ।
४ हिन्दी प्रदीप, मई १८७८ ई०, पृ० ४ ।

प्रेमघन जी बाल विवाह का विरोध इस प्रकार करते हैं— ऐसी अवस्था में ऐसी निर्दयता, कठोरता और अन्याय के साथ जो विवाह बाल्यावस्था में हो किया जाता है, यद्यपि उससे जो जो आपत्तियाँ आती हैं, वर्णन उनका सर्वथा असम्भव है, पर तो भी यह तो प्रसिद्ध है कि ऐसे ब्याह से आपस की प्रीति और मेल कैसे उत्पन्न होने की सम्भावना हो सकती है। अन्याय प्रकृति का प्रतिकूल होना हर अवस्था में दुःख का विषय है, किन्तु इस स्थान पर धर्माधर्म तथा शास्त्राज्ञा का कुछ भी विचार नहीं करते।[1]

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जनता को समझाते हुये बाल विवाह के प्रति अपना विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं। 'लड़कों को छोटेपन में ब्याह करके उनका बल, वीर्य, आयुष्य, सब मत घटाइये। आप उनके माँ बाप हैं या शत्रु, हैं। वीर्य उनके शरीर में पुष्ट होने दीजिये, विद्या कुछ पढ़ लेने दीजिये, नोन, तेल, लकड़ी की फिक्र करने की बुद्धि सीख लने दीजिये तब उनका पैर काठ में डालिये'[2]।

भारतेन्दु युग के लेखक और कवि सभी समाज के प्रति जागरूक थे। उनका चेतन मस्तिष्क सामाजिक रूढ़ियों एवं कुरीतियों के प्रति प्रबुद्ध था। फलस्वरूप उन्होंने सामाजिक अभ्युत्थान के प्रति सजग होकर अपनी वाणी से समाज को प्रेरणा दी।

लोकदृष्टि का विस्तार

भारतेन्दु युग लोकदृष्टि के विस्तार का युग था। कवियों का दृष्टिकोण स्वान्तः सुखाय न होकर बल्कि बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय था। सामाजिक मानसस्तर में अभ्युत्थान की मधुमय वेला बहोरे ले रही थी। साहित्य, कला, समाज, राजनीति, शिक्षा आदि में नवोत्थान के जागरण का स्वर सुनाई पड़ रहा था। शिक्षा के सर्वांगीण विकास के निमित्त राजनीति के रंगमंच से जो आदेश हुआ या जो भी प्रयास सम्भव थे हुए। अंग्रेजी शिक्षा से देश में अतीत के गौरव के प्रति नवजवानों का मस्तिष्क उद्वेलित हो उठा।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से ही उत्कर्ष और उन्नति के प्रभात पवन के आघात से भारत के सभी भाषायी क्षेत्र अपनी अपनी अस्मिता लेकर जागृत हो गये थे। काश्मीर से कन्या कुमारी तक और अटक से कटक तक नवजागरण का सूर्य किरणें विकीर्ण कर रहा था। उत्तर भारत में वह भारतेन्दु के रूप में अपनी प्रतिभा की प्रखर ज्योति फैला रहा था तो दक्षिण में नर्मदा शंकर के रूप में, शंकर का ताण्डव नृत्य रचा रहा था।

कवियों और लेखकों ने नवजागरण के डंका को स्वतः बजने की प्रवृत्ति दी। वे देश की व्यक्तिगत कुरीतियों को समाज के स्तर पर ले जाकर उससे निवारण का रास्ता ढूंढने लगे। इसी से वे शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व सफलता के आकांक्षी थे। उन्होंने शिक्षा प्रसार का स्वागत किया और उनके विनाशकारी प्रभाव से बचने की चेतावनी दी।[3]

भारतेन्दुकालीन कवियों और लेखकों का आगमन लोकदृष्टि के अग्रदूत के रूप में हुआ। यदि ऐसा न होता तो भारत के कोने-कोने में एक ही दफा जागरण का स्वर नहीं गूंजता और यदि गूंजता

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय प्रेमघन सर्वस्व, द्वितीय भाग, विधवा विपत्ति वर्षा, प्रयाग, प्रथम संस्करण, २०१७ वि०, पृ० १८७

२ भारतेन्दु ग्रन्थावली तीसरा खंड, काशी २०१० वि०, पृ० १६१।

३ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय बीसवीं शताब्दी आधुनिक साहित्य अधूरे सन्दर्भ, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९६६, पृ० १६४।

भी तो उसका नियामक कोई एक व्यक्ति होता। यहां तो एक ही आवाज का बुलन्द करने वाले बंगाल से बंकिम, महाराष्ट्र से चिपलूणकर, गुजरात से नमदा शंकर और मध्य देश से भारतेन्दु आये। अत देश मे साहित्य के साथ ही समाज की उन्नति लोक दृष्टि के विस्तार के सम्मुख अंग्रेजी राज्य और भाषा के सम्पर्क से हुआ। कवि और लेखकों का चेतन मस्तिष्क समाज के अन्तस्तल को पहचानता था। डा० वार्ष्णेय के शब्दो मे "भारतेंदुकालीन कवियो ने हथेली को अनुवीक्षण यत्र से देखा और चक्र त्रिशूल मत्स्य आदि की परीक्षा की।"[१]

आर्थिक प्रगति

अंग्रेजी राज भारत के घोर आर्थिक शोषण का ही दूसरा पार्श्व है।[२] अपन राजत्वकाल में अंग्रेजो ने घरेलू उद्योग धंधो को नष्ट किया। प्रतिदिन करो की वृद्धि होती रही। देशी रियासतो को लूटा खसोटा गया। अंग्रेज अपने देश की आर्थिक उन्नति म यहा स लूट के माल को पचाते थे। देश उनका बाजार बन गया था। उनकी व्यापारिक नीति लूट की नीति थी। भारतीय विद्रोह के प्रमुख कारणो मे अंग्रेजो की अर्थ नीति भी थी। भारतेंदु अपने देश से धन जाने के कारण बहुत ही दुखी प्रतीत होते हैं—

अंग्रेज राज सुखसाज सजे सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात यहै अति ख्वारी॥[३]

भारतीय धन के विदेश चले जाने की कहानी एक अंग्रेज लेखक न इस प्रकार कही है— 'हमारी पद्धति एक स्पंज के समान है, जो गंगा तट से सब अच्छी चीजो का चूस कर टेम्सतट पर ला निचोडती है।'[४]

अंग्रेजो की अर्थ नीति भारत के प्रति उनके नैतिक पतन का इतिहास प्रस्तुत करती है। उन्होंने भारत के प्रति बहुत ही बेरहमी का रुख अख्तियार किया। कहा जाता है कि तत्कालीन जुलाहा के अंगूठे तक काट लिये जाते थे।

भारतेंदु युग के कवि जिस प्रकार राजनीतिक और सामाजिक आवश्यकताओ की ओर आकर्षित हुए उसी प्रकार आर्थिक उन्नति के लिये भी भरपूर चेष्टा की। आर्थिक पराधीनता स देश को मुक्त करने के लिये उन लोगो न सफल प्रयास किया। डा० केसरी नारायण शुक्ल के शब्दो मे— 'इस समय के प्रमुख कवियो ने देश की आर्थिक पराधीनता दूर करने और इस हेतु देशवासियो को जगाने के लिये कविता का सम्बन्ध जीवन की वास्तविकता से जोड दिया।[५]

---

१ वही, पृष्ठ २०२।

२ डा० सुधीन्द्र हिन्दी कविता मे युगान्तर, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथम सस्करण, १९५५ ई०, पृ० ३७।

३ ब्रज रत्नदास (सपादक) भारतेंदु ग्रन्थावली, पहला खण्ड नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ४०६।

४ डा० सुधीन्द्र हिन्दी कविता मे युगान्तर, दिल्ली पृ० ३७।

५ डा० केसरी नारायण शुक्ल आधुनिक काव्य धारा, वाराणसी, पृ० ३६।

देश म विदेशी मान की होड सी लग गई थी। लोग विदेशी मलमल और मारकीन से अपने को सुसज्जित करने मे अपना गौरव समझते थे। भारतेन्दु बाबू इनकी आलोचना करते हैं और देशी वस्तुआ के प्रयोग के लिय भारतवासिया से प्राथना करते हैं—

मारकीन मलमल बिना चलत कछू नही काम,
परदेशी जुलहान के मानहु भए गुलाम।[१]
बढन चहत आगे सबै जग की जेता जाति,
बलबुद्धि ज्ञान विज्ञान म तुम कह अबहूँ राति[२]।
परदेशी की बुद्धि अरु वरि वस्तुन की आस,
वरबस ह्वै कब लौ कहौं रहिहौ तुम ह्वै दास[३]।
। कामखिवाव सिताब सा अब नहिं सरिहै मीत।
- तासो उठहु सिताब अब छाडि सकल भयभीत[४]।

अम्बिकादत्त व्यास भी गौराग महाप्रभुओ के प्रभाव मे आए नवयुवको पर तीखा व्यग्य करते हैं। ऐसे नवयुवक ढाका के मलमल पर नही बल्कि मैनचेस्टर और लिवरपूल के मलमल पर ही बाग-बाग होते हैं—

पहिरि कोट पतलून बूट अरु हेट धारि सिर
मालू चरबी नरवी लवंडर को लगाई फिर
निज माइन के रचे बसन भूषन नहिं भावत
मैनचेस्टर अरु लिवरपूल से लादि मगावत।[५]

अग्रजा का शोषण नीति के विषय म प्रतापनारायण मिश्र न लिखा है कि—जिम भारत लक्ष्मी को मुसलमान सात सौ वर्ष मे अनक उत्पात करके भी न ले सके उसे उन्होन सौ वष म धीरे धीरे ऐस मजे के साथ उडा लिया कि हँसते खेलते विलायत जा पहुँची।' और आगे भी लिखा है कि—

- सबसु लिय जात अग्रेज हम केवल लेक्चर के तेज।
श्रम बिन बात का करती है कहूँ टटवन गाजै टरती हैं[६]।

देश दु खी था। अकाल और महगी की महामारी स देश विकल हो उठा था। कविया की वाणी देशवासिया को जागृति के सन्देश सुना रही थी। वे आर्थिक दुव्यवस्था से क्षुब्ध हो उठे थे। व देश की इस दयनीय दशा का उत्तरदायित्व सरकार के मत्थे मढ़ते थे। सचमुच सरकार दोषी थी। हरिश्चन्द्र, प्रेमघन, अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, प्रताप नारायण मिश्र आदि ने भारतीय दुदशा के करुण चित्र खींचे हैं। प्रताप नारायण मिश्र की आँखें तो जलपूरित हो जाती हैं। उन्हें होली, मुहर्रम सी प्रतीत होन लगती है। उनकी रचनाओं म भारतीय कृषक का जीता जागता चित्र उभर आया है—

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, पृ० ७३५।
२ वही, पृ० ७३८।
३ वही पृ० ७३८।
४ वही, पृ० ७३८।
५ अम्बिकादत्त व्यास मन की उमग—भारत धम
६ ब्राह्मण खण्ड ४, सख्या २ (द)।

महगी और टिक्स के मारे सगरी वस्तु अमोली है,
कौन भाँति त्यौहार मनैये कैसे कहिये होली है।
सब धन ढायो जात विलायत रह्यो दलिद्दर छाई।
अन्न वस्त्र कह सब जब तरस होरी कहाँ सोहाई।
भूखे मरत किसान तहूँ पर कर हित उपट न थोरी है।
गारी देत दुष्ट चपरासी लकति बिचारी छोरी है।[1]

इस तरह का नग्न वणन भारतीय त्रियुवका के नस-नस के लहू को खौला देता है। आर्थिक शोषण का इससे भी करुण चित्र क्या सम्भव है।

भारतेंदु युग के कवियो का ध्यान अमीर और गरीब दोनो की तरफ अपनी समन्वयवादी प्रतिभा के पुष्प की सुरभि बिखेरते जाता है। उनकी कलम से अमीर और गरीब दोनो के करुण चित्र उभरे हैं। अमीर यदि राजनीतिक शिकजा स अंग्रेजो की अथनीति के चगुल मे है तो गरीब उनकी दुष्टता से अपन जीवन की करुण कहानी लिखने को प्रेरित करता है। दोनों अंग्रेजा की अर्थनीति से पागल और बेकरार है। तत्कालीन कवियो की वाणी म अथ नीति की जो आलोचना हुई है उससे समग्र देश जाग उठा। आज उसी का फल और फूल हम उपलब्ध है। डा० केसरीनारायण शुक्ल के शब्दा मे—'आज की आर्थिक चेतना का बहुत कुछ श्रेय भारतेंदु युग के कवियो को भी है।'[2]

प्रकृति विषयक दृष्टि

मानव एक सजग चिन्तनशील प्राणी है। उसका प्रकृति के साथ चिरातीत सम्बन्ध है। उसी के कारुणिक क्रोण मे वह अबाध गति से, उससे सघष करते हुए उससे नूतन भावो की प्रेरणा लेते हुए अपने जीवन की सरसता और सतत गति से विकास करता चला आ रहा है। प्रकृति उसके जीवन और विचारो म सस्कार और परिष्कार लायी। वह उसी के नित नवीन मोड पर प्रभाव प्रसूना का सग्रह करता है। प्रकृति उसे राज नई सीख पडती है। नूतन भावनाओ के साथ प्रकृति की नूतनाभा गजब की छवि ढा देती है।

परिवर्तन जगत् का शाश्वत नियम है। वह प्रतिपल परिवर्तित होता है। चिन्तनशील प्राणी होने के नाते कवि युग के साथ, समाज के साथ अपने पथ म अग्रसर होता है। युग की बदलती हुई परिस्थिति और मनोदशा के अनुकूल अपन आप म परिवर्तन भी करता जाता है। युग के स्पर्श तथा सवेदन उसे आन्दोलित करते रहते हैं—वह बच नही पाता भावुक हृदय युग की छाप लिये बढता ही जाता है।

भारतेंदु युग परिवतन का प्रवेश द्वार है। इस युग के पृष्ठ पर काव्य के प्रकृति चित्रण की परम्परा मुक्त रीतिकालीन श्रृंगारपरक धारा थी।[1] भारतेन्दु तथा उनके मण्डल के कवि इस धारा के प्रवाह से कैसे बच सकते थे। भारतेंदु जी तो दरबारी सस्कारा म पले थे ही। अत उनका बचना तो नितान्त असम्भव था।

भारतेंदु पूर्व प्रकृति भौतिक जीवन की उपयोगिता के साधन प्रस्तुत करती थी। रीतिकालीन प्रकृति की वसन सज्जा से कवि अपने आश्रयदाताओ के मन को लुभाता था, उससे वह प्रेरणा ग्रहण

---

१ प्रताप नारायण मिश्र लोकोक्ति शतक, १८६६ ई०, पृ० २।
१ डा० केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा, पृ० ५०।
२ रामगोपाल सिंह भारतेन्दु साहित्य, पृ० २५१।

नही करता था, बल्कि अश्लील पदो की रचना कर रोटी का प्रश्न हल करता था। रोटी का प्रश्न प्रमुख था। कविता व्यवसायिक थी।

भारतेन्दु युग आगमन की सूचना क्रान्ति से देता है। उसके हर दृष्टिकोण और प्रवृत्ति मे क्रान्ति का स्वर गूजता है। भारतेन्दु और उनके सहयोगी प्रकृति चित्रण की गति परम्परा पर चलते हुए उन्होंने प्रकृति के नवीन चित्रण को भी प्रस्तुत किये हैं। प्रकृति चित्रण म नई चेतनापरक दृष्टि की सूझबूझ कम मिलती है परन्तु पुरानी परिपाटी के चित्रण का पलडा भारी है।

अध्ययन की दृष्टि से हम दोना का विश्लेपण अलग अलग ही प्रस्तुत करेंगे।

परम्परामुक्त प्रकृति चित्रण

भारतेन्दुयुगीन कवियो का परम्परामुक्त प्रकृति चित्रण उद्दीपनकारी पाया जाता है। भारतेन्दु जी तो प्रकृति के उद्दीपन रूप को प्रस्तुत करने मे सिद्धहस्त हैं। प्रकृति उनके नायक-नायिका कृष्ण राधा के सयोग वियोग प्रसूत रागविरागो की चिरसगिनी है। चन्द्रावली नाटिका मे यथा चन्द्रावली कृष्ण वियोग-वन के वृक्षा एव लताओ से अपने प्रियतम के बारे मे पूछती है। कवि के इस उभरते हुए उद्दीपन रूप को देख कर ही सहज ही ध्यान जायसी के नागमती, तुलसी की राम और सूर की गोपियो की तरफ चला जाता है—

अहो अहो बन के रूख, कहूँ देख्यो पिय प्यारो।
मेरो हाथ छुडाय, कहो वह कितै सिधारो।[१]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि उनकी रचनाओ म प्रकृति वर्णनो का अभाव बराबर पाया जाता है। वस्तु-वर्णन मे उन्होने मनुष्यो की कृति ही की ओर अधिक रुचि दिखायी है।[२] उन्होंने गगा के वर्णन का उदाहरण प्रेषित किया है—

नव उज्वल जलधार हार हीरक सी सोहती।
बिच बिच छहरत बूंद मध्य मुक्ता मनु पोहति।
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इति आवत।
जिमि नरगन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत॥[३]

प्रतापनारायण मिश्र आदि मण्डल के सभी कवियो म प्रकृति का चित्रण कम पाया जाता है। प्रकृति चित्रण देश भक्ति के भाव स मनोहर तथा सजीव नही हो सके हैं। मिश्र जी प्रकृति वणन करते करते ईश्वर की ओर उन्मुख हो जाते हैं। परिणामस्वरूप भक्तिभावना का पक्ष प्रबल हो जाता है और प्रकृतिवणन फीका पड जाता है—

बरसाऋतु सबको सुखकारी, प्रकटति महिमा नाथ तिहारी।
नाचि उठ बन मोर मुदित मन लखि उमड़े घन गगन मझारी।
चहुदिशि तब वैभव बिलोकि कै, ज्यो सज्जन अति होत सुखारी।
बरसत नीर उमग भरि सरिता, मिलन चलहिं सागर कह सारी।
तब करुणा बल पाव हृप भरि ज्यो तब शरणहोत सुविचारी॥[४]

---

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र चन्द्रावली नाटिका, सपादक, व्यथित हृदय, स्टूडेण्ट्स फ्रेंड्स, प्रयाग, प्रथम सस्करण १९५७, पृ० २७।

२ आचाय रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि, भाग २, वाराणसी, पृ० १९८।

३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, पहला खण्ड, काशी, पृ० ५९५।

४ नारायण प्रसाद अरोडा (सपादक) प्रताप लहरी, १९४९ ई०, पृ० १५०-५१।

प्रकृति के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण

भारतेन्दु युग के जन-जीवन की नई चेतना प्रकति चित्रण के प्रति भी नवीन दृष्टि का आह्वान कर रही थी। मानव जीवन के साथ प्रकति की उपादेयता ही प्रकति चित्रण का प्रगतिशील दृष्टिकोण था। अब प्रकति नायक-नायिका के सयोग एव वियोग जन्य क्रीडा-कल्पना के कारागार स मुक्त हो जीवन के विशाल एव विस्तीर्ण क्षेत्र का शिलान्यास कर रही थी। प्रकति के प्रति यह नया दृष्टिकोण आलम्बन और प्रकति से उपमाए दे जीवन की तत्कालीन यथाथ का चित्र प्रस्तुत करने म पाया जाता है। आलम्बन के रूप मे कवि यमुना छवि म पाठक को मन्त्रमुग्ध कर देता है—

तरनि तनूजा तट तमाल,तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सो जल परसन हित मनहुँ सुहाए।।[1]

आगे कवि ने प्रकति के माध्यम से देश की तत्कालीन दुदशा का बडा ही कारुणिक चित्र प्रस्तुत किया है—

भारत म मची है होरी।
एक ओर भाग अभाग एक दिसि होय रही झकझोरी।
अपनी अपनी जय सब चाहत होड परो दुहु ओरी।।
दुन्द सखि बहुत बढोरी।
धूर उडत सोइ अबिर उडावत सबको नयन भरोरी।
दीन दसा असुवन पिचकारिन सब खिलार भिजयो री।
भीजि रहे भूमि लटोरी।।
भइ पतझार तत्व कहुँ नाही सोइ वसन्त प्रगटो री।
पीरे मुख भई प्रजा दीन ह्वै सोइ फूली सरसो री।
सिसिर को अन्त भयो री।[2]

इस प्रकार भारतेन्दुयुगीन प्रकति-चित्रण स्वच्छन्द रूप से नही हो पाया है। यदि एक तरफ इस वणन म कवि को देशभक्ति या ईश्वर का दबाव मिला है तो दूसरी तरफ मानवीय यथार्थ का दिग्दशन कराने म समस्त हिन्दी साहित्य का केन्द्रस्थल भी है। प्रकति के प्रति प्रगतिवादी दृष्टिकोण की झलक हमे इसी युग मे मिलती है।

---

१ श्री व्यथित हृदय (सपादक) चन्द्रावली नाटिका, स्टूडेण्टस फ्रेण्डस, प्रयाग, १९५७, पृ० ५८।
२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ४०५।

अध्याय ४

भारतेन्दुकालीन भक्तिकाव्य-धाराएं और उनकी विविध विशेषताएं

विषय प्रवेश

भाव जगत् म विकार प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व कालगत परिस्थितिया पर है। विश्व के विशाल फलक पर महान् से महान् परिवतन एव क्रातिया के मूल म परिस्थितिया ही हैं। साहित्य एव अन्य ललित कलाआ के परिवतन भी इन्ही परिस्थितियो से अनुप्रेरित रहे हैं। परिस्थितियाँ परिवर्तन की जननी है।

उन्नीसवी शताब्दी का उत्तराद्ध भारतेन्दु युग है। इस अद्धशताब्दी का प्रतिनिधित्व भारतेन्दु जी ही करते हैं और उनकी मृत्यु के बाद भी युग चितन पर उनकी छाप अमिट बनी रहती है। इस युगद्दु की पृष्ठभूमि मे रीतिकाल का रसविलास विमुग्धकारी वातावरण को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। रीतिकाल की सकरी गली म साकी-सुरा और सौन्दय का स्वर ही प्रबल था। भारतेन्दु ने शताब्दियो से इस बहते प्रवाह को एक मोड दिया। श्रृङ्गार की प्रबल धारा के अवरोध म तत्कालीन वीर कवि भूषण की लेखनी भी समर्थ नही हो पायी, कि तु सरस्वती के वरद पुत्र भारतेन्दु न कविता के प्रवाह को रोक ही नही दिया बल्कि एक नया रास्ता दिखलाया। । डा० श्यामसु दरदास ने लिखा है कि 'रीतिकविता की शताब्दिया से चली आती हुई गन्दी गली से निकल शुद्ध वायु म विचरण करने का श्रेय हरिश्चन्द्र को पूरा-पूरा है।'[1] फिर भी रीतिकालीन कविता के प्रवाह की स्पष्ट छाप आलोच्य काल की भक्तिकाय धाराआ पर परिलक्षित होती है। वतमान काल अपने भूतकाल का पोषक और प्रादुर्भूत होता है।

भारतेन्दु काल ने रीतिकालीन वातावरण का पोषण तो नही किया लेकिन वह उसस अनुप्रेरित अवश्य ही रहा। साहित्य जगत् म रीतिकालीन भाव जगत् का प्रारूप कवि मानस को प्रेरित करता रहा। अत रीतिकाल के प्रभाव से सवथा अछूता रहना, कोरी कल्पना है।

भारतेन्दु युग का भाव जगत् अपने पिछले तीन युगा-वीरगाथा काल, भक्तिकाल एव रीति काल से अनुप्रेरित रहा। धार्मिक परिस्थितियाँ मानव मस्तिष्क के चितन चक्र पर आध्यात्मिक प्रभाव डालती है। इस युग की स्थिति म धार्मिक प्रभाव का स्वतन्त्र रूप प्राय स्पष्ट नहा होता है। पूव की हो भाति विष्णु शिव, देवी, देवताआ आदि का भक्ति के दशन मिलते हैं। अवतारवाद, मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड का परम्परागत रूप ही दृष्टिगोचर होता है। नवधा भक्ति के आधार पर उपास्यदेव के प्रति श्रवण, कीर्तन आदि का भावना शुद्ध हृदय से पाई जाता है। धार्मिक जगत् की भावनाआ मे नवीनता ता नही दिखाई पडती लेकिन इङ्गित धार्मिक प्रवृत्तियो मे सत्यता का समन्वय सराहनीय है।

काव्य जगत् कबीर सूर, तुलसी आदि से प्रभावित है। घनानन्द, देव, बिहारी, पद्माकर से भी प्रभाव ग्रहण करने मे सकोच नही था। परिणामस्वरूप रीतिकाल और भक्तिकाल की समन्वित धारा ही भारतेन्दु युगीन कविता का प्रेरणा स्रोत है।

---

१ श्यामसुन्दर दास हिन्दी साहित्य, इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग, छठा सस्करण, २००६ वि०, पृ० २८० ।

भारतेन्दु जी स्वय वैष्णव थे । लेकिन अन्य धर्मों से उन्हें घृणा नही थी । उनका माग था प्रेम का, सच्चाई का और सच्चरित्रता का । अत युग की धमनिया मे इसी त्रिवेणी का पुनीत जल प्रवाहित होता है । धार्मिक उदारता का समावेश प्राचीनकाल से अधिक था । जनता अधविश्वास से शंकित हो चली थी । धम का बाह्य आडम्बर यद्यपि पूर्णरूपेण लुप्त नही हो गया था फिर भी धार्मिक कट्टरता में मनुष्यता दखल देने लगी थी । अतएव स्पष्ट रूप से स्वीकारा जा सकता है कि तत्कालीन काव्य जगद् पर भक्तिकालीन परम्परा का अधिक प्रभाव था ।

कविता के कमनीय नगर मे कवि की भाव पखुडिया प्रस्फुटित होती हैं । वह उस नगरी से भाव नही ग्रहण करता बल्कि प्रभाव ग्रहण करता है । प्रभाव ग्रहण करना ही तो कवि-कम को उत्कप प्रदान करता है । डा० किशोरी लाल गुप्त के शब्दो में—'परन्तु भाव-ग्रहण एक बात है और प्रभाव-ग्रहण बिलकुल दूसरी बात ।'[1] यदि शरीर हवा, पानी मिट्टी, अन्न आदि म सजावनी शक्ति प्राप्त करता है, तो मस्तिष्क प्रभाव ग्रहण कर मानसिक जगत् को चितन शक्ति प्रदान करता है । भारतेन्दु युग प्रभाव ग्रहण करने मे हिचक नहीं रखता । पूववर्ती कवि इस युग के प्रेरक रहे हैं । डा० किशोरीलाल गुप्त ने भारतेन्दु जी के बारे मे लिखा है कि अन्य कवियो का प्रभाव ग्रहण करना उन्हें अस्वीकार नही था, प्रत्युत वे अपने पूववर्ती कविया की रचनाओ से पूण लाभ उठाने के पक्षपाती थे ।'[2]

निर्विवाद रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि भारतेन्दु युग परम्परागत भक्ति एव रीति की पद्धतियो में अपने को लगाये रखना समय के साथ खिलवाड करना समझता था । इन कविया ने समझ लिया था कि रीतिकाल अपने मोहजाल म युग चेतना को आवद्ध नही कर सकता है अत नवीनता का सन्देश ही मुखरित होता रहा । हा, युग प्रभाव से वचित रहना अस्वाभाविक सा रहता है । क्याकि प्राचीन प्रवृत्ति ही तो नवीन प्रवृत्ति की भित्ति का आधार है । अत भारतेन्दु एव उनके मडल में प्राचीन परम्परा-पालन का आग्रह है । डा० रामचद्र मिश्र ने लिखा है कि 'वह पूर्णरूपेण अपने को परम्परागत साहित्य से दूर न ले जा सके, यह इसलिये अस्वाभाविक न था कि एक साथ ही किसी प्रवृत्ति को नही बदला जा सकता । यह साहित्य का अमर सत्य है । क्याकि साहित्य का प्रवाह अविच्छेद होता है ।'[3]

'उस सधिकाल के कवियो म ध्यान देने की बात यह है कि यह प्राचीन तथा नवीन का योग इस ढग से करते थे कि कही जोड नही जान पडता था, उनके हाथ म पडकर नवीन भी प्राचीन का ही एक विकसित रूप जान पडता था ।'[4]

उपर्युक्त तथ्यो से यह स्पष्ट है कि भारतेन्दु युगीन काव्य-साहित्य प्राचीन एव नवीन का अपूव सामजस्य था । प्राचीन परम्परा-पालन मे भारतेन्दु-युग म हम भारतेन्दु और समकालीन कवियो म

---

१ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके पूववर्ती कवि नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वप ५५, २००७, पृ० २१ ।

२ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके पूववर्ती कवि नागरी प्रचारिणी पत्रिका वप ५५ सं० २००७, पृ० २१ ।

३ डा० रामचद्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूव स्वच्छन्दतावादी काव्य पृ० ७० ।

४ आचाय रामचद्र शुक्ल प्रेमघन सर्वस्व (भूमिका), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९९६ पृ० ९ ।

रीतिपरक रचनाओं के प्रणयन म अधिक मिलता है। भक्तिपरक रचनाओ मे कृष्णकाव्य मे मधुर उपासना का बहुलाश है। कृष्ण की माधुय लीला का रसास्वादन सम्पूण भारतेन्दु युग करता है। कृष्ण ही भारतेन्दु युगीन भक्ति साहित्य के प्रमुख नायक हैं। सम्पूण काव्य साहित्य उनकी ही रासलीलाओ का मौलिक उद्घाटन करता है। शृगार की शुद्ध सरिता मे कृष्ण का पावन चरित्र निखर उठता है। कविकर्म की रूढ़िवादिता एवं सकीणता कृष्ण की मधुर लीलाओ का अकन करने मे लाज के बधन को खोल आत्मविभोर हो उठी है। द्विवेदी युग जो भारतेन्दु युग का ही परिपूरक है राम और कृष्ण तथा अन्य पौराणिक एव ऐतिहासिक कथावृत्ता को लेकर सामने आया, इसम भारतेन्दु युगीन प्राचीन परंपरा पालन की भक्ति एव रीतिपरक रचनाओ का अपूव सहयोग ही दृष्टिगोचर होता है।

कवि अपने कवि-कर्म मे बडा रूढ़िवादी और सकीण होता है। भारतेन्दु एव उनकी गोष्ठी में यही रूढ़िवादिता सूर, बिहारी देव, पद्माकर, घनानन्द आदि से प्रभाव ग्रहण कर अनुप्रेरित रही। सूर की भाँति ही भारतेन्दु जी बल्लभ सम्प्रदाय म दीक्षित थे। वे अपने साहित्यिक जीवन के उषाकाल मे ही सूर के प्रभाव का निम्नोक्त पद म ढिढोरा पीटने लगते हैं—

बावरी प्रीति करो मति कोय।
प्रीति किए कौने सुख पायो मोहि सुनाओ सोय।
प्रीति कियो गोपिन माधव सो लोक लाज भय खोय।
उनको छोड गए मथुरा को बठि रही सब रोय॥
प्रीति पतग करत दीपक सौं सुन्दरता कहँ जोय।
सा उलटो तेहि दाह करत है पच्छ नसावत दोय॥
जानि बूझि कै प्रीति करी हम कुल मरजादा धोय।
अब तो प्रीतम रग रगी मैं होनी होय सो होय॥[1]

प्रस्तुत पद पर सूर की स्पष्ट छाप परिलक्षित हाती है। उनका प्रेरक पद यह है—

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतग करी दीपक सौं आपै प्रान दह्यौ॥
अलि-सुत प्रीति करी जल सुत सौं सपुट माझ गह्यौ।
सारग प्रीति करी जु नाद सौं, सन्मुख बान सह्यौ॥
हम जो प्रीति करी माधव सौं, चलत न कछु कह्यौ।
सूरदास प्रभु बिनु दुख पावत, नैननि नीर बह्यो॥[2]

इस युग मे कृष्णकाव्य की अपेक्षा रामकाव्य का प्रणयन कम हुआ है। फलस्वरूप रामकाव्य के शीर्षस्थ कवि गोस्वामी तुलसीदास का प्रभाव इस युग की चेतना को उतना प्रभावित नही कर सका है। भारतेन्दु जी तो बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। अत उन्होंने रामनगर की रामलीला से प्रेरणा प्राप्त कर 'रामलीला' नामक एक चपू का प्रणयन किया। उसमे कवि न बाल एव अयोध्याकाण्ड की कथा को अभिव्यजित किया है। यहाँ तुलसी का प्रभाव पूणरूपेण तो स्पष्ट नही होता, लेकिन विनय सम्बन्धी पदों पर यह प्रभाव अस्वीकारा भी जा नही सकता। यथा कार्तिक स्नान के निम्नाकित दोहे पर तुलसी का प्रभाव स्पष्ट है—

---

१ ब्रजरत्नदास (सम्पादक) भारतेन्दु ग्रथावली, भाग २, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ल

२ नन्ददुलारे वाजपेयी (सम्पादक) सूरसागर, दूसरा खण्ड, पद ३६०६।

कृष्ण नाम मनि-दीप जो, हिय घर मे न प्रकास ।
दीप बहुत बारे वहा हियतम भयो न नास ॥[१]

यही नाम का मनि-दीप यहाँ भी है—

राम नाम मणि-दीप धरु जीह देहरी द्वार ।
तुलसी बाहिर भीतरहूँ जो चाहसि उजियार ॥[२]

भारतेंदु जी को जीवन के दुखद वातावरण पर आत्मिक ग्लानि है क्योंकि यह सम्पूर्ण जीवन ही रोते रोते बीता फिर भी शान्ति का स्निग्ध वातावरण उपस्थित नहीं हो पाया—

बैस सिरानी रोअत रोअत ।
सपनेहु चौंकि तनिक नहिं जागो बीती सबही सोअत ॥
गई कमाई दूर सबै छन रहे गाठ को खोअत ।
औरहु कजरी तन तन लपटानी मन जानी हम धोअत ॥
स्वाद मिलो न मजूरी को सिर टूटयो बोभा ढोअत ।
'हरीचद नहिं भरयौ पेट पै हाय जरे दोउ पोअत ॥[३]

प्रस्तुत पद की प्रेरणा कवि को तुलसी के निम्नोक्त पद स मिली है—

ऐसहि जनम समूह सिरान ।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिरानें ॥[४]

भारतेंदु युग के प्रमुख कवि बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने मधुराभक्ति के द्वारा भगवान के मधुर प्रेम का आस्वादन भगवान् की प्रिया के रूप म किया है । मीराबाई म उक्त प्रकार की भक्ति के सर्वोत्तम उदाहरण उपलब्ध होते हैं । लेकिन प्रेमघन जी के प्रस्तुत पद को न्याय की कसौटी पर यदि कसा जाय तो क्या मजाल कि वह उससे पीछे रहे । प्रेमघन जी का वह पद यह है—

बसौ इन नैनन मे नन्दनन्द ॥टेक॥
युगल जलज सारग सोभित वच राहु सहित मुखचन्द ।
चिबुक गुलाब बिम्ब अधराधर सुख को सरस अमन्द ॥
उर बनमाल मृणाल बाहु युग चाल रसाल गयन्द ।
बद्रीनाथ मिलो अब प्यारे छाडि सकल छल छद ॥[५]

मीराबाई का प्रेरक पद यह है—

बसौ मेरे नैनन म नन्दलाल ।
मोहनी मूरत सावरी सूरति नैणा बने बिसाल ।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बजन्ती माल ॥

---

१ ब्रजरत्नदास (सम्पादक) भारतेंदु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (कार्तिक स्नान), पृ० ७८ ।
२ गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ० ४८ ।
३ ब्रजरत्नदास (सम्पादक) भारतेंदु ग्रन्थावली दूसरा खड, पृ० ४४२ ४३ ।
४ गोस्वामी तुलसीदास विनय पत्रिका, गीताप्रेस, गोरखपुर, तेरहवा सस्करण, स० २००६, पद २३५, पृ० ३७१ ।
५ प्रभाकेश्वर (सपादक) प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ४४० ४४१ ।

छुद्रघटिका कटि तट सोमित नूपुर सबद रसाल ।
मीरा प्रभु सतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल ।।[1]

रीतिकालीन कविता का गारधारा से भी भारतेंदु और उनकी गोष्ठी के कवियो ने प्रेरणा प्राप्त कर सृजन किये । कही शृगार की सुलम सजगता है तो कही भक्त हृदय के स्फीत उद्गार हैं । कवि कही-कही सद्य स्नाता बालिका के मोन सौन्दय का उद्घाटन करता है तो कही मुग्धा-नायिका मे मनोमुग्धकारी सौन्दय का उद्घाटन करता है, प्रस्फुटन करता है । इन तरह रीतिकालीन वातावरण से प्रेरणा शृगार सवलित माधुर्य भक्ति की भीनी भीनी गध से समस्त भारतेंदु युग सुरभित है । युग विधायक भारतेंदु जी स्वय ही रसखान, बिहारी, देव, मतिराम और पद्माकर से प्रभावित रहे हैं। कवि परम्परा का निर्वाह करने म पूणरूपण सफल प्रतीत होता है । रसखान का एक सवैया है—

सस महेस गनेस दिनेस प्रजेस सुरेस घनेस मनाओ ।
कोऊ मवानी भजौ मन ही सब आस सबै विधि जाय पुराओ ।
कोऊ रमा मजि लेहु महाधन कोऊ कहूँ मनवाछित पाओ ।
पै रसखानि वही मेरो साधन और त्रिलोक रहो कि नसाओ[2] ।

यही तुक, शैली, अथ और ध्वनि भारतेंदु के प्रस्तुत पद से अभिव्यजित होता है । निश्चय ही भारतेंदु जी का आदश रसखान का सवैया है । भारतेन्दु जी न रसखान की प्रेमवाटिका से प्रेरणा प्राप्त कर प्रेम-सरोवर लघुकाव्य का प्रणयन किया ह । भारतेंदु जी का सवैया यह है—

पूजि के कालिहि सत्रु हतो कोऊ लक्ष्मी पूजि महा धन पाओ ।
सेइ सरस्वति पडित हाउ गनेसहि पूजिकै विघ्न नसाओ ।
त्यौ 'हरिचद जू' ध्याइ शिवै काऊ चार पदारथ हाथ ही लाओ ।
मेरे तो राधिका-नायक ही गति लोक दोऊ रहो कै नसि जाओ ।।[3]

कविवर बिहारी गागर म सागर के प्रसिद्ध कवि थे । भारतेंदु जी राधावर के चाकर हैं[4] । उन्होने 'बिहारी सतसई' के ८५ दोहो पर कुण्डलिया लगाई हैं जो 'सतसई' शृगार के नाम से हिन्दी जगत् मे विख्यात हैं । इनम बिहारी के दोहा से अधिक दोहो की रचना की है । लेकिन एक सच्चे दोहा कार के रूप म आप नही हैं । डा० किशोरीलाल गुप्त ने लिखा है कि इस दृष्टि से बिहारी तो दूर, उनकी तुलना कबीर तुलसी, रहीम आदि से भी नही की जा सकती ।[5] भारतेंदु जी की पदावली म सरलता है, लेकिन बिहारी के दोहो मे अलकारिता । बिहारी का दोहा है—

---

१ परशुराम चतुर्वेदी (सपा०) मीराबाई की पदावली, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम सस्करण, २०१२, पृ० ६६ ।

२ लल्लूभाई छगन लाल देसाई (सपा०) महानुभाव रसखान, अहमदाबाद, १९४१ ई०, पृ० २८ ।

३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेंदु ग्रंथावली, दूसरा खड, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ७९ ।

४ हम तो मोल लिए या घर के । दास दास श्रीवल्लभ कुल के, चाकर राधावर के । ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, पहला खड, पृ० ५६ ।

५ किशोरीलाल गुप्त भारतेंदु और उनके पूववर्ती कवि, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५५, अक १२, सं० २००७, पृ० २६ ।

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परे, श्याम हरित दुति होय॥[1]

इससे प्रेरणा ले भारतेन्दु का दोहा यह है—

जय जय श्रुतिपदवंदिनी कीर्ति नन्दिनी बाल।
हरि मन परमानन्दिनी भवमय जाल॥[2]

भादो बदी चौथ का चन्द्रमा बड़ा ही कलंकित है। जन विश्वास है कि इस दिन का चन्द्र जो देखता है उसे कलंक लगता है। इस जन विश्वास का वर्णन भारतेन्दु जी और घनानन्द दोनों ने सफलतापूर्वक किया है। दोनों के काव्य में चौथे के चन्दा के बारे में नायिकाओं के मुख से यह भाव बड़ा ही हृदयग्राही प्रकट हुआ है। घनानन्द की नायिका की अभिव्यक्ति यह है—

चौथि को चंद लखें ब्रजचंद सो लागैं कलंक तौ उजरे हुजै॥[3]

भारतेन्दु की नायिका काफी वाचाल है, वह एक पग आगे बढ़ कर कहती है—

सुनी है पुरानन मे द्विज के मुखन बात,
तोहि देखे अपजस होत ही अचूक है।
तासो 'हरिचंद' करि दरसन तेरो जिय
मथ्यो चाहे कठिन मनोभव की हूक है।
ऐसो करि मोहि सब प्यारे नन्दनन्दजू सो
मिलो कहै लाव मुख सौतिन के लूक है।
गोकुल के चंद जू सो लागै जू कलंक तौ तूं
साचो चौथचंद ना तो बादर को टूक है॥[4]

कवि पद्माकर रीतिकाल के रंगमंच पर अपनी सवैया और कवित्त की सफाई और सुन्दरता के लिये गौरवान्वित होते हैं। भारतेन्दु जी अपने युग में ठीक उनकी बराबरी का स्थान प्राप्त करते हैं। यदि पद्माकर राधा के तिल का वर्णन करते हुए लटपटा हो जाते हैं तो भारतेन्दु का भक्त हृदय कृष्ण के कपोल पर लगे बुक्के का वर्णन करते भावनाओं की भागीरथी में सन्देह-सुमन का सृजन कर शोभायमान होता है। कपोल स्थित काले तिल से पद्माकर की वाणी विदग्ध है तो कपोल स्थित श्वेत बुक्के से भारतेन्दु की वाणी पद्माकर से प्रेरणा प्राप्त कर बेमिसाल उदाहरण प्रस्तुत करती है।

पद्माकर कपोल स्थित काले तिल का वर्णन करते हुए लिखते है—

कैधौं रूप रासि में सिंगार रस अंकुरित,
संकुरित कैधौ तम तड़ित जुन्हाई।
कहै 'पदमाकर' त्यों किधौ काम कारीगर,
नुक्ता दियो है हेम फरद सुहाई मे।
कैधौं अरविन्द में मलिंद-सुत सोयो आनि,
ऐसो तिल सोहत कपोल की कुनाई मे।

---

१ लाला भगवानदीन (टीकाकार) बिहारी बोधिनी, बनारस, आठवां संस्करण, सं० २०१३, पृ० ८०।

२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खंड, पृ० ७८

३ विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (संपादक) घनआनन्द और आनन्द घन, सं० २००२, पृ० ४३३।

४ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० १७३।

कैधौं पर्‌यो इदु मे कलिदि-जल बिदे आइ,
गरक गुबिद किधौ गोरी की गुराई म[1] ॥

भारतेंदु जी ने होली के समय कृष्ण के कपोल मे लगे बुक्के का वणन करते हुए लिखा है—

आजु बृषमानु राय पौरी हौरी होय रही,
दौरी हैं किसोरी सब जोवन चढाई मैं।
खेलत गोपाल 'हरिचद' राधिका के साथ,
बुक्का एक सोहत कपाल की लुनाई मैं।
कैधौ भयो उदित मयक नभ बीच कैधौं,
हीरा जरयो बीच नीलमनि की जराई मे।
कैधा परयो कालिदी के नीर छार बिदु कैधौ,
गरक सु गारी भई स्याम सुदराई मैं ॥[2]

उपर्युक्त विवचन स यह स्पष्ट है कि भक्ति की भागीरथी मे श्रृगार धारा का कल-कल निनाद पूण शास्त्रीय पद्धति पर परम्परा का अनुमोदन कर रहा था। भारतेंदु युग के कवियो मे जहाँ तक भक्ति-गाथा का चित्रण है, उसके पीछे सत काय, राम और विशेष कर कष्णकाव्य की धारा का श्रृगार सवलित प्रवाह ही है। कवि भगवान के साथ प्रिया प्रियतम, सखी-सखा और गोपी भाव से ही निकटता प्राप्त करता है। उनके द्वारा लौकिक प्रेम के गीत म श्रृ गार-कालीन कष्णकाव्यधारा का सगुम्फन ही प्रबल रहा। इस प्रकार भक्ति की धारा मानव मस्तिष्क की सम्पत्ति है। उसे कही भी किसी काल मे प्रस्फुटित किया जा सकता है। यही कारण है कि भारतेंदु युग श्रृ गार के प्रबल प्रवाह मे उसे माधुर्य के रूप मे व्यक्त होना पडा।

निर्गुण काव्यधारा

'धर्म का प्रवाह कम, नान और भक्ति इन तीन धाराओ मे चलता है। इन तीनो के सामजस्य से धर्म अपनी पूण सजीव दशा मे रहता हे। किसी एक के भी अभाव से वह विकलाग रहता है। कर्म के बिना वह लूला-लगडा, ज्ञान के बिना अधा और भक्ति के बिना हृदय बिहीन क्या निष्प्राण रहता है।' घम की भावात्मक अनुभूति या भक्ति जिसका सूत्रपात महाभारत काल मे और विस्तृत प्रवर्तन पुराणकाल म हुआ था, कभी कहीं दबती, कभी उभारती, किसी प्रकार चली भर जा रही थी।[3] 'भक्ति का यही अविरल प्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित हुआ। राजनीतिक अशान्ति के रहते भी जनता के हृदय म इसको फूलने फलने का पूण स्थान मिला। कबीर दास ने इसका हृदय से स्वागत किया। उन्होने इस प्रवाह को उत्तर भारत की पवित्र भूमि पर रोक रखा और उसके अव्यवस्थित रूप को सँवार कर एक नय साचे म ढाल दिया। यही व्यवस्थित रूप निगु ण पथ के नाम से भक्ति जगत म विख्यात हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो मे यह सामान्य भक्ति मार्ग एकेश्वरवाद का एक

---

१ पद्माकर ग्रथावली सपादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम सस्करण, स० २०१६, पद ३७, पृ० ३१३।

२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेंदु ग्रथावली, दूसरा खड, स्फुट कविताएँ, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ८२२।

३ आचाय रामचद्र शुक्ल हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ० ५१ ५७।

अनिश्चित स्वरूप लेकर खडा हुआ, जो कभी ब्रह्मवाद की ओर ढलता था और कभी पैगम्बरी खुदावाद की ओर। यह 'निगु ण पथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।'[१]

हिन्दी काव्य जगत मे कबीरदास जी ने भारतीय वेदात से उपासना तत्त्व और सूफियो स प्रेम तत्त्व लेकर जनता के शुष्क हृदय को भक्तिरस से आप्लावित किया। बाद म सतो ने अतस्साधना म रागात्मिका भक्ति और ज्ञान का सयोग किया, लेकिन कर्म की स्थिति म कोई नवीनता का आभास नहीं हो पाया। कर्म तो आधुनिक युग मे प्रवेश के समय अपनी गहरी निद्रा से उठा। अब वह हाथ चलाने लगा। भारतेन्दु ने इस नवजात शिशु को घुटरुन चलना सिखाया। उसने अपनी तुतली बोली मे कबीर के निगु ण पथ की तरह युग के चपल चरण को सकेतित किया। फलस्वरूप कबीर का निगु ण पथ रीतिकाल के रुपहले पर्दे से उचक कर भारतेन्दु युग के भव्य भारती के भवन म आया यहाँ उसका भारतेन्दु मण्डल ने स्वागत किया। भारतेन्दु जी स्वय ही इस युग मे निगु ण काव्यधारा के प्रवर्तक हैं। उनकी रचनाओ मे निगु ण परम्परा का निर्वाह ही नही हुआ है बल्कि उन्होंने निगु ण सम्प्रदाय की शुष्क बनस्थली को हरी भरी लतिकाओ से सुसज्जित किया। अब हम भारतेन्दु युगीन निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख सिद्धान्तो पर दृष्टिपात करेंगे।

सिद्धात की नीव पर साधना के भव्य भवन का निर्माण होता है। कवि के विश्वासो को ही साहित्य जगत सिद्धात के नाम से अभिहित करता है। विश्वास धर्म का अभिन्न अग है। विश्वास की अत्यधिक और अनिवार्य रूप से आवश्यकता धर्म के क्षेत्र म है। भाव जगत सदैव विश्वास के सम्बन्ध का ऋणी रहा है। कारण कि उससे एक प्रकार की प्रेरणा, बल या स्फूर्ति पैदा होती है। साधक जब साधना के क्षेत्र म प्रवेश करता है, तो सर्वप्रथम वह श्रद्धा और भक्ति के अनन्तर विश्वास के बाद ही प्रवेश पाता है।

साधना का क्षेत्र विस्तृत है। साधक के हृदय म भक्ति एव श्रद्धा के विकास होने पर एक अटल विश्वास जम जाता है। तब साधक अपने प्रिय के मुखछवि का अवलोकन जागृत या सुषुप्तावस्था म करने लगता है। इस तरह श्रद्धा और प्रेम दोनो के सयोग स सामाजिक भावना की उत्पत्ति होती हैं। फिर तो विश्वास की नीव पर साधक अपनी साधना का भव्य खडा कर देता है।

विश्वास तीन प्रकार का होता है। मनसा, वाचा एव कर्मणा। तीनो के सयोग से साधक ब्रह्म में लीन हो जाता है। वह ब्रह्ममय हो जाता है। उसकी समस्त भावनाए केन्द्रीभूत हो जाती हैं। इस तरह ब्रह्म के प्रति मन म दृढ़ता, चित्त म एकाग्रता और भक्ति मे बल प्राप्त होता है।

निगु ण काव्यधारा के कवियो के विश्वास दो प्रकार के हैं। प्रथम व्यक्तिगत विश्वास तथा द्वितीय सामान्य विश्वास। मनुष्य को ब्रह्म पर सर्वथा आश्रित रहना चाहिये, यही व्यक्तिगत विश्वास है। सामान्य विश्वास तो समाज सापेक्ष है। इसे हम तीन रूपो म (दार्शनिक सामाजिक एव साधनात्मक) स्वीकार करते हैं।[२]

दार्शनिक सिद्धान्त

निगु ण काव्यधारा के कवियो के सिद्धान्त का आधार है, व्यक्तिगत साधना। इनकी साधना

---

१ वही, पृ० ६१।

२ डा० सावित्री शुक्ल तथा डा० बडथ्वाल का भी यही विचार है।
डा० सावित्री शुक्ल सतकाव्य की सास्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ० १६५।
डा० पीताम्बर दत्त बडथ्वाल हिन्दी काव्य म निगु ण सम्प्रदाय, पृ० १५०।

का मूल-स्रोत हृदय है। इस काव्यधारा के कवियों का भगवत्प्रेम शुष्क सिद्धांत नहीं है, अपितु स्थायी प्रवृत्ति है। सिद्धांत अनुराग सापेक्ष होता है। अनुराग की अनुभूति ही सच्चे सिद्धान्त की कसौटी है। निर्गुण पथ मे व्यक्तिगत साधना की महत्ता का महत्वपूर्ण स्थान है। अत इस साधना के अनुसार निर्गुण काव्य के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं[1]—

१—अद्वैत ब्रह्म
२—सद्गुरु
३—आत्मा
४—सत्सग
५—नाम महिमा

अद्वैत ब्रह्म

निर्गुणकाव्य धारा के प्रवर्तक और प्रणेता सत कवि ही हुए हैं। उनके ब्रह्म निर्गुण निर्विकार निराकार और अद्वैत हैं। भारतेंदु युग म भी इस निराकार निर्विकार ब्रह्म का स्थान ऊँचा है। कविवर श्रीधर पाठक ने तो उसे अलख, अनादि, अजेय और अगम्य आदि कहकर उसकी उपासना की है। उनका ब्रह्म अनुपम ही नही बल्कि अखिल भुवन का भरतार है। कबीर के राजा राम तो केवल उसके ही भरतार है।[2] कवि सतकाव्य परम्परा से एक पग आगे ही है। यथा—

अलख, अनादि, अमध्य, अनन्त, अचिन्त्य मते ,
अमित, अमेय, अमान, अजेय, अगम्य-गते।
अनिश्य, अनश्य, अनाम, अनूपम, ईश हरे
अनघ अमोघ, अजोग अभोग अनिष्ट भरे
अमर, अवेप, अभेद्य, अदेख्य, अखद्य खरे।
अमिल, अमेल, अमोल अतोल अनन्द भरे
अजर, अधर, अज आध अनाश्रय आश्रय है।
अखिल भुवन भरतार अमाय दयामय है॥[3]

वह ब्रह्म निराकार निर्गुण और ससार का आधार है—

परब्रह्म निर्गुन निराकार तू
स्वयम्भूत ससार आधार तू॥[4]

परमात्मा की सगुण भावना, भावात्मक है और निर्गुण अभावात्मक। भक्त के निमित्त उसका विग्रह होता है। वह केवल अखिल भुवन का कर्त्ता अकेला है। अपनी उपासना के निमित्त चाहे हम

---

१ डा० बड़थ्वाल ने निर्गुण सप्रदाय के दस सिद्धांतो की चर्चा की है (एकेश्वर पूर्ण ब्रह्म परात्पर परमात्मा आत्मा और जडपदार्थ, अशाति सम्बन्ध जीवात्मा और जड-जगत, सहजज्ञान उपनिषद्-मूल स्रोत, निरजन अवतारवाद) वही, पृ० १५० २२५।
२ दुलहिन गावहु मगल चार। हम घरि आये हो राजा राम भरतार।
डा० श्यामसुन्दर दास (सपा०) कबीर ग्रथावली, ना० प्र० सभा, काशी पृ० ८७।
३ श्रीधर पाठक मनोविनोद, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९१७, पृ० ३४।
४ वही, पृ० २।

उसे जिस नाम से पुकारे फिर भी वह उससे परे रहेगा। सम्बन्ध भेद के कारण ही वह केवल एक से अनेक हो जाता है। वह यत्र तत्र सवत्र वास करता है। पृथ्वी के कण-कण में अलख निरंजन होता है—

काया बीच मे जाकर बैठ देखत सकल तमासा है,
देखो वह है अजब खिलाड़ी समझ म नही आता है।
पंच बयारि लगे मन डाले तिहूँ लोक मरमाता है,
जह जह मनुआ खेल करत है तह तह खेल खिलता है।
चित्त माया दोऊ नाच नचावत कुल परिवार बनाता है,
प्रस रहत चहुँ ओर स मन को ता बिच आप न आता है।
है वह सदा सवन ते न्यारा छाया कर दरसाता है।
मन थिर करके देखहु मगल आपै आप लखाता है॥[1]

भारतेन्दु जी प्रसिद्ध वल्लभानुयायी हैं। वल्लभ ही उनके परमात्मा हैं। फिर भी भगवान के परात्पर में उनका विश्वास है—

परब्रह्म परमेश्वर परमात्मा परात्पर।
पर पुरुष पद पूज्य पतित पावन पद्मावर॥
परमानन्द प्रसन्न बदन प्रभु पद्मविलोचन
पद्मनाभ पुण्डरीकाक्ष प्रनतारति-मोचन॥[2]

प्रतापनारायण मिश्र अपने ब्रह्म के बारे म समस्त मत-मतान्तरो और मस्जिद गिरजा आदि को झूठा समझते हैं, उनका साहब कबीर की भाँति ही है। वह घट के भीतर बठा है। बिना प्रेम के पोथी के उसका मर्म नही जाना जा सकता। कवि की इस उक्ति म एकेश्वरवाद की ही आभा का उज्ज्वल रस प्राप्त होता है—

मनुआ काहे इत उत धावै।
मतवालेन की चाल सीखि के नाहक बुद्धि गवावै॥
मसजिद मन्दिर औ गिरजै म दौरत पाव थकावै॥
घट के भीतर साहब बठा तेहिने लौ न लगावै॥
अपने हाथन अपनी महिमा लिखि लिखि दुनिया गाव।
बिना पढ़े एक प्रेम की पाथी कबहुँ भरम न जावै॥[3]

जीवात्मा और परमात्मा

निर्गुण काव्य परम्परा म जीवात्मा और परमात्मा का वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया गया है। परमात्मा को पिया और साहब शब्द स सम्बोधित किया जाता है। भारतेन्दु जी ने भी इस तरह का विवाह सम्बन्ध स्थापित किया है—

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक), भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी सभा, (अपवगदाष्टक) पृ० ७३६।

२ मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद, भाग ४ (बनवारीलाल मिश्र), गगा पुस्तकमाला, लखनऊ पृ० १०४।

३ नारायण प्रसाद अरोड़ा (संपा०) प्रताप लहरी, कानपुर, १९४९, पृ० १४५।

द्वारहिं पै लुटि जायगी बाग औ आतिसबाजी छिन म जरैगी।
ह्वै हैं बिदा टका लै हय-हाथिनहु खाय पकाय बरात फिरैगी।
दान दै मातु पिता छुटि है 'हरीचद' सखीहु न साथ करैगी।
गाय बजाय जुदा सब ह्वै हैं अकेली पिया के तू पाले परैगी॥[1]

यहा आत्मा और परमात्मा का विवाह सम्बन्ध कराया गया है। विवाह हो जाने पर सब विदा हो जाते हैं। माता पिता सभी का सग छूट जाता है। केवल दुल्हन और दुल्हे अकेले रह जाते हैं। यहाँ आत्मा पिया परमात्मा के साथ अकेली हो जाती है।

आत्मा और परमात्मा का वियोग भी बडा ही कष्टदायक होता है। आत्मा परमात्मा को एक क्षण भी छोडना नही चाहती। भगवान रूपकला ने एक पद मे आत्मा से परमात्मा के वियोग का बडा ही सुन्दर चित्र खीचा है। यहा पिय कबीर के पिय की याद दिला देता है—

सुधि न लीन्हि पिय बिरहिनि हिय की।
सखि! मोहि कत दिन तरसत बीते, सुधि न लीन्हि पिय बिरहिनि की।
आह धुआ मुख हिय बिरह्मागी, ठाढि जरौं जैसी बाती दिय की।
अधिक दाह चित्त चातक कोकिल बिरह अनल जिमि आहुति घिय की॥[2]

सद्गुरु

गुरूर् ब्रह्मा गुरूर विष्णुर् गुरूर् देवी महेश्वर।
गुरु साक्षात् पर ब्रह्म तस्मे श्री गुरवे नम॥

कवि कुल गौरव श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन शब्दो मे गुरु की महत्ता दर्शायी है

बदउ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
श्री गुरु पद नख मनि गन जोती। सुमिरत न्दिव्य दृष्टि हिय होती॥
गुरु पद रज मृदु मजुल अंजन। नयन अमिय दृग दोष विमजन॥

गो० तुलसीदास बाल काण्ड

भारतीय सस्कृति मे गुरु की महिमा की विपद् व्याख्या हुई है। गुरु का स्थान भारतीय समाज मे बहुत ही महत्वपूण है। गुरु भारतीय समाज का पथप्रदशक है। गुरु ही माता, पिता, ईश्वर है। अत भारतीय समाज सेवा, मन, वचन एव कर्म से करते हैं। उसकी कृपा से क्या नही सुलभ है—

गुरुपिता गुरुर्माता गुरुर्देवा न सशय।
कमणा मनसा वाचा तस्मात्सर्वे प्रसेव्यते॥
गुरुप्रसादत सव लभ्यते शुभ मात्मन।
तस्मात्सेव्यो गुरुर्नित्यम यथा न शुभ भवेत्॥

हिन्दी साहित्य के इतिहास का आलोडन विलोडन करने पर पता चलता है कि आदि काल से लेकर नाथ-सम्प्रदाय तक गुरु-महिमा का वणन कम मिलता है लेकिन भक्तियुगीन साहित्य तो गुरु गाथा से परिपूण है। राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि सिद्ध और जैन कवियो के काव्य में गुरु महिमा का खूब

---

१ व्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, ना० प्र० सभा, पृ० ५४५।
२ शिवपूजन सहाय (सपा०) हिन्दी साहित्य और बिहार, पटना, २०२०, पृ० ६२।

गान हुआ है।[1] पग पग पर गुरु की आवश्यकता की ओर ध्यान दिया गया और उसके पथ प्रदशन पर प्रकाश डाला गया। भारतेंदु युग ने भी सद्गुरु की महत्ता स्वाकार की है। गुरु ही सच्चे ज्ञान का उपासक होता है। उससे प्राप्त ज्ञान से सभी सशय दूर भाग जाते हैं। इसी से बालमुकुन्द गुप्त उसके हुकुम के निमित खडे हैं—

गुरु जी सच्चा ज्ञान सुनाया।
ज्ञान सुनाया मन को भाया सशय भागे दूर।
जो कुछ कहिय सो ही करे हम हाजिर खडे हुजूर॥
कहो सो हुकुम बजावें[2]।

भारतीय समाज स्वार्थ से पूर्ण है। सभी लोग मतलब के साथी हैं। केवल गुरु ही सच्चा है। उसके बिना ससार म कोई है, सभी लोग तो लूटने वाले हैं। अत गुरुदेव की शरण की ही पुकार कवि करता है। स्वामी भगनन्देव को जब पचमकार आकर लूटने लगते हैं तब वह गुरु को अंतिम समय म पुकराते हैं—

सतगुरु बिना कोई न हमारा।
हित नाता सब कुल-परिवारा, मतलब के साथी ससारा।
यहि तन त्यागि जतन कियो कोटिहु साउ धोखा दिया बीन बजारा।
पाँच जना मिलि लूट मचायो अबकी बार गुरु करहु सहारा।
स्वामी जगु अरज सुनि लहु मोरा भजन देव को सरन पुकारा॥[3]

वल्लभ सम्प्रदाय मे गुरु भक्ति एव गुरु माहिमा की भूरि भूरि प्रशसा की गई है। भारतेंदु जी की रचनाए गुरु भक्ति एव गुरु महिमा पर अधिक हैं। उन्होंने गुरु की महिमा म अधानुकरण नही किया है। सूरदास तो केवल अपने गुरु के चरणो का दृढ भरोसा ही रखते हैं।[4] लकिन भारतेंदु जी तो अपने को गुरु कुल क्रीत दास मानते हैं। कबीर यदि गुरु को गोविन्द से बडा बताते हैं तो भारतेंदु जी अपने गुरु को भगवान् का अवतार मानते हैं। उनके गुरु अपनी अज्ञात लीलाओ को प्रकट करने के लिये कलि म कृष्ण ने वल्लभाचाय का रूप धारण किया है।[5]

गुरु का महिमा से इस भवसागर से छुटकारा मिल जाता है। पापा का नाश हो जाता है, गुरु ससार के पाप को दूर करने वाला तथा वह पतित समाज तारता है—

---

१ राहुल साकृत्यायन (सपादक) हिन्दी-काव्यधारा, पृष्ठ ३०५
२ बालमुकुन्द गुप्त स्फुट कविता, भारत मित्र प्रेस, कलकत्ता, द्वितीय सस्करण, स० १९७६, पृ० १४७।
३ आचाय शिवपूजन सहाय हिंदी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा, पटना, पृ० १४१।
४ भरोसो दृढ इन चरन केरो।
नन्ददुलारे बाजपेयी (सपादक) सूरसागर, दूसरा खण्ड नागरीप्रचारिणी सभा, काशी पद ३१४२।
५ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेंदु ग्रन्थावली, दूसरा खड, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, (प्रेम मालिका), पृ० ५४।

जयति जयति तैलग कुल रत्नदीप द्विजराज।
श्रीवल्लभ जग अघ हरन तारन पतित समाज।[1]

सद्गुरु की महिमा अपरम्पार है। उसके बिना तीर्थ, व्रत, जप तथा नाना प्रकार के देवताओं की उपासना व्यर्थ है। भक्त कवि श्रीगुरुसहाय लाल ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

पूज्या जो नाना देवता औ व्रत तीरथ भी किया।
सतगुरु सरन पाया नहीं रच पच मुआ तो किया हुआ।[2]

ठाकुर जगमोहन सिंह गुरु की माया और उसकी कृपा के कायल हैं। वे उसे छोड कर और के शरण की इच्छा नहीं करते—

तुअ किरपा सो गुरु मोहि जासौ।
अजहुन छाडै सुमिरत मासौ॥
सब कुछ कौसौ सुनिहहु साइ।
तपबल मोही दुःख न जनाई॥
असुर मारयो करि करि चूरो।
अग्नि जरायो करि करि भूरो॥
तबहुन मोको सकि तिन मारी।
तुम बाबन माया गुरु अति भारी॥[3]

आगे आप गुरु से उस ब्रह्म परम व्रत का वरदान मागते हैं—

तुम मम प्रभाव गुरु देहु वरदान यह।
सहस बरस अनुभाव ब्रह्म परम व्रत करि रह हैं॥[4]

गुरु के प्रति निर्गुण एवं सगुण भक्त कवियों की भावना एक ही है, दोनों ईश्वर के सन्निकट पहुँचने में गुरु की सहायता का वर्णन करते हैं। लेकिन सच्चा गुरु भी ईश्वर की कृपा से ही मिलता है।

आत्मा

भारतीय दर्शन आत्मा को अजर और अमर मानता है। आत्मा का विनाश नहीं होता, विनाश शरीर का होता है। ब्रह्म तो नादस्वरूप नित्य सत्य और अविनाशी है शरीर अनित्य और असत्य है। कठोपनिषद् उसे अजन्मा, शाश्वत और पुरातन मानता है—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।[5]

आत्मा चेतन है, दिव्य शक्ति है। उसके पीछे-पीछे ममता घूमा करती है। बच्चूराम ने भी कहा—

---

१ व्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, (भक्तसर्वस्व) पृ० ५।
२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना, पृ० ६१।
३ ठाकुर जगमोहन सिंह देवयानी, भारत जीवन प्रेस, बनारस, पृ० ३१-३२।
४ वही, पृ० २०।
५ कठोपनिषद् १।२।१८,
श्रीमद्भगवद्गीता २। २०

भूलि रह्यो भ्रम के वश मे मति नीच कुबुद्धि पखंड भरी है।
ज्ञान विवेक को लेश नही पर मानो गुरु से घमंड करी है॥
देह औ गेह सखा परिवार न माया सहाय अखंड धरी है।
आतम चेतन कैस तकै ममता जेहि पीछे प्रचंड धरी है॥[1]

स्वामी निरजनन्दन तीथ आत्मा को ही परमात्मा मानते हैं। उनके परमात्मा का निवास आत्मा मे है। आत्मा म ही परमात्मा है।

आत्मा म परमात्मा लखहु सुमिरि ओकार।
ज्योति स्वरूप हिय ध्यान करि उतर जाय भव पार॥[2]

भारतेन्दुयुगीन भक्त कवियो ने आत्मा पर सूक्ष्मरूप से दृष्टिपात नही किया है। आत्मा का वणन एक दम नही हुआ है।

सत्सग

निर्गुण काव्यधारा म सत्सग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमारे प्राचीन सत-महात्माओ और मनीषियो का विश्वास है कि सत्सग से जीवन का क्षण भर म ही सुधार हो सकता है। सत्सक गंगा के पावन जल से भी श्रेष्ठ है। गगा तो बाह्य गन्दगी को ही दूर करती है। सत्सग से अन्तरग निर्मल हो जाता है। पाप प्रवृत्ति का ही निवारण नही होता बल्कि सज्जनो की सगति से पाप के स्वरूप का नाश हो जाता है। सत गुलाब राव जी ने लिखा है कि उनकी अमृत वाणी का रसास्वाद करें—

है जग माहि बडो सतसगा।
जैसे सज्जन पाप मिटावत तैसि न टारत गगा।
गगा बाहर पाप मिटावत नहि शोवत अतरगा।
पाप अरु पाप प्रवृत्ति को हरत साधु जन चंगा॥[3]

भागवतनारायण सिंह जी सत्सग ही की प्रशसा करते हुए कहते हैं—

राम सुयश सुठि गाइये सतन सो कर प्रीति।
छल बल सबको छाडिये यहि सज्जन की रीति॥[4]

सत्सग भी भगवान् की कृपा का ही प्रसाद है।[5] इसी से हरिचरणदास ने इसे दुर्लभ बताया—

अर्थ, धम्म अरु काम सुख पाविहु के घर होय।
सत-समागम नाथ धन, दुरलभ नर को दोय॥[6]

---

१ बच्चूराम, रसिक मित्र (मासिक पत्र), पृ० ४।

२ सतवाणी अक (कल्याण विशेषाक) पृ०, ५७४

३ प्रयाग दत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विदर्भ की देन (सत गुलाब राव महाराज), विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागपुर, प्रथम सस्क० २०१७, पृ० ७१।

४ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना, पृ० १४३।

५ बिनु सत्सग विवेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥
—गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस बालकाण्ड, १।३६

६ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना, पृ० १७८।

इस तरह भारतेन्दुयुगीन कवियों ने सत्संग को अच्छा माना है। सत्संग से अच्छी बुद्धि की प्राप्ति होती है। असल में सत्संग ही सब कुछ है। अर्थ, धर्म, काम आदि तो पापियों के घर होते हैं।

नाम की महत्ता

निर्गुण मत में नाम की विशद् विवेचना हुई। क्योंकि साधना के क्षेत्र में नाम जप का अपना एक विशिष्ट स्थान है। श्रीमद्भागवत में यह स्पष्ट स्वीकार किया गया है कि—

सकीर्त्यमानो भगवाननन्त
श्रुतानुभावोव्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेष
यथा तमो कोऽभिवातिवात।[1]

अर्थात् जिस प्रकार सूर्य, तम तथा प्रचण्ड वायु, बादलों को छिन्न भिन्न कर देते हैं, उसी प्रकार नाम-कीर्तन समस्त पापों को विध्वंस कर देता है। कलिकाल में तो नाम के अलावे और कोई अन्य उपाय है ही नहीं।[2] भारतेन्दुयुग कवियों ने भी नाम जप की महत्ता को स्वीकार किया है। उनका कहना है कि चतुराई से राम का मिलना सम्भव नहीं। राम तो सत्यनाम के जाप से प्राप्त होता है। समस्त कार्यों का सम्पादन उसी के द्वारा होता है। यथा—

चतुराई चूल्हे पड़े वाहि न मिलि हैं राम।
सत्यनाम रटता रहे तब सरिहै सब काम॥[3]

नाम-जप के बारे में निर्गुण पंथ के प्रवर्तक कबीरदास जी से होड़ लेती हुई कवि हरिचरणदास की उक्तियाँ बड़ी ही मर्मस्पर्शी हैं। उस तो नाम जप इस प्रकार करना है कि बाहर के लोग ओठ का फड़कना भी देख न सके। उसका सुमिरन तो मीन और जल के समान एक पल भी वियोग को स्वीकार नहीं करता। कवि के शब्दों में—

सुमिरन के सुधि यो करो जैसे जल अरु मीन।
एक पलक बिछुरे नहीं राति दिवस लौ-लीन॥
गुप्त जाप सुमिरन करै बाहर लखै न कोय।
ओठ न फरकत देखिये, अन्दर राखौ गोय॥
× × ×
मन माला जो नर जपै निःअक्षर निजनाम।
साहब सो परिचय करे तब पावै वह ठाम।[4]

गुरुसहाय लाल रामनाम की धुनि के आगे समस्त वाद्ययंत्रों द्वारा प्रसारित सुरीली आवाज को तुच्छ समझते हैं, उनका कहना है कि—

---

१ श्रीमद्भागवद्, १२।१२।४७
२ हरेर्नाम हरेर्नाम केवलम्, कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।
नारदपुराण, १।४१।११५
३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २ (कवि हरि चरणदास), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, पृ० १७८।
४ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना, पृ० ६१।

अनहद मे सुरती जा लगी आनन्द मे जीता पगी।
निज राम की धुन की गम नही बाजा बजा तो क्या हुआ ॥[1]

इस तरह भारतेन्दु युग के कवियो ने भी नाम सकीर्तन का गुणगान किया है। भारतेन्दु जी ने भी नाम-जप की महत्ता स्वीकार की है, लेकिन उनके नाम-जप म वल्लभ सम्प्रदाय है, सगुण साम्प्रदायिक सुगध है, अत उसे हम निगुण परम्परा म नही ले सकते हैं।

अशांशी सम्बन्ध

भक्तो के अनुसार जीवात्मा का निवास परमात्मा म है। परमात्मा अंशी है और जीवात्मा अंश। इस तरह मूलरूप म दोनो एक हैं। जीव ब्रह्म से मिलकर ब्रह्ममय हो जाता है जिस प्रकार सरिता सागर म मिलकर अपने अंश को खो देती है, उसी प्रकार जीव का ब्रह्ममय हो जाना सम्भव है। प्रेमघन जी ने लिखा है—

सरिता सागर मिलि गई सागर भेद मिटाय।
तथा जीव यह ब्रह्म सो मिलत ब्रह्म बनि जाय॥
घटकास घट फूटत ही महाकास मिली जात।
जीव ब्रह्ममय होत त्यो माया सो बिलगात॥
मनमंदिर म लखि अलख सोई जीति जगाति।
जाकी आभा अस लहि यह सब सृष्टि विभाति॥[2]

सामाजिक सिद्धान्त

निर्गुण काव्यधारा के कवियो ने समाज को समुन्नतशील बनाने के लिये काफी उपदेश दिये हैं। उनका विश्वास है कि क्षमा, दया, त्याग, विश्वबन्धुत्व करनी कथनी आदि से समाज का समग्र विकास होगा। निर्गुनिये कवि बहुताश में निम्न श्रेणी के थे, अत उनके अन्तस्तल मे विद्रोह का स्वर गूज रहा था। प्रगट रूप से उनके सिद्धान्तो से समाज म विद्रोह की आग प्रज्वलित होती, लेकिन सार रूप मे उनके ग्रहण से समाज का विकास ही सम्भव है।

भारतेन्दु युगीन काव्य म निगुण परम्परा के सामाजिक सिद्धान्तो का विवेचन बहुत ही कम है। काव्य म तत्कालीन समाज का चित्रण बहुलाश म होता है। परिणामस्वरूप भारतेन्दु युग के समस्त कवियो ने सगुण परम्परा का ही विचार प्रस्तुत किया है। निगुण की धारा लुप्त नही थी, यही बल है। यहा पर हम उसका सक्षिप्त रूप प्रस्तुत करेंगे।

क्षमा और दया

क्षमा गुणो का सरताज है। उसके बिना ससार म निर्वाह होना असम्भव है। भारतेन्दु जी ने लिखा है—

मात पिता गुरु स्वामी राजा जो न छमा उर लावै।
तो सिसु सेवक प्रजा न कोऊ विधि जग मे निबहन पावै।[3]

---

१ प्रभाकेश्वर (सपादक) प्रेमघन सर्वस्व, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ३३३।
२ प्रभाकेश्वर (सम्पादक) प्रेमघन सर्वस्व, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ३३३।
३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, (प्रेमप्रलाप), नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० २७४।

ससार को निस्सारता

मानव समाज दु ख से पीडित है । दु ख सतप्त ससार की सेवा करना मानव का धर्म है। सेवा और विनम्रता मे निकटता का सम्बन्ध है । विनम्र मानव म ही सेवा की भावना जागृत होती है। सामाजिक गुणो मे सेवा का महत्वपूर्ण स्थान है । समाज म सुख शान्ति स्थापित करने के लिये सेवा भावना की नितान्त आवश्यकता है । अत प्रेम से सभी की सेवा करनी चाहिये, क्योकि ससार क्षण भगुर है । सभी निर्गुणियो ने ससार की निस्सारता की ओर लक्ष्य किया है ।

भारतेन्दु युगीन कवियो ने ससार की असारता की ओर बार-बार दृष्टिपात किया है । स्वय भारतेन्दु जी, जिनका समग्र जीवन विलासपूर्ण रहा, लगता है कि उन्हे अपने लघु जीवन के अन्तिम दिनो मे इस ससार से वैराग्य हो गया । स्वार्थियों ने उन्हे खूब लूटा । वे ऋणग्रस्त हो गये । जेल जाते जाते बचे । ऐसी परिस्थिति म उनमे विराग की भावना का आ जाना अति आवश्यक था । अत उन्होने ससार की निस्सारता की ओर लक्ष्य किया । उनका कहना है कि ससार म चलाचली का व्यापार है । प्रतिक्षण यहाँ से चलाचली का बाजार गर्म है । यथा—

हय चले, हाथी चले, रथ चले, प्यादे चले,
ऊट चले, रेल चली, तार छाप के चली ।
सूर चले, चन्द चल्यो, तारा चले, दिन चल्यो,
रैन चली, छिन चले, पल-पल म टली ।
बाप चल्यो, बेटा चल्यो, नारी चली, मीत चले
'हरीचद' चली देव-दानव की मडली ।
प्रति जुग, प्रति वर्ष, प्रति मास, प्रतिदिन,
प्रति घरी प्रति छिन लागी है चलाचली ॥[1]

उक्त पद म कवि ने ससार की चलाचली का चित्र सरलतम शब्दो म अकित किया है । चलना शब्द यहाँ कवि ने बार-बार प्रयोग किया है लेकिन वह कर्णकटु नही प्रतीत होता है । प्रस्तुत सवैया मे भाव तो निर्गुण परम्परा का है, लेकिन भाषा का प्रयोग कवि ने सतो की भाँति नही किया है । क्योकि सतो के भाव व्यक्त करने का साधन एकमात्र दोहा पद्धति था । इसे हम केवल सत सुन्दरदास की शैली मे मान सकते हैं ।

कवि अपने एक पद म यह भी कहता है कि ससार की असारता के बारे मे सभी लोग जानते हैं कि एक दिन मरना है । फिर भी वे अमृत, विष का खाते हैं । यह बडी ही आश्चर्यजनक बात है ।

अहो यह अति अचरज की बात ।
जानि बूझि कै बिष के फल को क्यो भूल्यो जग खात ॥

भारतेन्दु जी ने अन्यत्र भी कहा है—

अतिहि अघी अति हीन निज अपराधी लखि दीन ।
जदपि क्षमा के जोग नहिं तऊ दया अति कीन ॥

वही (उत्तरार्द्ध भक्तामल) पृ० २२४ ।

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड (प्रेम प्रलाप), नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० २३० ।

सब जानत मरनो है जग मे झूठे सुतपितु मात ।
'हरीचद' तो फिर क्यो नित नित याही मे लपटात ॥[1]

श्रीधर पाठक ने लिखा है कि ससार म आने वाले सभी लोग जाते हैं । वे जैसे आते हैं वसे ही चले हैं । मूर्ख मनुष्य कभी भी सृष्टि के सार को समझ नही पाया—

समझ के सारे जग को मिट्टी मिट्टी जो कि रमाता है ।
मिट्टी करके सवस अपना मिट्टी म मिल जाता है ।
कभी-कभी ऐसा मूरख नर सार सृष्टि का पाता है,
जैसा ही आया था जग म वैसा ही वह जाता है ॥[2]

उक्त पद में भाव निर्गुण का है, लेकिन भाषा खडी बोली है । भारतेन्दु जी भावा के उत्कृष्ट कलाकार थे । उनकी भाषा भावो से तरगायित होती थी ससार को असारता के बारे म पशु-पक्षी, पत्ते और हमारी हसी रुलाई आदि से भी शब्द नि सृत होते हैं । मौत ही सच है और सब झूठा है—

साझ सबेरे पक्षी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है ।
हम सब एक दिन उड जायेंगे यह दिन चार बसेरा है ॥
× × ×
पत्ते सब हिल हिल कर पानी हर हर करके बहता है ।
हर के सिवा कौन तू है वे यह परदे मे कहता है ॥
× × ×
रोकर गाकर हँसकर लडकर जो मुह से कह चलता है ।
मौत-मौत फिर मौत सच्च है ये ही शब्द निकला है ।[3]

चेतावनी

मन बडा चचल होता है । उसका स्वरूप सकल्प विकल्पात्मक है । वह बराबर किसी न किसी उधेड बुन म लगा रहता है । कभी भी चुप नही रहता । अत भारतेन्दुयुगीन कवियो ने मन को बाधने का बार-बार सकेत ठीक उसी प्रकार किया है जिस प्रकार मध्ययुगीन कविया ने किया है—

आठ बेर नौबत बज-बज कर तुझको याद दिलाती है ।
जाग जाग तू देख घडी यह कैसी दौडी जाती है ॥
× × ×
आँधी चलकर इधर उधर से तुझको यह समझाती है ।
चेत चेत जिंदगी हवा सी उडी तुम्हारी जाती है ॥
× × ×
दिया सामने खडा तुम्हारी करनी पर सिर धुनता है ।
एक दिन मेरी तरह बुझोगे कहता तू नही सुनता है ॥
× × ×

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड पृ० १४१ ।
२ श्रीधर पाठक जगत सचाई सार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय सस्करण, १६१६, पृ० २ ।
३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, पृ० १४१ ।

तेरी आँख के आगे से यह नदी वही जो जाती है।
यो ही जीवन बह जायेगा यह तुझको समझाती है॥
× × ×
खिल खिलकर सब फूल आग मे कुम्हला-कुम्हला जाते हैं।
तेरी भी गति यही है, गाफिल यह तुझको दिखलाते हैं॥
× × ×
इतने पर भी देख औ सुनकर क्या गाफिल हो फूला है।
'हरीचंद' हरि सच्चा साहब उसको बिलकुल भूला है॥[1]

यहाँ कवि ससार की निस्सारता की ओर सकेत कर चेतावनी देता है और यह बताता है कि दिया, नदी और फूल सभी से हम चेतावनी का स्वर सुनने को मिलता है। इस पर भी गाफिल फूल की तरह रहता है, वह सच्चे साहब से नेह नही लगाता। कवि का यहा सच्चा साहब निर्गुण परम्परा से ही सबध रखता है। मारकण्डेय लाल के अनुसार यह धाम, ग्राम, आराम और हाथी घोडा की बात कौन कहे यह सोने जसी देह भी मिट्टी बन जायेगी। अत तू चेत जा और राम नाम का सुमिरन कर। यदि तू कहना नही मानता है तो अपनी आँखो से देख ले—

छूटि जहैं धाम ग्राम अपर आराम सारी
बैन यह हमारी उर-अन्तर म धारि लै।
रहि जैहैं हुयाई हाथी घोडो औ खजाना सबै,
एको नहिं जहैं सग मले तूँ बिचारि लै।
मानुष शरीर पाय राम सा लगाय नेह,
'चिरजीव' याहि बिधि जीवन सुधारि लै।
सोना ऐसी देह यह मारी होय जहैं,
प्यारे कह्यो जो न मानैं तो तू नैनन निहारि लै[2]॥

भारतेन्दु बाबू ने अपने जीवन के अतिम दिनो म निर्गुण काव्य परम्परा म नवीन-नवीन प्रसूनो को उगा दिया है। "डका कूच का बजा मुसाफिर"[3] 'हरिमाया मटियारी'[4] 'मृत्यु नगाडा बजि रहा',[5] 'क्यो वे क्या करने आया',[6] 'तुझ पर काल अचाक्न टूटैगा',[7] 'यारो इक दिन मौत

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड (प्रेमप्रलाप), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १४१।

२ शिवपूजन सहाय (सपादक) हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० २७६।

३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, विनय प्रेम-पचासा, छ० ४३, प० ५५१।

४ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, विनय प्रेम-पचासा, छ० ४२, प० ५५१।

५ वही, विनय प्रेम-पचासा, छं ४४, प० ५५२।

६ ब्रजरत्न दास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, विनय प्रेम-पचासा, छ० ४६, पृ० ५५३ ५४।

७ वही, विनय प्रेम पचासा, छ० ४०, पृ० ५५१।

जरूर'[१] और 'चेत चेत रे सोवन वाले'[२] आदि पदो मे कवि की चेतावनी का स्वर ही बुलन्द है।

अन्त मे कर जब कहते कहते थक जाता है, ससार के लोग नही सुनते हैं तो वह ठीक कबीर की भांति ही खुलेआम बाजार मे खडा हो कर लाठी लेकर हमको तुमको सबको धूर, अधा, मगरूर और गन्हा तक कह जाता है। उसे तनिक भी परवाह नही है कि ससार के लाग इन विशेषणो से मर्माहत होगे या नही, स्वीकार करेंगे या नही कवि के शब्दो म ही देखिए—

अपने को तू समझ जरा क्या भीतर है, क्या भूला है।
तेरा असली रूप क्या है तू जिसके ऊपर फला है॥
हड्डी चमडी लहू मास चरबी से देह बनाई है।
भीतर देखो ता घिन आवै ऊपर चिकनाई है॥
लार पीप मल मूत पित्त कफ नकटी खू और पोटा है।
नीली पीला नस कीडो से भरा पेट का लोटा है॥
तनिक कही खुल जाय तो थू थू कर सब नाक सिकोडगो।
जरा गलै या पचै मरै ता देख सभी मुँह मोडगा॥
भरी पेट मे मल की गठरी ऊपर हाड सुघरता है।
तिसको छू कर वायु चलै तो नाक बद सब करता है॥
मल से उपजा मल म लिपटा मति मलीन तू घूरा है।
इस शरीर पर इतना फूला रे अधे मगरूरा है॥
जिसके छुत्ते ही तू गदा मिलने ही से सजता है।
'हरीचद' उस परमातम को, गदहे क्या नही भजता है॥[३]

प्रेम

सच्चे प्रेम से ही प्रिय की प्राप्ति हो सकती है। यदि प्रेम नही है तो प्रिय भी नही है। निगुण सत कवियो ने प्रम के बारे मे बहुत कुछ लिखा ह। सूफियो के प्रभाव से यह प्रेम तत्त्व आया। भारतेन्दु युग म यह प्रेमतत्त्व अपने रूप म मौजूद है। कबीर पथी हरिचरण दास ने लिखा है कि जहाँ प्रेम नही है उसे मसान ही समझना चाहिये—

जो घट प्रेम न सचरे नही नाम का ध्यान।
साधु सेवा नाहिं घर जीवत जानु मसान[४]॥

और भी

रटत रटत रसना थके प्यासे कण्ठ सुखाय।
प्रेम न छाड़े पपिहरा नित नव बढे सवाय[५]।

पतिव्रता धर्म एव नारी निन्दा

समाज की अव्यवस्था से सन्त कवि अधिक व्यथित थे। कनक कमानी का मोह जाल समाज

---

१ वही, विनय प्रेम-पचासा, छ० ४६ पृ० ५५२ ५३
१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, विनय प्रेम-पचासा, छ० ४८, पृ० ५५३
२ वही, छं० ५०, पृ० ५५४।
१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० १७८।
२ वही, पृ० १७८।

को विलासी बना रहा था। ऐसी स्थिति मे सन्तो ने एक तरफ नारी की निन्दा की और दूसरी तरफ पतिव्रता धम का उपदेश दिया। पतिव्रता नारी की प्रशसा तो कामनी के परम निन्दक कबीरदास जी ने भी की है[1]। *भारतेन्दु युग मे बालमुकुन्द गुप्त पातिव्रत धम को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि नारी* के लिए मन वचन और कम से पातिव्रत धर्म ही एक मात्र धम, नेम, व्रत है। यथा—

एक हि धर्म एक व्रत नेमा, काय बचन मन पतिपद प्रेमा।
पै पति सो जो मन कहू भावे, रोम रोम भीतर रम जावे॥[2]

ठाकुर जगमोहन सिंह ने नारी की निन्दा करते हुए लिखा है कि नारी नरक की सोपान है, इसमे शक नहीं है। इनसे जीते जी तक्लीफ तो होती है, मरने के बाद भी दुख का ठिकाना नही रहता। एक ही पद मे कवि शम्भु और हरि को मृगनयनी का दास बनाकर नारी स्तुति का स्तुत्य प्रयास भी करता है,। यथा कवि के शब्दो म—

पढि यह स्वप्न बिचारि लीजिए कितन दुख की खानी।
नारी अहै जगत् पुरुषन का कहिए क्या बखानी॥
शभु स्वयभू हरिहू जाके बल प्रमाव रख हेरे।
ते इन मृगनैनिन के घर के दास अरु चेरे॥
पै यामे काछु शक नहि रचक नारि नरक सोपाना।
जियत देय दुख दारुन देन्हि मरे न कछू ठिकाना॥
यासो बार बार कर जारे कहहुँ देखि सब रगा।
विषपूतरि सम ताहि तरकिए तजि वाको पर सगा॥[3]

भारतेन्दु जी पातिव्रत धम के अलावे ससार मे और धर्म को स्वीकार ही नही करते। नारी के लिये ससार मे दूसरा धम नही है। अनुसूया, सीता, सावित्री के चरित्र से इसी बात की सिद्धि होती है और वेद, पुराण भी इसे स्वीकार करते हैं—

जग मे पतिव्रत सम नही आन।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जज मे यासु समान॥
अनुसूइया सीता साविनी इसके चरित प्रमान।
पति देवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान।
धन्य देस कुल जह निवसत हैं नारी सती सुजान।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य व्याह असथान।
सब समर्थ पतिवरता नारी इन सम और न आन।
याही ते स्वगहु म इनको करत सबै गुनगान॥[4]

काम, क्रोध, लोभ

पच महाविकार (काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह) सामाजिक जीवन के लिये अभिशाप है।

---

१ पतिबरता मैली मली काली कुचिल कुरूप।
पतिबरता के रूप पर, वारौं कोटि स्वरूप॥ कबीर ग्रथावली, पृ० २०।
२ यशोदानन्द अखौरी (सपादक) बालमुकुन्द गुप्त, स्फुट कविता, पृ० १२३।
३ डा० जगमोहन सिंह श्यामास्वप्न सपादक डा० श्रीकृष्णलाल, भूमिका, पृ० २७।
४ रामनरेश त्रिपाठी कविता कौमुदी २, हिन्दी रत्नमाला कार्यालय, प्रयाग, पृ० २८।

इनसे व्यष्टि और समष्टि दोनों का विनाश होता है। इनसे सामाजिक हतप्रभ हो जाता है। सन्तों की भाँति भारतेन्दु युग के कवियों ने भी इससे दूर रहने का उपदेश दिया है। इनकी जितनी निन्दा प्राचीन युग में हुई है, उतनी कभी भी नहीं। रीतिकाल के रगमच पर तो पचविकार पूर्ण जवानी पर थे। फिर भी भारतेन्दु ने उनकी निन्दा की है। भारतेन्दु ने कहा है कि यह मानव भूल कर भव भोगन मे रमता फिरता है। इन्द्री सुख इसे जहाँ-जहाँ मिलता है भ्रमण करता है। यथा—

भूलि भव भोगन भ्रमत फिर्यो।
खर कूकर सूकर लौं इत उत डोलत रमत फिर्यौं।
जह जह छुद्र लह्यौ इद्री-सुख तह तह भ्रमत फिर्यौं॥
कबहूँ न दुष्ट मनहि करि निज बस कामहि दमत फिर्यौं।
'हरीचद' हरि पद पकज गहि कबहूँ न नमत फिर्यौं॥[1]

योग

भारतीय दर्शन और धर्म का योग प्रमुख अग है। महर्षि पतजलि ने योग के आठ अग बतलाए हैं—यम नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि। योग साधना की शैली में और लक्ष्य मे तर्क और विज्ञान की गुंजायश नही है। दार्शनिक और अन्य विचारको ने मोक्ष प्राप्ति हेतु योग साधना को सर्वश्रेष्ठ ठहराया है। मोक्ष प्राप्ति के निमित्त भारतीय साधकों ने जिन तीन साधनों (योग, भक्ति, ज्ञान) का उल्लेख किया है उनमें योग प्रथम है और भारतीय धर्मसाधना मे प्राचीनतम साधन है। इसके अवलम्बन से साधक ससार सागर के त्रिविध तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक) से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त होता है। कबीरदास ने योग की साधना को स्पष्ट स्वीकार किया है। भारतेन्दु जी ने कबीर के योग के सयोग से साधना का स्पष्ट सकेत किया है—

कुम्भ कुच परस, दृग-मीन को दरस तजि
तुच्छ सुख मिथुन को हिय बिचारै।
छल मकर छाडि सब तानि वैराग धनु,
सिंह ह्वै जगत के जाल जारै॥
कृष्णवृषभानु-कन्या सहित भजन करि,
कलि कुवृश्चिक समुझि दूर टारै।
छाडि अन आस विस्वास हिय अतुल धरि,
करम की रेख पर मेख मारै॥[2]

निर्गुण सम्प्रदाय मे कबीर की खेचरी मुद्रा का महत्वपूर्ण स्थान है। इस मुद्रा में योगी जीभ को उलट कर कपाल कुहर में प्रविष्ट करता है और उसकी दृष्टि युवा में निबद्ध हो जाती है। गुरु-सहायलाल के एक पद में इसी का प्रयास परिलक्षित होता है। पद प्रस्तुत है—

तत्वो को देखा स्वास मे स्वर ले गये ब्रह्माण्ड मे।
नि तत्व पद पाया नही स्वरोदय रखा तो क्या हुआ॥

१—ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रेम प्रलाप, पृ० २९४।

२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, स्फुट कविताएँ, पृ० ८२७।

कोई नासिका हिय तिर्कुटी ब्रह्माण्ड हू जा जा घुसे।
कुछ भी मरम अनबूझ ना अनुमव हुआ तो क्या हुआ॥
अनहद मे सुरती जा लगी आनन्द मं जोती पगी।
निज राम की धुन को गम नही बाजा बजा तो क्या हुआ॥[१]

उक्त पद पर कबीर[२] परम्परा का स्पष्ट प्रमाव है। यहाँ यह अनहद और सुरती कबीर का का ही तो है।

भक्तिपथ

भारतीय दार्शनिक जगत् म भक्ति पथ का महत्वपूर्ण स्थान है। यह माग ब्रह्म से अनुराग एव तादात्म्य स्थापित करने का सर्वोतम साधन है। भक्तिपथ ब्रह्माराधना का सर्वसुलम साधन है। ईश्वर के प्रति सच्चा अनुराग ही मक्तिपथ है। मारतेदु जी ने मक्ति के बारे मे अपने तीन पदो मे गूढ़-तम विचारो का सकेत किया है। उनके अनुसार सब मार्गों के बीच मक्तिमार्ग विलक्षण है—

सफल मारगन सो भक्ति मारग बीच
अति विलक्षण सु अनुमवहि मानै।
पथक कहि शरण को मार्ग उपदेस करि
कृष्ण के हृदय की बात जानै॥[३]

मक्तिपथ की स्थापना हेतु कवि आगे कहता है—

एक साकार परब्रह्म स्थापन-करन
चारहू वेद के पारगामी।
हरन मायावाद बहुवाद नास करि
मक्ति-पथ-कमल को दिवस स्वामी।[४]

× × ×

मक्ति आचार उपदेस नित करत मुनि
कर्म मारग प्रवर्त्तन सु कीनो।
सदा योगाग्नि मे मक्ति मारग एक
करहु साधनहि उपदेश दीनो॥[५]

मन और विकार

अन्य सभी मक्तो की भाँति ही भारतेन्दुकालीन कवियो का मन के प्रति दृष्टिकोण है। मन अत्यन्त चचल है। इसकी चचलता से मजन भाव म बाधा उपस्थित होती है। इसी से वे चाहते हैं कि कृष्ण प्रेम मे जाकर यह स्थिर हो जाय—

१, शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, माग २, पटना, पृ० ६१।

२ पदम आसन करै, पवन परिचै करै। गगन के महल पै मदन जारै॥
कहत कबीर कोई सत जन जौहरी। करम की रेख पर मेख मारै॥
श्यामसुदर दास (सपा०) कबीर ग्रथावली, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ७०।

३ ब्रजरत्नदास (सपा०) मारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, श्रीसर्वोत्तम-स्तोत्र (भाषा), छ० १७, पृ० ७१६।

४ वही, पृ० ७१४।

५ ब्रजरत्नदास (सपा०) मारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, पृ० ७१६।

यह मन पारद हूँ सो चञ्चल।
एक पलक में ज्ञान विचारत दूजे में तिय-अंचल॥
ठहरत कतहुँ न डोलत इत उत रहत सदा बौरानो।
ज्ञान ध्यान की आन न मानत याको लपट बानो॥
तासों या कहँ कृष्ण बिरह-तप जो कोउ ताप तपावै।
'हरीचन्द' सो जीति याहि हरि भजन रसायन पावै॥[1]

शरीर के बारे मे उनका यह विश्वास है कि यह मल-मूत्रादि का पात्र है, वह समस्त अवगुणो की खान है, उसकी सहज गति निम्नगामिनी है। मनुष्य के मन की समस्त कुटिल भावनाएँ (काम, क्रोध, ईर्ष्या, मोह, लोभ आदि) अपनी अपनी तुष्टि और पूर्ति चाहती है। इस प्रकार मनुष्य का उद्धार नही संभव है। भारतेंदु जी ने उपनिषदों का सहारा लेकर कहा है—

अध आसरे चल्यौ अध के
कहो कहा लौं जाय?[2]

संत कवियो की भाँति यदि एक तरफ वह अवगुणो पर विचार करता है, तो दूसरी तरफ उनके उद्धार के बारे म भी सोचता है। यहाँ वह उद्धार का एक ही उपाय बतलाता है और वह है भगवान की कृपा—

नर तन कहो सुद्धता कैसी।
कितनहु धाओ पोछो बाहर भीतर सब छिन पैसी॥
कारन जाको मूत रही मल हो में लिपटि अनैसी॥
ताको जल सो सुद्ध करत तिनको ऐसी की वैसो।
दैहिक करमन सो न बनै कछु ता गति सहजमलै सो।
हरीचन्द' हरि-नाम भजन बिनु सब वैसी की वैसी॥[२]

सगुण काव्यधारा

नवधा भक्ति

भक्ति के प्रधान दो भेद हैं—एक साधन रूपा जिसको वैध और नवधा भक्ति नाम से पुकारा जाता है,और दूसरा साध्य रूपा जिसे प्रेम-लक्षणा के नाम से पुकारते हैं। इनमे सेवा साधन रूप है और प्रेम साध्य है। सगुण-काव्यधारा मे इन दानो प्रकार की भक्तियो की महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ हम सर्वप्रथम भारतेंदुयुगीन नवधा भक्ति की चर्चा प्रस्तुत करते हैं।

भगवान् विष्णु के नाम, रूप, गुण और प्रभावादि का श्रवणकीर्तन और स्मरण तथा भगवान् की चरण सेवा, पूजा और वंदन एव भगवान् म दास्यभाव, सखाभाव और अपने को समर्पण कर

१ वही, कृष्णचरित्र छ० ४३, पृ० ६१८।
२ वही, दैन्यप्रलाप, छ०३, पृ० ६५०
३ श्रवण कीर्तन विष्णोः स्मरण पादसेवनम्।
अर्चन वन्दन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम्॥
श्रीमद्भागवत्, ७।५।२३।

देना, यह नौ प्रकार की भक्ति है।[1] इन सबके मूल मे सेवा भावना निहित है। इनमे किसी एक का भी सच्चे हृदय से अनुष्ठान करने पर मनुष्य परम पद को प्राप्त हो जाता है।

भारतेन्दुयुगीन भक्ति की भूमिका में शृंगारभक्ति का पावन स्रोत लहरा रहा था। वहाँ नवधा भक्ति शृङ्गार सवलित हृदय की हुलास थी। फिर भी भारतेन्दु युग में नवधा भक्ति का बीज प्रस्फुटित हुआ, पल्लवित और पुष्पित हुआ। नवधाभक्ति नवीन सुगन्ध से समस्त भारतेन्दु मण्डल सुरभित है। भले ही नवधा के नम्र भवन पर नवीन विचारो की प्रेषणीयता की सम्भावना न हो।

श्रवणभक्ति

श्रवण भक्ति उसे ही प्राप्त होती है जिसके हृदय मे श्रद्धा और प्रेम का वास हो। श्रवण भक्ति को प्राप्त करने के लिये महापुरुषों की सगत आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता मे भगवान् ने अर्जुन से कहा है कि हे अर्जुन तत्व को जानने वाले ज्ञानी पुरुषो से भले प्रकार दण्डवत प्रमाण तथा सेवा और निष्कपट ज्ञानी भाव से किये हुए प्रश्न द्वारा उस ज्ञान को जान, वे मर्म को जानने वाले ज्ञानी जान तुझे उस ज्ञान का उपदेश करेंगे[1]। अत श्रवण भक्ति बिना सत्सग के नही प्राप्त हो सकती।[2]

भारतेन्दु युग के कवि चतुर्भुज मिश्र ने श्रवण भक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया है। आप भारतेन्दु युग मे रामकाव्य धारा के प्रमुख कवि हैं। कवि के अनुसार सीता, अशोक वाटिका मे भगवान् की सुधि में खोई खोई सी पड़ी है। वह विगत जीवन की सुधि से वतमान जीवन के दिन काट रही हैं। अब उन्हें भगवान् के मिलने की आशा नहीं है। इसी बीच त्रिजटा का पहरा उठता हैं। हनुमान प्रवेश करते हैं। हनुमान द्वारा अगूठी का गिरा देना। सीता को रामनाम मिल जाता है। फिर क्या हनुमान से सारी कहानी का श्रवण करती है। यथा—

सीता को सोच भारी, रोने लगी बेचारी।
भूले मुझे खरारी, सुधि ना लिया हमारी॥
अब प्रान ही को खोवे, मिलने की आस धोवें।
भर नीद नाथ सोवें, हम बाट कबला जोवें॥
त्रिजटा ने देख पाई सपना तुरत सुनाई।
पहरा तुरत उठाई बैठी किनार जाई॥
हनुमान ने विचारा, कैसे करूँ सहारा।
परतीत ह्व हमारा, त्यों मुद्रिका किनारा॥
अगूठी तुरन्त डारा मानो गिरा अगांरा।
सीता करे विचारा, टूटा सरग से तारा॥
मन में विचार आई, अगूठी तुरत उठाई।
तहँ राम राम नाम पाई, कैस यहाँ प आई॥

---

१ तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञान ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन
—श्रीमद्भगवद्गीता, ४। ३४

२ बिनु सतसग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु राम पद होइ न दृढ अनुराग॥
—गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दो० ६१, पृ० ६२६।

वनवास की कहानी, हनुमान ने बखानी।
यह बात मैंने जानी, तू ही है रामरानी ॥[1]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के अनुसार कृष्ण नाम मनि दीप है जो हिय रूपी घर मे प्रकाश फैलाता है। यह घर ऐसा है, जहाँ बहुत दीप बारने पर भी उजाला नही होता है। कृष्ण नाम का श्रवण ही श्रेयस्कर है। इसके श्रवण से हिय घर मे प्रकाश की किरणें विकीर्ण हो जाती हैं—

कृष्ण नाम मनि दीप जो हिय घर म न प्रकाश।
दीप बहुत बारे कहा हिय-तम भयो न नाश ॥[2]

कीर्त्तन

भगवान् के नाम, रूप गुण, प्रभाव चरित्र और रहस्य आदि का श्रद्धा और प्रेमपूर्वक उच्चारण करते करते शरीर मे रोमाच, कण्ठावरोध, हृदय की प्रफुल्लता अश्रुपात आदि का होना कीर्त्तन भक्ति का लक्षण है।

कीर्त्तन भक्ति भी महानुभावो की कृपा स ही प्राप्त हो सकती है। भक्तो द्वारा भगवान् के प्रेम, प्रभाव तत्त्व और रहस्य की बातो को सुनने या शास्त्रो के पढ़ने से भगवान् म श्रद्धा होती है, और तब मनुष्य कीर्त्तन भक्ति को पाता है। इस प्रकार भगवान् के प्रति अनन्य प्रेमभाव की उत्पत्ति होती है। गीता मे भी यही भाव व्यक्त किया गया है कि यदि कोई दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरे को निरन्तर भजता है तो वह साधु ही है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और उसे शान्ति की प्राप्ति होती है।[3]

भारतेन्दु जी ने कीर्त्तन भक्ति का वर्णन किया है। उनकी व्रज-वनिता कृष्ण के प्रेम में पागल हो गई है, उसे भगवान् के कीर्तन म अपने तन की सुधि भी नही रह गई है। आँचल खुला है, लट लटकाए हैं। अगो मे धूल भरी है। कभी यहाँ और कभी वहाँ, कभी वह रोती है, कभी गाती है और कभी हँसती है। अत उसके हृदय मे कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम भाव की जागृति हो गई है। यथा—

आँचर खोले लट छिटकाए तन की सुधि नहि ल्यावति हौ।
धूर धूसरित अग सक कछु गुरु-जन की नहि पावति हौ।
'हरिचद' इत सा उत व्याकुल कबहुँ हँसत कहुँ गावति हौ।
कहा भयो है पागल सी क्यों कान्ह कान्ह गोहरावति हौ ॥[4]

कीर्त्तन भक्ति मे भक्त भगवान् के लिये पागल हो जाता है। वह उसके लिये इतना बेचैन हो जाता है कि समाज के लोग उसे पागल छोड कर और कुछ कहना मजूर ही नहीं करते। तन्मयता की उत्कृष्टता इतनी और जगह नही मिलती।

---

१ शिवपूजन सहाय (सपा०) हिंदी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ६३।

२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, कार्तिक स्नान, दो० १८, पृ० ७८।

३ अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवसितो हि स ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्त प्रणश्यति ॥ —श्रीमद्भगवद्गीता ९।३० ३१।

४ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खड पृ० ६७१।

'चन्द्रावली नाटिका' में चन्द्रावली कृष्ण भगवान् के चिन्तन में आत्मविभोर है। उसे अपने शरीर की सुध-बुध नहीं। शरीर मे रोमांच हो उठा। वह कृष्ण ही कृष्ण रट रही है। अचानक आँखों में आँसू का प्रवाह उमड पडता है। वह नयनो को साश्रु पाकर उनकी भर्त्सना करती है। प्रस्तुत पद म प्रेमाधिक्य है, लेकिन भक्त के क्रिया-कलापो से दीनन पद्धति की भक्ति ही परिलक्षित होती है। वह नयना से पूछती है कि बताओ किससे पूछ कर तुम श्रीकृष्ण से दौडकर मिली थी। किसने तुम्हें इस तरह की सलाह दी थी। क्षण मे ही लाजलाज छोड दी। अब धैयधारण करो। रोने धोने से क्या होता है। अपनी करनी का फल भोगो। यथा—

धाइकै आगे मिली पहिले तुम,
कौन सो पूछि कै सो मोहि माखौ।
त्यो सब लाज तजी छिन मे
केहिके एतौ कियो अभिलाखौ॥
काज बिगारि सबै अपनो,
'हरीचन्द' जू धीरज क्यो नहिं राखौ
क्यो अब रोइकै प्रान तजौ,
अपुने किए को फल क्यो नहिं चाखौ॥[1]

स्मरण

भगवान् के नाम, गुण, प्रभाव, लीला तत्त्व और उनकी रहस्यमयी कथाओ का श्रवण तथा पठन और मनन करना ही स्मरण भक्ति है। जयदयाल गोयन्दका ने लिखा है[2] कि जहाँ तक हो सके एकान्त एव पवित्र स्थान मे सुखपूर्वक स्थिर सरल आसन पर बैठकर इन्द्रियो को विषयो से रहित करके कामना और सकल्प को त्याग कर प्रशान्त और वैराग्य युक्त चित्त पर अथवा चलते फिरते, उठते बैठते, खाते पीते, सोते सभी काम करते हुए भी स्वाभाविक बुद्धि और सरल भाव से सगुण निगुण, साकार निराकार के तत्त्व को जानकर गुण और प्रभाव सहित भगवान् के स्वरूप का चिन्तन करना भगवान् के नाम का मन से स्मरण करना भगवान् की लीलाओ का स्मरण करके मुग्ध होना, भगवान् के तत्त्व और रहस्य को जानने के लिये उनके गुण, प्रभाव का चिन्तन करना तथा दिव्य स्तोत्र और पदों से मन के द्वारा स्तुति और प्रार्थना करना, इस तरह स्मरण के बहुत से प्रकार शास्त्रों मे बतलाए गये हैं।

भारतेन्दु तथा उनकी गोष्ठी के भक्त कवियों ने स्मरण भक्ति का उल्लेख किया है। कविवर रामबिहारी सहाय ने अपने एक पद में 'नीको' कहकर सुमिरन की महत्वपूर्ण प्रशसा की है। यथा—

सतन् सो भाव नीको, दाव नीको दुजन सा,
बधु सो बनाव नीको भाव नीको राम को।
गीता को ज्ञान नीको, स्रवन पुरान नीको॥
दीनन को दान नीको, गाठन को दाम को।

---

१ व्यथित हृदय (सपादक) चन्द्रावली नाटिका, स्टुडेण्ट्स फ्रेण्डस, इलाहाबाद, द्वितीय सस्करण, १६५७, पृ० २४।

२ जयदयाल गोयन्दका नवधा भक्ति, गीताप्रेस, गोरखपुर, २०२०, पृ० १६-२०।

सेवा पितु-मातु नीको लायक सो मत नीको
कहत 'बिहारी' बात, नीको परिनाम को।
गगा-जल पानी नीको गुरुजन को मान नीको
सुमिरन सदा ही नीको, राधा के नाम को ॥[१]

यहाँ नीको शब्द दस बार आया है। लेकिन क्या मजाल की भावा मे किसी प्रकार की गडबडी हो, या भाव सकोच की स्थापना हो। राधा नाम का सुमिरन ठीक उसी प्रकार अच्छा है जिस प्रकार माता पिता की सेवा, गुरजनो का मान वह गगा जल के समान पावन पवित्र है।

स्मरण से मानव भवसिन्धु को पार कर जाता है। राधा और राधारमण के चरण कमल जुग पोत हैं। इनके सुमिरन से ससार सागर को तुरत ही पार किया जाता है। यथा—

राधा राधा रमन के चरण कमल जुग पोत।
सुमिरत ही भव सिन्धु ते पार तुरत ही होत ॥[२]

कविवर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी कृष्ण के अनन्य भक्त हैं। उन्हें गोपाल के बिना एक क्षण रहना भी मुश्किल है। उनके गोपाल देवी-देवता, माता पिता, सखा और मित्र सभी हैं। अत वे यदि रीझते हैं तो गोपाल स ही और क्रोध भी करते हैं तो गोपाल से। गोपाल के सिवा अन्य कोई उनके अन्तस्तल म निवास नही करता। कवि कहता है—

भजो तौ गुपाल ही को सेवै तो गुपालै एक,
मेरो मन लाग्यो सब भाँति गोपाल सो।
मेरे देव देवी गुरु माता पिता बधु इष्ट,
मित्र सखा हरि नाता एक गोपबाल सो।
'हरीचद' और सो न मेरो सम्बन्ध कछु,
आसरो सदैव एक लाचन बिसाल सो।
मागौं तो गुपाल सो न माँगौं तो गुपाल ही सो,
रीझौं तो गुपाल पै औ खीझ तो गुपाल सौं ॥[३]

यहाँ कवि को गुपाल का ही भरोसा है। उसके नेत्रा के आगे ही रह उसी से माँगना भी चाहता है और नही भी माँगना चाहता है। कवि को लगता है कि यदि गोपाल कुछ नही भी देगा तो कोई शिकायत नही। किसी पार्थिव शरीर के सामने हाथ तो नही फैलाया। वह बडे गर्व से गोपाल का आसरा लिये बैठा है।

पादसेवन

पादसेवन का मतलब मूर्ति उपासना है। ऊपर वर्णित भक्ति (श्रवण, कीतन, स्म) महिमा के अतगत है। यह भक्ति भगवान् के चरण कमलो का सेवा से सबधित है। प्रभु की दिव्य मूर्ति की स्थापना कर या मानस मूर्ति मनोहर के चरण कमलो म एकाग्र चित्त हो जाना ही पाद सेवन भक्ति है। भगवान् के चरण कमला की सेवा से आत्मा पवित्र हो जाती है, क्या नही हा ? इन्ही के चरण

---

१ शिवपूजन सहाय (संपादक) हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २ पटना, पृ० ६९।
२ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (सपादक) कविवचन सुधा, २६ नवम्बर, १८८३ ई०, (मासिक), पृ० २।
३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ५४४।

प्रक्षालन जल से निकली गगा के पावन जल को पा भगवान् शकर भी शिवत्व को प्राप्त हुये। भक्तिकाल मे पाद-सेवन की महत्ता बहुत ही अधिक थी। रामायण म तो सीता[१] आदर्श ही हैं, अगद और हनुमान[२] भी कम नही हैं। निषाद राज[३] तो अपने चातुय से समस्त रामायणकालीन जगत् को पवित्र कर देता है।

भारतेन्दु जी भगवान् के चरण चिह्नो का वर्णन कर नवधा भक्ति की एक अलग धारा ही बहा देते हैं। अब तक भगवान् के पदाम्बुजो की सेवा ही भक्त को अलम् थी। यहाँ भारतेन्दु जी उनके चरण चिह्नो का वणन कर अपनी वाणी का पवित्र करते हैं।[४] उनका कहना है कि भगवान् के चरणो के स्पर्श से मनुष्य इन्द्रतुल्य हो जाता है, क्योंकि उनके पद कमला म बज्र का चिह्न है—

चरण परस नित जे करत इन्द्र तुल्य ते होत।
बज्र चिह्न हरिपद-कमल येहि हित करत उदोत ॥[५]

भगवान् के चरणो म जो एकाग्रचित हो जाता है, वह परम अभय पद प्राप्त कर लेता है—

परम अभय पद पाइहौ याकी सरनन आइ।
मनहुँ चरण यह कहत है शख बजाइ सुनाइ ॥[६]

कवि अपने मन को वृथा बहकने पर चेतावनी देता है और कहता है कि तू क्या जगत् जाल मे फँसता जाता है। तू वेदान्त वन मे वृथा ही भटकता फिरता है। एकमात्र उपाय है राधा-माधव चरन मजु और कुछ नही।

बिनु हरि-पद राधा भजन नाहिन और उपाय।
क्या मन तू भटकत वृथा जगत जाल फँसि धाय ॥[७]
मथि कै वेद पुरान बहु मह्यै लह्यौ इक सार।
राधा माधव चरन मजु तजु जप जोग हजार ॥[८]
भ्रमि मत तू वेदान्त-वन वृथा अरे मन मोर।
चलु कलिंदजा-कुज-तट लखु घनश्याम किशोर ॥[९]

---

१ छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुन्ति दिवस जिमि कोकी ॥
—रामचरितमानस, अयोध्याकाड, २।६६।४, पृ० २७१

२ बडभागी अगद हनुमाना। चरन कमल चाँपत बिधि नाना ॥
—गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस, लकाकाण्ड, ६।१०।८, पृ० ५१२

३ पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार ॥
—वही, अयोध्याकाण्ड, २।१०१।

४ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, (भक्तमवस्व) पृ० ३।

५ वही, पृ० ११।

६ वही, पृ० ७।

७ वही, (कार्तिक स्नान), पृ० ७७।

८ वही, पृ० ७७।

९ वही, पृ० ७७।

ठाकुर जगमोहन सिंह भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख कवियो से हैं। उन्होने एक पद म अपने गुमया के प० पर गिरकर अपनी परतीति के बारे म यहाँ तक यह डाला है कि 'सब छोडि तुम्है हम पायो अहो, तुम छोडि हमैं कहो पायो कहाँ।' कवि की विनती पैरो पर गिर कर भक्ति जगत् म अपना अ यतम स्थान रखती है। कवि के शब्दों मे—

परि पैया गुसैया सरीस करी बिनती बहु जोर कै हाथ गहा।
तुमहूँ पहले बहु बात दई 'नहिं छोडहिंगी हम कैहू कहा॥
जगमाहन हू तिमि घ्याय तुम्है परतीति करी पतिया बिनहा।
सब छोडि तुम्हैं हम पाया अहा तुम छोडि हमैं कहो पायो कहाँ॥[१]

कवि पदों म जो नम्र निवेदन करता है वह भाव की दृष्टि से बड़ा ही सुन्दर बन पडा है। उसकी दीनता और भगवान् की चतुराई का अच्छा मुकाबला हो गया है। भक्त और भगवान् दोनो से काम ही पडा है।

अर्चन

अचन भक्ति का भी सम्बन्ध मूर्ति उपासना से है। भगवान् की मूर्ति या मानस मूर्ति अर्थात् किसी भी प्रकार के हृदय का रुचिकर लगने वाले भगवान् के स्वरूप को यथायोग्य नानाविध उपचारा से श्रद्धा भक्तिपूर्वक उनका सेवन-पूजन करना अर्चना भक्ति प्रभु की प्रतिमा की पूजा धूप-दीप नैवेद्य आदि से करता है। घी के दिये जलाता है, उन्हें प्रसाद चढाता है। भगवान् उसे स्वीकार करते हैं।

गीता म कहा गया है कि परम श्रद्धा और प्रेम के साथ भगवान् की पूजा की जाय तो वे स्वय अपने दिव्य मंगल विग्रह-स्वरूप म प्रकट होकर भक्त के अर्पण किये हुए पदार्थों को खाते हैं।[२]

भारतेन्दु युग म अर्चन भक्ति की ही श्रेष्ठता स्वीकार की गई है। समस्त युग म सम्प्रदाय' का सुनहला सवेरा था। भारतेन्दु मण्डल के सभी कवि किसी न कि सम्प्रदाय मे दीक्षित थे। अत अर्चन भक्ति की बहुलता है। भारतेन्दु जी स्वय ही वल्लभ सम्प्रदाय म दीक्षित थे। वल्लभ सम्प्रदाय मे प्रतिमा पूजन की महत्वपूर्ण व्याख्या हुई है। भारतेन्दु जी की गापियाँ साय समय भगवान् कृष्ण की आरती उतारती हैं—

साँझ समय आरति करत सब मिलि गोपि ग्वाल।
कबहुँ अकेले ही मिलत पिय नदलाल दयाल॥[३]

आरती के बाद भगवान् को भोग की भी आवश्यकता है, अत एक दूसरे पद म कवि धूप, दीप से आरती करने के बाद विविध भाँति के षटरस व्यजन की भी व्यवस्था करता है—

हरि को धूप-दीप लै कीजै।
षटरस बींजन विविध भाँति के नित नित भोग धरीजै॥

---

१ ठाकुर जगमोहन सिंह श्यामास्वप्न, सपादक डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० १६५।

२ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन ॥
—श्रीमद्भगवद्गीता, ९।२६

३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, उत्तरार्द्ध भक्तमाल, छं० १६, पृ० २२४॥

दही मलाई घी अरु माखन तातो पै लै दीजै।
'हरीचद' राधा-माधव छवि देखि बलैया लीजै ॥[१]

भारतेन्दु जी ने कार्तिक स्नान एव वैशाख माहात्म्य मे अपनी भक्ति के दिव्य उदाहरण प्रेषित किये हैं। कवि गगा स्नान करने के बाद दान देने की बात जो कहता है उससे अचन पद्धति की भक्ति का भाव ही झलकता है। इस तरह भगवान् की उपासना से मानव बैकुण्ठ लोक को प्राप्त होता है। कवि के शब्दो मे—

पुन्य मास वैशाष मे हरि सो राखि सनेह।
मनभायो ताको मिलै यामे कछु न सन्देह ॥[२]
मधुसूदन पूजन करै तप व्रत सह दै दान।
पाप अनेकन जनम के दाहै तूल समान ॥
माधव थापै पौसरा करै चटाई दान।
छत्रव्यञ्जन जूता छरी अरु सूछम परिधान ॥
चदन जल-घट पुष्प ग्रह चित्र वस्तु अंगूर।
देवहिं दीज प्रीति सो केला फल करपूर ॥
माधव मैं जो पित्र हित करत अबु घट-दान।
सक्तु व्यञ्जन मधु फल सहित प्रीति करत भगवान।
माधव हित जे देत घट या माधव के माहिं।
भोजन के सह विप्र को ते बैकुण्ठहि जाहिं ॥[३]

अन्त म कवि उन आलसियो को भी वैशाख के अंतिम तीन दिनो तक स्नान का उपदेश देते हुए अचन भक्ति की महत्ता की प्रतिष्ठापना करता है—

होइ सकै नहि मास भर जौ विधिवत् स्नान।
कर अत के तीन दिन तो फल होइ समान।[४]

भारतेन्दु युग मे अचन भक्ति की परम्परा का पूर्ण निर्वाह हुआ है। कवि श्रीसीतारामशरण तो ठाकुर जी का भोग लगाया हुआ प्रसाद प्राप्त करने के लिये बचैन हो जाते थे। वे पटना मे रहते समय बाबा भीष्मदास की ठाकुर बारी (बाकरगज) का ही भोग लगाया हुआ अन्न पाया करते थे।[५]

भारतेंदु जी अक्षय तृतीया के दान के बारे मे लिखते हैं—

छाता जूता आदि सब ग्रीषम सुख की वस्तु।
द्विजन देइ या तीज को कहि कृष्णार्पणमस्तु ॥[६]

---

१ वही, स्फुट कविताएँ, छ० ४, पृ० ८२९।
२ वही, वैशाख माहात्म्य, पृ० ६१।
३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेंदु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, वैशाख माहात्म्य, छ० २० २४, पृ० ६१।
४ वही, छं० २५, पृ० ६१।
५ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ५६।
६ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेंदु ग्रन्थावली, भाग २, पृ० ६३।

वन्दन

वदन भक्ति का सम्बन्ध भी मूर्ति उपासना से है। भगवान की धातु आदि की मूर्ति, चित्र शास्त्रवर्णित स्वरूप या मानसिक मूर्ति को शरीर अथवा श्रद्धा से साष्टांग प्रणाम करना या समस्त चराचर भूतों को भगवान का स्वरूप समझ कर श्रद्धा से प्रणाम करना वन्दन भक्ति है। वन्दन भक्ति की महत्ता कविकुल कलाधर गोस्वामी तुलसीदास ने समस्त संसार को सीयराममय जानकर दी है।[१] भारतेन्दुकालीन कविता में वन्दन भक्ति के तत्व पर्याप्त मात्रा में है।

बदरीनारायण चौधुरी प्रेमघन भगवान् के मानव रूप की उपासना करते हुए राधा माधव की युगल जोड़ी की मूर्ति को हिय में स्थापित कर लेते हैं। इस तरह मानस मूर्ति की वन्दना करना वन्दन भक्ति है। कवि युगल सरकार की उपासना करते हुए उन्हें सदा अनुकूल होने की प्रार्थना करता है—

जयति सच्चिदानन्द घन जगपति मंगल मूल।
दयावारि बरसत रहौ सदा होय अनुकूल॥
जय जय मानव रूप धर सकल जगत करतार।
जयति दुष्ट दलन श्रीकृष्ण हरन भू भार॥
जय जय जगजीवन करन भक्तन को प्रतिपाल।
जय राधारानी रमन सदा बिहारीलाल॥
नवल नील नीरद रुचिर रुचि मोहत मन मोर।
दामिनि दुति कामिनि सहित फेरि दया दृग कोर॥
बसहु सदा घनश्याम हिय सौदामिनी सरूप।
जय राधा-माधव मिली जोरी युगल अनूप॥[२]

प्रतापनारायण मिश्र तो ठीक तुलसीदास की भाँति ही समस्त संसार के सुंदर रूपों को ईश्वर की प्रतिकृति मानते हैं। उनका ब्रह्म संसार में व्याप्त है। अपनी प्रार्थनापरक पंक्तियों में यही भाव देते दिखाई पड़ते हैं—

सुमौन्दर्य जो पुष्प का तत्व है, सुआनन्द जो प्रेम का तत्व है।
कि जिसका यही सत्व आकार है उसे ही हमारा नमस्कार है॥[३]

भगवान को प्रणाम करने में कवि साकार और निराकार के पचड़े में नहीं पड़ता। उसका खुदा तो निराकार का आधार है, और दया का विशाल भंडार है उसके उसका अहंकार मिट जाता है। अतः उसे वह नमस्कार करता है। प्रतापनारायण मिश्र की यह श्रद्धा स्तुत्य है—

निराकार है या कि साकार है गुणागार या निर्गुणागार है।
निराधार का जो कि आधार है, उसे ही हमारा नमस्कार है॥[४]
सभी ज्ञान का जो कि आगार है, दया का बड़ा जो कि भंडार है।
मिटाता सदा जो अहंकार है उसे ही हमारा नमस्कार है॥[५]

---

१ सीयराममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
रामचरितमानस बालकाण्ड १।७।२ पृ० ३६
२ प्रेम केसर उपाध्याय (सम्पादक) प्रेमघन सर्वस्व (लालित्य लहरी) पृ० ३२६।
३ नारायणप्रसाद अरोड़ा (सम्पादक) प्रताप लहरी १९४९ ई०, पृ० २५६।
४ वही पृ० २५६।
५ वही, पृ० २५६।

भारतेन्दु जी ने वल्लभ के अनेक पद लिखे हैं। एक पद में तो कवि चार नामों की गिनती कर उन्हें एक शरीर मान वन्दना करता है। कवि के अनुसार भगवान के नाम अनेक हैं। वह लीला के निमित्त अनेक शरीर धारण करता है और भिन्न नामों से पुकारा जाता है, पर असल में वह एक ही है। अतः भिन्न भिन्न नामों वाले जिनका शरीर एक ही है कवि उनके पग की वंदना करता है—

> राधावल्लभ वल्लभी वल्लभ वल्लभ साई।
> चार नाम वपु एक पद बंदत सीस नवाई ॥[1]

दास्य भक्ति

भगवान के रूप, गुण, तत्व, रहस्य और प्रभावादि को जानकर श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक उनकी सेवा करना तथा आज्ञा का पालन करना दास्य भक्ति है। भक्त अपने को भगवान का दास समझ कर उनकी सेवा करता है और उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करता है। दास्यभाव की भक्ति से ही भगवान में अनन्य प्रेम की प्राप्ति होती है। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है कि बिना दास्यभाव के भवसागर से पार उतरना मुश्किल है।[2]

यह भक्ति श्रद्धा संवलित है। अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा की भावना विशेष होती है। ठाकुर जगमोहन सिंह तो सुत, पितु, मात और भ्राता को तज कर भगवान के चरण कमलों में बिना मोल का दासत्व स्वीकार करते हैं। कवि में स्वार्थपरता नाम को भी नहीं। वह निःस्वार्थ भगवान से नेह लगाता है—

> हम नेह कियो तजि गेह सबै सुत मातु पिता अरु भ्रात जहाँ।
> बिनु मोल के दास भए तबही जब कीन्हो कृतारथ मोहिं अहा ॥
> अब तो उनकी नहिं चाह करो जगमोहन दुःख अनेक सहा।
> सब छाँड़ि तुम्हैं हम पायो अहो तुम छोड़ि हमें कहो पायो कहा ॥[3]

दास्यभाव की पूर्ण उत्कृष्टता तो वहीं है जहाँ भक्त अपने को छोटा, नीच अधम और ईश्वर को बड़ा उच्च और पवित्र समझता है। भक्त का लघुत्व ही उसका गुरुत्व है। कवि प्रतापनारायण ईश्वर की शरण तज अन्यत्र जाने को स्वीकार नहीं करते। ईश्वर ही उनका एकमात्र आधार है—

> मेरो दूसरा नहिं द्वार।
> दीनबन्धु कृपायतन ! मैं सबहि भाँति तुम्हार ॥
> कौन शरणागत सुखद तुम सरिस सब प्रकार।
> गहहु जाकी आन तुम बिन है दया आगार ॥[4]

कवि ने यहाँ तुलसी से होड़ लगा दी है। उसके दास्यभाव में उसका दैन्य बड़ा प्रबल है।

भारतेन्दु जी अपने को दास ही नहीं बल्कि दासानुदास कहते हैं। उनके दासत्व में दैन्य की प्रबलता जन्मजात है। भारतेन्दु का जीवन ही इसके बिना अपूर्ण है। उनका कहना है—

१ व्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी उत्तरार्द्ध, भक्तमाल छं० १, पृ० २२३।

२ सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि ॥
गोस्वामी तुलसीदास रामचरितमानस उत्तरकांड दो० ११९ (क) पृ० ६७०।

३ ठाकुर जगमोहन सिंह श्यामा स्वप्न, सपा० श्रीकृष्णलाल, (विनय) पृ० १९४।

४ नारायण प्रसाद अरोड़ा (सं०) प्रताप लहरी, पटकापुर कानपुर, सन् १९४९ ई०, प्रेमपुष्पावली, पृ० १५४।

हम तो मोल लिए या घर के।
दास-दास श्रीवल्लभ कुल के चाकर राधावर के।
माता श्रीराधिका पिता हरिबंधु दास गुन-कर के।
'हरीचन्द' तुम्हरे ही कहावत नहिं विधि के नहिं हर के ॥[1]

या

सखा प्यार कृष्ण के गुलाम राधा रानी के।[2]

में उनका दासत्व स्पष्ट परिलक्षित होता है।

कवि की दास्यभावना मे उसके आत्म समर्पण का पक्ष प्रबल है। वह अपने को तुलसी[3] और सूर[4] की भाँति ही पतित पति और पतितन के सरदार कहता है। वस्तुत अपने को सबसे बडा पापी और तुच्छ समझना भक्ति का पहला सोपान है। भारतेन्दु जी को इस सोपान पर बढने मे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। कवि अपने को पतितपति की सज्ञा से अभिहित करता है—

हम मे कौन कसर पिय प्यारे।
अजामेल मैं का अवगुन जे नहिं तन माहि हमारे ॥
जानी और पतित के माथे सीग रही ह्वै मारो ॥
ता बिन हमहिं देखि नहिं तारत वृन्दा बिपिन बिहारी ॥
जो पापहि करिबै मैं जग मैं जीव पतित कहवावै।
सौ हमसो बढ़ि के कोउ नाही को मरी सरि पावै ॥
कछु तो बात होइहै जासो तारत हम वह नाहीं।
नाही तो 'हरिचद' पतित-पति ह्वै हम कित बचि जाही ॥[5]

कवि अपने को 'पतितन के सरदार' कहकर दैन्य प्रकट करता है—

बलिहारी या दरबार की।
बिधि निषेध मरजाद शास्त्र की गति नहिं जहाँ पुकार की ॥
नेमी धरमी ज्ञानी जोगी दूर किये जमि नारको।
पूछ होत जह 'हरीचद' से पतितन के सरदार का ॥[6]

इसी तरह भारतेन्दु युग के अन्य कवि ससारनाथ पाठक,[7]

---

१ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड छ० ३५, पृ० ५६।
२ वही, पृ० ५३६।
३ गोस्वामी तुलसीदास विनयपत्रिका, पद स० ५२।
४ सूरदास सूरसागर, १।१४५, १।१३८, १।१३६, १।१४१, १।१४४, १।१४६ १।१४६, १।१४७ १।१४८
५ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड छ० २७, पृ० ८३६।
६ वही, छ० ७८, पृ० ६८।
७ मैं हरि पापिन कर सरदार।
सुरपुर नरपुर नाग तिहूँपुर छापि गई अखबार।
आवत छीकै नीक बातनि सुनि अवगुन केर अगार।
छापा तिलक माल गर डारयो विषय विहगम जार।
सुन्यो अजामिल ब्राह्मन पापो सो सुई कह फार।

राधाकृष्णदास[1] सुमेर सिंह साहब जादे, प्रेमघन, आदि ने भी अपनी दैन्यभावना के भाव पुष्प से युगचेतना को पुष्पित किया है।

सख्य भक्ति

श्रीमद्भागवत मे लिखा है कि 'उन नन्द गोप के ब्रज मे वास करने वाले लोगो का भाग्य धन्य है, जिनका मित्र परमानन्द परिपूर्ण सनातन ब्रह्म है—

अहो भाग्यमहो भाग्य नन्दगोप व्रजौकसाम्।
यन्मित्र परमानन्द पूर्ण ब्रह्म सनातनम्॥[2]

भगवान के रूप, गुण, प्रभाव और महिमा को समझकर उनमे विश्वास पूर्वक मित्रभाव से उनकी स्तुति करना, उनकी रुचि के अनुसार कर्त्तव्य करना तथा उनमे अनन्य प्रेम करना, सख्य भक्ति है।

भारतेन्दु जी अपने को 'सखा प्यारे कृष्ण के' कहकर सख्य भक्ति का परिचय देते हैं। आपने बाललीला सम्बन्धी पदो मे सख्यभक्ति का उत्कृष्ट एव पूर्णरूपेण अभिनव उदाहरण प्रेषित किया है। उनके कृष्ण गोप सखाओ के साथ गोचारण के निमित्त वन-वन घूमते हैं। वहाँ मध्याह्न मे सबके घर से भोजन जाता है। सभी एक साथ मिलजुल कर खाते हैं। भोजन की आलोचना करते हैं। कृष्ण का सखाओ के साथ बैठकर खाना तथा उनके भोजन की आलोचना बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह आलोचना ऐसी नही है, जिससे कृष्ण का कृष्णत्व जाहिर होता हो, बल्कि इससे कृष्ण का सखाभाव व्यक्त होता है।

सुदामा तेरी फीकी छाक।
मेरी छाक रोहिनी पठई मीठी और सु-पाक॥
बलदाऊ को कोरी रोटी मोको घी की दीनी।
सो सुनि सुबल तोक उठि बैठे मेरी बहुत सलोनी॥
जैसी तेरी मैया मोटी तैसी मोटी रोटी।
मेरी छाक भली रे भैया जामे रोटी छोटी॥
बोलत राम पतौका लै लै बैठो भोजन कीजै।
बच्यो बचायो अपनो जूठन 'हरीचद' को दीजै॥[3]

नन्द निगोड़ मीडि मुख भागे सुनतहिं नाक हमार।
हमसे तुमसे दाव पडी हैं को जीतो को हार।
दास रमायन को जीतहुगे सो जानो खेलवार॥
शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना, पृ० १०२।
नित उठि दास कहै पिय प्यारी हृदय पखान पसीजै।
इतनी अरज 'दास' की सुनिये निज जन कृपा करीजै॥

१ लाडिली ऐसी भाँति माहि दीजै।
चरन छोडि नहिं जाऊँ अनत कहूँ सरन आपनी दीजै।
डा० श्यामसुन्दरदास (सपादक) राधाकृष्ण ग्रथावली, इण्डियन प्रेस, प्रयाग १६३० ई० पृ० ६५।

२ श्रीमद्भागवत, १०।१४।३२

३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, स्फुट कविताएँ स० ५, पृ० ८२६।

वन मे वालसडला मध्याह्न मे भोजन पर जुटी है। सखा समाट श्रीकृष्ण ने कहा सुदामा तेरी छाक फीकी है, मरी सुपाक और मीठी है। मेरे घर स घी की दानी भी आई है बलराम 'के' घर से कारी सूखी रोटी। वाल मण्डली मे सबका स्थान बराबरी का होता है, वहा कृष्ण और राम कहा, चरवाहे चरवाहे हैं। सुबल और तोक को कृष्णमुरारी की यह आत्मश्लाघा कटु लगी। वे कब तक बर्दाश्त करते। वे उबल पडे कन्हैया, मेरा छाक बहुत ही सलानी है। तेरी रोटी तो तुम्हारी माता जैसी मोटी है। सुबल और तोक न कितना सुदर और सटीक उत्तर दिया। उपमा तो लाजवाब है, 'जमी तेरी मैया मोटी, तमी मोटी रोटी'। कृष्ण का मुह बन्द हो गया। यह पद सखा सौन्दय का उत्कृष्टतम उदाहरण है।

मित्र मित्र के बारे म सोचता है। एक दूसरे का अनन्य सम्बन्ध होता है। एक क दुख मे दूसरा दुखी होता है। एक के सुख म दूसरा सुखानुभव करता है। ऐसा नहीं करता तो वह पातकी है। उस देखने म भी पाप लगता है।[1] भारतेन्दु जी कृष्ण के सखाभाव के उपासक हैं। उनके कृष्ण जब उनकी बात नहीं सुनते तो बाल सखाओ की भाति ही वे उन्हे बहलाते हैं फुसलाते हैं। उनसे कहते हैं कि सुनो मैं तुम्हारे हित की बात कहता हूँ। अबकी बार मुझे तार लो, नहीं तो प्रान चले जायगे। इसम भक्त की कोई शिकायत नहीं है, भगवान् की शिकायत विशेष है। अत वह अपने मित्र को चेता देता है जिसम वह समाज की नजरो म दोषी न ठहराया जा सके। नहा, तो समाज के उच्चतम न्यायालय म क्या जवाब देगा। इस तरह का कार्य कोई मित्र ही कर सकता है—

तुम्हारे हित की भाखत बात।
कोउ विधि अबकी तार देहु माहिं नाही तो प्रन जात॥
बूद चूकि फिरि घट ढरकावत रहिहु जैहा पछितात।
बात गए कछु हाथ न ऐहे क्यो इतनो इतरात॥
चूकशा समय फेरि नहिं पैहो यह जिय धरिकै तात।
तारि लीजिए 'हरीचद' को छाडि पाच अरु सात॥

आत्मनिवेदन

यह भक्ति नवधा भक्ति परिवार की अंतिम भक्ति है। इसम भक्त मनुष्य मन वाणी और शरीर सब प्रकार से प्रभु के चरणा मे अपने को न्यवछावर कर देता है। वह भगवान् के तत्व, प्रभाव रहस्य तथा महिमा को हृदयस्थ कर अहकार रहित हो अपने तन मन धन जन सहित अपने आपको प्रभु चरणा म समर्पण कर देता है। इस तरह वह ब्रह्ममय हो जाता है। भक्त प्रह्लाद और राजा बलि आदि म यह भावना विशेषरूप से विद्यमान थी।

भारतेन्दु युग मे आत्मनिवेदन की भावना का विकास पर्याप्त रूप म हुआ है। देश म अशान्ति था यवनो के आक्रमण स जनता कहा करुणानिधि केशव सोय की ध्वनि स परमपिता परमेश्वर को याद कर रहा थी। सिवा भगवान् के और सहारा था भी नही। कवि भारतेन्दु जी अत्यन्त उत्कण्ठा

१ जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि विलोकत पातक भारी। गोस्वामी तुलसीदास राम चरितमानस, किष्किन्धा काण्ड, ४।६।१, पृ० ४८६।

२ व्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खड, प्रमफुलवारी पृ० ५७६

लेकर आशा करते हैं कि जगमाता श्रीराधिका कब मुझे चरणों में बिठायेंगे।[1] अतः वह अनन्त प्रतीक्षा से व्याकुल होकर पुकार उठता है—

अहो हरि बस अब बहुत भई।
अपनी दिसि बिलोकि करुनानिधि कीजै नाहि नई॥
जो हमरे दोसन को देखो तौ न निबाह हमारो।
करिकै सुरत अजामिल गज की हमरे करम बिसारो॥
अब नहिं सही जात कोऊ विधि धीर सकल नहिं धारी।
हरीचन्द को बेगि धाइ कै भुज भरि लेहु उबारी॥[2]

यह आत्मसमर्पण कवि की अनन्य श्रद्धा का परिचायक है। वास्तव में वह अपने उपास्य में इतना तल्लीन हो चुका है कि उसका अपमान उसे स्वयं अपना अपमान लगता है।

श्रीधर पाठक अपने प्रभु से आत्मनिवेदन करते हुए उनसे इस तरह की बुद्धि मांगते हैं जिसका कभी भी विनाश न हो। अतः उस सर्वशक्तिमान करुणानिधान का ध्यान करता है, क्योंकि यह दुनिया तो उसी खिलाड़ी का खेल मात्र है—

पहले तू ध्यान कर उस करुणानिधान का,।
सर्वत्र विद्यमान उस सर्व शक्तिमान का।
संसार उस खिलाड़ी का एक खेल मात्र है।
जिसका मनुष्य आदि से निर्बुद्धि छात्र है॥
दुर्ज्ञेयभाव, सत्प्रभाव वे मिलाव हो।
दीनार्ति दुःख दाह दयालु स्वभाव हो॥
कीजै कृपा, न कृपानिधान! नित्य ही विभो॥
दीजै सुबुद्धि, सर्वदा छीजै कभी न जो॥[3]

मिश्र जी तो अपने प्रभु के लिये विकल हो जाते हैं। इस तरह कवि की आकुलता में दाम्पत्यभाव हिलोरे मारने लगता है। उसकी स्थिति एक विरहिणी की भांति हो जाती है—

बस बस बहुत भई अब आओ।
हा हा सहि न जात दुख कैसहु बेगिहि मुख दिखराओ॥
प्राणहि निरो चहत हौ प्यारे, और जुगुति ठहरावो।
विरह वाण सो बेधि दयामय, निज नामहिं न लजावो॥
कै निज हाथ त्रिपहि कहु के अधर सुधारस प्यावो।
काहू विधि अपने प्रताप को जरत जीव जुड़वावो॥[4]

---

१ श्रीराधे मोहि अपनो कब करिहौ।
जुगल रूप रस-अमित-माधुरी कब इन नैननि भरिहौ॥
कब या दीन हीन निज मन पै ब्रज को बास बितरिहौ।
हरीचन्द कब भव बूड़त तें भुज धरि धाइ उबरिहौ॥
ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, काशी, प्रेम फुलवारी, छं० १, पृ० ५७७।

२ वही, पृ० ५७७।

३ श्रीधरपाठक मनोविनोद पृ० २।

४ प्रतापनारायण मिश्र ब्राह्मण, खंड ३, संख्या ११, प्रेमप्रमाद, ८०

यहाँ मिश्र जी का आत्मनिवेदन विरहिणी के रूप म चरम सीमा पर पहुँच गया है।

भारतेन्दु युग मे यद्यपि भक्ति परम्परा का निर्वाह ही हुआ है, फिर भी नवधा भक्ति की सात्विकता समस्त युग चेतना पर हावी है। यदि एक तरफ कबीर की-सी प्रेमाकुलता है, तो दूसरी ओर तुलसी और सूर की-सी तन्मयता और अनन्यता भी, और कहीं-कहीं तो इन दोनो के प्रभाव क्षेत्र से बाहर जाकर भी भारतेन्दुकालीन कवि ने दूर की कौडी ला उपस्थित कर दी है। समस्त काव्य जगत म भक्ति गंगा किलोलें करती हैं।

रामकाव्यधारा

सगुण काव्यधारा की दो शाखाएँ हैं—(१) रामकाव्यधारा और (२) कृष्ण काव्यधारा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे रामभक्तिशाखा और कृष्णभक्तिशाखा के नाम से अभिहित किया है। रामभक्ति शाखा के सर्वप्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास जी हैं। तुलसीदास के पहले रामकाव्यधारा का कोई रूप स्थिर नहीं हो पाया था। जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य ने भक्ति के क्षेत्र म अद्वैतवाद का निरूपण किया। इसमे सगुण मतवाद की चर्चा थी फिर भी सामान्य जनता मे सम्यक प्रसार के लिए एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो भक्ति को सरल एवं रोचक आधार दे सके। स्वामी रामानुजाचार्य जी के विशिष्टाद्वैतवाद ने यही कार्य सम्पन्न किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि जगत्प्रसिद्ध स्वामी शंकराचार्य जी ने जिस अद्वैतवाद का निरूपण किया था, वह भक्ति के सन्निवेश के उपयुक्त न था यद्यपि उसमे ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता का भी स्वीकार था, पर भक्ति के सम्यक प्रसार के लिये जैसे दृढ आधार की आवश्यकता थी, वैसा दृढ आधार स्वामी रामानुजाचार्य जी ने खड़ा किया।'[१]

स्वामी रामानुजाचार्य जी सगुण मतवाद के आदि प्रवर्तक हैं। इन्ही की शिष्य-परम्परा मे रामानन्द जी हुए। सर्वप्रथम इन्होंने ही रामनाम की महिमा का गुणगान किया। 'भगवद्भक्ति म वे किसी भेदभाव को आश्रय नहीं देते थे। कर्म के क्षेत्र म शास्त्र मर्यादा इन्हें मान्य थी, पर उपासना के क्षेत्र म किसी प्रकार का लौकिक प्रतिबन्ध ये नहीं मानते थ। सब जाति के लोगो को एकत्र कर रामभक्ति का उपदेश ये करने लगे और रामनाम की महिमा सुनाने लगे।[२]

स्वामी रामानन्द जी के शिष्यो म बहुतेरो ने रामभक्ति धारा के प्रवाह को निरन्तर प्रवहमान किया, लेकिन हिन्दी साहित्याकाश म गोस्वामीतुलसीदास जी की लेखनी ने इसे विशेष प्रकाश म लाया। इनके पहले लोग फुटकल पदो म ही रामभक्ति गाथा को गुनगुना रहे थ। असल म सुनियोजित एवं सुनिश्चित ढंग से रामभक्ति का परम विशद् साहित्यिक सदम का श्रीगणेश इन्ही भक्तशिरोमणि से सम्पन्न हुआ। गोस्वामी तुलसीदास का युग रामभक्ति धारा की प्रौढ़ता का युग था। रीतिकाल के रंगमंच पर यद्यपि रामकाव्यधारा मे रसिकोपासना की महत्ता अधिक थी, फिर भी वह धारा अभी तक लुप्तप्राय नहीं हुई है। भारतेन्दु युग राष्ट्रभक्ति का युग था। इसलिये रामभक्ति का विशद् विवेचन नहीं हो पाया है। लेकिन राम की अजस्र प्रतिमा का परिष्कार समस्त युग की धमनियां सवलित है।

स्वयं भारतेन्दु जी ही रामकाव्य से कम प्रभावित नहीं थे। यद्यपि उनकी काव्य प्रतिभा का पूर्ण विकास कृष्ण की मधुर लीलाओ के सगुम्फन मे हुआ है। उन्होंने रामनगर की रामलीला देखकर वहीं से अनुप्राणित एवं प्रेरित होकर श्रीरामलीला नामक एक लघु चम्पू का सृजन किया। यह एक

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा काशी, बारहवा संस्करण, सं० २०१५ पृ०१०७।

२ वही, पृ १०६।

अत्यन्त छोटी सी रचना है। इसमें अत्यन्त सक्षेप में बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड की कथा पिरोई गई है। कवि ने अयोध्याकाण्ड की कथा को बहुत ही सक्षिप्त कर दिया है। इस काण्ड मे अहल्या तरण, जनक-नगर-दर्शन, पुष्प-वाटिका भ्रमण, धनुषयन, धनुषखण्डन और विवाह के प्रसगो की कथा सवैये छन्द मे प्रणीत हुई हैं। कुल दो काण्डो की कथा कवि ने केवल ३५ छन्दो मे अभिव्यक्त की है। गद्य का अश बहुत ही कम है और जो है भी वह केवल दो भावात्मक प्रसगो के योजक का काम करता है। कवि ने प्रस्तुत ग्रथ की भूमिका स्वरूप निम्नाकित पद को प्रेषित किया है—

हरि लीला सब विधि सुखदाई।
कहत सुनत देखत जिय आनत देति भगति अधिकाई ॥
प्रेम बढ़त अघ नसत पुन्य रति जिय मैं उपजत आई।
याही सा 'हरीचन्द' करत सुनि नित हरिचरित बढाई ॥[1]

कवि की दैन्य भावना रामकाव्य के प्रणयन म भी ज्यों की त्यों है। उसकी दीनता अहल्या-तारण प्रसग मे चरमोत्कर्ष को प्राप्त करती है। यहाँ कवि ने सात दोहो मे अपनी दीनता प्रकट की है, जो अपनी भावसबलता के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है—

मो ऐसो को तारिबो सहज न दीन-दयाल।
आहन पाहन वज्रहू सा हम कठिन कृपाल ॥
परम मुक्तिहू सो फलद तुअ पद-पदुम मुरारि।
यहै जतावन हेतु तु तारी गौतम-नारि ॥
एहो दीनदयाल यह अति अचरज की बात।
तो पद सरस समुद्र लहि पाहनहू तरि जात ॥
कहा पखानहुँ तें कठिन मो हियरो रघुबीर।
जो मम तारन मैं परी प्रभु पर इतनी भीर ॥
प्रभु उदार पद परसि जड पाहनहूँ तरि जाय।
हम चैतन्य कहाइ क्या तरत न परत लखाय ॥
अति कठोर निज हिय कियो पाहन सो हम हाल।
जामैं कबहूँ मम सिरहू पद रज देहि दयाल ॥
हमहूँ कछु लघु सिल न जा सहजहि दीनौ तार।
लगिहैं इत कछु बार प्रभु हम तो पाप-पहार ॥[2]

रामकाव्यधारा म तुलसी की कवितावली का विशेष महत्व है। भारतेन्दु जी के अयोध्याकाण्ड की कथा—जो केवल दो पन्नो म लिपिबद्ध है—उसम काव्य की कोई छटा नही दिखाई पडती। हाँ, कवि कवितावली का स्मरण दिलाने की कोशिश करता है, लकिन उस सफलता नही मिलती। कवितावली के काव्य सौन्दय के सामने इस टिमटमाते दीप ज्योति शिखाको कौन हृदयङ्गम कर सकता है। उदाहरण स्वरूप एक छन्द फुलवारी प्रसग का प्रस्तुत किया जा रहा है—

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, काशी, रामलीली, पृ० ७७०।

२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, काशी, रामलीला, स०५११, पृ० ७७१ ७२।

जाहु न जाहु न कुंजन मैं उत
    नाहिं तौ नाहक लाजहिं खोलिहौ।
देखि जो लैहो कुमारन को
    अबही भट लोक की लोकहि छोलिहौ॥
भूलिहै देह-दसा सगरी
    'हरिचन्द' कछू को कछू मुख बोलिहौ।
लागिहैं लोग तमासे इहा
    बलि बावरी सी ह्वै बजारन डोलिहौ॥[1]

रामलीला परम्परा में लीला समाप्ति के पूर्व जनक लली की आरती आवश्यक है। यहाँ भी बालकाण्ड में कवि जेवनार के बाद बारात लौटा ले आता है, पश्चात् जनकलली की आरती सम्पन्न होती है और तब बालकाण्ड की कथा समाप्त हो जाती है। आरती का पद उदाहरणार्थ उद्धृत है—

आरति कीजै जनकलली की राममधुप मन कमल कली की॥
रामचन्द्र मुख चन्द्र चकोरी अन्तर सावर बाहर गोरी।
सकल सुमंगल सुफल फली की।
पिय दृग मृग जुग बंधन डोरी। पीय प्रेम रस रासि किसोरी॥
    पिय मन गति विश्राम थली की॥
रूप रासि गुन निधि जग-स्वामिनी प्रेम प्रवीन राम अभिरामिनि।
    सरबस धन 'हरिचंद' अली की॥[2]

रामकाव्य के प्रणयन में कवि की काव्य प्रतिभा का विकास अवरुद्ध सा हो गया है। फुटकर पदों में ही रामकाव्यधारा इस युग मे प्रवहमान हुई है। कवि ने राग संग्रह के दो पदों में राम का कीर्तन किया है। चैतन्य की स्पष्ट छाप इस पद में परिलक्षित होती है। यह भारतेन्दु प्रणीत समस्त रामकाव्य में विनय का अकेला पद है। लगता है कवि ने इसे दशहरा और रामनवमी के अवसर पर कीर्तन करने के लिये रचा हो।

जयति राम अभिराम छबि धाम।
    पूरन काम श्याम बपु बाम सीता बिहारी।
चंड को दण्ड ब्रह्म खंड-कृत दनुज बल।
    अनुज सह सहज सुभ रूपधारी॥
रस कुल अनल बल प्रबल पजन्य सम।
    धन्य निज जन पक्ष रक्षकारी॥
अवध भूपन समर बिजित दूपन।
    दुष्ट बिगत दूषन चतुर धर्मचारी॥
खर प्रखर अगिन लंक दृढ़ दुग।
    दल दल मलन बाहु मारीच मारी॥
वैश्रवन अनुज घट श्रवन रावन शमन।
    शमन भय-दमन हरिचन्द वारी॥[3]

---

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला खण्ड, रामलीला, छं० १४, पृ० ७७३।
२ वही, छं० २७ पृ० ७७६।
३ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, काशी, रागसंग्रह, छंद ३६, पृ० ४५१।

प्रस्तुत पद की रचना पद्धति तुलसी की विनयपत्रिका के समान ही संस्कृत और समस्त पदावली मे हुई है। राग संग्रह मे ठीक इसी तरह की कीर्तन पद्धति मे एक और पद संगृहीत है[1]। वह पद्य बिलकुल कृष्ण केलिकला का रूपक मात्र हो गया है। कहाँ राम का मर्यादापुरुषोत्तम रूप और कहाँ कृष्ण की केलिकला का रूपक।

श्री सीता-वल्लभ स्तोत्र नाम की ३० श्लोकों मे लिपिबद्ध एक रचना भी रामकाव्यधारा के अंतर्गत है। इसमे कवि ने जानकी, माण्डवी, उर्मिला, श्रुतिकीर्ति, सुनयना, जनक, विश्वामित्र, शतानन्द, कुशध्वज, लक्ष्मीनिधि आदि की स्तुति की है। इनके साथ ही साथ जनकपुरी की वन्दना भी की गई है, क्योकि यहाँ रचना मिथिला यात्रा के समय लिखी गई थी।

भारतेन्दु जी मे वैकल्य का भाव अधिक है। रामकाव्य हो या कृष्ण-काव्य या फुटकल ही क्यो न हो, कवि का दैन्यभाव बरबस झलक मारता है। यत्रतत्र सर्वत्र कवि अपनी दीनता को विरदावली वह सुनाने मे अपने को मस्त समझता है। यहाँ रामकाव्य मे भी वह करुणा का समुद्र बहा देता है। अयोध्याकाण्ड की लीला का प्रारम्भ होता है, और करुणा का वेग उमडता है। राम-वन-गमन को प्रस्तुत, दशरथ के प्राण इस विरह को न बर्दाश्त करने को आतुर! बस क्या था, सारा दृश्य ही विरह व्यथा से छिप जाता है। पुरवासी राम के वियोग को सहने मे पूर्णतया असमर्थ हैं। कवि इस विरहोद्गार को छन्द पदों में लिपिबद्ध करता है—

राम बिना सब जग लागत सूनो।
देखत कनक भवन बिनु सिय पिय होत दुसह दुःख दूनो॥
लागत घोर मसानहुँ सो बढि रघुपुर राम बिहूनो।
कहि 'हरिचन्द' जनम जीवन सब धिक धिक सियबर ऊनो।[2]

और भी

जीवन जो रामहिं सग बीतै।
बिनु हरि-पद रति और बादि सब जनम गवावत रीतै॥
नगर नारि घन धाम काम धिक धिक विमुख जोन सिय पीतै।
'हरीचन्द' चलु चित्रकूट मजु भव मृग बाधक चीतै॥[3]

गीतावली पद्धति म प्रणीत इन पदों का काव्य सौन्दर्य अच्छा बन पडा है।

---

१ मानगढ़-लंक पर विजय को मानिनी
आज व्रजराज रघुराज बनि कै चढ़े।
भृकुटि धनु नयन-शर विकट संधानि कै
मुकुट की ढाल करवाल अलकन वढ़े॥
कोकिल कढ़कि उगरत कडखेत ही
बदत बन्दी बिरद भँवर आगे बढे।
कोक की कारिका बानरी सैन लै
दास 'हरिचंद' रति विजय आनन्द मढ़े॥
व्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु-ग्रन्थावली, दूसरा खड, प० ४७०।

२ वही, रामलीला छ० ३३, ३४, पृ० ७८०।

३ व्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु-ग्रन्थावली, दूसरा खड, काशी, रामलीला, छं० ३४, पृ० ७८०।

तपस्वीराम भारतेंदु युगीन भक्त कवि हैं। इनका हृदय भक्तिरस से आप्लावित है। फुटकल पदों में रामकाव्य का प्रणयन आपने किया है उसमें विनय का स्वर प्रधान है—

जय जयपि जय सीता रमन, जय जय रमापति सुख सदन।
जय राम ससृति दुखसमन, भवभय हरन असरन सरन॥
जय अवधपति रघुकुलमनी, निजदास बस त्रिभुवनधनी।
आनन्दकन्द कृपायतन भवभयहरन असरन सरन॥
अव्यक्तमैक्मगोचरम्, विज्ञानघनधरनीधरम्।
मण्डनमही निश्चरदमन भवभयहरन असरन-सरन॥
लावण्यनिधि राजिवनयन, कलिमल दहन-मगलभवन।
'तपसी' सुखद करुना-अयन, भवभयहरन असरन सरन॥[1]

कवि ने यहा प्रभु सत्ता का वर्णन बडी ह अच्छी तरह से प्रस्तुत किया है।

कृष्ण मधुररस के विषय हैं और उनकी वल्लभाएँ इस रस का आश्रय हैं इस तरह का विश्वास किया जाता है।[2] दोनो मिलकर रस के आलम्बन हैं। रामशरण ने अपने एक झूलन प्रसग पद मे रामको रस का विषय ठहराया है और जनक राजकिशोरी को रस का आश्रय। दोनो झूले पर हैं। सीता के कमनीय अगो की सुषमा के सामने अनग भी बगलें झाँकने लगता है। कवि का नयन मन रसिक भाव भक्ति के दर्शन के निमित सरयू के तट को एकाग्रचित देखता है—

ये दोनो रसिक झूलन पर आयो है।
दशरथ कुवर श्रीजनक कुमारी अग अग सुषमा अनग लगायो है॥
प्रीतम के सग प्यारी झुलतु है मजे मजे सिया पिया वीण बाजायो है।
विपिन सिरोमनि श्रीप्रमोद वन हरे हरे महि सावन दरसायो है।
रामसरन श्रीअवध निकाई लखि सरयू के तीरे तीरे मेरा मन भायो है।

सावन के शीतल मन्द समीर के स्पर्श से सिया पिया वीणा वादन कृष्ण के वीणा की सहज ही में याद दिला देता है। कवि को मधुरा भक्ति उद्घाटन करने मे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

अंग्रेजो के अत्याचार से पीडित प्रताडित मानवता के त्राण के लिय रामसनेहीदास भगवान् राम को याद करते हैं। कवि को केवल प्रभु के चरण कमलो का ही आस है। वह सीतापति रामचन्द्र से विकल होकर कहता है—

सीतापति रामचन्द्र कौशल रघुराई।
बेदविप्र धेनु सत दुखित सकल जीव-जत।
मैथिली-नृप नानवत विपति घटा छाई।
ब्रिटिश राजकरत पाप जनगण बिच कल्ल दाय।
आवि आव हरहु ताप सत्वर सुखदायी॥

---

१ डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव रामभक्ति साहित्य म मधुर उपासना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम सस्करण, १९५७, पृ० २३।

२ डा० भगवती सिंह रामभक्ति म रसिक सम्प्रदाय, अवध साहित्य मदिर, बलरामपुर, प्रथम सस्करण २०१४ वि० पृ० ४६१।

सवल भुवन भेल मन्द देशक दय फटक पद ।
मुँह शान करें बन्द गारा कटकारी ॥
कहत 'रामस्नेहिन्दास' मारहु खण्ड श्रीनिवास,
हरहु शास एक आस चरण केरि साईं ॥[1]

श्रीरामलोचन मिश्र श्रीराम के अनन्य उपासक हैं। वे आठोयाम रामनाम को भजने को हो कहते। हैं जहाँ भी रहो रामनाम ही तुम्हारे जीवन का आधार है। रामनाम का प्रभाव चारो युग म हैं—

राम नाम कहा करो पाप स डरा करो तू
भरा करो कान मे सदा ही राम नाम को।
घर मे रहा को गिर कन्दरा बसो तू जाय,
विना रामनाम मुख चाम कौन काम को।
नाम को प्रभाव चारो जुग मे प्रचण्ड जान,
कलि मे प्रधान रामनाम तरु-काम को।
कहे रामलोचन दुखमोचन रामनाम ही है,
ताते रामनाम मे बितावो आठो याम को ॥[2]

कवि प्रभुराम का अनन्य उपासक है। वह रसखान की भाँति ही भगवान् राम मे लीन हो जाने की कामना करता है। भारतीय दर्शन पुनर्जन्म को मानता है। कवि इसकी पुष्टि म भगवान् से याचना करता है—यदि पिता पुत्र भाई एव माता दुनिया के जितने भी पारिवारिक नाते हैं, राम से ही यथा—

पिता यदि दीजै तो श्रीदशरथ महाराज ऐसो
बन्धु यदि दीजै तो श्रीराम चारो भैया सो।
माता यदि दीजै तो श्रीकौसल्या सुमित्रा जी सो
भार्या जो दीजै तो अरुधती सुकन्या सो।
पुत्र यदि दीजै तो सुपुत्र श्रीश्रवण ऐसो
मित्र यदि दीजै तो सुदामा जो कन्हैया सो।
कहो रामलोचन जौने ही योनि जन्म दीजै
राममक्ति दीजै अरु प्रीति रघुरैया सो ॥[3]

कवि का यही आत्मनिवेदन चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है। भारतेन्दु युग म अक्षयकुमार राम-काव्यधारा के एक प्रसिद्ध कवि हैं। आप बचपन ही स्फुट पदो म राम-यश गया करते थे। आपका एक रसिक विलास रामायण भी बिहार बन्धु प्रेस बाँकीपुर से छपा है। आप दैन्य भाव के उपासक हैं। कवि श्रीराम के जनकपुर गमन पर वहाँ की कुलकामिनियो की विकलता एव रघुवीर नयन शर का अद्भुत पराक्रम बहुत हो सुन्दर ढग से खीचा है। कवि को अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने मे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है—

---

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना पृ० १६०।

२ रामलोचन मिश्र श्रीरामनाम महिमा, हस्तलिखित प्रति, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के संग्रहालय में सुरक्षित।

३ वही।

कामिनी को सन आज जुरयो है विदेह नगर,
　　चितवन को तीर चढे भृकुटी कमाना पर।
सीस-फूल आदि बहु भूषण सवारे सिर,
　　सारी जरतारी लहरा रही निशानो पर॥
चाहती है वार करन देखति सव दाव घात,
　　खचति कमान ताकि श्रेष्ठ बानो पर।
जैसे ही रघुबीर की छुटी एक नैन बान,
　　घायल सी घुमी गिरी अपने ठेकानो पर॥[1]

कवि माधुय के अथाह समुद्र मे शौय की चुटकी बडी मजेदारी से लेता है। विदेह नगर में कामिनियो का सैय समूह एक तरफ, दूसरी तरफ श्रीराम का दुलहारूप। दाना ओर नयन शर की करामात दिखायी जाती है। कामिनियाँ अपन दाव घात मे है कि इतने म ही श्रीराम के नयन वाण छूट ही तो पडते हैं। बस क्या था? 'घायल-सी घुमी गिरि अपन ठेकानो पर' कवि को रूपक अलकार के माध्यम से वस्तु-स्थिति का चित्राकन करने म पूण सफलता प्राप्त हुई है।

भगवान् राम जनकनन्दिनी और अपने प्रिय अनुज लखनलाल जी के साथ वन-पथ पर है। सामने सुरसरि का प्रबल प्रवाह है। बिना नौका के पार जाना मुश्किल है। सामने जलवाहन है। प्रभु पार उतर कर उतराई देने की चेष्टा करते हैं। केवट उन्हे ऐसा उत्तर देता है कि भगवान् को निरुत्तर हो जाना पड़ता है—

कह केवट क्यो अनरीति करो हमरा उतराइ में जो कछु देहौ।
कहुँ लेत हैं नाई से नाई कछू मोहि जाति के पातिन ते निकसहौ॥
भवसिंधु अगाध कि घाट तुम्हें यहा घात कि जौ उतराई चुकै हो।
जब जब तुम्हारे घाट प्रभु तब तो हमरे मुँह मे मसि लैहौ।[2]

प्रस्तुत पद मे कवि तुलसी के निषादराज की कल्पना तो नही करता लेकिन उसका अनुवर्ती आवश्यक है। तुलसी के केवट मे वाक्य चातुय की कुशलता थी, लेकिन प्रस्तुत कवि का केवट एक सीधा सादा मल्लाह हो प्रतीत होता है। हाँ जाति की दुहाई देने मे वह कम नही है। उसका यह तक अकाट्य है।

दास्य भक्ति मे अजनि-पुत्र हनुमान का नाम अग्रगण्य है। दास केवल सेवा करना जानता है वह उसके बदले म कुछ नही चाहता। सेवा करना ही उसका पुण्यतम फल है। हनुमान म सेवाभावना कूटकूट कर भरी है। सीता की सुधि म प्रभु विकल है। वानारो का यूथ उनकी सहायता मे टूट पडा है। फिर भी सीता के नजदीक, पहुँच जाने की आशा हनुमान से ही की जानी है। इसीलिये राम-नाम अकित अगूठी हनुमान को ही दी जाती है। हनुमान को भी आशातीत सफलता मिलती है।

हनुमान ने विचारा कैसे करू सहारा।
पातीत हूँ हमारा त्यो मुद्रिका किनारा॥
अगुठी तुरन्त डारा मानो गिरा अगार
सीता करे बिचारा टूटा सरग से तारा॥

---

१ अक्षयकुमार रसिक विलास रामायण, विहारबन्धु प्रेस, बाकीपुर द्वितीय सस्करण १९३६ ई० पृ० ४।
२ अक्षयकुमार रसिकविलास रामायण, विहार बन्धु प्रेस, बाकीपुर, द्वितीय सस्करण, १९३६ ई० पृ० १५।

मन मे विचार आई अपूठी तुरत उठाई ।
तह रामनाम पाई, कैसे यहाँ पै आई ।।[1]

प्रस्तुत पद की भाषा, भाव एव शैली मे कही भी सौन्दर्य नहीं है । केवल रामनाम की महिमा गाकर कवि अपने कवि कम की इतिश्री कर देता है । हाँ, इतना स्पष्ट परिलक्षित होता है कि भक्त के मस्तक पर भगवान् का यदि वरद हस्त है, तो कठिन से कठिन काय भी सहज ही हो जायेगा ।

चन्दा झा भारतेन्दु युग की सीमा से बहुत पहले हो गए हैं । आपने अपने स्फुट पदो म राम काव्य की सुरसरि बहायी है । उदाहरण के लिये एक पद प्रेषित है—

सीता अरपल रामक हाथ राम जलधि जकें समान ।
लक्ष्मण का निज कन्या देल, नाम उर्मिला हर्षित भेल ।।
विख्यता श्रुतिकीर्ति कुमारि, देल भरल का जनक विचारि ।
माण्डवि प्रस्थित कयल जमाय, श्रीशत्रुघ्न समय शुम पाया ।।
चारु कुमार दार सम्पन्न लोकपाल सन लोक प्रसन्न ।
जनक कहल हरषित तहि ठाम, सीता लाभ जे नएहि धाम ।।
सुनु वशिष्ठ मुनि विश्वामित्र अहइतछी कन्या क चरित्र ।
भूमि विशुद्धि यन करवाक, नृपतिहुँ का भेव हर घर बाक ।।
देखल तत हम जोत इह भूमि, बहराइलि कन्या को चूमि ।
चारि बरख वय सक परमान, कन्या एहन देखल नहि आन ।
के इ थिकथि कोना के जान, हुत भेल ज्ञान हिनक लेल ध्यान ।
आनल घर म पुत्री भाव उपमा हिनक आन के पात्र ।।[2]

कवि मैथिली-साहित्य का अच्छा ज्ञाता है । वह राम के चारो भाईयो और सीता चारो बहनो का सम्बन्ध बड़े ही सुन्दर ढग से सम्पन्न कराता है । कवि ने मैथिली रामायण की रचना करके एक बडे अभाव की पूर्ति की है ।

भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख कवि श्रीराधाकृष्णदास जी ने भी स्फुट पदो मे राम काव्य की धारा प्रवाहित की है । राम जगल जा रहे हैं । सीता भी जाने को प्रस्तुत हैं । श्रीराम वन की भयकरता, दु ख और सिंह की गजना की बात कहकर सीता को राजमहलो म रखना ही चाहते हैं । सीता इसके लिये तैयार नही हैं । यह रामायण का बडा ही मार्मिक प्रसग है । कवि इसी प्रसग के उत्तर मे जनकिशोरी के मुख से कहलवा देता है कि प्रान वही रहता है, जहाँ काया हो । सीता अपने भाग को जगल में जा सराहती है । कवि प्राकृतिक छटा का वणन करते हुए रामकाव्य की कमनीयता को सवारने म किसी प्रकार का सकोच नही करता है—

कहो पिय साचे काके बैन ।
तुम भाख्यो घर रहो जहाँ है सब ही बिधि सुख चैन ।
यह मन्दाकिनी तीर गिरि गुहा यह सुख मन्द समीर ।
यह एकात कुज बिरहन यह सुन्दर श्याम शरीर ।
फूलन के अभरन मनोहर निज रचि सो पहिरावन ।
उरझे बार जटा के निज कर प्रेम सहित सुरझावन ।[3]

---

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पटना, पृ० ९३ ।
२ शिवपूजन सहाय हिन्दी और साहित्य और बिहार, पटना, भाग २, पृ० ३५ ।
३ श्याममुन्दरदास (सपादक) राधाकृष्ण ग्रन्थावली, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, १९३० ई०, पृ० २५

जह राजा तह राजमहल अरु जह धूप तहं छाया।
जहाँ धनी धन रहत तहाँ हो जहा प्रान तहं माया।[1]

रामकाव्य मे फुलवारी की महत्ता बहुत है। इसके बिना राम काव्य का सौन्दर्य ही फीका पड जाता है। प्राय सभी रामभक्तो ने फुलवारी प्रसग की कथा को मनोयोगपूर्वक लिपिबद्ध किया है। कवि गगा प्रसाद अवस्थी ने प्रस्तुत प्रसग का चित्रण बड़े ही सुनियोजित ढङ्ग से प्रस्तुत किया है।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवन् श्रीराम शील शक्ति-सौन्दर्य निधान हैं। वे फुलवारी म अपने अनुज लक्ष्मण के साथ घूम रहे हैं। पुष्पा की भीना भीनी महक उनके अलौकिक सौन्दर्य को अनवय सौन्दर्य मे परिवर्तित कर देती है। परिणामस्वरूप वे चितचोर बन जाते हैं। यही कारण है कि वहीं फुलवारी मे उनकी आह्लादिनी शक्ति सीता जब अपने सखियो के साथ प्रवेश करती हैं तो भावविभोर हो जाती हैं। भगवन् श्रीराम भी सीता के कमनीय सौन्दय को देखकर लखन से बार बार कहने लगते हैं—'हेरि हाय हियरा छ टूक टूक कै गई। कवि को सौन्दय की सार्थकता सिद्ध करने में पूर्ण सफलता मिली है। उदाहरण दृष्टव्य है—

जनक दुलारी सजि फूलन के लेन हित
सखिन बुलाय बाटिका के बीच लै गई।
उत से प्रसून लेन लछिमण राम चले
मध्य फुलवारी भेंट दोउन से ह्व गई॥
भाषत गगाप्रसाद तकि रघुबीर ओर,
सिया निज नैन मैन भरी दै गई।
अवधबिहारी कहै लखन सो बार बार,
हेरि हाय हियरा छटूक टूक कै गई॥[2]

समस्यापूर्ति में रघुवश पाठक का एक भी फुलवारी प्रसग की कथा मे कडी का काम करता है। लेकिन भावगाम्भीय मे कवि फुलवारी की बात छोडकर प्रेमलक्षणाभक्ति की स्रोतस्विनी बहा देता है। कवि जनकदुलारी फुलवारी स्थित रूप का वर्णन करते हुए भवानी वरदान लेने की बात भी चुपके से कह देता है—

जनकदुलारी पगुधारी बीच,
मोतिन सवारी माँग चित्त चोर कै गई।
झलक दिखाय मुख आगर उजागर की,
मोहनी लखाय प्रेम फद म फँस गई॥
परम सयानी रसखानी को बिलोको भ्रात,
पूजिवै भवानी चित्त चाहो कर लै गई।
सहज सुभाव 'रघुवश' नैन कोरन ते,
हेरि हाय हियरा छटूक टूक कै गई॥[3]

---

१ वही, पृ० २५।
२ रसिक मित्र प्र० भाग, सख्या ३, १८९७, रसिकसमाज, कानपुर पृ० २।
३ वही, पृ० २१।

भारतेन्दु युग मध्य और आधुनिक युग के सन्धिस्थल पर खडा था। उसकी मेधा म द्वन्द्व उलझ रही थी कि प्राचीन परिपाटी को ही आक्सीजन देकर खडा किया जाय या नवीनता की शक्ति को टटोला जाये। स्पष्टत प्राचीन परिपाटी के पक्ष का निर्वाह किया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि इस आलोच्य काल के कवि ने नवयुग के तार को झकृत करने मे ही विशेष सफलता प्राप्त की। वे प्राचीनता के उपासक पडितो की श्रेणी मे बैठाये न जा सके। रीतिकाल और भक्तिकाल के स्वर पुराने पड चुके थे, रामकाव्य की धारा क्षीण पडती जा रही थी। व्रजभाषा के समापवत्तन समारोह में अक्षयकुमार, चतुर्भुज मिश्र वनादास, दीनदास, जगन्नाथप्रसाद भानु और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र रामकाव्य धारा को जीवित रखने मे पूर्णतया सफल रह। स्फुट पदो म रामकाव्य का प्रवाह कई धाराओ म होकर प्रवाहित हो रहा था। प्रबन्धात्मकता के पुट का निर्वाह करने मे अक्षयकुमार का रसिक विलास रामायण, भानु का अध्यात्म रामायण और बजनाथ कुरमी का रामायण तथा महारघुराज सिंह का रामस्वयवर का विशेष स्थान है। इस तरह आलोच्यकाल म सत काव्य की भाति रामकाव्य का स्थान गौण है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने लिखा है कि राम के पौराणिक चरित्र के आधार पर कुछ रचनाएँ हुई। नई बात यह हुई कि रामचरित्र को शृङ्गार मे अतिरजित करके कुछ रचनाएँ की गइ।[1] रीतिकालीन अश्लीलता को स्पष्ट छाप र मकाव्य के शीलत्व पर प्रतिलम्बित होती है।

ऐश्वय भाव

एक अनिवचनीय सच्चिदानन्द स्वरूप शाश्वत सत्ता विभु रूप प्राप्त है। उसके दो रूप हैं—(१) निर्गुण निर्विकार निराकार स्वरूप और (२) निखिल ऐश्वर्य माधुय आनन्द सौन्दय, अचिन्त्य अनन्त सद्गुणो का परम धाम स्वरूप। एक ही रूप के सगुण स्वरूप अनेक हैं। उनके नित्य चिन्मय धाम अनेक हैं। उनकी अगजगमोहिनी दिव्य लीलाए अनेक हैं। एक ही निगुण ब्रह्म सगुण स्वरूप होकर नित्य क्रीडा करता है। निगुण स्वरूप विभु है और सगुण स्वरूप सवगत है। सभी सगुण स्वरूप तथा सगुण स्वरूप की समस्त लीलाएँ देश काल की कल्पना स परे होकर सत्त सवत्र व्याप्त है।

सगुण स्वरूपो म दो स्वरूपो की विशष महत्ता है। इन्हे ईश्वरावतार की सज्ञा से अभिहित करते हैं। एक अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र शील शक्ति सौन्दय निधान हैं और दूसरा शृङ्गार रस राज-सम्राट चित्तचोर श्रीकृष्ण कन्हैया हैं।

वह पूर्ण ब्रह्म अनन्त ऐश्वय माधुयमय है। कारण यह है कि उपास्य म दो प्रमुख गुण वर्तमान होते हैं—(१) परत्व और (२) सौलभ्य। परत्व को ऐश्वर्य कहते हैं और सौलभ्य माधुर्य के नाम से पुकारा जाता है। कही ऐश्वय का प्रकाश समस्त जगतातल पर छाया है तो कही माधुर्य के सौन्दय की कमनीय पताका फहरा रही है। ऐश्वर्य म भगवान् अपनी महामहिमा मण्डित रूप म विराजमान हैं और जीवन अपनी लघुता म सिमटा है। विभु है और अणु है—दोनों का सम्बन्ध चिरकालिक सेवक और स्वामी का है। यहाँ सेवक की उपासना का मूलाधार वैधी भक्ति है। वह वेद शास्त्रादि के निर्देश के आधार पर नवधा भक्ति से उपासना करता है।

ऐश्वर्य भाव का मतलब है परमपिता-परमेश्वर के प्रभुत्व एव ईश्वरत्व। जहाँ पर वह विभु जीव का नित्य के कम स्वीकार कर अपनी लीला ईश्वरता के भाव को दर्शाते हुए करता है, उस लीला को ऐश्वयभावपूर्ण लीला स्वीकार करते हैं। नवधा भक्ति मे यद्यपि कि स्वामी और सेवक भाव का

---

१ चतुरसेन शास्त्री हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, द्वितीय सस्करण १९४६ ई०, पृ० ७९४।

सम्बन्ध है, लेकिन ऐश्वय भाव परक लीलाओ म प्रभु का केवल परत्व और सेवक का नित्य शरणागति ही स्वीकार्य है। यहा सखाभाव की कोई गुजायश नही है। अत ऐश्वय भाव लीला नवधा भक्ति की सीमा से कुछ दूर चला जाती है। जहा केवल ईश्वरता ही है, वहाँ प्रभु के बाल-सखाओ का क्या स्थान है। इस प्रकार की लीला म मानव भावना की उपेक्षा तथा वैभव और अलौकिकता का प्राधान्य दृष्टिगत होता है।[1] अत इस प्रकार की लीला से सामान्य जनता का रस प्राप्त कर सकना सवथा कठिन है। रस अथवा आनन्द की प्राप्ति तो मानसिक रमण स सम्भव है जो भगवान् के अतिमानवीय रूप से सवथा त्याज्य है। मानसिक रमण तो भक्त भगवान से आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करके ही पा सकता है। वह भगवान् के अतिमानवीय या ऐश्वय रूप को देखकर उनके प्रति जो अनुराग भाव उसके हृदय म उत्पन्न होगा उसमे भय का भाव सन्निहित होगा। डा० रूपनारायण पाण्डेय ने लिखा है कि भगवान् के ऐश्वय रूप को देखकर भक्त के हृदय म उनके प्रति जो प्रीति होती है, वह आत्मीयता की भावना स उत्पन्न प्रीति स बिलकुल भिन्न है। यहाँ भक्त भगवान् के ऐश्वय एव विभूति को देखकर आश्चय चकित रह जाता है और भय मिश्रित-श्रद्धा से उसका सिर नत हो जाता है।[2] इस तरह भक्त और भगवान् के बीच प्रेम म सकोच की खाई सदैव बनी रहती है। लेकिन जब भक्त भगवान् को अपना सखा, पुत्र आदि समझता है तो वहाँ सकोच का सवथा अभाव पाया जाता है। इस तरह की उपासना की पुष्टि गोस्वामी तुलसीदास के निम्नांकित वाक्य से होती है—'भय बिनु होय न प्रीति।' राम और कृष्ण दोनो की लीलाएँ इस तरह की हैं।

भारतेन्दु युग यद्यपि अपनी नवीनता के लिये शख ध्वनि कर रहा था, फिर भी भक्ति शिखा की ज्योति अपने अन्तस्तल म छिपाये भक्ति परम्परा की याद दिला रहा था। ऐश्वर्य भाव की लीलाएँ तत्कालीन कवियो की वाणी स वर्णित हैं। भगवान के ऐश्वय का वर्णन करते हुए राधावल्लभ जी जरा सा भी सकोच नही रखते। वह समुद्रमथन से लेकर नदरानी के गोद की बात भी उसी लहजे मे कह जाते हैं। यथा—

उदधि मथैया कालीनाग को नथैया प्रभु,
द्रुपद सुता को वर चीर बढवैया हैं।
व्रज उबरैया कर छिगुनी धरैया गिरि,
इन्द्र को झरैया मद बल को सुमया है।
मुरली ररैया मोर मुकुट लसया सीस,
पाप को हरैया, धर्मपुर को धरैया है।
नन्द को कन्हैया नन्दरानी को पियैया दूध
विश्व को भरैया विप्रवल्लभ सहैया है॥[3]

कवि अपने एक पद मे भवानी जगदम्बा के प्रभाव का वणन करता है। जगदम्बा प्रभाव इतना है कि सुर भी उनके किंकर बने हुए हैं—

---

१ ऐश्वर्य्येनु नरलीलात्वस्यापि तत्वे सति ईश्वरत्वाविष्कार।
विश्वनाथ चक्रवर्ती भक्ति ग्रन्थावली, रागवर्त्मचन्द्रिका पृ० ७६।

२ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य मे माधुय भक्ति, हिन्दी अनुसधान परिषद् दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली प्रथम सस्करण, १९६२ पृ० १२९।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ४२।

मणिमय मंदिर मे विद्रुम कपाट लसै,
पुंजर वितान मध्य मुक्ता लरे रहैं।
ता मध्य सिंहासन बिराजै मध्य जगदम्ब जहाँ,
खासी दिव्य दासौ छत्र चामर धरै रहैं॥
किंकर समान सुर सिंह सनकादि जहाँ,
तहा विप्र बल्लम के दृगहूँ तरे रहैं।
खरे हैं सुधाकर से धाकर से हार सदा,
चाकर से बाहर प्रभाकर परे रहैं॥[1]

भगवान शकर का रुद्र रूप तो ऐश्वय भाव का द्योतक है। उनके रूप को देखकर समस्त अग-जग भय ग्रस्त हो जाता है। डमरु, त्रिशूल, बाघम्बर गले म सर्प आदि का व्यवहार शरीर कांति को भयावना बना देता है। कवि उनके ऐश्वय का वर्णन करते करते भी तत्कालीन युग परम्परा के निर्वाह स्वरूप ही मनाने लगता है—

हाथ लसै तिरसूल घने डमरू उमके सुनि पातक भागे।
डाकिनि शाकिनि भूत पिशाचन बीर अनेकन नाचत आगे।
लोचन काल महा बिकराल निहारत ही दुख दारिद भागे।
पादुका शब्द त्रिलोचन के सुनि लोचन मोद म पागे॥[2]

वामनाचाय भी शिव के ऐश्वय भाव की कल्पना करते हैं—

आस पास जोरि कर ब्रह्मा विष्णु ठाढे रहैं,
ठाढे चौर इन्द्र वो कुबेर हूँ हियै रहै।
गावं वेदबानी द्वारपाल नित नेति भाखी,
नृत्य देवतान को वधूटी सी किये रहै॥
वामन भनत चन्द्र चूर के जटा पै छाये,
चन्द्र की छटान त्यों घटान सा दिये रहैं।
मानो इस सीस रजनीस हूँ प्रकास भीरु,
मजुल मरीचिका की छत्र सो लिये रहैं॥[3]

इसी तरह अन्य कवियो की वाणी भी एश्वय भाव स उपासना कर पुनीत पद को प्राप्त हुई है। युग रीतिकाल से प्राप्त मधुर संवेदन मे ही मस्त था। इसलिये ऐश्वय भाव की कविता नाममात्र को प्राप्त है। कविवर भारतेन्दु जी तो प्रेमी रसिक जीव थे। उनसे ऐश्वय की कामना ही व्यथ है। हा कहीं कहीं कवि एश्वर्य की करपना करता है, लेकिन वहाँ भी अन्त म वह मधुर रस-स्नात वाणी म भाव विभोर हो जाता है। अत उन भावो को हम ऐश्वय की परम्परा मे नहीं रख सकते।

कृष्ण काव्यधारा एव भक्ति साधनाओं का प्रभाव

सौलभ्य उपास्य का प्रमुख गुण है, इसे ही माधुय, मधुर, मधुरा रसिक या रुचि भक्ति कहते हैं। अवतारी भगवान् मे जहाँ माधुर्य प्रधान होता है, वही रागमूला प्रवृत्ति या रागमयी भक्ति का

---

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (सपादक) कविवचनसुधा, २६ नवम्बर, १८८३ ई०, पृ० २।
२ हिन्दी प्रदीप, १९०५ ई०, सख्या १, पृ० २।
३ हरिश्चन्द्र कौमुदी, चैत्र स० १९५१, भाग १, सख्या २, पृ० १६।

प्रादुर्भाव होता है। भक्त भगवान् के अतिमानवीय रूप को विस्मृत कर मानवीय रूप मे उनकी शृङ्गार-परक मधुर लीलाओ का आस्वादन करता है। मधुर लीलाओ म प्रेम की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है। डा० रूपनारायण पाण्डेय ने लिखा है कि 'इसमे सरसता के फलस्वरूप भावोद्रेक और तदुपरान्त आनन्द की प्राप्ति सहज है। और इसीलिये माधुर्यभाव प्रेमी भक्त के लिये अधिक स्पृहणीय है।'[1] इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि माधुर्य भाव मे भगवान् की उपासना कान्ता भाव परक मधुर लीलाओ से अत्यधिक सहज है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे स्वीकार करते हुए लिखा है कि 'इस श्रेणी के भक्तो के अनुसार भगवान् के साथ जितने भी सम्बन्ध हो सकते हैं, उनमे मधुरभाव या कान्ता रति का सम्बन्ध सर्वाधिक मनोरम है।'[2] वस्तुत यह सम्बन्ध विशेष निकटता का है। अन्य भावो म भक्त को भगवान् के नैकट्य का आस्वादन नही हो सकता। अत इस आनन्दप्रदायिनी भक्ति का विषयालम्बन है, स्वय लीला पुरुषोत्तम राम या शृङ्गार सम्राट् श्रीकृष्ण। अत महाप्रभु चैतन्य, हितहरिवंश, स्वामी हरिदास आदि भक्ति के आचार्यों ने इसे प्रेमा भक्ति के रूप मे स्वीकार किया है, कालान्तर म इसे ही माधुर्य भक्ति की सज्ञा दी गई।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आत्यन्तिक स्नेह ही माधुर्य का स्वरूप है। भक्त भगवान् के मधुर प्रेम का आस्वादन करने के लिये जिस उपासना को स्वीकार करता है, उसे माधुर्य भक्ति, रसिक भक्ति प्रेमलक्षणा भक्ति या रागानुगाभक्ति के नाम स पुकारा जाता है। इस उपासना मे भक्त को उतने ही भगवद्विषयक आनन्द की प्राप्ति होती है जितनी की पति-पत्नी मे लक्षित होती है। डा० माधव ने लिखा है कि पाप रहित शुद्ध अन्त करण मे भागवत धर्म के अनुष्ठान से भगवत्कृपा द्वारा सासारिक वस्तुओ के प्रति तीव्र वैराग्य, सत् असत् पदार्थों का एव निज स्वरूप पर स्वरूपादिक 'अर्थ पचक' का यथार्थ ज्ञान प्रकट होता है, तत्पश्चात् भगवच्चरणारविन्दो मे अनन्य अविचल अनुरागपूर्वक स्नेह स्वरूपा भक्ति का स्वत अन्त करण म जो उदय होता है वही भक्ति रागानुगा या प्रेमाभक्ति के नाम से पुकारी जाती है।'[3]

माधुर्यभाव से प्रभु की आराधना की चार कोटियाँ हैं—

(१) कान्ताभाव

(२) गोपीभाव

(३) सखीभाव, और

(४) मजरीभाव

(१) कान्ताभाव

कान्ताभाव की उपासना मे भक्त अपने को प्रिया और भगवान् को प्रिय के रूप मे ,स्वीकार करता है। यह वह स्थिति है जब भक्त अपने भगवान् को नायक के रूप मे स्वीकार करता है। लौकिक नायिका अपने नायक के मधुर ससर्ग से जो आनन्दानुभूति प्राप्त करती है वही आनन्दानुभूति भक्त अपने

---

१ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य म माधुर्य भक्ति, दिल्ली, प्रथम सस्करण, १९६२ ई० पृ० १३२।

२ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन धर्म-साधना साहित्यभवन प्रा० लि० इलाहाबाद, तृतीय सस्करण १९६२ ई०, पृ० १८०

३ भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव रामभक्ति साहित्य म मधुर उपासना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ३।

हृदय मे अनुभव करता है। वह प्रभु के साथ समस्त सयोग वियोगपरक लीलाओ का रसास्वादन करते मे सफल होता है। इसमे तन्मयता की भावना विशेष होती है, जिससे प्रभु ही भक्त का सब कुछ हो जाता है। प्रभु के सिवा भक्त और कुछ नही चाहता। कान्ताभावपरक 'मधुरभक्ति' निर्गुण एव सगुण सबमे उपलब्ध होती है, लेकिन निर्गुण भावना मे इसका आदर्श नही है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'निर्गुण मार्गी भक्तो ने जब तब प्रेमावेश म आकर भगवान् के प्रति मधुर भाव के पद कहे हैं। उनकी साधना का प्रधान और प्रथम वक्तव्य यही नही है। कबीर दादू आदि भक्तो ने और बातो के बीच इस मधुर प्रेम सम्बध की भी चर्चा की हैं।'[1] अत यह एक स्वर मे स्वीकारा जा सकता है कि इस तरह की उपासना सगुणोपासक स्त्री भक्तो द्वारा ही विशेष सम्भव है।

(२) गोपीभाव

भगवान् की मधुर लीलाओ की सगिनी गोपियाँ हैं। भक्त भगवान् की मधुर लीलाओ का ध्यान, स्मरण अथवा गान इन्ही गोपियो के माध्यम से प्राप्त करता है। वह गोपियो की सी तन्मयता और आत्मीयता इसी के द्वारा प्राप्त करता है। अत गोपीभाव से भक्त भगवान् के निकट का रसाद्रव प्राप्त करता है। वह गोपी रूप की प्राप्ति की कामना कर भगवान् की मधुर लीलाओ मे प्रवेश पाना चाहता है। वल्लभ मतानुयायी प्राय सभी कवि इसी भाव की उपासना मे मस्त दीख पड़ते हैं।

(३) सखीभाव

सखीभावपरक 'मधुरभक्ति' कान्ताभाव और गोपीभाव दोनो से अलग है। इसम भक्त न तो भगवान् की प्रेमिका बनना चाहता है और न गोपी के रूप मे उनकी रासलीलाओ म प्रवेश ही पाना चाहता है। वह तो केवल कृष्ण प्रिया राधिका के पदो का सेवन करना चाहता है। वह राधिका के सखी पद को प्राप्त करना ही अपने जीवन का लक्ष्य समझता है। इस प्रकार वह राधा-कृष्ण की केलि मे सहायता प्रदान कर उन मधुर लीलाओ के दर्शन से ही अपने जीवन को धन्य समझता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'भक्त लोग राधा और कृष्ण के परस्पर प्रेम की भावना द्वारा मधुररस में लीन होते हैं—ठीक उसी प्रकार जसे किसी काव्य मे नायक-नायिका के प्रेम व्यापार को पढ़-सुनकर पाठक या श्रोता शृङ्गाररस में मग्न होता है।'[2]

(४) मजरीभाव

सखीभावपरक 'मधुरभक्ति' मे सखीभाव और मजरीभाव दो प्रकार के प्रीति विधान हैं। सखीभाव की उपासना मे सखी राधा की समजातीया या समवयस्का सेवा से श्रीकृष्ण प्रीतिविधान करती हैं। लेकिन सखियो में एक अन्य प्रकार की सखी का भी वणन मिलता है जो केवल राधाकृष्ण के मिलन आदि की व्यवस्था करना अपना लक्ष्य समझती है। सखी का सम्बध केवल राधा से रहता है, लेकिन मजरी श्रीकृष्ण राधा दोनो से सम्बध रखती है। गौडीय सम्प्रदाय मे मजरी भाव की उपासना अत्यन्त सहज है।

---

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी मध्यकालीन धर्म साधना, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद, सन् १९६२, पृ० २०५।

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सूरदास, सपादक विश्वनाथप्रसाद मिश्र सरस्वती मन्दिर वाराणसी पंचम सस्करण, १९६१ ई०, पृ० ७६।

भारतेन्दुकालीन कृष्णकाव्यधारा और भक्ति सम्प्रदाय

निम्बार्क सम्प्रदाय

कृष्ण भक्ति को सर्वप्रथम साम्प्रदायिक रूप देने का श्रेय इसी सम्प्रदाय को प्राप्त है। ऐसा नहीं कि इस सम्प्रदाय के पूर्व कृष्ण भक्ति का प्रचलन नहीं था। कृष्ण भक्ति का प्रचलन इसके पूर्व भी था लेकिन इस कृष्ण भक्ति का कोई रूप नहीं था। आचार्य निम्बार्क ने कृष्ण भक्ति का प्रचार ही नहीं किया वरन् इसे एक साम्प्रदायिक रूप भी प्रदान किया। श्रीराधा सर्वेश्वर शरण देवाचार्य ने लिखा है कि श्रीराधा की उपासना श्रीनिम्बार्काचार्य से पूर्व भी प्रचलित थी और उन्हें परम्परागत रूप से ही प्राप्त हुई थी जिसका फिर इनके द्वारा विशेष प्रचार हुआ।[1]

उपासना का स्वरूप

उप-समीपे आसना स्थिति उपासना। अर्थात् जिस क्रिया के द्वारा हम अपने को इष्ट के साथ विराजमान कर सकें, उसी का नाम उपासना है।

यह सम्प्रदाय अपनी प्राचीनता के लिये विशेष महत्वपूर्ण है। आचार्य निम्बार्क ने अपनी उपासना का स्वरूप निम्नांकित श्लोक में दर्शाया है—

अंगे तु वामे वृषभानुजा मुदा,
विराजमाना अनुरूप सौभगाम्।
सखी सहस्त्र परिसेविता सदा,
स्मरेम् देवीं सकलेष्ट कामदाम्॥[2]

आचार्य निम्बार्क के इस श्लोक में कृष्ण के उस स्वरूप का स्मरण एवं ध्यान के लिये कहा गया है जिसके वाम भाग में राधिका जी अपनी सहस्त्रों सखियों के साथ विराजमान हों। सखियाँ अलंकार, वस्त्र, ताम्बूल, माला चामर व्यंजन आदि लेकर सेवा में तत्पर हैं।

इस प्रकार इस सम्प्रदाय में राधा कृष्ण की युगल उपासना स्वीकार की गई है। इनका पारस्परिक सम्बन्ध प्रिया प्रियतम का है। इस सम्प्रदाय के भक्त कवि युगल सरकार की मधुर लीलाओं की रचना करते हैं और सखी भाव से उनकी उपासना करते हैं। इन प्रेमलीलाओं में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर इन पाँच रसों का स्वच्छ प्रवाह प्रवाहित होता है। इन रसों की अपनी अपनी भावना में अलग अलग प्रधानता है लेकिन प्रत्येक रस की उपासना में इन सबका थोड़ा बहुत पुट अवश्य रहता है। साधक अपनी अभिरुचि के अनुसार इन पाँचों में से किसी भी एक भाव को अपना सकता है। ये रस भाव के विकास के साथ साथ परिवर्तित होते जाते हैं। अर्थात् शान्त, दास्य में, दास्य सख्य में, सख्य वात्सल्य में और वात्सल्य मधुर भाव में विकसित हो जाता है।

निम्बार्क सम्प्रदाय की मधुर लीलाओं में राधा कृष्ण का विवाह और उनके विहार आदि का विशेष महत्व है। भारतेन्दु जी ने राधा-कृष्ण का विवाह ११ पदों में सविस्तार वर्णित किया है। इन कुसुमित पदों में कवि की भावधारा अगम्य सरिता की भांति प्रवाहित होती है। वर्णन इस प्रकार है—

दूलह श्रीबृजराज फूलि बैठे कुंजन आज।
फूलन को सेहरो फूलन के अभरन फूलन के सब साज॥

---

१ कल्याण, उपासना विशेषांक, वर्ष ४२, संख्या १, २०२४, पृ० २७।
२ दशश्लोकी, श्लो० ५।

फूलि सखि गीत गाव देव फूल बरसावैं फूल्यो सकल समाज।
फूली श्रीराधा प्यारी देखि फूली ब्रजनारी।
हरीचंद फूल्यो अति आज॥[1]

मधुर भाव की लीलाओं का केंद्रस्थल वृंदावन है। वृन्दावन को इस सम्प्रदाय मे विशेष महत्ता है। राधाकृष्ण की लीलाओं का उल्लेख प्राय वृन्दावन सम्बन्धी प्रत्येक पदो मे हुआ है। वृन्दावन इस सम्प्रदाय का परम धाम है। भारतेंदुकालीन कवियों ने वृंदावन की महत्ता को स्वीकार किया है। प्राय सभी कवियो ने वृन्दावन को मधुर लीलाओं का वर्णन किया है। भारतेंदु जी उसे धाम की संज्ञा देते हैं—

मायावाद-मतंग मद हरत गरजि हरि-नाम।
जयति कोऊ सो केसरी वृंदावन बन धाम॥[2]

वृन्दावन धाम मे विरक्त होकर निवास करने का इस सम्प्रदाय मे अत्यधिक महत्व है। भक्त ललित किशोरी जी वृन्दावन वास की कामना रखते हुए युगल रूप रस के प्यासे हैं—

श्रीवृंदावन-वास दीजिये यही हमारी आसा है।
जमुना तीर सुछाय माधुरी जहं रसिका का बासा है॥
सवाकुंज मनोहर सुंदर इक रस बारो मासा है।
'ललितकिसोरी' का दिल केवल जुगुल रूप रस प्यासा है॥[3]

कवि की भक्ति भावना मे वृन्दावन की विशेष महत्ता है। वह केवल वृंदावन की ही नहीं बल्कि वहाँ के कण-कण से भी प्रेम करता है। वह उसे ही अपना प्रिय समझता है, जो वृंदावनरज का दर्शन कराता है। वह श्रीकृष्ण राधा का दर्शनाभिलाषी है। उसके हृदय मे वृंदावन धाम से बहने वाली तरनि-तनूजा के मधुर जलपान कराने वाले के प्रति भी विशेष अनुराग है। वह उसे अपना उपकारी समझता है। वृंदावन के प्रति इतनी श्रद्धा भारतेंदुकालीन अन्य किसी कवि मे नहीं पाई जाती। कवि की उक्ति बड़ी ही अनूठी है—

श्रीवृन्दावन रज दरसावै सोई हितू हमारा है।
राधा-मोहन-छबी छकावै सोई प्रीतम प्यारा है॥
कालिन्दी जलपान करावै सो उपकारी सारा है।
'ललितकिसोरी' जुगुल मिलावै सो अखियों का तारा है॥[4]

कवि भगवान्प्रसाद 'रूपकला' वृन्दावन की महत्ता बतलाते हुए कहते हैं, वह बहुत ही भावगम्य है।

धनि वृन्दावन धाम है धनि वृन्दावन नाम।
धनि वृन्दावन रसिक जन धनि श्रीश्यामा श्याम॥[5]

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेंदु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, रागसंग्रह, पृ० ४१३।
२ वही, भक्तसर्वस्व, छ० १२, पृ० ६।
३ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य मे माधुर्यभक्ति, दिल्ली, प्रथम सस्करण, १९६२, पृ० २३५।
४ वियोगी हरि ब्रजमाधुरी सार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, आठवाँ सस्करण, २००६, पृ० २७२।
५ आचार्य शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ६२।

ललित माधुरी जी भी वृन्दावन के आनन्द पर बलि जाते हैं। वहाँ का आनन्द अपूर्व है। एक तो वृन्दावन की अपनी सुषमा ही अजीब है दूसरे राधा माधव का वह मधुर लीलाओं का केन्द्रस्थल है। इस लिये वृन्दावन की छवि और भी अपूर्व हो जाती है—

देखो बलि वृन्दावन आनन्द।
नवल सरद निसि नव बसत रितु नवल सु राका चन्द॥
नवल मोर पिक कीर कोकिला कूजत नवल मलिन्द।
रटत श्रीराधे राधे माधव मारुत सीतल मदा।
नवल किसोर उमगन खेलत नवल रास रसकद।
ललित माधुरी रसिक दोऊ वर निरतत दिये करक्द॥[1]

कवि नवल शब्द की बार बार आवृत्ति कर भाव में भी नवीनता प्रदान कर देता है।

उपास्य का स्वरूप

इस सम्प्रदाय के उपास्य श्रीकृष्ण तथा वृषभानुनन्दिनी हैं। इन्हें प्रिया प्रियतम या श्यामा श्याम की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। इनका पारस्परिक सम्बन्ध स्वकीया भाव का है। भारतेन्दु जी वल्लभ सम्प्रदाय के थे, लेकिन उनकी उपासना में 'अंगे तु वामे वृषभानुजा मुदा' की स्पष्ट छाप है। वे उसी कृष्ण की उपासना करते हैं जिसके दाँये भाग में चन्द्रावली नामक सखी है और वाम भाग में उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधिका जी विराजमान हैं—

दच्छिन दिसि चन्द्रावली श्रीराधादिसि वाम।
तिनके मधि नट रूप धर जै जै श्रीघनश्याम॥[2]

अत इस सम्प्रदाय में उपास्य का स्वरूप युगल रूप है। यहाँ भक्त उसे चेतना चेतनात्मक इस दृश्यमान जगत् को उन्हीं का रूप समझता है। वह केवल रिझाने के निमित इस प्रकार चौरासी लक्ष-योनि का रूप पकडता है।[3] इस युगल सरकार का रूपलावण्य अनुपम है, जिसे देखकर नयन मन चचल हो जाता है। राधा-कृष्ण दोनों वास्तव में एक प्राण है, किन्तु लीला के लिये उन्होंने दो विग्रह धारण किये हैं।[4] जल तरंग बुधि प्रान पुनि दीप प्रकाश समान

जुगल अभिन्न हु दोय वपु जय राधा भगवान॥[5]

उपासक का स्वरूप

निम्बार्क सम्प्रदाय में मधुररस की पयस्विनी प्रवाहित होती है। मधुररस भावना में सभी स्त्री पुरुषों का अधिकार है। उपासक अपने को उपास्य प्रिया प्रियतम श्रीयुगलकिशोर की सहचरी मानकर उनकी आराधना करता है। वह अपने को कान्ता नहीं मानता। कान्ता मानने में उसे कठिनाई है, क्योंकि कान्ता भाव में स्व-सुख-सुखित्व की झलक आ जाती है। और किशोरी जी के साथ स्पर्धा के

---

१ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, वर्ष २९, २०११ पृ० ४३८।
२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खड, भक्तसर्वस्व, पृ० ५०।
३ तुमहिं रिझावन हित सज्या लख चौरासी रूप।
रीझि देहु गति रीझि कै बरजहू मोहिं व्रज भूप॥ —वही, पृ० ७८।
४ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्य भक्ति, पृ० २३०।
५ ब्रजरत्नदास (सपादक) भा० ग्र० २, बलि कार्तिक सं० १३, पृ० ७७

स्थान पर ईर्ष्या भावना की सृष्टि हो जाती है। अत यही उपासक अपने उपास्य की लीलाओं को देखकर प्रमुदित होता है। इस प्रकार इस सम्प्रदाय मे उपासक तत्सुख सखी का रूप प्राप्त करता है। वह अपने उपास्य को सुखी देखकर सुखी होती है। उनका अपना सुख प्रिया प्रियतम का सुख है। कवि भारतेन्दु जी अपने सेज पर बनवारी को बुलाकर सुरति सुख का अनुभव करते हैं—

म्हारी सेजा आवो जू लालबिहारी।
रग रगीली सेज सवारी लागी छै आशा थारी।
बिरह बिथा वाढी घणी ही मैसो नहिं जात समारी।
'हरीचद' सौ जाय कह्यो कोऊ तलफै छ थारे बिन प्यारी।[1]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दुकालीन कविता पर निम्बार्क सम्प्रदाय की मधुर लीलाओ की स्पष्ट छाप है। भारतेन्दु जी यद्यपि वल्लभ मतानुयायी थे, फिर भी उनकी कविता पर इस सम्प्रदाय की प्रेमलीलाओ की स्पष्ट छाया है।

चैतन्य सम्प्रदाय

उपास्य का स्वरूप

इस सम्प्रदाय मे राधा और कृष्ण उपास्य हैं। भक्त इनकी उपासना गोपी भाव और मजरी भाव से करता है। राधा का परकीया रूप ही इस सम्प्रदाय मे मान्य है। इस सम्प्रदाय के भक्त कवि इनकी मधुर लीलाओ का रसास्वादन गोपी रूप म या मजरी के रूप म करते हैं। ये युगल स्वरूप अपने भक्तो की तृप्ति के लिये प्रकट और अप्रकट लीलाए करते हैं। प्रकट लीलाओ की इस सम्प्रदाय मे विशेष महत्ता है। इन लीलाओ का ध्यान इस सम्प्रदाय का भक्त कवि बडी सुगमता से कर लेता है।

भारतेन्दुकालीन कविता मे श्रीकृष्ण का स्थान विशेष है। वे उनका रूप स्वभाव शील-माधुर्य आदि इस प्रकार का है कि भक्त का नयन-मन सहज ही म लोमायमान हो जाता है। कवि कृष्ण के नृत्य का वर्णन करते हुए प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ भाषा और भाव का इतना सुन्दर साम्य उपस्थित करता है कि ब्रजराज के नटराज साज को देखकर घन भी रीझ जाता है। शब्दों मे नृत्य की सी छटा लक्षित होती है।

नाचत ब्रजराज आज साजे नटराज-साज,
पावस सो बनि बदि कै होड सी लगाई।
कोकिल कल बसी धुनि नृत्य कला मोर नटनि,
पीत बसन चपला दुति छीरत चमकाई॥
ज्यो ज्यो बरसत सुबेस त्यौं त्यौ रस बरसत,
हरि घन गरजत उत इत रहे मृदग बजाई।
हरीचन्द जीति रग रह्यो आजु ब्रज अखारें,
हारे घन रीझि देव कुसुमन झर लाई॥[2]

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्रेम मालिका, छ ३१, पृ० ५५।

२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रेमाश्रु-वर्षण, छ० ४६,पृ० १२८।

राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं का ध्यान एव गान भारतेन्दु जी की उपासना है। उन्होने गोप वा सखाओं के साथ श्रीकृष्ण के नृत्य का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढग से किया है—

> सरन्त सुन्नगाता सग गोपी बाल ॥
> बजत झाझ मृदग आवाज चङ्ग बीना तान।
> जात बलि 'हरिचन्द' छवि लखि सुभग श्याम तमाल ॥[1]

गौडीय सम्प्रदाय मे साधक राधा-कृष्ण की सेवा के लिये शुद्ध अन्तःकरण से मजरी का अनुगमन करता है।[2] मजरी युगल स्वरूप की उपासना के नित निजी सुख का ख्याल नहीं करती। वह भगवान् श्रीकृष्ण की मधुर लीला के निमित्त उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा का साज श्रृङ्गार करती हैं। वह वेषभूषा, केश विन्यास तथा अन्य साधना से राधा का श्रृङ्गार करके उसे कृष्ण के साथ रमण करने के योग्य बना देती हैं। यहाँ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी मजरीभाव के रूप मे राधिका का श्रृङ्गार दुलहिन के रूप मे करते हैं। व्रजभूमि अपनी प्राकृतिक छटा के लिये अपूर्व है। अत व्रज की लताओ से राधा का श्रृङ्गार बडा ही मनमोहक हो गया है। कवि को राधिका के नवल दुलहिन का रूप अत्यन्त सुखप्रद है—

> सखियन आज नवल दुलहिन को फूल सिंगार बनायो हो।
> फूलन के आभरन मनोहर रचि रचि के पहिरायो हो॥
> फूलनि बनी गुहो मनोहर फूलन मौर सुहायो हो।
> फूलन के कगना कर बांधे फूलनि मडप छायो हो॥
> फूलनि चोली फूलनि सारी फूलनि लहगा भायो हो।
> दुलहिन दुलहा गाठि जोरि के एक पास बैठायो हो॥
> फूली फूली सब सखियन मिलि फूल्यो मगल गायो हो।
> फूली जोरि देखि नयन सो हरीचन्द' सुख पायो हो॥[3]

अष्टकालीन लीला

भारतेन्दुकालीन कविता की कृष्णाश्रयी शाखा पर चैतन्य की अष्टकालीन लीलाओं का प्रभाव अस्वीकार नहीं किया जा सकता। स्वय भारतेन्दु जी भी उक्त प्रभाव से वचित नहीं हैं। उनकी कविताओं मे इन अष्टकालीन मधुर लीलाओं का चित्रण बहुत ही सरस एव सरल भाषा मे भावपूर्ण हुआ है। कवि को पूर्णत सफलता मिली है। ये लीलाएँ दो प्रकार की हैं। एक सयोगपरक और दूसरी वियोगपरक। सयोगपरक लीलाओं मे रास, दधीचोरी, जलकेलि, होली झूलन, चीरहरण, द्युत क्रीडा आदि सभी प्रकार की लीलायें हैं। वियोग-परक लीलाओं मे पूर्वराग मान और प्रवास का वर्णन किया जाता है। गौडीय सम्प्रदाय मे सयोग-परक लीलाओ मे जो अष्टकालीन लीला का वर्णन किया जाता है व निम्नाकित है—निशान्त लीला प्रातःकाल की लीला, पूर्वाह्नकालीन लीला, मध्याह्नकालीन लीला, अपराह्नकालीन लीला सायकालीन लीला, प्रदोषकालीन लीला निशीथकालीन लीला।[4]

भारतेन्दु जी राधिका के साथ श्रीकृष्ण का सेज पर केलि वर्णन करते हुए निशान्त लीला का

---

१ व्रजरत्नदास (सपा०) भारतेंदु ग्रथावली स्फुट कविताएँ छ० २१ पृ० ८३४।
२ डा० रूपनारायण पाण्डेय व्रजभाषा के कृष्णकाव्य मे माधुर्य भक्ति पृ० २८०।
३ व्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली दूसरा खण्ड राग सग्रह, छ०११८, पृ० ४७७।
४ डा० रूपनारायण पाण्डेय व्रजभाषा के कृष्णकाव्य मे माधुर्य भक्ति पृ० २७५ ६।

अनुभव करते हैं। माता और भाव दोनो से रस की वर्षा के छींटे अच्छे लगते हैं। कवि राधिका को गिरिधर के साथ सेज पर पाकर अपूर्व आनन्द की प्राप्ति करता है—

रसिक गिरिधर सग सेज साई भली।
रीझि पिय देत सुखदान कीरति-लली।
उभकि भुज चूमि मुख लूटि रस अधर-सुख।
मेटि जिय दुसह दुख करत नव रगरली।
भुजन सो भुजवधे अग प्रति अग सधे।
कसमसक कुम्हिलात सेज कुसुमन-कली॥
अग उमगे रग पिया प्यारी सग प्रेम रति।
जग पद मदन मद दलमली।
सखी 'हरिचद' रही रीझि तन-मन-वारि,
करत गुनगान रसमत्त चहुँ दिसि अली।[1]

कवि राधिकारमण का वर्णन करते अघाता नही। जैसे रस बस मे रात का पता युगल स्वरूप को नही चलता ठीक उसी प्रकार कवि रस वर्णन से भागता नही। वह अपने एक पद म रमबम म निसि जात न जानो की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत करता है। गौडीय सम्प्रदाय की निशान्त लीला म इस प्रकार का पद अन्यत्र दुलभ है। यथा —

रस मे निसि जात न जानी,
कहत सुनत कुछ हसत हसावत दृगजोरत छन सरिस बिहानी।
आलस बिबस जम्हात परस्पर कहि बलिहार मधुर सुर बानी,
रूह लालची दृग नहि झपकत जागत ही निसि सकल सिरानी।
अरुझे प्रेम-फद नहि सुरझत मुख चूपत हरिराधा रानी,
'हरिचद सखि-मन-सोइ गावत जुगल प्रेम की अकथ कहानी।[2]

चीरहरण लीला भगवान् कृष्ण की सयोगपरक लीलाओ का एक अग है। कवि उनके चीर-हरण लीला का वर्णन अपनी वाणी को पवित्र करता है। वह लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सभी गोप बालाओ का चीर लेकर कुन्द पर चढ गया है। वे श्रीकृष्ण से आरजू करती हैं। बहुत आरजू मिन्नत के बाद उन्हें चीर प्रदान कर देते हैं। गोप बालाएँ चीर पहन कर कुजो पर चढ जाती हैं और कुजो पर केलि की कहानी शुरू हो जाता है। इस तरह अद्भुत माधुय लीला विधि और हर को भी सुलभ नहीं है। कवि इस तरह की माधुरी मूर्ति को हृदय म बिठा लना चाहता है—

देखौ सोभित तरु पर नट-वर,
मोर मुकुट कटि पीत पिछौरी मुरली हाथ सुघर वर।
बोले हरि बाहर ह्वै आओ हे ब्रज-बाल चतुर-तर,
नागी होइ जमुन म पैठी पूजहु आइ दिवाकर।

---

१ प्रभरत्नमाल (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, राग सग्रह, छं० १०४, पृ० ४७२।

२ वही, छ० १०५, पृ० ४७२।

सुनि पिअ बचन निकसि सब आई दीनो चीर गुजघर,
पहिरि चीर ब्रजनारि-नवेली केलि करी कुजन पर।
'हरीचद' हरि की यह लीला नहि पावत बिधि अरु हर,
कोमल मजु सावरी मूरति नित्य बिराजो हिय पर।[१]

भारतेन्दु जी ने रासलीला सम्बन्धी पदो की रचना बहुत कम की है। चैतन्य सम्प्रदाय मे रास लीला की विशद व्याख्या की गई है। भारतेन्दु जी का रासलीला सम्बन्धी श्रेष्ठ पद प्रस्तुत किया जा रहा है—

वृन्दावन उज्जल बर जमुना-तट नदलाल
गोपिन सग रहस रच्यो सरद जामिनी।
निरतत गोपाललाल सग मे बृज-बाल बनी
अद्भुत गति लेत कोक-कलित कामिनी।
लाग डाट सुर-बधान गावन अचूक तान
ततथेइ ततथेइ थेइ गति अभिरामिनी।
गोपिन सग श्याम सुन्दर मडल मधि सोभित अति
बिहरत बहु रूप मानो मेघ दामिनी।
थाक्यो नम चद देखि रैनि गति सिथिल भई
लखि हरि गजपति सग गज-गामिनी।
'हरीचद' सोभा लखि देव-मुनि नभ बिथकित
मानी हरि साथ सबै ब्रज भामिनी।[२]

प्रस्तुत पद मे नृत्य और सगीत के शास्त्रीय शब्दो की प्रवृत्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

जलक्रीडा मे नौका बिहार का विशेष स्थान है। राधा-कृष्ण म यमुना पुलिन पर प्राय बिहार करते देखे जाते हैं। भारतेन्दु जी की बिलासी प्रवृत्ति नौका विहार के चित्र को कब भूलती। सरित्सतरण उन्हे अत्यन्त प्रिय था। अत राधाकृष्ण को नौका पर बैठा कर विहार कराते हैं। नौका विहार दृश्य का अकन बहुत मनोहारी हुआ है—

नाव चढि दोऊ इत उत डोल।
छिरकत कर सो जल सचित करि, गावत हसत कलोल।
करनधार ललिता अति सुन्दर, सखि सब खेवत नाव।
नाव हलनि मैं पिया बाहु मैं, प्यारी उरि लपटावै।
जेहि दिसि करि परिहास झुकावहि सबही मिलि जल-यानै।
तेहि दिसि जुगल सिमिटि झुकि परही सो छबि कौन बखानै।
ललित कहत दाव अब मेरो तू मो हाथ न प्यारी।
मान करन की सौह खाइ लो हम पहुँचाव पारी।
हसत हसावत छीट उडावत बिहरत दोऊ सोहैं।
'हरीचद जमुना-जल फूलै जलज सरिस मनमोहैं॥[३]

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, स्फुट कविताए छ० १४, पृ० ८३१ ३२
२ वही, रासग्रह, छ० ८१, पृ० ४६४।
३ ब्रजरत्नदास (सम्पादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी राग संग्रह, छद ५६ पृ० ४५७।

गौडीय सम्प्रदाय मे सयोग पक्ष की लीलाओ मे झूले की अपनी महत्ता है। भारतेन्दुकालीन कवि कृष्ण और राधा को झूले पर बैठे देख अति आनन्द से झूम झूम जाते हैं। ग्वाल बाल और गोप बंधुआ की सहायता से रसिकराज शिरोमणि श्रीकृष्ण की यह लीला कृष्णकाव्यधारा मे नव नूतन रस का सचार करती है। भारतेन्दु जी का यह पद किसके मन मयूर को नही मत्त करता। पद इस प्रकार है—

झूलत है राधिका स्याम सग नवरग सुखद हिंडोरे।
गावत मालव राग रस भरे ताा मान मधुरे सुर जोरे॥
उमगि रही ब्रजनारि नवेली पचरग चीर पहिरि चित चोरे।
पचरग छबि रस जुगलमाधुरी कहि न जाइ श्यामल रग गोरे॥
बरसत मद मद घन तेहि छन पच रग बादर सब सुख बोरे।
'हरीचद' वृषभानु नन्दिनी कोटिन ससि-छबि छिन महँ छोरे॥[1]

सयोग-पक्ष की लीलाओ की भाँति ही वियोग पक्ष की लीलाओ का भी वर्णन तत्कालीन कविता का प्रमुख विषय है। विरह प्रेम तप्त स्वर्ण है। भारतेन्दु जी ने विप्रलम्भ शृङ्गार का अत्यन्त सुन्दर एव विशद् वणन किया है। पूर्वानुराग का वणन करते समय कवि का रसाभ्यासी हृदय रस से सराबोर हो जाता है। सखियाँ लोकलाज, कुलकानि आदि की बातें कहकर तरह तरह से समझाने का प्रयत्न करती हैं। पर यहाँ तो 'सूरदास की कारीकामरि चढा न दूजो रग' एसा पक्का रग चढ गया है कि वह धोने से छूटता नहीं बल्कि और निखरता है। वह कहती है—

वह सुन्दर रूप बिलोकि सखी, मन हाथ ते मेरे भग्यो सो भग्यो।
चित्त माधुरी मूरति देखत ही 'हरिचन्द' जूजाय पग्यो सो पग्यो।
मोहिं औरन सो कछु काम नहीं, अब तो जो कलक लग्यो सो लग्यो।
रग दूसरो और चढैगो नही, अलि सावरा रग रगयो सो रग्यो॥[2]

राधा गौडीय सम्प्रदाय मे परकीया मानी गई हैं और कृष्ण की बहुनायकता तो प्रसिद्ध ही है। अत राधा उन पर खीझ जाती है। पहले उलाहना देती है,[3] लकिन उन्ह जब मालूम हो गया कि इस काले रग पर दूसरा रग चढने वाला नही है, तब लाचार होकर मान करना ठान लिया। वे बसतऋतु को मान के अनुपयुक्त समझते हुए भी मान कर बैठती हैं—

यह नव नितु बसत की सुन्दर मान न कीजै प्यारी।
कर जोरे मनुहार करत हैं ठाढे श्रीगिरिधारी।
कह पिय कहु तु यह औसर उठि चलि कोप निवारी।
भरि रग सो चित्र नवल लाल को लै कचन पिचकारी।

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, प्रेमाश्रु वषण, छ० ४१, पृ० १२७।
२ वही, प्रेममाधुरी, छ० ११३, पृ० १७२।
३ सजन तोरी हो मुख देखे को प्रीत।
तुम अपने जोबन मदमाते कठिन विरह की रीत॥
जहाँ मिलत तहाँ हँसि हँसि बोलत गावत रस के गीत।
'हरीचंद' घर घर के भौंरा तुम मतलब के मीत॥
वही, प्रेम-तरंग, छं० ३२, पृ० १८५।

साझ समै गोकुल वन बोने, फूल रही फुलवारी ॥
गिरिधर पियहि भेंट अकम भरि हरीचन्द बलिहारी ॥[1]

यही तक नही मान तो कभी कभी इतना बढ़ जाता था कि रसिक शिरोमणि कृष्ण को मनाते मनाते सवेरा हो जाता था। चैतन्य सम्प्रदाय मे इसे गुरु मान की सज्ञा दी जाता है—

मनवत मनवत ह्वै गयो भोर।
ग्रसित निसा नायक पच्छिम निसि सोर करत तमचोर।
पियहि सबै निसि जागत बीती, खरे खरे कर जोर।
आलस बस अब लरखरात पग निरखत तुव दृग कोर।
क्यो सखि प्रेमहि लाज लगावति करिवै वृथा मरोर।
'हरीचद नीर लगु उठि पिके के, हा ताहि कहत निहोर।[2]

वियोग-पक्ष की मधुरलीलाओ मे प्रवास का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रवास का वर्णन प्रबन्ध काव्य मे अधिक होता है। यहाँ भारतेन्दुकालीन कवि ने तो प्रबन्धकाव्य की रचना करने म अपनी रुचि नहीं दिखलाई है। अत अन्य लीलाओं की भाँति ही स्फुट पदो म प्रवास का वर्णन उपलब्ध है। प्रवास में दु खातिशय का प्रधान कारण पूर्व-केलि-स्मरण होता है। गोपिकाएँ और स्वय राधा दोनो के हृदय मे एक टीस है मन में एक कचोट है। राधा के विरह म जो दीन-दशा होती है उसका अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन भारतेन्दु जी ने प्रस्तुत किया है। राधा का जो क्लेश और दु ख है उसम सहानुभूति रखने वाला कोई नही है—

मरम की पीर न जाने कोय।
कासों कहौं कौन पुनि माने बैठ रही घर रोय ॥
कोऊ जरनि न जाननवारी बे महरम सब लोय।
अपुनो कहत सुनत नाहि मेरी केहि समुझाऊँ सोय ॥
लोक-लाज कुल की मरजादा बहि रही सब मोय।
हरीचद ऐसहि निबहैगी होनी होय सों होय ॥[3]

विरहातुर हो वह कान्ह कान्ह पुकारती है एव दीवानी सी घूमती है—

मौन रहत कबहूँ कबहूँ तू बोलत अलबल बानी सी।
ठगी ठगी रस पगी श्याम रट लगी कबहु अकुलानी सी ॥
तन की सुधि गुरु जन की भै बिनु हरीचद रस सानी सी।
काके मद माती डोलत क्यो प्यारी फिरत दिवानी सी ॥[4]

इस तरह अनेक पदों मे भारतेन्दु जो ने राधा की विरह विदग्ध-दशा का वर्णना किया है।

गोपियाँ श्रीकृष्ण की अनन्य सखा हैं। रसकेलि उसके बिना सभव नही। भारतेन्दु जी गोपियों के परम भक्त हैं। चैतन्य सम्प्रदाय भक्ति के क्षेत्र में गोपियों का उत्तम स्थान देता है। परमभक्त भारते-

१ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और अन्य सहयोगी काशी, पृ० १०२।
२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड प्रेमप्रलाप, छ० ४२, पृ० २८७।
३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड प्रमफुलवारी कविताएँ, छ० ४५, पृ० ५८७ ८८।
४ वही, स्फुट कविताएँ छ ४ पृ० ८६२।

उनकी प्रशंसा करते अघाते नही क्योकि प्रेम के तत्व को गोपियां न हृदयगम कर लिया था। उनके लिये प्रेम प्रेम है प्रम मे मीन मेष नही होता।[1] अत सब दु ख सहते-सहते भी मरने के पहले एक बार कृष्ण को देख लेना ही चाहती है। दशन की उत्कट अभिलाषा लिये हुए गोपियाँ कहती हैं—

फेरहू मिलि जैए इक बार।
इन प्रानन को नाहि भरोसो ए हैं चलन तयार॥
जो छतियन सो लगि नहि विहरौ प्यारे नन्दकुमार।
तो दूरहि सा वदन दिखाओ करौ लल मनुहार।
नहि रह जाय बात जिय मेरे यह निज चित विचार।
हरीचद यौतेहु के मिस ब्रज आओ बिना अबार॥[2]

मध्याह्न-लीला का समय बारह से अठारह घडी दिन चढे तक है।[3] इसमे जलक्रीडा और रथक्रीडा आदि मधुर लीलाओ का वणन मिलता है। भारतेंदुयुगीन कृष्णकाव्य मे जलक्रीडा और रथक्रीडा दोनो की विशद व्याख्या हुई है। जलक्रीडा सबधी प्रस्तुत पद को उद्धत किया जाता है—

दोउ मिलि बिहरत जमुना-तीर मैं।
करि कर के जलयत्र चलावत भीज रही लट नीर मैं॥
इस उत तरत सखी जन मोहत मनहु कमल जलमीर की।
छीट उडावत हसत हसावत बोलनि मनु पिचक कीर की॥
सावरे अग गौर तन सोहत लपटनि भीजे चीर की।
'हरीचद लखि तन मन वारत छबि राधा-बलबीर की॥[4]

रथक्रीडा

भारतेदु जी रथयात्रा के कई पद रचे हैं। कृष्ण का रथ परम विचित्र चारुचित्रित एव चल चक्रो वाला है। वह जगद्विजयी है। रथ पर ध्वजा फहरा रही है। बलाहक शव्य सुग्रीव और मणि पुष्प नामक चार अति तरलतर तुरग पथ सुपथ उमे खाचते है। पताका का कलश चमक रहा है, उसके

---

१ प्रम मे मीन मेष कछु नाही।
अति ही सरल पथ यह सूधो छल नहि जाके माही।
हिंसा द्वेष ईरखा मत्सर मद स्वारथ की बातें।
कबहुँ याके निकट न आवें छल प्रपच की घातें॥
सहज सुभाविक रहनि प्रेम की पीतम सुख सुखकारी।
अपुनो कोटि कोटि सुख पिय के तनिकहि पर बलिहारी॥
जह न ज्ञान अभिमान नेम व्रत विषय-वासना आवै।
रीझ खीझ दोऊ पीतम की मन आनद बढावै॥
परमारथ स्वारथ दोउ पीतम और जगत नहि जानै।
'हरीचन्द यह प्रेम रीत कोऊ बिरले ही पहिचानै॥
व्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली दूसरा खड विनय प्रेमपचासा छं० ३२ पृ० ५४८।
२ वही प्रेमफुलवारी छ० २५ प० ५८३।
३ डा० रूपनारायण पाडेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य मे माधुर्य, भक्ति पृ० २।
४ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड राग सग्रह छं० ५६, पृ० ४५५।

ऊपर चक्र है, उसके नीचे विनत पवनसुत हैं विनता-सुअन गरुड भी गजन कर रहे हैं। स्तम्भ, कूबर, छत्र, डाडी सभी चारु एव विविध मनि जटित है। वेदोच्चार हो रहा है। झाँझ झनकती है। घटा घहर घहर कर घनघोर शब्द कर रहा है। एक ही साथ घुंघरुआ की भी ध्वनि हो रही है। दुखीजन देखकर सुखी हो जाते हैं, दैत्य भयभीत हो जाते हैं। सारथी दारुक घोडो को सचेत कर रहा है, वे मन के वेग से चल रहे हैं। देव और ऋषिगण जय जयकार कर रहे हैं, मुरछल झला जा रहा है, सूत वदी आदि विरद कह रहे हैं। इस सरस शोभा को देखकर दृग थकित हो जाते हैं और सुमन वर्षा कर चारो अर्थो की प्राप्ति कर लेते हैं।[१] इस प्रकार कृष्ण का रथ है। इसी पर बैठकर वे अकेला या कभी कभी राधा को बैठाकर रथ क्रीडा करते हैं। एक पद मे रथ के आते ही वातावरण रसपूर्ण हो जाता है। श्रीकृष्ण राधा को रथारूढ कर लेते हैं। गोपी इसका वणन निम्नोक्त ढग से करती है, जो भाषा और भाव दोनो दृष्टिया से मौलिक बन पडा है —

वह देखो सखि सेत ध्वजा फहरात।
ज्यो ज्यो रथ नियरे आवत है, त्या त्या मन अकुलात॥
खजन से भए नैन सखी कै चकित इत उत डोल।
आवत प्राननाथ रथ चढिकै, सजनी यह मुख बोल॥
जहँ लगि दृष्टि जात प्यारी की यह छबि होत रसाल।
मानहुँ आदर सो पिय के हित, कमल पाँवडे डाल॥

---

१ चारु चल चक्र चित्रित विचित्रित परम
जगत विजयी जयति कृष्ण को जैत्र रथ।
अति तरलतर, बलाहक शब्य सुग्रीव मनिपुष्प
तुरग योजित चलत पथ सुपथ॥
फहरत ध्वज उडत नव पताका परम कलस
कल इन्द्र सम सकल चमकत अकथ।
चक्र ता पर रह्यो तासु तल वायु सुत बिनत
बिनता-सुअन गरजि अरि करत हथ॥
खम कूबर छत्र चारु डाडी चारु बिबिध
मनि जटित उचरित बेद शब्द कथ।
झाँझ झनकत करत घोर घटा घहरि घने
घुंघरू घिरत फिरत मिलि एक जथ॥
भुखी सूरज-मुखी सुखी लखि जन दुखी
दैत्य-दल झलमलत झालरन मुक्त तथ।
बैठि दारुक तदारुक करत अश्व को चलत
मन बेग-सम बेगति शब्द नथ॥
देव ऋषि करत जय शब्द मुरछल ढुरत
सूत बदी बिरद कहत बहु भाति गथ।
थकित 'हरिचन्द' दृग सरस सोभा निरख
हरषि सुमनन बरषि लह्यो चारों अरथ॥

अति अनुराग सग बैठन की प्यारी मन की जानी।
'हरीचन्द' लै रथ बैठाए तिया अतिहि सुख मानी ॥[1]

रथ पर राधिका को बैठाकर उनका रथ सचालन भी निराला है। भारतेन्दु जी इस सचालन विधि का वर्णन तो करते ही हैं साथ ही इसी बहाने कृष्ण के मन का सच्चा चित्र भी प्रस्तुत कर देते हैं। रचना कौशल की बलिहारी है—

कछू रथ हाकतहू मैं भाति।
यह कछु औरहि चलनि चलावनि औरे रथ की काति ॥
कहूँ ठिठकि रथ रोकि धरिक लौं ठाडे रहत मुरारि।
कहूँ दौरावत अतिहि तेज गति, कहुँ काहु सो रारि ॥
काहू को अग परसि रथ चालनि, काहु लेनि दौराय।
चाबुक चमकि तनक काहू तन, मारति देति छुआय।
काहु के घर को फेरो दै घूमनि करि रथ मद।
बार बार निकसनि वाही मग मैं जानी हरिचद ॥[2]

कवि की कवित्व शक्ति का चातुर्य अजीब है। वह रथ सचालन के बहाने कृष्ण के चितचोर मन का नयम-मन मे घर कर जाने लायक वर्णन प्रस्तुत किया।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन स यह प्रमाणित होता है कि भारतेन्दु की कई रचनाओ पर यत्र-तत्र चैतन्य सम्प्रदाय की भक्ति की स्पष्ट छाया है। *यद्यपि भारतेन्दु चैतन्य सम्प्रदाय के दीक्षित भक्त नही थे*, फिर भी उक्त सम्प्रदाय को छाया अवश्य प्रतीत होती है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय

भक्ति सम्प्रदाया म यह एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय है। इसका आधार हृदय का परम प्रधान तत्व प्रेम है। *हृदयगत भावो स इस सम्प्रदाय का विशेष स्थान है।* डा० विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है कि हृदय की रस स्निग्ध भावनाओ की सहज स्वीकृति और सरस अभिव्यक्ति ही इस सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्त की नीव और रसोपासना का आधार है।[3]

इस सम्प्रदाय मे राधा आराध्या स्वीकार की गई हैं। य मधुर और उज्ज्वल प्रेम की प्राण स्वरूपा, शृङ्गार लीला की विचित्र कलाओ की परम अवधि भगवान् श्रीकृष्ण की आराधनीया कोई *अनिर्वचनीय शासन कर्मी हैं। वे परम सुखमय वपु धारिणी परा स्वतन्त्रशक्ति हैं* वे श्रीकृष्ण की पट्ट महिषी हैं।[4] इनका रूप परम प्रेममय है। ये परमशक्ति आनन्दरूपिणी और श्रीकृष्ण द्वारा वन्दित हैं।

---

१ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खड, राग-सग्रह, छ० २६, पृ० ४४७

२ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खड, कृष्ण चरित्र, छ० १६, पृ० ६०८।

३ डा० विजयेन्द्र स्नातक राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य, दिल्ली, पृ० १२६।

४ प्रेम्ण सन्मधुरोज्वलस्य हृदय शृगार लीला कला।
वैचित्री परमावधिर्भगवत पूज्यैव कापीशता।
ईशानी च शची महासुख तनु शक्ति स्वतन्त्रापरा।
श्रीवृन्दावननाथ पट्ट महिषी राधैव सेव्या मम ॥
—राधासुधानिधि, श्लो० ७८।

वे भक्तों के हित श्रीकृष्ण के साथ रास रचाती हैं। इनका यह विलास नित्य होता है। अत इसे नित्य विहार कहा जाता है। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने नित्यविहार पर प्रकाश डालते हुए कहा है—'साम्प्रदायिक दृष्टि से नित्यविहार शब्द एक गूढ़ रसलीन तात्विक व्यंजना का द्योतन कराने वाला है। उसे अनिर्वचनीय रस-दशा कहा जाता है। लौकिक दृष्टि से समझने के लिये यह कह सकते हैं कि एक शीतल, सघन, सुरम्य, निभृत निकुंज मे प्रिया प्रियतम (राधा माधव) अविच्छिन्नभाव से—सतत्, शाश्वत रतिक्रीडा मे सलग्न करते हैं। उनकी यह केलि-क्रीडा बिना किसी बाह्य या आन्तरिक अन्तराय के अनवरत चलती रहती है। इस निकुंज लीला म न तो कजा तर गमन सम्भव है और न किसी प्रकार का स्थूल मान या स्थूल विरह ही।'[1] अत इस सम्प्रदाय म राधा-माधव की नित्य कैशोर्य-लीला ही प्रधान है। भक्त इस केलि-क्रीडा म नित्य नूतनता का दर्शन प्राप्त करता है। भक्त इसकी पूर्ति मे सदैव सहयोग प्रदान करता है। अत वह सखीभाव से नित्य विहार की सेवा म सहायता करता है। इस सम्प्रदाय म राधा-माधव से एक क्षण भी अलग नही होती। प्रवास तो इस सम्प्रदाय म किसी प्रकार भी स्वीकार नही है। इस तरह की रसोपासना म भक्ति सम्प्रदायो मे केवल हरिदासी सम्प्रदाय मे दृष्टिगोचर होती है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के कवि राधा-जन्म से लेकर उनकी समस्त कैशोर्य लीलाओं का चित्रांकन अपनी वाणी स करते हैं। वे उनकी रसोपासना म इतना मस्त हैं कि कृष्ण का रूप उनके सामने गौण हो जाता है। भारतेन्दु बाबू थ तो वल्लभ-सम्प्रदाय को मानने वाले लेकिन सदैव राधा की ओर अधिक आकृष्ट रहे हैं।[2] कृष्णजन्म का वर्णन जहाँ आपने केवल ११ पदों मे वर्णित किया है, वहीं राधा-जन्म ३२ पदों को शामिल करता है। राधाजन्म का इतनी विशदता के साथ वर्णन सूरदास के बाद पहली बार हिन्दी गगनांगन मे व्यञ्जित होता है—

आई भादौं की उजियारी।
आनद भयो सकल ब्रजमडल प्रगटी श्रीवृषभानु दुलारी॥
कीरति जू की कोख सिरानी जाके घर प्यारी अवतारी।
हरिचद मोहन जू की जोरी विधना कुवँरि सवारी॥[3]

राधा के जन्म लेते ही व्रज मे आनन्द की शहनाई बजने लगती है। सभी ग्वालबाल गायों का चराना स्थगित कर बधाई के गीत गाने लगे—

आज वन ग्वाल कोऊ नहिं जाई।
कहत पुकारि सुनौ री भैया कीरति कन्या जाई॥
लावहु गाय सिगारि बच्छ सह सुबरन सीग मढ़ाई।
मोर पख मखतूल भूल धरि अग अग चित्र कराई॥
आजु उदय साचो सब गावहु मिली मैं गीत बधाई।
हरीचद' वृषभानु बबा सो बहुत निछावरि पाई॥[4]

---

१ डा० विजयेन्द्र स्नातक राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य, दिल्ली, पृ० २४०।
२ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, पृ० ८२।
३ व्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खड वर्षा विनोद, छ० ७६, पृ० ५१५।
४ व्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रथावली दूसरा खड, वर्षा विनोद, छ० ७४, पृ० ५१

अब क्या था। ब्रज मे नौबत बजने लगी—

आजु बरसाने नौबत बाजै।
बीन, मृदंग, ढोल, सहनाई गृह गृह दुंदुभि गाजै॥
सब ब्रजमडल सोभा बाढ़ी घर घर सब सुख साजै।
'हरीचद राधा के प्रगटे देव वधू सब लाजै॥'[1]

यह तो बात रही ब्रजमडल की। अब देखिये देवमडल की। देवताओ मे उल्लास और उमग छा गया नभ में विमानो की भीड़ ने ब्रजवासियों को चकित कर दिया—

आजु कहा नभ भीर भई ?
सजनी कौन फूल बरसावै सुख की बेलि बई ?
बालक से चारहु को आये ? तीन नयन को को है ?
ओढ़ि बघम्बर सरप लपेटे जटा धरे सिर सोहै ?
तान चार अरु पच सप्त पटमुख के मिलि क्यो नाचैं ?
बड़ी जटा मुख तेज अनूपम को यह वेदहि बाचै ?
बीन बजावति कौन लगाई हँस चढ़ी क्यो डोलै ?
को यह यत्र बजाय रही है जै ज जै जै बोलै ?
को यह लिये तमूरा ठाढी को नाचै को गावै ?
इत आवै कोउ बात न पूछत पुनि नभ लौं चलि जावै ?
अति आचरज भरी सब तन मे बात करैं ब्रज-नारी।
प्रगट भई वृषभानु राय घर मोहत प्रान पियारी।
आनद बढ़यो कहत नहिं आवै कवि की मति सकुचाई॥
राधा श्याम-चरन-पंकज रज 'हरीचद' बलि जाई॥[2]

इतना उल्लास कृष्ण जन्म के समय भी किसी कवि ने नही दिखाया है जितना कि राधा-जन्म पर दिखाया गया है। ब्रजमण्डल और देवमंडल में उल्लास एव उत्साहपूर्ण वातावरण से नभमडल में भी उत्साह और उल्लास की होली खेली जा रही है। भारतेन्दु जी का यह पद इस विषय का एक दम अनूठा और मौलिक है।

कृष्ण के जन्म पर वृषभानु जी को खुशी हुई हो या न हुई हो इसका वर्णन तो नही मिलता, लेकिन राधा के जन्म से नन्द के उछाह का वर्णन भारतेन्दु जी की कारयित्री प्रतिभा का द्योतक है—

नंद बधाई बाँटत ठाढे।
भई सुता बाबा भानुराय के प्रेम पुलक तन बाढ़े॥
काहू को सोना, काहू को रूपा, काहू के मनिगन दीनो।
जिन जो माग्यो तिन सो पायो, कह्यो सबनि को कीनो।
काहु को धेनु, बसन काहु को, दियो सबनि मन भायो।
आनद भयो, कहत नहिं आवै 'हरीचन्द' जस गायो॥[3]

---

१ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, काशी, वर्षाविनोद छ० ८०, पृ० ५१५।
२ वही, छ० ८२, पृ० ५१८ १६,
३ वही, छं० १०७, पृ० ५२४।

भारतेन्दु जी राधा के अनन्य उपासक हैं। उनकी उपासना मे कवि अपनी वाणी को बाल-केलि का वर्णन करने को बाध्य करता है। राधा का बाल केलि-वर्णन समस्त राधा वाङमय म किसी ने नहीं किया है। कृष्ण काव्य के अमर गायक भक्तवत्सल सूरदास भी नहीं कर पाए हैं। सूर को तो राधा का ज्ञान तब होता है, जब राधा श्रीकृष्ण के सामने से गुजरती हैं। यहाँ भारतेन्दु जी ने राधा की बाल-केलि का वर्णन एक पद म किया है, वह मौलिक और अनूठा है—

मनिमय आँगन प्यारी खेल।
किलकि किलकि हुलसत मन ही मन, गहि अगुरीमुख मेलै॥
बडभागिनि कीरति सी मैया, गोहन लागी डोलै।
कबहुँक लै भुनभुना बजावति, मीठी बतियन बोलै॥
अष्ठ सिद्धि नवनिधि जेहि दासी, सो ब्रज सिसु-वपुधारी।
गोरी अविचल सन्त बिराजे 'हरीचद' बलिहारी॥[1]

राधावल्लभ सम्प्रदाय म राधा अनुपम छवि तथा केलि विलास का सागर है। भारतेन्दु जी राधा के रूप का वर्णन करते समय किसी के प्रभाव क्षेत्र मे नही आते। प्राचीन नख शिख प्रणाली का सर्वथा त्याग कर उन्होंने राधा के रूप का वर्णन वर्तमान नवीन शैली के आधार पर—जो स्वय भारतेन्दु की देन थी—बड़े ही मनोमुग्धकारी ढग से किया है। कवि की राधा छवि की राशि है। इस छवि की राशि का मुद्रालकार के माध्यम से कवि ने मुद्रा-कौतक ही प्रस्तुत कर दिया है—

प्यारी छबि की राशि बनी।
जाही विलोकि निमेप न लागत श्रीवृषभानु जनी॥
नद नदन सो बाहु मिथुन करि ठानी जमुना-तीर।
करक होत सौतिन के छवि लखि सिंह कमर पर चीर॥
कीरति की कन्या जग धन्या अन्या तुला न बाकी।
वृश्चिक सी कसकत मोहन हिय भौंह छवीली जाकी॥
धन धन रूप देखि जेहि प्रति छिन मकरध्वज तिय लाज।
जुग कुच-कुम बढ़ावत सोभा मीन नयन लखि भाजै॥
वैस-सधि-सक्रौन-समय तन जाके बसत सदाई।
'हरीचन्द' मोहन बडभागी जिन अकम करि पाई॥[2]

भारतेन्दु जी को राधा के रूप के लिए उपमा नही मिलती, फलत हैरानी म वह कभी राधा को 'दीपशिखा सी'[3] कहता है कभी इस उपमा के लिए कविया को दोषी ठहराता

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खड, राग सग्रह, छ० ६०, पृ० ४६७।
२ वही प्रेम-मालिका छ० १, पृ० ४५।
३ साचहि दीप शिखा सी प्यारी।
घूम केश, तन जगमगति द्युति दीपति भई न्यारी॥
स्वय प्रकाश अकुठ सुहाई बिनु असार छबि छाई।
सदा एक रस नित्य अधिक यह, वासो चाल लखाई॥
मरत सुगधन ब्रज कुजन मग—शीतन तन कर वारी।
प्रीतम-तन को विरह मिटावत 'हरीचन्द' दुख जारी॥

है।[1] अन्त मे सागरूपक का सहारा ले कवि की उक्ति है—

प्यारी रूप नदी छबि देत।
सुखमा जल भरि नेह तरगनि बाढी पिय के हेत॥
नैन मीन, कर-पद-पकज से, सोमित केस सिवार।
चक्रवाक जुग उरज सुहाए, लहर लेत गल हार॥
रहत एक रस भरी सदा यह जदपि तऊ पिय भेंटि।
'हरीचद' बरसै सावल धन बढत कूल कुल मेटि॥[2]

राधा का रूप अलौकिक है। उसने अपने रूप सौन्दर्य से व्रज-वनिताओ का मान-मर्दित कर दिया है। उसके रूप सौन्दर्य से शिव की समाधि टूट जाती है, शुक डोलने लगता है। रवि और शशि का तेज हरण हो जाता है। क्या मजाल कि व्रज-वनिताएँ उसकी रूप-श्री को देख हृत-श्री न हो जायें—

श्रीराधे सबको मान हर्यो।
अरी सुहागिन मेरी तू जब सेंदुर तिलक धर्यो॥
गिरे गरब परबत जुवतिन के, रूप गरूर गर्यो।
रीति सिद्ध भई रिसि गन की, देविन दरप दर्यो॥
फूलन रूप रग तजि दीनो, जब आनन्द भर्यो॥
सबको भाग रूप अधरामृत इक लो पान कर्यो।
'हरीचद' हरि तोहि अक लै, है निसक विहर्यो॥[3]

भारतेन्दु जी न राधा क शोभा सिधु का अकन करने मे तिल को भी नही छोडा है। उस रूपलता के लावण्य मे तिल का योगदान महत्त्वपूर्ण है—

प्यारी जू के तिल पर बलि बलिहारो।
जा मिस बसत कपोलन अनुछिन, लघु बनि पिय गिरधारी॥
पिय की दीठ चीन्ह मनु सोहत, लागत अति ही प्यारो।
'हरीचद सिगार तत्व सी, लखि माहन मन वारी॥[4]

---

१ कबिन सों सबिहि चूक परी।
दीप शिखा की उपमा जिन तुलि प्यारी हेत धरी॥
वह दाहत, यह अग जुडावत, वह चचल थिर येह।
वह निज प्रेमिन परम दुखद, यह सदा सुखद पिय-देह॥
वा में धूम स्वच्छ अति ही यह रैनि दिना इक रास।
वह परिच्छिन्न बात-बस यह निज-बस सवत्र प्रकास॥
वह सनेह आधीन और यह है सदेह भरपूर।
'हरीचद' दीपक प्यारी की नहिं कोउ बिधि सम तूर॥ —वही, पृ० ८३ ८४।

२ वही, प्रेमाश्रुवर्षण, छ० १८, पृ० ११६।

३ व्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, प्रेमाश्रुवर्षण, छ० १६, पृ० ११५।

४ वही, पृ० २८८।

नित्य बिहार लीला

राधावल्लभ सम्प्रदाय म नित्य विहार के विधायक तत्व चार हैं—राधा, कृष्ण, सहचरी और वृन्दावन ।[१] ये चारो प्रम स्वरूप हैं । कवि भारतेन्दु जी युगल रूप के उपासक थे । अत उन्होंने राधा-कृष्ण के सम्मिलित रूप का बडा ही हृदयग्राही वणन प्रस्तुत किया है—

आजु तरनि-तनया निकट, परम परमा प्रगट,
ब्रज वधुन मिलि रची दीप-माला ।
जाति जाल जगमगत, दृष्टि थिर नहिं लगत,
घूट छबि को परत अति विसाला ॥
खडी नवल बनिता वनी चार दिसि छबि मनी,
हँसहि, गावहिं, विविध ख्याला ।
निरखि सखी हरिचद' अति चकित सी ह्वै कहत,
जयति राध, जयति नद लाला ॥[२]

वृन्दावन की महत्ता प्राय सभी भक्तो ने एक स्वर से स्वीकार की है । कृष्ण काव्य म इसे वृन्दावन भाव की भक्ति की सज्ञा दी गई है । राधावल्लभ सम्प्रदाय म तो वृन्दावन नित्यविहार का 'विधायक तत्त्व है । कवि न श्रीकृष्ण और श्रीराधा को वृन्दावन मे केलि के रूप मे चित्रित किया है । यथा—

फूलि रही द्वै बेली श्री वृन्दावन ।
नव तमाल घनश्याम पिया श्रीराधापीत चमेली ॥
और फूल फूली सब सखिया फूलनि पहिरि नवेली ।
'हरीचद मन फूल्यो सब साज देखि भँवर भयो है हली ॥[३]

यहा राधावल्लभ सम्प्रदाय के नृत्य विहार के विधायक चारो तत्व उपस्थित हैं ।

नित्य विहार ही इस सम्प्रदाय के कवियो की कामना है । वे श्रीकृष्ण और राधा का नित्य विहार रत देखना चाहते हैं । कवि भारतेन्दु जी इस युगल जोडी की कामना तब तक करते हैं जब तक आसमान मे सूय चन्द्रमा विद्यमान रह । कवि उनके नित्य मगल ब्याह की कामना व्यक्त करता है—

चिर जीवो यह जोरी जुग-जुग चिर जीवो यह जोरी ।
श्रीजसुदानदन मनमोहन श्रीवृषभानु किशोरी ॥
नित नित ब्याह नित्य ही मगल नित नित सुख अति होई ।
श्री वृन्दावन-सुख-सागर को पार न पावै कोई ॥
एक रूप दोउ एक वयस दोउ दोऊ चन्द्र चकोरि ।
हरीचन्द जब लौ ससि-सूरज तब लौ जीयो जोरि ॥[४]

---

१ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य म माधुय भक्ति, पृ० ३१२ ।
२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, कार्तिक स्नान छ० १४, पृ० ८२ ।
३ वही, प्रेममालिका, छ० ६१, पृ० ६३ ।
४ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, राग सग्रह, छ० २५, पृ० ४४५ ।

युगल विहार का वर्णन इस सम्प्रदाय मे विशेष है। भारतेन्दु जी पर इस सम्प्रदाय की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। वे श्रीकृष्ण और राधा के विहारो का वर्णन बड़े ही सजीव और ललित पदो म अंकित करते हैं। नित्य विहार म रसकेलि मे मधुर श्रम से श्रम जल का प्रादुर्भाव होना नितान्त आवश्यक है। इस सुरत श्रम-जल म विहार करते हुए युगल छवि का वर्णन कवि का स्तुत्य प्रयास है। इस तरह केलि प्रसंग का उद्घाटन अन्यत्र असम्भव तो नही, लेकिन कठिन अवश्य ही है। वर्णन इस प्रकार है—

सुरत-श्रम-जल विहरत पिय-प्यारी।
चाव भरे दोउ सेज नाव पै बाहु बाहु मैं धारी॥
करि आसरी पियारी को पिय पावत कोउ विधि पारी।
'हरीचंद' तह मौन बाँधि गल हूबे भयो सुखारी॥[1]

रसकेलि का प्रारम्भ नयनो के हाथा-पाई स हो होता है। कवि राधाकृष्ण के नेत्रा के बाजी का वर्णन करता है। दोना एक दूसरे को अपलक देखत हैं। दोना मे बाजी लगी है, कौन जीतता है, कौन हारता है। 'हार म भी जीत है। यह प्रेम राज्य का सिद्ध वाक्य है।

बाजी नैनन मे लागी।
रसिक राज इत, उत श्रीराधा, परम प्रेम रस-पागी॥
दोऊ हारि, दोऊ जीत आपुस के अनुरागी।
'हरीचंद' निज जन सुख दायक, रहे केलि निसि जागी॥[2]

इस सम्प्रदाय म राधा आराध्या हैं। वे श्रीकृष्ण की आराधनीया हैं। कृष्ण उनके साथ केलि करते हैं। उनकी केलि विदग्धा उत्तम श्रेणी की है। राधा को भुलवाने का हाल वे खूब जानते हैं। राधा भोली है, वे जो कहते हैं राधा स्वीकार कर लेती है। इस तरह वह राधा स लम्बाई नापने के बहाने अपने केलि-कला का उद्घाटन करते हैं। राधा बडी हो जान का प्रयत्न करती हैं। इसी इस प्रयत्न मे बेचारी धोखा खा जाती हैं। कृष्ण के सामने ज्योंही कमल-मुख पडता है कि वे चूम लेते हैं और उसे बधाई देकर अपनी हार स्वीकार कर लेत हैं। राधा चकित होकर खडी खडी मुँह देखती रह जाती है।

हममे कौन बडो री प्यारी।
ठाढ़ी होउ बराबर नापैं बिहँसि कह्यो गिरधारी॥
सुनत उठी वृषभानु नदिनी, खरी भई समुहाई।
पर-अगुरा-तल उचकि पिया सा बढ़वन चहत उँचाई॥
सुंदर मुख आपुहि ढिग आवत लखि चूम्यो पिय प्यारे।
'हरीचंद' लजि हँसि मुख निरखत पिया कह्यो हम हारे॥[3]

कवि राधा के भोजन की व्यवस्था भी करता है। प्रतिमा पूजन म भगवान् के भोग की व्यवस्था सगुण सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषता है। अत कवि अपने निम्नोक्त पद मे श्रीराधा के लिये सुस्वादु भोजन की व्यवस्था कर रखी है—

भोजन कीजै प्रान प्यारी।
भई बडी बार हिंडोले झूलत आज भयो श्रम भारी॥

१ वही, प्रेमाश्रुवर्षण छ० १७, पृ० ११५ १६।
२ वही, कार्तिक स्नान, छ० ७ पृ० ८१।
३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड कार्तिक स्नान छ० ८, पृ० ८१।

बिजन मीठे दूध सुहातो लीजै भानु-दुलारी ।
स्यामा-स्याम-चरन-कमलन पर 'हरीचन्द' बलिहारी ॥[१]

भारतेन्दुकालीन कविता पूर्णरूपेण सम्प्रदायनिष्ठ है । यत्र तत्र सर्वत्र चतु सम्प्रदायो की झाँकी ही लक्षित होती है । भारतेन्दु जी ने तो अपने को राधा रानी के चाकर कह कर बराबर ही दैन्यभाव से उनकी उपासना की है—

हम चाकर राधा रानी के ।
ठाकुर श्री नदनदन के वृषभानु लली ठकुरानी के ।
निरभय रहत बदत नहिं काहू उर नहिं डरत भवानी के ।
'हरीचद नित रहत दिवाने सूरत अजब निवानी के' ।[२]

प्रेमघन जी भी श्रीराधारमण की उपासना म लीन देखे जाते हैं । उनके भी उपास्य राधावल्लभ ही हैं । युगल उपासना को आपने स्वीकार किया है—

श्रीराधा राधा रमण जुगुल चरन अरबिंद,
शमन सकल बाधा सरस गुनि मम होहु मलिंद ।[३]

कवि को राधिका की उपासना मे तन्मय पाते हैं । वह भोर होते ही मन को जगाकर राधा वर श्याम की रट लगाने की सूचना देता है—

हमै रट राधा राधा लागी,
श्रीराधा राधा रट लागी कृष्ण भये अनुरागी ।
मन सो तम दूर भयो भजि प्रेम ज्योति जिय जागी ।
भव भय हरन सरन असरन जुग चरन ध्यान छल त्यागी,
कृपा वारि बरसाय प्रेमघन जन बनयो बडभागी ।
जाग ! जाग ! मन भोर भयो भज राधावर घनश्याम ।
सेवा कुज कुसुम सेजहिं तजि जागे दोउ छबि धाम ।[४]

कविवर राधाकृष्णदास राधा के मुख सौन्दर्य का वर्णन करने म चन्द्रमा के सौन्दर्य को भी कलकित करते हैं । सचमुच चन्द्रमा सकलक है, लेकिन यहाँ राधा का मुख तो निष्कलक है—

जनम लियो है व्रज,प्रेम सुधा सागर वह,
बापुरो मयक प्रगट्यो है जल खारी को ।
घटत बढत तेजहीन तेजमान होत,
बाढ दिन दूनो तेज कीरति कुमारी को ।
वह सकलक 'दास' दुखद चकोर वह,
मटत कलक अब पोषक बिहारी को,
घन मे छिपत वह घनश्याम सग सदा,
मद करै चद मुख प्यारी को ।[५]

---

१ वही, प्रेमाश्रुवर्षण, छ० ३०, पृ० १२३ ।
२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, होली, छ० ८१, पृ० ३६५ ।
३ प्रभाकेश्वर प्रसाद उपाध्याय (सपा०) प्रेमघन सर्वस्व, लालित्य लहरी छं० ३०, पृ० ३३२ ।
४ वही, सगीत काव्य, पृ० ४१६ ।
५ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु मण्डल, कमलमणि ग्रथमाला, वाराणसी, पृ० १७५ ।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारतेन्दु कालीन कविता पर राधावल्लभ सम्प्रदाय का प्रभाव यत्र तत्र विराजमान है। राधाकृष्ण दास और प्रेमघन जी ने तो राधावर श्याम को उपास्य भी स्वीकार कर लिया है। स्वयं भारतेन्दु जी वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होते हुए भी राधावल्लभ सम्प्रदाय से प्रभावित हैं। उनकी रचनाओं पर इस सम्प्रदाय का प्रभाव पर्याप्त दृष्टिगोचर होता है।

वल्लभ सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय मे प्रेम की विशेष महत्ता है। प्रेम ही इस सम्प्रदाय का साध्य है। प्रेम की तीव्रता के कारण इस सम्प्रदाय म बाल्य भाव, वात्सल्य भाव और सख्य भाव की उपासना स्वीकार की गई है। श्रीकृष्ण इस सम्प्रदाय के आराध्य है। वे मूल रूप म ब्रह्म ही हैं, लेकिन वे अपनी प्रेम लीलाओ *के कारण भिन्न देह धारी हैं, उन्ही से समस्त जड चेतन की उत्पत्ति हुई है। डा० रूपनारायण पाण्डेय* ने लिखा है कि उनके सत् रूप से जगत् चित् रूप से जीव देवता आदि और स्वय आनन्द रूप से गोप गोपी आदि गौलोक की उत्पत्ति हुई है।[1]

वल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का हम दो रूप म यहाँ स्वीकार करते हैं—दार्शनिक सिद्धान्त के रूप मे और व्यावहारिक सिद्धान्त के रूप म। वल्लभ सम्प्रदाय का दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत है। भारतेन्दु कालीन कविता म किसी भी सम्प्रदाय के सिद्धान्त की व्याख्या नही के बराबर हुई है। भारतेन्दु जी पुष्टिमार्ग के अनुयायी थे।[2] फिर भी वल्लभ के दार्शनिक सिद्धान्तो की व्याख्या उनके काव्य मे नही के बराबर है।

व्यावहारिक रूप म प्रेम-लक्षणा भक्ति का प्रतिपादन हुआ है। वल्लभ सम्प्रदाय पर श्रीमद्भागवत पुराण का प्रभाव है, फलस्वरूप भारतेन्दु कालीन कविता म प्रेमलीला का बाहुल्य है।

अनुग्रह

वल्लभ सम्प्रदाय मे भगवान् के अनुग्रह की अधिक अभिव्यक्ति हुई है। बिना भगवत्कृपा के कृष्ण की नित्य लीला मे प्रवेश पाना नितान्त असम्भव है। कवि भारतेन्दु जी इस अनुग्रह का वर्णन प्रस्तुत करते हैं—

पायो न कयां हूँ थाह शिव शुक रहे विचार।
हरिचंद तेहि अवगाह किय वल्लभ-कृपा आधार॥[3]

भारतेन्दु जी वल्लभ की कृपा का बराबर उल्लेख करते हैं। उनका विश्वास है कि ब्रज की गोपियाँ नित होरी रस का आनन्द लेती हैं। लेकिन वह होरी रस नितान्त गूढ है, उसे तो कोई विरला ही पा जाता है। अत होरी रस रचान की लीला म वही समर्थ हो सकता है जो वल्लभ चरण शरण शरण का आकांक्षी हो और जिस पर इस रंग की छाप पड जाती है। 'चढ न दूजो रंग' वाली कहावत वहाँ चरितार्थ हो जाती है। यथा—

---

१ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य म माधुर्य भक्ति, पृ० ४००।

२, डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी

३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, पृ० १२१।

नित नित होरी रहैं मनावत याही तैं ब्रजनारी।
बिहरत कुल की सक छाँडि कै जामैं गिरिवधारी॥
सो हारी रस परम गुप्त है, अनुभव हूँ नहिं आवै।
शिव शुक सा बिरलो कोऊ-कोऊ कछु पावै तो पावै॥
पै श्रीबल्लभ चरन-सरन जा होय सोई कछु जानै।
जा यह जानै सा फिर जग म और नहीं उर आनै॥[1]

अत बिना भगवान् की कृपा के बार बार दृष्टि डालन पर भी ओझल ही रहता है—

बिनु श्रीवल्लभ-कृपा-बार यह निरखेहू नहिं सूझै।
जिमि गवार मनि हाथ लइ पै ताको मोल न बूझै॥[2]

यही कारण है कि कवि प्रभु की लीला गाने म अपने को समर्थ पाता है—

श्रीवल्लभ-पद रज प्रताप सो यह लीला कहि गाई।
मनि-सम पोहि-पोहि अति रचि सो माला रुचिर बनाई॥[3]

भारतेन्दु जी का भगवान् म पूर्ण विश्वास था। अत युगल बिहार लीला म मगल की आशा करते हैं—

मगलपरिरभन आलिगन मगल तोतरे शब्द उचार।
हरीचद मगल वल्लभ-पद जा बल बिहरत बिना बिकार॥[4]

और भी—

मगल ब्रज वृन्दाबन जमुना मगल गिरिवर नाम लए।
हरीचद मगल वल्लभ-पद जा बल जुगल विहार भए॥[5]

भारतेन्दु जी को राधाकृष्ण क संयोग शृङ्गार का वणन करने म पूण सफलता प्राप्त हुई है। राधा कृष्ण के सयोग सुख-सरिता मे कवि सतरण करता है। इसे वह प्रभु ही मानता है। इसे प्रभु की अमित कृपा का प्रभाव ही कहा जा सकता है—

आजु तन आनन्द सरिता बाढी।
निरखत मुख प्रीतम प्यारे को प्रीति तरगनि काढी॥
लोक वेद दोउ कूल तरोवर गिरे न रहैं सम्हारे।
हाव भाव के भरे सरोवर बहे होइ कै नारे॥
बुझै दवानल परम बिरह के पैम परब मो मारी।
मीन-बान के जे प्रभी जन जन सहि भए सुखारी॥
भई अपार न छोर निहारै रीति-भाव नहिं चाली।
'हरीचद' वल्लभ-पद-बल वै अवगाहत सोई आली॥[6]

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, मधु-मुकुल, छ०/४८, पृ० ४१६।
२ वही, पृ० ४१६।
३ वही, पृ० ४१६।
४ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रंथावली दूसरा खड, प्रेमाश्रु-वर्षण, छ० ११ पृ० ११४
५ वही, प्रेमाश्रु-वर्षण, छं० १२ पृ० ११४।
६ वही, छं० १६, पृ० ११६।

सत ल्यक्ला जनकतनया जानकी के अनुग्रह का उल्लेख करते हैं—

श्रीजानकी-पद कज सखि करहि जासु उर ऐन।
बिनु प्रयास तेहि पर प्रवहि रघुपति राजिवनैन ॥[1]

दीनदास जी राम से अनुग्रह प्राप्त करते हैं। उनका विश्वास है कि रामनाम को चित म धारण करने से त्रयताप का विनाप होता है, और नही तो भवकूप का वास अवश्यम्भावी है—

रामनाम चित धरतो रे मन भवसागर से तरतो।
रामनाम सारो हिय मे धरतो तीन ताप नही जरतो।
राम रसायन प्रम कटोरन पी-पी आनन्द भरतो।
रामरसिक की संगत करतो नही भवकूप मे परतो ॥[2]

प्रेमघन जी को उस प्रभु का अनुग्रह प्राप्त था। उनका मन चातक बनकर उनसे प्रेम की याचना करता है—

बेद बने वरही वर वृन्द, रटै शुक नारद से जस जाचक।
व्यास बिरचि सुरेस महेसहु के हिय अम्बर बीच बिहारक।
भक्तन के अघओघ भयंकर ग्रीषम को त्रय ताप बिनासक।
सोई दया बरसै घन प्रेम, भरो घन प्रेम रटै दुव चातक ॥[3]

आपकी एक प्रसिद्ध रचना सूर्य स्तोत्र है। प्रेमघन सर्वस्व म यह सगृहीत है। कवि सूर्य से भी अनुग्रह प्राप्त करता है। यद्यपि कवि यहाँ बहुदेवोपासना की ओर आकर्षित है लेकिन वह यहाँ भी जगदीश को बारबार नमन करता है। उसकी कृपादृष्टि के बिना दु ख-सरिता का अन्त सम्भव नही एकमात्र वही दु ख-सरितासेतु है—

जय जगदाधार भय हरन भानु भगवान।
पाहि पाहि असरन सरन मगलमोद निधान ॥
जय जय देव दिनेश जय कृपासिन्धु जगदीश।
बारबार प्रनाम करि तोहिं नवावहूँ सीस ॥
जय दिनेश जगदेव प्रभु सृष्टि स्रोत लय हेतु,
देहु दया दृग दास पर है दुख सरिता सेतु ॥
दीन बधु तम बिन सुनै कौन दुहाई दीन,
अभय ध्यान को दान को देय सिंधु तजि मीन ॥[4]

गुरु की महिमा

प्रात गुरुस्मरण करना वल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख अग है। अत भारतेन्दु बाबू और उनके मण्डल के वल्लभ मतानुयायी कवि प्रात उठकर गुरु स्मरण करना अपना धर्म मानते हैं। भारतेन्दु बाबू तो वल्लभकुल में बिक गये थे। अत वल्लभकुल के ११ गुरुओं और नारा रत्ना को आपने स्मरण किया है। वल्लभ को स्मरण करते हुए उन्होने कहा है—

---

१ कल्याण, संतवाणी विशेषाक, वर्ष २६, सं० २०११, सं० १, पृ० ५०८।
२ कल्याण, संतवाणी अंक, वर्ष २६ स० २०११, स० १ पृ० ५३६।
३ प्रभाकेश्वर प्रसाद उपाध्याय (संपादक) प्रेमघन सर्वस्व, प्रेमपीयूष वर्षा, पृ० २००
४ प्रभाकेश्वरप्रसाद उपाध्याय (सपा०) प्रेमघन-सर्वस्व, प्रेमपीयूष वर्षा, पृ० २३५।

प्रात समय उठतहि श्रीवल्लभ यह मगलमय लीजै नाम,
कोटिविघन-वारन पचानन सब विधि समरथ पूरन काम ॥
अघ-नासन करुनानिधि दीनानाथ पतित पावन सुख धाम,
सुमिरन मात्र हरन जन-आरति मोहन कोटि कोटि रति काम ॥
रहिये इनकी सरन सदा चलि बिकि जैये इन कर बिनु दाम ;
हरीचद निरमय इन चरननि छत्र छाह कीजै विश्राम ॥[1]

कवि ने अपने गुरु महिमा का अपूर्व वर्णन प्रस्तुत किया है—

तम पाखडहि हरत, करि जन मन जलज विकास,
जयति अलौकिक रवि कोऊ श्रुतिपथ करन प्रकास ॥[2]

एक दूसरे पद मे कवि वल्लभ के सिवा किसी और को जानता ही नही है—

हम तो श्रीवल्लभ ही को जानै,
सेवन वल्लभ-पद-पकज को वल्लभ ही को ध्यान ॥
हमरे माता पिता गुरु वल्लभ और नहीं उर आनं।
हरीचद वल्लभ-पद-बल सो इद्रहु को नहि मानै ॥[3]

वह जानता है कि प्रात गुरु-नाम-स्मरण करने से कृष्ण-केलि का रस सहज ही प्राप्त हो जायगा—

इमि श्री वल्लभ रूप प्रात जो सुमिरन करई,
लहै प्रेम रस दान जुगल पद मे अनुसरई ॥
द्वादस द्वादस अघ-पदी प्रातहि उठि गावै,
दुविध वासना छाडि केलि रस को फल पावै ॥
यह प्राननाथ की प्रथम ही सुमिरन सब मगल-मई,
बानी पुनीत 'हरिचद' की प्रेमिन का मगल मई ॥[4]

वल्लभ सम्प्रदाय म गुरु की महिमा गाई गई है। भारतेदु जी ने तो वल्लभ की प्रशसा म अपने को इतना लीन कर दिया है कि उन्हें वे कृष्ण का अवतार ही मान बैठे हैं। उनका कहना है कि कृष्ण अपनी अज्ञात लीलाओ को प्रकट करने के लिये कलिकाल म वल्लभ के रूप म अवतरित हुए हैं। इस सम्प्रदाय म महाप्रभु वल्लभाचाय और श्रीकृष्ण म कोई अन्तर नहीं माना जाता। महाप्रभु की पूजा ही भगवान् की पूजा समझी जाती है। भारतेदु जी इसी की पुष्टि यो करते हैं—

जयति राधिकानाथ चद्रावली प्रानपति।
घोष - कुल सकल - सताप हारी ॥
गोपिका - कुमुद बन चद्र सावर बरन।
हरन बहु विरह आनदकारी ॥
त्रिखित लोचन जुगल पान हित अमृतवपु।
विमल - वृन्दाविपिन भूमिचारी ॥

---

१ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेंदु ग्रथावली, दूसरा खड, राग सग्रह छ० ७७, पृ० ४६१।
२ वही, उत्तरार्द्ध भक्तमाल छ० २३, पृ० २२१।
३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेदु ग्रथावली दूसरा खण्ड, प्रेममालिका, छ० ३३, पृ० ५५।
४ वहीं, प्रात स्मरण मगलपाठ, छ० २६, पृ० ६४८।

गाय गिरिराज के हृदय आनद करन।
नित्य विह्वल - करन जमुन - बारी ॥
नद के हृदय आनद वर्धित - करन।
भरनि जसुदा - मनसि मोद भारी।
बाल क्रीडा - करन नद मदिर सदा।
कुज मे प्रौढ लीला विहारी ॥
गोप - सागर - रतन सकल गुनगन भरे।
क्वनित स्वर सप्त मुखमुरलिधारी ॥
मजु मजीर पद क्वलित कटि किंकिनी ॥
उरसि बनमाल सुन्दर सवारी।
सदा निज भक्त सताप आरति-हरन ॥
करन रस-दान अपनो बिचारी।
दास 'हरिचद' कलि वल्लभाधीश ह्वै ॥
प्रगट अज्ञात लीला बिहारी ॥[१]

कवि को पूर्ण विश्वास है कि लक्ष्मणभट्ट के घर मे लीलापुरुषोत्तम श्रीनदनदन द्विज वेष में प्रकट हुए हैं—

आजु ब्रज घर घर बजत बधाई।
द्विज-बपु लै नदनदन प्रगटे लक्ष्मण भट घर आई ॥
फेर वहै लीला सोइ रस निज जन हेत दिखाई।
हरीचद से अधम जानि निज तारे भुज गहि धाई ॥[२]

इस सम्प्रदाय की भक्तिभावना भगवान् के पद रज के प्रभाव से ही प्राप्त हुई है। अत भगवान के चरणों, गुरु के चरण तथा पितृपद और उनके चिह्नों को विशेष महत्ता प्राप्त है। भारतेंदुकाल मे चरण चिह्नो की विशेष विशद् व्याख्या हुई है। उन्होंने युगलस्वरूप के अगाध चरण चिह्नो का वर्णन अपनी मति के अनुसार किया है।[१] वे स्वस्तिक चिह्न का भाव-वर्णन करते हुए लिखते हैं—

जे निज उर म पद धरत असुध तिन्हे कहुँ नाहिं।
या हित स्वस्तिक चिह्न प्रभु धारत निज पद माहिं ॥[४]

महाप्रभु वल्लभ के चरण चिह्नो का वर्णन निम्नांकित प्रकार है—

कमल पताका गदा बज्र तोरन अति सुन्दर।
कुसुम लता पुनि धनुष धरत दक्षिन पद मैं वर ॥
ध्वज अंकुश झष चक्र अष्टदल अबुद मानो।
अमृत-कुंभ यव चिह्न वाम पद मे पुनि जानौ ॥
तैलग बश सोभित-करन विष्णु स्वामि पथ प्रगट कर।
श्री श्री वल्लभ-पद चिह्न ये हृदय नित्य 'हरिचद' धर ॥[५]

---

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, प्रेममालिका, छं० २६, पृ० ५४।
२ वही, राग सग्रह, छं० १४०, पृ० ४८३।
१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड भक्त-सर्वस्व, प्रस्तावना, पृ० ४।
२ वही पृ० ७।
३ वही, पृ० ३४।

कवि भगवान् एवं गुरु के पदों के साथ ही पितृपद की भी मर्यादा को विस्मृत नहीं करता—

बन्दौ पितु-पद जुग जलज हरन हृदय तमघोर।
सकल नेह भजन बिमल मगनकरन अघोर ॥[1]

वल्लभ सम्प्रदाय में भक्ति का स्थायी भाव प्रीति है। इसकी व्याख्या चार रूपों में होती है— (१) दास्यभक्ति, (२) सख्यभक्ति (३) वात्सल्य भक्ति (४) माधुर्यभक्ति।[2] कालांतर में यही भाव स्त्रीरूप, पुरुषरूप और युगलरूप में परिवर्तित हो गया है।

दास्यभक्ति

भारतेन्दुकालीन कविता में दैन्यभाव की प्रचुरता है। कवि भारतेन्दु जी के विनय सम्बन्धी पदों की संख्या ३१४ है।[3] इन सभी पदों में कवि का दैन्यभाव लक्षित होता है। कवि प्रभु की सेवा में रत है। उनका वह सेवक है लेकिन दीनता का चरमोत्कर्ष तब दिखायी पड़ता है, जब वह अपने को नमकहराम कहता है। यथा—

प्रभु मैं सेवक निमक-हराम।
खाइ खाइ के महा मुटैहौ करिहौं कछु न काम ॥
बात बनैहौं लम्बी चौड़ी बैठ्यो बैठ्यो धाम।
त्रिनहु नाहिं इत उत सरकैहौं रहिहौं बन्यौ गुनाम।
नाम बेचिहौं तुमरो करि करि उलटो अपके काम।
'हरीचंद' ऐसन के पालक तुमहि एक घनश्याम ॥[4]

उसका घनश्याम पालक है। चाहे वह जितना भी पाप करे। लेकिन भरोसा उसी के नाम का है। इस तरह का विश्वास भक्त को भक्तों की श्रेणी में उच्चतम पद प्रदान करता है—

प्रभु जो करिहौ सोइ न्याव।
सुगति कुगति सब ही अति समुचित हम पतितन के दाव ॥
जो तृन-मात्रहु न्याव करौ प्रभु करि शासन पै नेह।
तौ हम कठिन नरक के लायक यामै कछु न संदेह ॥
पै जो ढरौ नाथ करुना दिसि तौ का मेरे पाप।
कोटि कोटि वैकुण्ठ सुलभ तर तनिक कृपा प्रताप ॥
जो हमारी दिसि लखहु उचित तौ सब विधि दंड विधान।
'हरीचंद' तौ यही जोग पै तुम प्रभु दयानिधान ॥[5]

सख्यभक्ति

मित्रता का जो आदर्श लौकिक व्यवहार में उपस्थित होता है, वही सख्यभक्ति में भगवान् के प्रति भक्त रखता है। वह अपने भगवान् को सखा मानता है। उससे वह प्रेम व्यवहार निःस्वार्थ भाव

---

१ वही, पृ० ६।
२ डा० दीनदयालु गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, भाग २, पृ० ५९८।
३ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और अन्य सहयोगी, वाराणसी, पृ० ५१।
४ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेंदु ग्रंथावली दूसरा खंड, विनय प्रेमपचासा, छं० १३, पृ० ५४२।
५ वही, छं० १० पृ० ५४१।

से करता है। भागवतकार के निम्न वाक्य 'व्रज के निवासी उन नन्दगोपों को धन्य मानना चाहिए जिनका परमानन्दपूर्ण-सनातन ब्रह्म मित्र है।'[1] से सख्य भक्ति का रूप लक्षित होता है।

भारतेंदुकालीन कविता मे प्राचीनता के प्रति मोह कम था। अत सख्य भक्ति की रचनाओ मे कृष्ण की बाललीला और यौवनकाल की आमोद प्रमोदमयी घटनाओ का विशेष उल्लेख है। कवि भारतेन्दु जी तो उनके सखा थे ही। अत उनकी सख्यभक्ति का चित्रण उनकी पदावली मे विशेष ढग से हुआ है। इन पदो की मौलिकता और नवीनता के सामने सूर की काव्यकला भी मुँह देखने लगती है। कवि का कृष्ण आगन मे खेल रहा है। वह बार बार बरजने पर भी नही मानता और घूप मे चला जाता है—

अरी हौ बरजि रही बरज्यौ नहिं मानत।
दौरि दौरि बार बार घूप ही म जाय॥
सीरे खसखनि साजि सजहू बिछाय राखी।
भयौ छिटकाव आइ नेकु तौ जुडाय॥
छूटत फुहारा चारु देखि तौ कौतुक आइ।
मोतिन सी बूद करै चित्त ललचाय॥
हरीचद मातु के बचन सुनि आइ पौढे।
बिजन करत सब सखि हरखाय॥[2]

कृष्ण कुछ बड़े हुए, वे गोचारण के लिये वृन्दावन जाने लगे थे। सग मे केवल ग्वालबाल हैं। वे उसे चारण करते हैं और वशी की ध्वनि से सबका मन मोह लेते हैं—

सहज सुबालको के सग सुख पावै श्याम।
गोधन चरावं गुहराव नाम टेरि टेरि॥
आवै ढिग जे ते नित्य बिबुध विरोधी तिन्हैं।
पकरि पछारि मारं भूमि रन गेरि गेरि।
सारदा सुरेस सभु गिरिजा गनेस आदि।
गाव कमलस जासु गुन-गुन फेरि फेरि।
कुज-बन जावै, वर बासुरी बजाव राग।
रागिनी सुनाबै औ चितावै हसि हेरि हेरि॥[3]

प्रस्तुत पद मे एक चरवाहा दूसरे चरवाहा को नाम से पुकारता है। बात ही बात मे हाथा-पाई हो जाती है। इस तरह पकड कर पछाड पछाड मारने का भाव बडा ही चित्ताकर्षक हुआ है।

भारतेन्दु जी ने तो वृन्दावन से लौटते कृष्ण के रूप का मनमोहक वर्णन प्रस्तुत किया है—

भीनो पिछौरा सोहे आजु अति भीनो पिछौरा सोहै।
चन्दन लप नदनदन-तन देखत ही मन मोहै॥

---

१ अहोभाग्यमहाभाग्यमहोभाग्य नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्र परमानद पूर्ण ब्रह्म सनातनम्॥
—श्रीमदभागवत् दशम् स्कन्ध, अध्याय १४, श्लो० ३२।

२ व्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड प्रेम-मालिका छ० ६०, पृ०१६३।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ७६।

पारिजात मदार रही लसि फूल-छरी कर लीन्हें।
साझ समय बन तें बनि आवत गोधन आगे कीन्हें॥
गोरज छुरित अलक सब सुदर ब्रज-बालन दरसायो।
'हरीचन्द' मुख चन्द देखिकै वासर-ताप नसायो॥[१]

वात्सल्य भक्ति

रति प्रेम की तरह वात्सल्य स्नेह भी मानव जाति का व्यापक भाव है।[२] फर्क केवल इतना ही है कि रति प्रेम मे वेदना की अनुभूति अधिक होती है, यही अनुभूति जब चरम सीमा पर पहुँच जाती है तो सुखानुभव होने लगता है। वात्सल्य भाव का आश्रय विशेषकर मा का हृदय है। अत सभी वात्सल्य-काल की भक्ति रखने वाले भक्तो को यशोदा का हृदय प्राप्त है, नन्द का नहीं।

भारतेन्दुकालीन कविता मे वात्सल्य भक्ति की व्याख्या पूर्णरूपेण हुई है। प्रेमघन जी के वृजचद चन्दा मांगते हैं। मा के बहुत मनाने पर भी नही मानते। इस बाल कौतुक को देखकर कवि अपनी भावधारा मे बह जाता है—

मागत चन्द श्रीवृजचन्द।
मातु पै मचले न मानत करत बहु छलछन्द॥
बाल-कौतुक करत लोटत भूमि मे नन्दनन्द।
यद्यपि जननी बहु मनावत बचन के करि फन्द।
पै न बद्रीनाथ कविवर सुनत आनन्द कन्द॥[३]

पुष्टिमार्ग म बाल श्रीकृष्ण को सुलाने का प्रयत्न सभी कवियो ने किया है। भारतेन्दु जी भी अपने श्रीकृष्ण को सो जाने का अनुरोध करते हैं—

लालन पौढे हौ बलि जाऊँ।
चापौ चरन कहानी भापौं करि मनुहार सोवाऊँ॥
सीत-भीत परदा बहु डारो नवल अँगीठी लाऊँ।
सरस रग परिमल कोमल अति चारु रजाई उढ़ाऊँ॥
मधुरे गुन गाऊँ प्यारे को करि मनुहार मनाऊँ।
हरीचद पौढौ प्रिय लालन हो तेरे बलिजाऊँ॥[४]

प्रस्तुत पद पुष्टिमार्गीय सूर के प्रभाव से वचित है। यद्यपि कि दोनो म काफी समानता है, लेकिन सूर के अनुरोध[५] से श्रीकृष्ण सो जाते हैं। पर यही केवल अनुरोध का ही वर्णन है।

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली दूसरा खण्ड, रागसग्रह, छ० ४२, पृ० ४५२।
२ डा० दीनदयालु गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, भाग २, पृ० ६१६।
३ प्रभाकेश्वर उपाध्याय प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ४३५।
४ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, रागसग्रह, छं० १०६, पृ० ४७३।
५ पौढ़िये मैं रचि सेज बिछाई।
× × ×
मधुरे सुर गावत केदारो सुनत श्याम चित्त लाई।
सूरदास प्रभु नन्द-सुवन को नीद गई तब आई॥
सूरसागर, २४२। ८६०

वात्सल्य भक्ति की उपासना मे वत्सभाव की उपासना पर वल्लभ प्रभु ने विशेष बल दिया था। अत पुष्टिमार्गीय कवियो ने इस भाव को उपासना का श्रीगणेश वर्णन मे हा किया है। भारतेन्दु जी ने भी कृष्णजन्म का वर्णन ११ पदो मे किया है। कविवर सूरदास पुष्टिमार्ग मे पूर्ण विश्वास रखते थे। वे श्रीकृष्ण का जन्म न लिखकर यशोदा के गोद म कृष्ण को डालकर केवल मानमोपासना की प्रतिक्रिया दिखला देते हैं। वही भारतेन्दु जी कृष्ण के ब्रज मे प्रगट होने का सजीव वर्णन प्रस्तुत करते हैं—

प्रगटे रसिक जनन के सरवस
जसुमति उदर अलौकिक वारिधि श्याम कलानिधि निधि रस ॥
पसरित चद्रकला सा पूरब उज्वल विमल विसद जस।
हरीचद ब्रजवधू चकोरी सहज कीन्ही निज बस ॥[1]

माधुर्य भक्ति

वल्लभ सम्प्रदाय म मधुर भाव की उपासना का समावेश विट्ठलनाथ जी के समय से हुआ। इनके पूर्व आचार्य वल्लभ ने मधुरभाव की उपासना के महत्व को स्वीकार करते हुए भी बालभाव की उपासना पर विशेष बल दिया था।[2] माधुर्यभाव की लीला म कृष्ण की समस्त कैशोर लीलाएँ (दानलीला, पनघटलीला, झूला प्रसग, वेणुवादन, जलविहार रथ क्रीडा आदि) आती हैं।

माधुर्य भाव से प्रेम करने वाली ब्रज म दो प्रकार की गोपिकाओ की चर्चा है। एक तो वे हैं, जिन्होने स्वकीयाभाव से उनकी उपासना की है, दूसरे व जिन्होने परकीयाभाव से अपना प्रेम दर्शाया।

स्वकीयाभाव की मधुर भक्ति

जिन्होने कृष्ण की रूपमाधुरी पर रीझ कर उन्हे पति के रूप मे वरण कर लिया, वे स्वकीया से कृष्ण की उपासना करती हैं। ब्रजमण्डल का प्राय समी गोपिया का भक्त कविया न स्वकीया के रूप मे चित्रित किया है। भारतेन्दु जी अपने पिया स अरज करने की विधि सोचत है, क्योकि यह पामर जीव वहा तक कैसे पहुच सकता है, जहा कि ब्रह्म, शिव आदि बडे बडे देव और ऋषि भी नही पहुँच पाते हैं—

पिया हा कैहि विधि अरज करौं।
मति कहु चूकि हो बे-अदबी याहा डरत डरौं।
मोरहि सा भला सो लागत नर-नारिन को भारी।
हात खात बन जात कुज मैं कैहि विधि लहुँ पुकारी ॥
महल टहल म रहता लुभान साभहि सा सब राती।
तह को विघन बनै कछु कहि कै एहि डर धरकत छाती॥
बड़े-बडे मुनि देव ब्रह्म शिव जहँ मुजरा नहिं पावै।
तह हम पामर जीव कहो क्यो घुसि कै अरज सुनावें ॥
एक बात बेदन की सुनिये कछु जिय आयो।
हरीचद पिय सहस-श्रवन तुम सुनतहि आतुर धायो ॥[3]

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड रागसग्रह' छं० ५७, पृ० ४५७।
२ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य मे माधुर्यभक्ति पृ० ४१४।
३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, प्रेम फुलवारी, छ० १३, पृ०५८० ८१

परकीया माधुर्य

परकीया माधुर्य भाव का चित्रण मुग्ध गोपियों के पूर्वराग, राधाकृष्ण के संयोग और कृष्ण के प्रवास वर्णन में विशेष लक्षित होता है। नीचे परकीया भाव द्योतित करनेवाला पद उद्धृत है—

इन नैनन में वह सांवरी मूरति देखति आनि अरी सो अरी।
अब तो है निबाहिबो याको 'हरिचंद' जू प्रीत करी सो करी।
उन खंजन के मद-गंजन सों अंखियां ये हमारी लरी सो लरी।
अब लोग चवाव करो तो करो हम प्रेम के फंद परी सो परी।।[१]

गोपी-माधुर्य भाव

अन्य सम्प्रदायों में जिस प्रकार सखी-माधुर्यभाव की प्रधानता है, उसी प्रकार वल्लभ-मत में गोपीभाव की महत्ता वर्णित है। गोपीभाव की उपासना भक्त की सिद्धावस्था है। गोपी भाव परायण भक्त भगवान् कृष्ण की विहार लीला से द्रवीभूत हो जाता है। डा० दीनदयाल गुप्त ने लिखा है कि वल्लभ सम्प्रदाय की गोपीभाव की उपासना पर अन्य सम्प्रदायों के सखीभाव का प्रभाव पर्याप्त है।[२]

भारतेन्दु जी गोपीभाव से उपासना कर भगवान् की विहारलीला का शाश्वत आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं। गोपी रूप में उनकी विरह दशा बड़ी ही दयनीय हो गई है—

गोपिन वियोग अब सही नहीं जात मोपे
कब लौं निठुर होय मैन-बान मारोगे।
'हरीचंद' आप सों पुकारे कहौं बार बार
वेगही कृपाल अबै गोकुल सिधारोगे।।
कहत निहोरि कर जोरि हम पूछें जौन
राधा रौन ताकौ कौन उत्तर बिचारोगे।
आंसुन को नीर जब बाढ़ैगो समुद्र तबै
कच्छ रूप धारोगे के मच्छ रूप धारोगे।[३]

विविध लीलाएँ

माधुर्यभक्ति में लीलाओं की विशेष व्याख्या हुई है। भारतेन्दु जी ने इन लीलाओं का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है।

चीरहरणलीला —भारतेन्दु की गोपियाँ यमुना में स्नान करते हुए, उत्तम अगहन मास में, हाथ जोड़ देवी से नंदलाल को पति रूप में देने की प्रार्थना कर रही थी कि कृष्ण चीर लेकर भाग गये—

जल में न्हात हैं ब्रज-बाल।
मास अगहन जान उत्तम मिलन को गोपाल।।
हाथ जोरि सुकहत देविहि देउ पति नन्दलाल।
चीर लै 'हरिचंद' भागे सुभग स्याम तमाल।।[४]

---

१ वही प्रेम-माधुरी छं० ११०, पृ० १७१।
२ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्यभक्ति, पृ० ४११।
३ ब्रजरत्नदास (सम्पादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड, छं० ४, पृ० ८२३।
४ वही, छं० १२, पृ० ८३१।

गोवर्धनधारणलीला —भारतेंदु जी गोवर्धनधारणलीला का वर्णन बड़े सरस और आकर्षक रूप में प्रस्तुत करते हैं—

घर तें मिलि चली ब्रजनारि।
खसित कबरी, नैन घूमत, सबै सकल सिंगार ॥
लिए पूजन साज कर मैं कुटिल बिथुरे बार।
कृष्ण-गुन गावत, सुविहसत, हरीचंद निहार ॥[1]

पनघटलीला —कृष्ण की छेड़खानी बढ़ जाती है। वे जहाँ तहाँ गोपियों का राह रोक खड़े हो जाते हैं। अब वे उन्हें पानी भरते, पनघट पर परेशान करते दिखाई पड़ते हैं। यही प्रसंग पनघट लीला के नाम से प्रख्यात है—

देखौ जू नागर-नट ठाढो जमुना के तट—
पर, मग कोउ चलन न पावै।
काहू को हरत चीर, काहू को गिरावै नीर,
काहू की हँडुरी ढुरावै ॥
श्याम बरन तन सीस टिपारो
सोभा कहि नहिं आवै।
'हरिचन्द' हँसि हँसि नयनन भावत
तन-मन सबहिं चोरावै।[2]

ब्रज मे कृष्ण की छेड़खानी से तंग आकर गोपियाँ यशोदा से शिकायत करती हैं—

बिनती सुन नंद-बाल, बरजो क्यों न अपनो बाल
प्रातकाल आइ आइ अम्बर लै भागै।
भोर होत जमुन तीर जुरि जुरि सब गोपी भीर
न्हात जबै विमल नीर शीत अतिहिं जागै ॥
लेत बसन मन चुराइ कदम चढ़त तुरत धाइ
ठाढी हम नीर माहिं नागी सकुचाही।
'हरीचन्द' ऐसो हाल, करत नित्य प्रति गोपाल,
ब्रज मे कहो कैसे बसं, अब निबाह नाही ॥[3]

दानलीला —भारतेंदु जी के दानलीला पदों म सजीवता और मौलिकता अधिक है। वामन और कन्हैया की तुलना करते हुए गोपियों ने कहा है—

दान लेन द्वै ही जन जायो।
कै तुम नंदराय के ढोटा, वामन जिन बलि छल ठग्यो ॥
तीन पैर कहि छोटे पग सो उन छल करि कै देह बनाई।
तुम गोरस के मिस कछु और रस लीनो छलिकै ब्रजराई ॥
वे छोटे कपटी तुम खोटे एकहिं से विधि रचे संवारी।
'हरीचन्द' वे तो बावन रहे तुम छप्पन निकसे गिरधारी ॥[4]

---

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेंदु ग्रंथावली, दूसरा खंड, छं० ११, पृ० ८३१।
२ वही रागसंग्रह, छं० ४६, पृ० ४५४।
३ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खंड, प्रेममालिका, छं० ६३, पृ० ७१-७२।
४ वही, राग-संग्रह, छं० ४७, पृ० ४५३-६४।

वशी-वादन —कृष्ण की मुरली के सामने सारा ससार अणुमात्र है। वेणु का रूप होता है—व+इ+अणु अर्थात् जिसके समक्ष सारा ससार अणु मात्र हो। एक तो कृष्ण का रूप अलौकिक था दूसरे मुरली योगमाया रूप। अब क्या था। दोनो का समन्वित रूप गोपिया पर गजब ढाता है। वल्लभ सम्प्रदाय म मुरली अघटित घटना चतुर योगमाया है और नाद ब्रह्म की जननी है।[1] भारतेन्दु जी की गोपियाँ पहले तो मुरली की धुनि सुन उस पर बलि बलि जाती थी।

पुष्टिमार्ग म मुरली का विशेष महत्व है। वह प्रभु को आह्लादिका शक्ति है। वह शुद्ध पुष्ट भक्ति का प्रतीक है और गोपियो की सपत्नी है। सूरदास मुरली वर्णन म कमाल कर दिखाये हैं। उन्होंने सैकडा पदो की रचना की है। इन पदो मे गोपिया मुरली को उपालभ देती हैं। मुरली उनका उत्तर देती है और फिर गोपिया मुरली के बारे मे परस्पर वाक्य युद्ध करती हैं। भारतेन्दु जी ने केवल छह पदो की सृष्टि की है। भारतेन्दुकालीन अन्य कवियो ने तो मुरली वर्णन की विशेषताओ का उद्घाटन किया ही नहीं है। प्रेमधन जी ने केवल एक जगह मुरली ध्वनि का वर्णन किया है। यहाँ इस वर्णन म विशेषता लेशमात्र भी नही है। प्रेमधन का वर्णन इस प्रकार है—

जब सौं मुरली तान तुव आन परी है कान
धुनि सुन कैसो हूँ कहुँ परत आन नहिं जान ॥[2]

सूरदास का मुरली वर्णन हिन्दी साहित्य म अप्रतिम स्थान है। भारतेन्दुजी, ने के सूर मुरली सम्बन्धी पदो की अपेक्षा कममात्रा म रचना प्रस्तुत की है पर इनके मुरली सबधी पदो का प्रभाव सूर के एतत्सबधी पदो से कम नही है। सूर की मुरली की ध्वनि सुन आदि खग मृग, देव-गन्धर्व, ऋषि मुनि सभी अपनापन खो देते हैं तो भारतेन्दु के कान्ह की वशी बजते ही सभी चकित हो जाते हैं, उन्हे अपने प्रान की सुधि ही नही रह जाती। ऋषि मुनि, देव गन्धर्व आदि मोहित हो जाते हैं—

बजन लगी वसी कान्ह की।
धुनि सुनि चकित भए खग मृग सब सुधि न रहो कछु प्रान की ॥
मोहे देव गधरव रिसि मुनि भूले गति जु विमान की।
'हरीचद' का मन मोह्यो अस बिसरी सुधिहु अपान की ॥[3]

भारतेन्दु जी की गोपियाँ मुरली-माधुरी से मुग्ध हो जाती हैं। कृष्ण का वशीवादन अलौकिक है। गोपियाँ मुरली की ध्वनि सुनकर आह्लादित होती हैं। इस प्रकार अब वे जान जाती हैं कि वह मुरली हमलोगो के बैर पडी है। वह एक पल भी घर मे नही रहने देती। गोपियो को लोकलाज की सुधि बिसर गई है—

बसुरिया मेरे बैर परी।
छिनहूँ रहन देत नहि घर म मेरी बुद्धि हरी ॥
वेनु-वस की यह प्रभुताई विधि-हर-सुमति छरी।
हरीचद मोहन बस कीनो बिरहिन-ताप-करी ॥[4]

---

१ तव लीनी कर कमल योगमाया सी मुरली।
ब्रजरत्नदास (सपादक) नन्ददास ग्रथावली, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० १०७।
२ प्रभाकरेश्वर उपाध्याय (सपा०) प्रेमघन सर्वस्व लालित्य लहरी, छ० ७०, पृ० ३३५।
३ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खड, स्फुट कविताएँ छ० २५ पृ० ८३५।
४ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खड, छ० १६, पृ० ८३४।

सूरदास की गोपियाँ भी मुरली से बैर मानती थी।[1] सूरदास ने इस क्षेत्र मे जिन भावो की सृष्टि की है वह अनुपम है।

इस प्रकार मुरली की मधुर ध्वनि पुन वे सुनना नही चाहती हैं। मुरली ध्वनि की मादकता से उनके हृदय मे कसक सी उठ जाती है। उनके मन थक गये हैं और मति की गति उलट हो जाती है—

वैरनि बासुरी फेरि बजी।
सुनत श्रवन मन चकित भयो अरु मति गति जाति भजी॥
सात सुरन अरु तीन ग्राम सो पिय के हाथ सजी।
'हरीचन्द' औरहु सुधि मोही जब हो अधर तजी॥[2]

फिर तो वशी स बैर बढ़ते बढ़ते सपत्नी का भाव बढ जाता है। गोपियाँ उसे अपनी सौत समझने लगती हैं। सूरदास ने इसका वणन बडी ही कुशलता पूर्वक किया है। भारतेन्दु जी ने इस प्रकार का नही किया है। भारतेन्दुयुगीन कवि लाला रघुपतसहाय ने वशी को सौत के रूप मे चित्रित किया है। वर्णन मे श्रृगारिक सज्जा तो विशेष है, लेकिन वशी को सपत्नी के रूप मे चित्रित करने म कवि को विशेष सफलता मिली है। वणन इस प्रकार है—

बाजी सौत बासुरी मधुर धुन सुन बीर तन पीर,
उठी धीर कोऊ ना धरत है।
नोखे कान्ह सखियन टेर टेर घेर घेर,
बिकल करत बहू चीरहू हरत है॥
आली री न जैहो बनवारी पास,
तेरी सौह कहा कहो नेक न डरत है।
पावै दौर मसकत अगिया टटोल स्याम,
उरज अमाल गोल पायल करत है॥[3]

सूरदास की गोपियाँ तो उसे सौत के रूप म स्वीकार ही कर लेती हैं।[4]

भारतेन्दु की गोपिया मुरली की ध्वनि सुन चकित हो जाती हैं, ज्यों ही उनके कानो मे ध्वनि का प्रवेश होता है, वे अपने प्रियतर सावरिया विहारीलाल की सुधि से आत्मविभोर हो जाती हैं। क्यो न आत्मविभोर हो। उनके गुजन मे हार की छवि घर कर गई है—

---

१ नन्ददुलारे वाजपेयी (सपा) सूरसागर, ना० प्र० सभा, काशी,
२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, ख० १८, पृ० ८३४।
३ रसिक मित्र, प्रथम भाग, सख्या ४, जनवरी, १८६८ ई०, पृ० २३।
४ मुरली हम कहु सौति भइ।
नैकु न होति अधर त न्यारी जसे तृषा उई॥
इह अचवति, उह ढारति लै-लै, जल बन बननि बई।
जा रसको व्रत करि तनु जार्यो कीन्ही रई रई॥
पुनि पुनि लेति, सकुच नहिं मानति वैसी भई दई।
कहा धरे वह धास सास की, आस निरास गई॥
ऐसी कहूँ गई नहिं देखी जसी भई नई।
सूर बचन याके टोना से सुनत मनोज जई॥
नददुलारे वाजपेयी (सपा० सूरसागर, प्रथम खण्ड, १२४०।१८५८, पृ० ६६६।

बजन लगी बसी यार की ।
धुनि सुनि व्रज तिय चकित होत है सुधि आवत दिलदार की ॥
मीठी तान लेत चित मोहेओ, चितवन तीखी यार की ।
'हरीचद' नैनन मे गडि गई छवि गुजन के हार की ॥[1]

और इस तरह प्रेम प्रतिशोध चाहने लगता है । गोपियो का दिल दु ख का शमनः नही कर पाता है । अब वे पश्चाताप करने लगती हैं कि हमी वशी क्या न हुई । यदि वशी का रूप हमे मिलता तो जो सुख वशी को प्राप्त हो रहा है वही सुख उन्हे भी सुलभ होता । इस प्रकार गोपियो की यह उक्ति मुरली वणन म अपना एक अलग स्थान प्राप्त करती है । यहा भारतेन्दु जी सूरदास से भी आगे हो जाते हैं । सूर की गोपिया मुरली से सब कुछ कहती हैं, लेकिन अपने पश्चातापपूर्ण शब्दो मे इस प्रकार का भाव नही प्रकट करती । भारतेन्दु जी की गोपिया कहती हैं—

सखी हम बसी क्यो न भए ।
अधर सुधा रस निसु दिनु पीवत प्रीतम रगरए ॥
कबहुँक कटि मे कबहुँ कटि मे कबहुँ अधर धरे ।
सब व्रज-जन मन हरत रहत नित कुजन माझ खरे ॥
देहि विधाता यह बर मागौं कीजै व्रज को धूर ।
हरीचद नैनन म निवसे मोहन रस भरपूर ॥[2]

यहाँ सखियो की प्रबलतम इच्छा दशनीय है ।

रासलीला —पूर्ण पुरुषोत्तम कृष्ण क नित्य रास और इस लोक म कृष्णावतार के समय के नमित्तिक राम दोनो का एकीकरण करते हुए भक्तिकालीन कवियो ने गोपी-कृष्ण रास का वर्णन प्रस्तुत किया है । इस रास से तीन प्रकार के रस की सृष्टि होती है—लौकिक विषयानन्द, अलौकिक विषयानन्द और काव्यानन्द । लोकिक विषयानन्द तथा काव्य रस से इतर रस रूप श्रीकृष्ण के ससग की लीलाओ म जो रस समूह मिले वह रास है ।[3] यह रास तीन प्रकार का होता है । वे निम्नोक्त हैं—

१—नित्यरास
२—नैमित्तिकरास
३—अनुकरणात्मकरास

नित्यरास नित्यगोलोक मे भक्तो के रजन के निमित्त प्रभु करते हैं । भक्तजन इस रास को देखकर आह्लादित होते हैं । नैमित्तिक रास मे प्रभु गोकुल म अवतार लेकर विविध लीलाए प्रस्तुत करते हैं । यह वही रास है जिससे मनुष्य भवसागर के बधन से मुक्ति प्राप्त करता है ।

भारतेन्दुकालीन कविता ने इस रास की विशेष महत्ता नही बतायी है । रासलीला के वर्णन विशेषकर सूरदास म प्राप्त होते हैं । भारतेन्दु जी जिस प्रकार अन्य लीलाओ के वणन मे मौन रहे हैं, ठीक उसी प्रकार रासलीला वणन मे भी चुप हैं । उन्होन केवल ७ पदो की सृष्टि की है । रासलीला का सवश्रेष्ठ पद जो उन्होने लिखा है, वह इस प्रकार है—

---

१ व्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड, छ० २४, पृ० ८३५ ।
२ वही, स्फुट कविताएँ छ० २०, पृ० ८३४ ।
३ डा० सन्तोष गोयल नन्ददास का दशन साहित्य सन्देश, वष २६, अक १-२, १९६७, पृ० ३४ ।

वृंदावन उज्वल वर जमुना तट नंदलाल
गोपिन संग रहस रच्यो सरद जमिनी।
निरतत गोपाललाल, संग में बृज-बाल बनी
अद्भुत गति लेत कोक-कलित कामिनी॥
लाग डाट सुर-बंधान गावत अचूक तान
ततथेइ ततथेइ थेई गति अभिरामिनी।
गोपिन संग श्याम सुंदर मंडल-मांघ सोभित अति
बिहरत बहु रूप मानो मेघ दामिनी॥
थाक्यो नभ चंद देखि रैनि गति सिथिल भई
लखि हरि गजपति संग गज-गामिनी।
'हरीचंद' सोभा लखि देव मुनि नभ विथक्ति
मानो हरि साथ सबै ब्रज भामिनी॥[1]

राधा-कृष्ण की आह्लादिका शक्ति हैं। कवि राधा के रास का वर्णन भी प्रस्तुत करता है—

लखि सखि आजु राधिका रास।
— जमुना पुलिन सरल कोमल कन जहं मल्लिका विकास॥
उदित चन्द्र पूरन नभ मंडल पूरन ब्रज तिय आस।
मंद सुरन पिय पास बन सजि निकर चिकुर मल पास॥
प्रचलित पवन रवन हित महकत मह मह दवन-सुबास।
दवन मदन मद मद गवन सुख भवन जहां हरि-वास॥
बजत मृदंग उपंग चंग मिलि मजनन जति तति जाम।
बढ्यो रंग रति रंग दंग लखि अंग उमंग प्रकाम॥
मुरली रली मली बाजत मिलि बीन लीन सुर खास।
ताल देत उत्ताल बजावत ताल ताल करि हास॥
उघटत श्रीराधे राधे मधुर धुनि बन सब आस।
हरि राधा की वचन रचन लखि वलिहारी हरिदास॥[2]

इस प्रकार भारतेंदुयुगीन कविता में पुष्टि मार्ग के सभी सिद्धान्तों और विधि विधानों को आत्मसात् करने की भरपूर चेष्टा की गई है। सच तो यह है कि किन्हीं किन्हीं सिद्धान्तों के विश्लेषण में कुछ कवियों को विशेष सफलता मिली है। यहां रास-वर्णन में भारतेंदु तथा भारतेंदुयुगीन किसी भी कवि को सफलता नहीं मिली है। यहाँ केवल परम्परा का निवाह ही पाया जाता है। इस तरह का वर्णन न तो आध्यात्मिक महत्व रखता है और न भक्ति सिद्धान्तों के साथ तादात्म्य ही स्थापित कर पाता है।

गोलोक, गोकुल अथवा वृन्दावन

वृन्दावन की महत्ता प्रायः सभी सम्प्रदायों ने स्वीकार की है। यह वृन्दावन लीलाधर का लीला-धाम है। इसकी कीर्ति का उत्तरोत्तर विकास होता जाता है। जहाँ पर यशुदानन्दन के चरणकमलों की

---

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेंदु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, राग संग्रह, छं० ८१, पृ० ४६४।
२ वही, राग-संग्रह, छं० ११०, पृ० ४७४।

छाप पड गई, जहाँ मयूर मुरली की मधुर ध्वनि सुन कर मत्त हो नाचने लगते हैं। सभी उसकी शोभा एव महिमा से मोहित हो जाते हैं। जब श्रीकृष्णचन्द्र गिरिराज के शिखर पर सभी को दूर कर लीला म लीन हो जाते हैं, उस समय मयूर नाचने लगता है। वह वृन्दावन बिहारी मयूर के पच्छ को सर पर धारण कर नटराज के रूप म शोभित होता है। इस तरह वृन्दावन की शोभा द्विगुणित हो जाती है। कवि भारतेन्दु जी इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

बनी जग कीरति वृन्दावन की।
श्रीजसुदानन्द की जाप छाप भई चरनन की॥
बेनु धुनि सुनि जहा नाचत मत्त होइ मयूर।
सिखर पै गिरिराज के सब सग को करि दूर॥
सबै मोहत देव नर मुनि नदी खग मृग आन।
ता समै यह मोर नाचत सुनत बसी तान॥
पच्छ यातें धरत सिर प श्याम नटवर राज।
कहत इमि हरिचद गोपी बैठि अपुन समाज॥[1]

प्रेमघन जी का वृन्दावन के प्रति विचार बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। वृन्दावन की शोभा अति रुचिर है। अत गोकुल बिहार के निमित्त भगवान् न अपना कृष्ण रूप धारण किया। व रमा रानी को बिसार कर गोचारण के निमित्त गोकुल वास करने लगे—

गोचारन हित गोकुलहिं आप बस्यो गोपाल।
रानी रमा बिसारि तजि निज गो लोक विशाल॥[2]

श्रीगदाधर भट्ट द्वारा वृन्दावन की शोभा का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

श्रीगोविन्द पदारविंद सीमा सिर नाऊ।
श्रीवृन्दाबन बिपिन मौलि वैभव कछु गाऊ॥
कालिंदी जह नदी नील निमल जल भ्राज।
परम तत्व वेदान्त वेद इव रूप बिराज॥
रक्त पीत सित असित लसित अबुज बन शोभा।
टोल टोल मदलाल भ्रमत मधुकर मधु लोभा॥
सारस अरस कल हस नाक कोलाहल कारी।
अगनित लगन पच्छि जाति कहतहिं नहिं हारी॥
पुलिन पवित्र विचित्र रचित नाना मनि मोती।
लज्जित है ससि सूर निरखि निसि बासर जोती॥[3]

निष्कर्ष

भारतेन्दुयुगीन भक्तिकाव्य पर वल्लभ सम्प्रदाय की विशेष छाया दृष्टिगोचर होती है। भारतेन्दु युगीन प्रमुख भक्त कवि राधाकृष्णदास, गोस्वामी राधाचरण आदि पर भी इस सम्प्रदाय की विशेष छाप है। भारतेन्दु जी तो वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे ही। उन्होने तो इस सम्प्रदाय के सम

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड वेणुगीत छ० ४ पृ० ७५०।
२ प्रभाकेश्वर प्रेमघन सवस्व लालित्य लहरी, छ० ३२, पृ० ३३१।
३ हरिश्चन्द्र मगजीन, १८७४ ई०, पृ० १७२।

सिद्धान्तों और विविध विधानों को अपनाया है और अपने काव्य को प्रश्रय दिया है। मुख्यत वल्लभ सम्प्रदाय के व्यावहारिक सिद्धान्तों का निरूपण तद्युगीन कविता में सफलतापूर्वक हुआ है।

हरिदासी सम्प्रदाय

हरिदासी सम्प्रदाय और भारतेन्दुकालीन काव्यधारा

हरिदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी हैं। इस सम्प्रदाय पर राधावल्लभ सम्प्रदाय की स्पष्ट छाप लक्षित होती है लेकिन राधावल्लभ सम्प्रदाय का परिवर्तित रूप ही इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। उपासना के क्षेत्र में इस सम्प्रदाय ने अपना एक अलग स्थान निश्चित किया है। डा० रूपनारायण पाण्डेय ने लिखा है कि इस सम्प्रदाय में भी राधावल्लभ की भाँति राधा-कृष्ण का पारस्परिक सम्बन्ध नित्य बिहारी भाव का है।[1]

उपास्य का स्वरूप

स्वामी हरिदास जी ने अपने इष्ट के रूप मे कुंजबिहारी को माना है। अत नित्य उपासना की प्रधानता देते हुए इस सम्प्रदाय मे श्यामाश्याम युगल किशोर, कुंजबिहारी उपास्य के रूप में स्वीकार किये गये हैं। राधा और कृष्ण दोनो का प्रेम समान है। यहाँ राधा और कृष्ण दोनो अपनी लीला के निमित्त दो रूप धारण कर लिये हैं। दोनो मे कोई भेद नहीं है। वे द्वैत अद्वैत और विशिष्टाद्वैत नहीं है, ऐसा इस सम्प्रदाय का विश्वास है।[2]

राधाकृष्ण की प्रेम लीलाओं की प्रधानता इस सम्प्रदाय मे है। राधा और कृष्ण का युगल विहार के लिये समान अधिकार है। स्वकीया परकीया सम्बन्ध से नित्य विहार की लीला सम्पादित होती है। नित्य विहार में समानता का अधिकार होते हुए भी राधा की प्रधानता स्वीकार की गई है। कहीं कहीं तो कृष्ण से राधा के चरणों का स्पर्श तक करा दिया गया है। यह केवल प्रेम की उत्कृष्टता प्रदर्शित करने के लिये हुआ है। इसे डा० रूपनारायण पाण्डेय ने सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया है।[3]

प्रस्तुत सम्प्रदाय की छाप भारतेन्दुकालीन कविता पर विशेष परिलक्षित होती है। ठाकुर जगमोहन सिंह जी की कविता पर यह प्रभाव स्पष्ट है। उनके इष्ट श्यामा श्याम हैं, वे अपने श्यामा की मूरति को पल भर भी बिसारना नहीं चाहते—

श्यामा श्यामा नाम को जीह रटत दिन रैन।
श्यामा की मूरति अजौं टरे न पलभर नैन।।[4]

ठाकुर साहब श्यामा रूप के अनन्य उपासक हैं। उनके श्यामा का रूप जल थल-नभ और वृक्ष तथा उनके पत्तो पत्तो में व्याप्त है। यह संसार ही श्यामामय है—

---

१ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य मे माधुर्यभक्ति पृ० १४८।

२ नहीं द्वैताद्वैत हरि नहीं विशिष्टाद्वैत
बँधे नहीं मतवाद मे ईश्वर इच्छा द्वैत।
ईश्वर इच्छा द्वैत करें सब ही को पोषन,
आप रहे निर्लेप भक्त सो माने तोषन।।
भगवतरसिक की वाणी, पृ० ८३।

३ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य म माधुर्यभक्ति, पृ० ३६८।

४ ठा० जगमोहन सिंह श्यामा स्वप्न, पृ० १३२।

श्यामा सुमिरि जगत श्यामा मय श्यामा विनय बहोरी।
जल थल नभ तरु पातन श्यामा श्यामा रूप मरारी॥[1]

यद्यपि इस सम्प्रदाय में निम्बार्क गौडीय और वल्लभ की भाँति ही श्रीकृष्ण परात्पर तत्व स्वीकार किये गये हैं फिर राधा की महत्ता स्वीकार की गई है। भारतेन्दु जी के लिये श्यामा प्रान-जीवन धन है—

हमारी प्रान जीवन धन श्यामा।
ब्रज जन-तरुनि चक्र-चूडामनि पूरनि हरि मन-कामा॥
अति अभिरामा सब सुख धामा हरि बामा-मनि-दामा।
हरीचंद' तजि साधन सबरे रटत एक तुव नामा॥[2]

श्यामा सखियन की सरताज[3] और सरदार[4] ही नहीं बल्कि भक्त भारतेन्दु जी की सरवस भी हैं—

हमारी सरवस राधा प्यारी।
सब ब्रज स्वामिनि हरि अभिरामिनि श्री वृषभानु-दुलारी॥
वृंदावन-देवी सुख देवी सुख सवी सहज दीन हितकारी।
हरीचंद गुन निधि सोभा निधि कीरति की सुकुमारी॥[5]

हरिदासी सम्प्रदाय में राधा कृष्ण का परस्पर सम्बन्ध स्वकीया परकीया भाव निर्विशेष नित्य विहारी भाव का स्वीकार किया गया है। भारतेन्दु जी के निम्नांकित पद में यही भाव द्योतित होता है—

राधा श्याम सेवें सदा वृंदावन वास करें
रहै निहचिंत पद आस गुरुवर के।
चाहे धनधाम न अराम सो है काम
हरिचन्द जू भरोसे रहैं नंदराय घर के॥

———

१ ठाकुर जगमोहन सिंह देववानी पृ० ६६।
—श्रीवृंदावन धाम इष्ट श्यामा महारानी।
भगवतरसिक की वाणी पृ० ६०।

२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, छ० ८६, पृ ६६

३ हमारी प्यारी सखियन की सिरताज।
ताहू की महरानी जो सब ब्रजमंडल महराज॥
सील सनेह सरस सोभा निधि पूरनि जन मन काज।
हरीचंद की सरबस जीवनि पालनि भक्त-समाज॥
वही प्रेम फुलवारी, छ० ८४, पृ० ५६८।

४ श्यामा प्यारी सखियन की सरदार।
अति भारी गोरी रस बोरी सहजहि परम उदार।
लाज-कृपा सो भरे बडे दृग बडे छूटे तिमि बार।
हरीचंद तनिकहि बस कीनो श्री ब्रजराज-कुमार॥
वही प्रेम-फुलवारी छ० ८५ पृ० ५६८।

५ ब्रजरत्नदास (सम्पादक) भारतेन्दु ग्रंथावली दूसरा खण्ड, छ० ८७ पृ० ५६६।

एरे नीच धनी हम तज तू दिखावै कहा
गज परवाही नाहिं होहिं कवौ खर के।
हाइ ले रसाल तू भलेई जग-जीव भाज
आसी ना तिहारे ये निवासी कल्पतर के ॥[1]

यद्यपि इस सम्प्रदाय में राधा और कृष्ण ने लीला के लिये विभिन्न रूप धारण किये हैं, किन्तु वास्तव में वे अभिन्न प्राण हैं। उनकी लीला भी उन्हीं की भाँति अनादि है। कविवर प्रतापनारायण मिश्र अक्रूर से अजन्मा कहलवाते हैं। यथा—

सब अचरज मय बात सुनत लखत इत आप में।
कह्यो कछु नहिं जात सकै न मन अनुमान करि ॥
यह शिशु परम अयान हाल जोग अति स्वल्प वय।
सो बल बुद्धि निधान सुहृ तेज युत है महत ॥
धन्य धन्य बसुदेव धन्य देवकी देवि तू।
जाया जग नहिं भेव जयो अजन्मा जिन सुवन ॥[2]

उपासना का स्वरूप

इस सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण की लीलाओं का नित्यप्रति ध्यान एवं चिन्तन करना ही उपासना स्वीकार की गई है। इस सम्प्रदाय की उपासना पद्धति में नाम, जप, सत्संग आदि की महत्ता स्वीकार की गई है। क्योंकि इन बाह्य साधना से साधक का हृदय विकार शून्य हो जाता है। इस प्रकार साधक राधा-कृष्ण की मधुर लीलाओं का रसास्वादन करने लगता है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि इस सम्प्रदाय में नित्य बिहार की विशेष महत्ता है। इसलिये उपासना के स्वरूप को समझने के लिये नित्य-विहार का वर्णन आवश्यक प्रतीत होता है।

नित्य विहार लीला

हरिदासी सम्प्रदाय में उपासना का स्वरूप नित्य विहार की लीला से सम्बन्धित है। यहाँ नित्य विहार की लीला की विशेष महत्ता है। डा० रूपनारायण पाण्डेय ने लिखा है कि नित्य विहार के रस का जिसने आस्वादन कर लिया है उसके लिये अन्य सभी स्वाद फीके पड़ जाते हैं।[3] फलस्वरूप इन लीलाओं का चिन्तन एवं रसास्वादन करना इस सम्प्रदाय के कवियों का मुख्य ध्येय है। लेकिन रसास्वादन आसान नहीं है। यहाँ हृदय की पवित्रता नितान्त आवश्यक है। जब तक साधक का हृदय शुद्ध नहीं हो जाता, उस नित्य विहार लीला का रसास्वादन सर्वथा असम्भव है इस लीला के चिन्तन एवं मनन से जो प्रेमानुभूति होती है, वह लौकिक प्रेम से सर्वथा भिन्न है। इसमें भक्त आत्मविभोर एवं भावविभोर हो श्याममय हो जाता है। संयोग की सुखद लीलाओं के सामने मान, प्रवास विरह की स्थिति भक्त कवि नहीं स्वीकार करता।

भारतेन्दु जी का अधिकांश संयोग शृङ्गार स्वकीया से सम्बन्ध रखता है। बेचारी परकीयाओं को तो कुढ़ते ही बीतता है। उन्होंने परकीया के निःशंक विहार का उज्ज्वलतम उदाहरण स्वरूप निम्नोक्त छन्द प्रस्तुत किया है।

---

१ वही, स्फुट कविताएँ, छ० ५, पृ० ८२३।
२ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (संपादक) प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ८३।
३ डा० रूपनारायण पाण्डेय ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्यभक्ति, पृ० ३७०।

वृज के सब नाव घर मिलि ज्या ज्यो बनाइकै त्यो दोऊ चाव कर।
'हरिचद' हँस जितनो सबही तितनो दृढ दोऊ निभाव कर।
सुनि कै चहुधा चरचा रिसि सा परतच्छ ये प्रेम प्रभाव कर।
इत दोऊ निसक मिल विहर उत चौगुनो लोग चवावकर।[1]

श्याम और श्यामा दोना झूल पर झकोर लेते हैं। कवि इम लाला का प्रत्यक्ष चिन्तन कर आत्मविभोर हो जाता है—

हिडोरना आजु झकोरवा लेत।
झूलत श्यामा श्याम रग भरे लपटि बनावत हेत॥
बरसत घन तन काम जगावत गावत तारी देत।
'हरीचद' उरुझे पिय प्यारी बीर सुरत रन-खेत॥[2]

कवि गोपीश्वर सिंह ने भी श्यामा श्याम के झूलन प्रसग का उद्घाटन किया है। कवि की उक्ति बडी ही अनमोल है—

झूलत आज श्यामा श्याम।
देखु वृन्दा विपिन मह होन्हार मुन्ति ललाम॥
साजि भूषण बसन झुलवनि मन्दगति ब्रज-बाम।
राग गुण मलार गावति लेति बहुविध ग्राम॥
बहत मारत मन्द शीतल सुरभि लै अभिराम।
जलद-बुद रसाल बरसत निरखि उमगत काम॥
देखन सुभग शोभा अमर तिय आइ तजि निज धाम।
गापीश चचल नैन लखि छवि लेत नहि बिसराम॥[3]

जैसा कहा गया है कि लीला प्रसग मे प्रेमाधिक्य के कारण कही-कही कृष्ण राधा का चरण स्पश करते भी चित्रित हुए हैं। लेकिन यह मत सिद्धान्त रूप मे स्वीकार नही की गई है। भारतेन्दु जी इस भाव के तीन पदा का सृजन किये हैं।

श्रीकृष्ण देवा के देव हैं। राधा उनकी इष्ट महारानी हैं। लेकिन श्रीकृष्ण उनके पदो की सेवा करते हैं और उन्हें अपनी सुधि लेने के लिये प्रार्थना करते हैं—

ज जै श्री वृन्दावन देवी।
जो देवन को देव कहाई सोऊ जा पद सेवी॥
अगम अपार जगत-सागर के जाके गुन गन खेवी।
'हरीचद' की यहै वीनती कबहूँ तो सुधि लेवी॥[4]

राधा अनसुनी कर देती हैं। अत वह नयनो म नीर भर के राधे के चरणा पर गिर जाते हैं। वे राधा से अपने अपराधा को सभी प्रकार क्षमा करने को कहते हैं और भविष्य म अपराध नही करने की राधा के चरणों का शपथ लेते हैं। वर्णन इस प्रकार है—

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, छ० २३ पृ० १५१।
२ वही, वर्षाविनोद छ० ३७ पृ० ४९९।
३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार भाग २ पृ० ११६।
४ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली दूसरा खण्ड छ० १, पृ० ५३७।

हे देवी अब बहुत भई।
यह बरदान दीजिए हमको कछु मत कीजै आजु नई ॥
अब कबहूँ अपराध न करिहौं तुव चरनन की समय करौं।
छमा करौ हा सरन तिहारी त्राहि त्राहि यह दीन खरौ ॥
सह्यो न जात बिरह यह कहिकै नैनन म हरि नीर भरे।
'हरीचद' बेबस ह्वै श्रीराधा जू के चरन परे ॥[1]

अपराधी जब स्वय अपने अपराध को स्वीकार कर क्षमा के लिए प्रार्थना करता है तो निर्णायक आप ही आप द्रवीभूत हो जाता है। राधिका का मान अपने प्यारे को अपने पैरा पर देख टूट जाता है। वह श्रीकृष्ण को अक मे उठा लेती है। कवि इस अपूर्व शोभा का निरख आत्मविभोर हो जाता है—

देखि चरन पै पीतम प्यारो।
छुटि गयौ मान कपट कछु जिय मे रह्यो छद्म को नाहि सभारो।
धाइ उठाइ लियो भुज भरि कै नैनन नीर भर्यो नहिं ढोरा।
तन कपत गद्गद् मुख बानी कह्यो न कछु जो कहन विचारो।
रहे लपटाइ गाढ भुज भरिकै छूटत नहिं तिय हिए पियारो।
'हरीचद' यह सोभा लखि कै अपनौ तन मन सहजहिं वारो ॥[2]

उपासक का स्वरूप

इस सम्प्रदाय मे उपासक अपने उपासक अपने उपास्य श्यामा श्याम के साथ निरंतर साधना एव भजन से एक रूप हो जाता है। उसे अपने देह की सुधि नही रह जाती। वह अपनी साधना से अपने उपास्य मे इतना तल्लीन हो जाता है कि उसका मन मतग और कुछ सुनता ही नही—

श्यामा तेर नेह की डोर जकरि जिय मोर।
मन मतग अति प्रबल मम खिच्यौ जात बरजोर ॥[3]

इस अवस्था म उपासक को सब कुछ श्यामल ही दृष्टिगोचर होता है—

श्यामल श्याम लखात चहूँ नभमडल मे बगपाति सुहाई।
दूब हरी हरी गल गई भूमि हा हा हरी सुधिहू बिसराई ॥
त्यो जगमोहन पीरी परी बिरहानल ने सब देह जराई।
तेरे बिना घन घेरि घटा तरवार लै बिज्जु अटा चढि धाई ॥[4]

सखीभाव

प्रस्तुत सम्प्रदाय मे सखीभाव की उपासना स्वीकृत है। माधुर्यपरक लीलाओ में प्रिया प्रियतम की सेवा मे सखिया का विशेष स्थान है क्योंकि साधक जब राधा कृष्ण की लीलाओ का आस्वादन ही नही करता बल्कि वह स्वय भाग लेता है। अत इन लीलाओ म वह भाग लेने के लिये अपने को

१ वही, देवीछद्मलीला छ० १३, पृ० ६४०।
२ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेंदु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, देवी छद्म लीला, छ० १४, पृ०६४०।
३ डा० श्रीकृष्णलाल (सपादक) श्यामास्वप्न नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १७१।
४ ठाकुर जगमोहन सिंह श्यामास्वप्न, सपादक डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० १६५।

राधा की सखी स्वीकार करता है। इस रूप में उसे विहार का प्रत्यक्ष आनन्द मिलता है तथा विहार के साधन जुटाने में वह अपने को समर्थ पाता है। सखीभाव की उपासना के तीन भेद हैं—

(१) साधारणी
(२) समञ्जसा
(३) समर्था

इसे ही हरिदासी सम्प्रदाय के माधुर्य भाव में नित्य सिद्धा या साधन सिद्धा के नाम से अभिहित किया जाता है। इन दो भेदों के अतिरिक्त सखियों के तीन अन्य प्रकार भी हैं, जो निम्नोक्त हैं—

(क) स्वसुख सखी
(ख) तत्सुख सखी
(ग) चित्सुखी सखी

इस सम्प्रदाय में स्वसुख सखी और तत्सुख सखी की सेवा का ही स्थान उच्च है। स्वसुख सखीभाव से उपासना करने वाले भक्त राधा कृष्ण की सेवा करते हुए सुख की कामना करते हैं लेकिन तत्सुख सखीभाव में निजसुख की कामना नहीं रहती है।

भारतेंदु जी स्वसुख सखीभाव से उपासना करते हैं। वे अपने युगल उपास्य श्रीश्यामा श्याम के सुरतिक्रीडा सम्पन्न शय्या से उठते हुए युगल छवि को दर्शन करते हैं। कवि इस छवि का दर्शन करते हुए अपार आनन्द की सृष्टि करता है। यथा—

जागे माई सुन्दर स्यामा-स्याम।
कछु अलसात जंभात परस्पर टूटि रही मोतिन की दाम।
अधखुले नैन प्रेम की चितवनि आधे आधे वचन ललाम।
बिलुलति अलक मरगजे बागे नखछत उरसि सुधाम।
सगम गुन गावत ललिता दिक बाजत बीन तीन सूर ग्राम।।[1]
'हरीचन्द' यह छवि लखि प्रमुदित वारत तोरन ब्रज ग्राम।

यहा कवि केवल युगल छवि के दर्शनानन्द सुख की भावना को अभिव्यंजित करता है।

ठाकुर जगमोहन सिंह तो स्पर्शादिक सुख की विशेष अभिलाषा रखते हैं। वे तो बिना श्यामा के रैन बिता ही नहा सकते हैं। यथा—

श्यामा बिन इत बिरह की लागी अगिन अपार।
पावस घन बरस तऊ बुझै न तन की भार।
बुझै न तन की भार मार निज बानन मारत।
आसू झरना उस मरन को जो मुहिं जारत।
जरत अत अनग मीत बनि नीरद रामा।
कैसो काटे रैन बिना जगमोहन श्यामा।।[2]

कवि यहाँ स्वसुखीभाव से स्पर्श सुख की अभिलाषा व्यक्त करता है। स्वसुख सखीभाव की उपासना में भक्त राधाकृष्ण की एकान्त-केलि में प्रवेश नहीं पाता। यहा प्रभु भक्तों को अपनी रसानन्द लीलाओं में प्रवेश देकर उसकी सारी अभिलाषा को पूर्ण करता है।

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड प्रेम महिमा, छन्द २४, पृ० ५१ ५२।
२ ठा० जगमोहन सिंह श्यामास्वप्न सपादक डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० १५४।

तत्सुखसखी भाव की उपासना म उपास्य युगल की क्रीडा मैं भक्त का सीधे प्रवेश होता है। वे इस प्रकार असीम आनन्द का अनुभव करत हैं। इस सम्प्रदाय का भक्त इसी भाव की उपासना के लिये लालायित रहता है। कविवर ललितकिशोरी तत्सुखसखीभाव के उपासक हैं। उनकी प्रबलतम इच्छा है कि ब्रजधाम को छोड कहीं अ यत्र न जाऊँ। उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

जमुना-पुलिन कुज गह्वर की कोकिल ह्वै द्रुम कूक मचाऊँ।
पद पङ्कज प्रिय लाल मधुप ह्वै मधुर मधुर गूज सुनाऊँ।
कूकर ह्वै बन बीथिन डोलौं बचे सीथ रसिकन के खाऊँ।
ललितकिसोरी आस यही मम ब्रजरज तजि छिन अनत न जाऊँ॥[१]

कवि राधा-कृष्ण-केलि को निज सुख समझता ह। यही कारण है कि वह ब्रजधाम म ही किसी प्रकार रहना चाहता है। विशेष बात तो यह है कि तत्सुखसखीभाव की परायणता अपने चरम सीमा पर पहुँच जाती है। क्योकि कवि (साह कुदनलाल) अपने को सखि ललितकिशोरी के रूप मे घोषित करता है।

ललितमाधुरी जी के हृदय मे यह चोर घुस गया है। वे उसे पकडना चाहते हैं, लेकिन हिय का चोर क्या कभी पकडा गया है—

मोहन चोर पकरि कैसे पाऊं।
देखत हौं दृग भरि भरि सजनी, परसन को रहि रहि ललचाऊँ।
दुरयो निकुञ्ज लता बन बीथिनि, निपट निकट मैं तोहि बताऊँ।
ललित माधुरी हो मे जी सग चितचोरे हो आनि मिलाऊँ॥[२]

कवि यहाँ तत्सुखसखी और स्वसुखसखीभाव के बीच का रास्ता पकडना चाहता है। वह स्वस सुख का भी कामना करता है और उपास्य युगल की क्रीडा म अपने को लीन भी कर देना चाहता है। भक्ति ललित माधुरी भी उपास्य युगल के चरणो म अपने को समर्पित कर सखीत्व द्योतक नाम अंगीकृत कर लिया। इस प्रकार निजत्व का परत्व पर समर्पित कर देने की यह कला अभिनव।

भारतेंदुकालीन अन्य कविया की वाणी द्वारा इस भाव की अभिव्यक्ति नहीं हुई है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन स यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेंदुयुगीन कविता पर हरिदासी सम्प्रदाय के सिद्धान्ता की विशेष छाया नही पडी है। भारतेन्दु जी पर इस सम्प्रदाय की विशेष छाप है। तत्सुख सखी और स्वसुख सखी भाव की उपासना का केवल ललितकिशोरी जी और ललितमाधुरी जी पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

बहुदेवोपासना

भारतेन्दु युग की कविता रीति परम्परा का अनुकरण करन मे सिद्धहस्त है। तत्कालीन कवियो की कल्पना म रीतिपरक माधुर्य का समावेश रीतिकालीन कविता का सफल प्रयास था। अत माधुर्य भक्ति के स्फीत प्रवाह-पयोधि मे कवि का मन घुल मिल गया था। वहाँ राधा और राधारमन ही कविता के विषय थ, राम और शिव तो गौण थ। सीता तद्युगीन काव्यकानन से निर्वासित कर दी गई थी।

---

१ वियोगी हरि (सपादक) ब्रजमाधुरी सार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पद १३, पृ० २७१।
२ वही, पृ० २७६।

राधा की सखी स्वीकार करता है। इस रूप म उसे विहार का प्रत्यक्ष आनन्द मिलता है तथा विहार के साधन जुटाने मे वह अपने को समर्थ पाता है। सखीभाव की उपासना के तीन भेद हैं—

(१) साधारणी
(२) समञ्जसा
(३) समर्था

इसे ही हरिदासी सम्प्रदाय के माधुर्य गाश म नित्य सिद्धा या साधन सिद्धा के नाम से अभिहित किया जाता है। इन दो भेदों के अतिरिक्त सखियों के तीन अन्य प्रकार भी हैं जो निम्नोक्त हैं—

(क) स्वसुख सखी
(ख) तत्सुख सखी
(ग) त्रिसुखी सखी

इस सम्प्रदाय म स्वसुख सखी और तत्सुख सखी की सेवा का ही स्थान उच्च है। स्वसुख सखीभाव से उपासना करने वाले भक्त राधा कृष्ण की सेवा करते हुए सुख की कामना करते हैं लेकिन तत्सुख सखीभाव म निजसुख की कामना नही रहती है।

भारतेंदु जी स्वसुख सखीभाव से उपासना करते हैं। वे अपने युगल उपास्य श्रीश्यामा श्याम के सुरतिक्रीडा सम्पन्न शय्या से उठते हुए युगल छवि की दर्शन करते हैं। कवि इस छवि का दर्शन करते हुए अपार आनन्द की सृष्टि करता है। यथा—

जागे माई सुन्दर स्यामा स्याम।
कछु अलसात जंभात परस्पर टूटि रही मोतिन की दाम।
अधखुले नैन प्रेम की चितवनि आध आधे बचन ललाम।
बिथुलति अलक मरगजे बागे नखक्षत उरसि सुनाम।
सगम गुन गावत ललिता दिक बाजत बीन तीन सुर ग्राम॥[1]
'हरीचन्द' यह छवि लखि प्रमुदित रतून नौछावर ग्राम।

यहा कवि केवल युगल छवि के दर्शनादिक सुख की भावना को अभिव्यजित करता है।

ठाकुर जगमोहन सिंह तो स्पर्शादिक सुख की विशेष अभिलाषा रखते हैं। वे तो बिना श्यामा के रैन बिता ही नहा सकते हैं। यथा—

श्यामा बिन इत बिरह की लागी अगिन अपार।
पावस घन बरस तऊ बुझै न तन की भार।
बुझै न तन की भार मार निज बानन मारत।
आसू झरना उस मरन को जो मुहिं जारत।
जरत जत अनग मीत बनि नीरद रामा।
कैसो काटो रैन बिना जगमोहन श्यामा॥[2]

कवि यहाँ स्वसुखीभाव से स्पश सुख की अभिलाषा व्यक्त करता है। स्वसुख सखीभाव की उपासना मे भक्त राधाकृष्ण की एकान्त-केलि म प्रवेश नहो पाता। यहाँ प्रभु भक्तों को अपनी रसादि लीलाओ मे प्रवश देकर उसकी सारी अभिलाषा को पूर्ण करता है।

———

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेंदु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, प्रेम महिमा, छन्द २४, पृ० ५१ ५२।
२ ठा० जगमोहन सिंह श्यामास्वप्न, सपादक डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० १५४।

तत्सुखसखी भाव की उपासना में उपास्य युगल का क्रीडा में भक्तों का सीधे प्रवेश होता है। वे इस प्रकार असीम आनन्द का अनुभव करते हैं। इस सम्प्रदाय का भक्त इसी भाव की उपासना के लिये लालायित रहता है। कविवर ललितकिशोरी तत्सुखसखीभाव के उपासक हैं। उनकी प्रबलतम इच्छा है कि ब्रजधाम को छोड़ कहीं अन्यत्र न जाऊं। उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

जमुना-पुलिन कुंज गह्वर की कोकिल ह्वै द्रुम कूक मचाऊं।
पद पंकज प्रिय लाल मधुप ह्वै मधुर मधुरे गूंज सुनाऊँ।
कूकर ह्वै बन बीथिन डोलौं बचे सीथ रसिकन के खाऊँ।
ललितकिसोरी आस यही मम ब्रजरज तजि छिन अनत न जाऊँ॥[1]

कवि राधा कृष्ण-केलि को निज सुख समझता है। यही कारण है कि वह ब्रजधाम मे ही किसी प्रकार रहना चाहता है। विशेष बात तो यह है कि तत्सुखसखीभाव की परायणता अपने चरम सीमा पर पहुँच जाती है। क्योंकि कवि (साह कुंदनलाल) अपने को सखि ललितकिशोरी के रूप मे घोषित करता है।

ललितमाधुरी जी के हृदय मे यह चोर घुस गया है। वे उसे पकड़ना चाहते हैं लेकिन हिय का चोर क्या कभी पकड़ा गया है—

मोहन चोर पकरि कैसे पाऊँ।
देखत हौं दृग भरि भरि सजनी, परसन को रहि रहि ललचाऊं।
दुरयौ निकुञ्ज लता बन बीथिनि निपट निकट मैं तोहि बताऊँ।
ललित माधुरी हौं मं जो संग चितचोरे हीं आनि मिलाऊँ॥[2]

कवि यहां तत्सुखसखी और स्वसुखसखीभाव के बीच का रास्ता पकड़ना चाहता है। वह स्पर्श सुख की भी कामना करता है और उपास्य युगल की क्रीडा में अपने को लीन भी कर देना चाहता है। भक्ति ललित माधुरी भी उपास्य युगल के चरणों में अपने को समर्पित कर सखीत्व द्योतक नाम अंगीकृत कर लिया। इस प्रकार निजत्व को परत्व पर समर्पित कर देने की यह कला अभिनव।

भारतेन्दुकालीन अन्य कवियों की वाणी द्वारा इस भाव की अभिव्यक्ति नहीं हुई है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दुयुगीन कविता पर हरिदासी सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की विशेष छाया नहीं पड़ी है। भारतेन्दु जी पर इस सम्प्रदाय की विशेष छाप है। तत्सुख सखी और स्वसुख सखी भाव की उपासना का केवल ललितकिशोरी जी और ललितमाधुरी जी पर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

बहुदेवोपासना

भारतेन्दु युग की कविता रीति परम्परा का अनुकरण करने मे सिद्धहस्त है। तत्कालीन कवियों की कल्पना में रीतिपरक माधुर्य का समावेश रीतिकालीन कविता का सफल प्रयास था। अतः माधुर्य भक्ति के स्फीत प्रवाह पयोधि में कवि का मन घुल मिल गया था। वहाँ राधा और राधारमन ही कविता के विषय थे, राम और शिव तो गौण थे। सीता तद्युगीन काव्यकानन से निर्वासित कर दी गई थी।

---

१ वियोगी हरि (सम्पादक) ब्रजमाधुरी सार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पद १३, पृ० २७१।
२ वही, पृ० २७६।

मधुरा भक्ति का भव्य भवन देदीप्यमान था। आलोच्यकाल की कविता में राधा और कृष्ण को इसी से प्रश्रय मिला। राम और जानकी के सम्बन्ध में यद्यपि माधुर्य की कमी नहीं है फिर भी इस युग के काव्य के उपादान न बन सके। आचार्य शिवपूजन सहाय ने लिखा है कि कृष्णभक्ति साहित्य में मधुर उपासना काफी है। अब इस ग्रंथ (रामभक्त साहित्य में मधुर उपासना) से यह ज्ञात हो जायगा कि रामभक्ति साहित्य में भी मधुर उपासनाना का टोटा नहीं है।[1] अत राम काव्य में माधुर्य का टोटा न रहने पर भी रामका य उपेक्षित रहा। इसी तरह अन्य देवी देवताओं के बारे भी यह काल चुप्पी साधे रहा। यदि इस तरह तद्‌युगीन कवियों का ध्यान गया भी है तो विशेषकर शिव, दुर्गा और सरस्वती की तरफ, जहाँ माधुर्य की गुंजाइश कम है। कवि कहीं कहीं ऐश्वर्यपरक भक्तिभाव से नतमस्तक है तो कहीं-कहीं दैन्य ही विह्वलता से पदों के प्रवाह में द्रवीभूत हो उठता है।

शिवभक्ति की बहुलता है। शिव की उपासना पर विशेष बल दिया गया है। भारतेन्दु जी भी शिव जी को भूले नहीं हैं। उन्होंने शिव जी के पदों की वन्दना करते हुए जो कहा है, वह उनके शिव भक्त हृदय का परिचायक है।

श्रीशिव-पद निज जानि गुरु बन्दत प्रेम प्रमान।
परम गुप्त निज प्रगट किय भक्तिपथ अभिधान॥[2]

भारतीय धार्मिक जगत् में शिवरात्रि की अनुपम महत्ता है। शिवभक्त नर नारी शिव की उपासना बहुविध करते हैं। शिवरात्रि के दिन भक्त लोग शिव भक्ति सम्बन्धी अनेक भजन गाते हैं। भारतेन्दु जी वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने पर भी अन्य देवताओं से घृणा नहीं करते थे। अत शिवरात्रि का पद उनके कवि हृदय से अनायास ही निकल पड़ता है। यथा—

आजु शिव पूजहु हु वनमाली।
छोड़ि कुंजी बाहर ह्वै बैठे ए दोउ शोभाशाली॥
नहिं गंगा भंग चरम नहीं कटि नहिं विभूपति सिर राजै।
नाहिं चन्द मेरल कछु नागिन लटकत गिर पर छाजै॥
तुम बड़भागी भक्त लाल वनि सेवन बहु बिधि कीजै।
हरीचंद ऐसो भामिनि को काहें दमन दीज॥[3]

वैशाख महीने में अक्षय तृतीया के दिन शिव उपासना की विशेष महत्ता है। उस दिन जो शिव की पूजा करके शिव के निमित्त जल घट दान करता है उसे शिवपुर में स्थान उपलब्ध होता है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

शिवहि पूजि कै तीज दिन शिव हित दै घट-दान।
शिवपुर सो नर पावई भाषत शिव भगवान॥[4]

---

१ डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, भूमिका, बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना, पृ० ३।

२ ब्रजरत्नदास (सम्पादक) भारतेन्दु ग्रंथावली दूसरा खण्ड, उत्तरार्द्ध भक्तमाल, छं० २६, पृ० २२५।

३ ब्रजरत्नदास (सम्पादक) भारतेन्दु ग्रंथावली दूसरा खण्ड मुकुन्द छं० ७३, पृ० ४३०।

४ वही, वैशाख-माहात्म्य, छं० ३४, पृ० ६२।

दुर्गा

शिव के बाद इस युग मे दुर्गा का स्थान विशेष महत्व का है। दुर्गा त्रिभुवन की महारानी, अति नेहमयी और मुक्ति वरदात्री हैं। उनका प्रभाव अतुल है और वे अरिदल का नाश करने वाली हैं—

जय जय त्रिभुवन महरानी।
बिबुध वृन्द पूजित पद पकज नेहमयी जननी जग जानी।
पुरुष सिंह मानस अरूढ नित शूल प्रहार कुशल बल खानी।
सेवक रच्छिनि, अरि-दल भच्छिनि अतुल प्रभाव न जात बखानी।
निरजन पालन नाशत निरता सुख दुख बध मुक्ति वरदानी।
निशि दिन रहित प्रेम मदमाती चहति सदा, मैं की हानी॥[1]

ठाकुर जगमोहन सिंह जी को दुर्गा पर परम भरोसा है। अत वे दुर्गा जी से प्रार्थना करते हैं कि तुम्हारा ध्यान अहर्निश करता हू। तुम्हारे चरणो की सेवा बराबर करता हूँ। जीव यदि दुर्गा का सुमिरन करता है तो रिपु का नाश होता है। अत कवि इसी से दुर्गा की अनन्य सेवा मे रत है जिससे उसकी मनोकामना पूर्ण हो—

ध्यान तोरनिसि द्यौस चरन जलज सेवत सदा।
जिमि वासो मिलि हौस बीत रैन सुचैन सौं॥
याहि बाचि रिपुनास होहु जाहि सुमिरौं जिवहिं।
पुरवहु सब मम आस दुर्गा दुगति नाशिनी॥[2]

बालमुकुन्द गुप्त का दृष्टिकोण बहुत ही उच्च कोटि का है। उनका विचार है कि दुर्गा की शक्ति का वर्णन कोई नही कर सकता है। ससार मे उसकी लीला ही व्याप्त रही है, उसका ही बल चारो ओर प्रकाशमान है। उसके ही प्रभाव से रत्नाकर उमडता है, हुतामह दाह करता है, वायु बहती है और रवि प्रकाशमान होता है—

सब्ब भूतमय शक्ति स्वरूपिनि शक्ति तुम्हारी।
को बरनन कर सक तुम्हारी महिमा भारी॥
तब लीला सो व्यापि रह्यो है यह जग सारी।
तेरे बल रवि तपत बहत अति वायु भयकर।
कुपित हुतासन दाह करत उमडत रत्नाकर॥[3]

कवि माता दुर्गा की उपासना ऐश्वर्य भाव से करता है। उनकी शक्ति अगम्य है उनकी दसो भुजाएँ दसो दिशाओ म व्याप्त है। वह सकल के पालन के निमित ब्रह्माण्ड को हो थाम लिया है। वह सकट निवारण करने वाली है। उसकी कृपा का विस्तार बहुत है। सर्वत्र उसकी करुणा का ही स्रोत उमड रहा है—

———————

१ प्रतापनारायण मिश्र नवरात्र के पद, ब्राह्मण, खड ४, सख्या ४, पृ० १८५।
२ ठा० जगमोहन सिंह श्यामास्वप्न, सपादक डा० श्रीकृष्णलाल, पृ० १४६।
३ बालमुकुन्द गुप्त स्फुट कविता, भारतमित्र प्रेस, द्वितीय सस्करण, सं० १९७६, पृ० ४३।

दसो दिसा मे व्यापि रही दस भुजा तुम्हारी।
थाम्या है ब्रह्माण्ड सकल के पालन हारी ॥
सकट हरिनि वरदायिनि त्रैलोक्य विहारिनि।
दुर्गति नासिनि जगत जननि सब विपद निवारिनि ॥
फैल रही चहुँ और मातृ करुना इक तेरी।
दयामयी सब जीवन पर तव दया घनेरी ॥[1]

तब भक्त मा चरणा पर गिर जाता है और विकल हो कहता है कि हे मा ससार के जो प्राणी है वे सब तेर हैं और तू ऐसा वर दे जिसस वे दिन रात तेरे ही चरणा के सेवक बने रहें।

सुखदे ! सुमदे ! वरदे ! मा जो जन है तेरे।
बन रहैं निस वासर तव चरनन के चेरे ॥[2]

सरस्वती

सरस्वती विद्या की देवी हैं। ज्ञान की अन्त सलिला हैं। इनकी उपासना स विद्या की प्राप्ति होती है। प्रेमघन जी भारती देवी के रूप के चतुर चितेरे हैं। उन्होंने कहा है कि भारती के युगल पदो का वदना से सब कार्यों की पूर्णाहुति हो जाती है—

जयति भारती देवि कर बीणा पुस्तक साज।
जासु जुगल पद ध्यान सौं सिद्धि होत सब काज ॥[3]

ठाकुर जगमोहन सिंह दुर्गा से सरस्वती की महिमा का वणन मे टोटा नही रखते। उनका विशाल हृदय माँ सरस्वती का ऋणी है। उनका विश्वास है कि माँ सरस्वती की कृपा कोर से ही कविता की अथाह सरिता प्रवाहित होती है। सुमेर रज हो जाता है अनल शीतलता प्रदान करता हैं और पवन थिर हो जाता है। उनकी कृपा से कुछ भी कठोर नही। कठोर सहल हो जाता है। अत माता मैं करजोर प्रार्थना करता हूँ कि अविद्या का नाश कर ज्ञान दीप-दान दे जिससे तिमिर का नाश हो। कवि का एकमात्र सरस्वती पर ही भरोसा है।

कविता सरिता अथाह धारा सुद्द कबहुँ न रुकै।
मागै चाहती लाहु जननि दीजिए वर सुयस ॥
वर सुमेर रल होय शीतल अनलहु पवन थिर।
पै तुअ धार न जाय रुकै न कबहूँ देवि चिर ॥
यह न अहै कछु दूरि तुअ प्रताप सेवा सकल।
जो तुअ किरपा भूरि तौ न कठिन कछु तार बल ॥
यह विनवा करजोर, असरन सरनि निकेत सुख।
ह्वै प्रसन्न करि कोर दया शील रावरि सुरुख ॥
हरहु अविद्या दे विद्या विबुधान की।
नासहु तिमिर जुतासु ज्ञान दीप राखि मम ॥[4]

---

१ बालमुकुन्द गुप्त स्फुट कविता, पृ० ४८।
२ वही पृ० ४५।
३ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (सपादक) प्रेमघन सवस्व, लालित्य लहरी, पृ० ३३२।
४ ठाकुर जगमोहन सिंह देवयानी, भारतजीवन प्रेस, बनारस, पृ० १५।

श्रीधर पाठक जी की सरस्वती उपासना मे बाल हृदय का उद्गार बडा ही हृदयग्राही हुआ है। कवि करता तो है बाल विनय लेकिन सयाना का कान काटता सा दीख पडता है। उसकी अभिव्यजना शैली बडी ही कुशलप्रद है—

कोमल-हृदय-सदय सुचि-सीला।
रचि रही विविध विश्व मह लीला॥
हंसा रूढ़, हंस गति गामिनि।
त्रिभुवन जननि स्वयम्भू भामिनि॥
जयति मातु तव शक्ति अपारा।
आगम-जनम निगम-श्रुति-सारा॥
श्रीधर बाल विनय सुनि लीजै।
विमल बुद्धि विद्यावर दीजै॥

दूर की कौडी लाने का यह बाल प्रयास कितना अच्छा है इसे पाठक ही बता सकेंगे।

भगवती सरस्वती मनुष्य मे विद्या, कला, ज्ञान और प्रतिभा प्रकाश करती है। वही समस्त विद्याओ की अधिष्ठात्री है। वे सत्वरूपा, ससार की ज्योति, ब्रह्मस्वरूपा और आनन्दरूपा है। वे अनादि शक्ति भगवान् ब्रह्मा के कार्य की सहयोगिनी है। उन्ही की कृपा से प्राणी काव्य के लिये ज्ञान प्राप्त करता है। वे कमल-दल-लोचनि और कुटिल-कुटेव, कुमति मल-मोचनि है। प्रत्यक कवि उनके पावन पदों का स्मरण करके ही अपना काव्यकर्म प्रारम्भ करता था, यह यहाँ की सनातन परम्परा है। श्रीधर पाठक भी सर्वप्रथम सरस्वती की प्रार्थना करते हैं—

जय सारद जय गिरा भवानी।
जय जग-जोति जयति जग रानी॥
जय जय विसद् ब्रह्म-बर-बानी।
ब्रह्म स्वरूपिनि बेद बखानी॥
जय अज्ञान निसा-तम-नासिनि।
जय जय ज्ञान दिनेश प्रकासिनि॥
अमल-प्रफुल्ल-कमल दल-लोचनि।
कुटिल-कुटेव-कुमति-मल-मोचनि॥
अक्ष-सूत्र दक्षिण कर धारै।
बाम-बेद-वर बीन समारै॥
रुचिर-पद्म आसन आसीना।
रुचिर-साम-पद-गान प्रवीना॥
मुक्ताहार कठ सुठ राजै।
सिर सुहाग सिन्दूर बिराजै॥[1]

भगवती लक्ष्मी

श्रीश्यामसुन्दर सदा से कौतुकी है। जो लोक मे नित्य रासमण्डल मे उन्होंने अपनी शक्ति को दो रूपों में प्रकट कर दिया। समान वेश, समान रूप समान सौन्दर्य। वामांग से व्यक्त चतुर्भुज रमा और

१ श्रीधर पाठक मनोविनोद, पृ० १८१।

द्विभुज से श्रीराधा। दोनों की तुष्टि के लिये स्वय भी दो रूपों में व्यक्त हो गये। चतुर्भुज श्रीनारायण रूप से रमा वैकुण्ठ में आ विराजे रमा के साथ और द्विभुज श्यामसुन्दर रूप तो नित्य गोलोक बिहारी है हीं।[1]

बालमुकुन्द गुप्त उनकी उपासना में कहते हैं— सिन्धु सुता लक्ष्मी अन्न धन बरसाने वाली हैं। वे हरिवल्लभा हैं और दारिद्र विनाश करने वाली है। वे त्रिभुवन को आसजक और पालक दोनों हैं, ब्रह्मादि देवता भी उनका ध्यान करते हैं। वे आनन्द रूपा हैं। अत हे माँ, आज हमारी नाव समुद्र में डूब रही है, उसे उबारो, हमारी लाज को बचाओ, कवि के शब्दों में—

जय जय छीर समुद्र सुते अन्न धन बरसावनि।
जय जय हरिवल्लभे जयति दारिद्र नसावनि॥
जय त्रिभुवन जननी जय त्रिभुवन पालन करनी।
ब्रह्मादिक तव ध्यान धर जय आनन्द भरनी॥
बूड़त दारिद्र समुद्र मह,
नाव हमारी आज मा।
राखहु राखहु जगपति प्रिये
हाथ तुम्हारेहि लाज मा॥[2]

लक्ष्मी के बिना जप-तप-तीरथ होम और यज्ञ किसी काम के नहीं हैं। स्वार्थ और परमार्थ दोनों लक्ष्मी के वश की ही चीजें हैं। घर क्या बाहर भी पितृ-कुल और देव कुल का कार्य बिना लक्ष्मी के सम्पन्न नहीं होता। एक मात्र लक्ष्मी ही संसार सुखसार है। यथा—

जप तप तीरथ होम यज्ञ बिन कुछु नाही
स्वारथ परमारथ सबरो तेरे ही माही
चले न घर को काज न पितृन अरु देवन को
जनम लेत तव कृपा बिना नर दुख सेवन को
जय जयति अखिल ब्रह्माण्ड के
जीय की आधार जो।
जय जयति लच्छमी जगती
एकमात्र सुख पार जो॥[3]

इस तरह कवि की लक्ष्मी के प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त हुई है।

गणपति

गणपति नित्य देवता हैं लेकिन विभिन्न समयों में विभिन्न परिस्थितिवश विभिन्न प्रकार से उनकी लीला का प्राकट्य होता है। ते देवता माता पिता दोनों के प्रिय हैं। ये गजवदन हैं। गणनायक हैं।

पंचदेवोपासना में भगवान गणपति मुख्य है। ये विघ्नों के नाशक हैं, मंगलदाता हैं। शंकर के साथ गौरी इन्हें गोद लेकर प्रफुल्लित होती हैं। प्रेमघन ने ठीक ही लिखा है—

---

१ कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक, (भगवान के सगुण स्वरूप और अवतार), पृ० ७६४।
२ बालमुकुन्द गुप्त स्फुट कविता, देवी स्तुति छ० २ पृ० ५१।
३ बालमुकुन्द गुप्त स्फुट कविता, लक्ष्मीपूजा, छ० ६, पृ० ४८।

जै गौरी सुत गज बदन गणनायक उर ध्यान।
एक रदन अघ करन शुभ मंगल करन मनाय॥
जय गणेश मंगल करन हरन सकल दुख द्वन्द।
सिद्धि सहित नित प्रेमघन पर बरसहु सानन्द॥
मंगल मूरति गजानन गौरी लीने गोद।
शंकर संग राजै सदा सह वर-बधू बिनोद॥[1]

श्रीधर पाठक गणपति की वन्दना करते हुए क्या भाव व्यक्त करते हैं, वह उल्लेखनीय है—

जयति गजानन गिरिजानन्द
गणनायक करुणा-सुख कंद।
तुन्दिल-काय, भाल शिशु चंद
करमोदक उर-मोद-अमंद।
चंचल शुंडि, प्रबल भुज-दण्ड
दुष्ट-दलन-हुङ्कार प्रचंड।
विघ्न विनाशन-नाम-सुधन्य
विज्ञ-वरेण्य स्वभक्त-शरण्य।
काटहु-कुमति-कलेश-कुफंद फेर
देउ सुमति विद्या आनंद।

गंगा

भारतेन्दु हरिश्चन्द जी गंगा के अनन्य भक्त थे। गंगा तट पर बसी काशी नगरी के वासी होने के कारण यह गंगा प्रेम उनके हृदय को विरासत की देन थी। वे गंगा को पतितन के उद्धार का आधार मानते थे। गंगा ही कलिकाल सागर से पार उतारने वाली है। गंगा की महिमा अपरम्पार है। उनके जल के दरस-परस जलपान से हजारों लोग तर जाते हैं। कवि की अगाध श्रद्धा निम्नोक्त पद में फूट पड़ी है—

गंगा पतितन को आधार।
यह कलि-काल कठिन सागर सौं तुमहिं लगावत पार॥
दरस-परस जल पान किये तें तारे लोक हजार।
हरि-चरनारविंद-मकरंदी सोहत सुंदर धार॥
अवगाहत नर-देव सिद्ध मुनि कर अस्तुति बहु बार।
'हरीचंद' जन-तारनि देवी गावत निगम प्रकार।'[2]

कवि आगे कहता है—

जै जै विष्णु-पदी श्री गंगे।
पतित उधारनि सब जग-तारनि नव उज्जल अंगे।
शिव सिर मालति माल सरिस बर तरलतर तरंगे।
'हरीचंद' जन उधरनि देवा पाप मोग भंगे॥[3]

---

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (संपादक) प्रेमघन सर्वस्व, लालित्य लहरी, छं० ३४,३८,३६, पृ० ३३२।
२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, कृष्णचरित्र, छं० १६, पृ० ६०६।
३ वही, पृ० ६१६।

कवि गगा स्तुति मे गगा की सच्ची बडाई करता है—

गगा तुमरी साच बडाई।
एक सगर-सुत हित जग आई तारयौ नर समुदाई ॥
इक चातक निज तृपा बुझावत जाचत घन अकुलाई।
सो सरवर नद नदी बारिनिधि पूरत सब झर लाई ॥
बाम लेत जल पिअत एक तुम तारत कुल अकुलाई।
'हरीचन्द' याही तं तो सिव राखी सीस चढाई ॥[1]

काली

देश की धार्मिक परिस्थिति मे विभिन्न प्रकार के मत फैले हुए थे। प्रतापनारायण मिश्र इन मतवादो को मिटाना चाहते थे। इन मतवादो के चलते देश की शक्ति क्षीण होती जा रही थी। केन्द्रीय शक्ति के अभाव मे देश का बडा विघटन हो रहा था। अत वे काली और कृष्ण दोना की अनेक स्तुतियाँ की। उदाहरणार्थ—

जय काली अद्‌भुत गति वारी।
लीला हित वृन्दाबन विहरत ह्वै नटवर वपु रासबिहारी।
एकहि ज्योति लसति द्व तनु धरि नदनदन वृषभानु दुलारी।
को समझै यह भेद अकथ अति आपहि पुरुष आपहि नारी।
सोई कटि जो रही वसन बिन यहि छिन लसति पीत-पटधारी।
सोई लटै रही जे लटकत बेनी बनि छाजहि छवि भारी।[2]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन का साराश यह है कि भारतेन्दुयुगीन काव्य मात्र विशेषकर राधा कृष्ण केलि से प्रभावित रहा। लेकिन तद्‌युगीन कविता मे दुगा सरस्वती लक्ष्मी आदि की उपासना पर गौण रूप से बल दिया गया है। युग नियामक भारतेन्दुजी भी यत्र तत्र देवी देवताओ की उपासना करते हैं जबकि भारतेन्दु जी के तत्कालीन समाज मे राधा-कृष्ण की भक्ति के अतिरिक्त और किसी देवी देवता की आराधना की व्यवस्था नहीं थी।

---

१ वही, पृ० ६१६।
२ नारायणप्रसाद अरोडा (सपा०) प्रताप लहरी, १९४९ ई०, पृ० १८१ ८२।

अध्याय ५

भारतेन्दुयुगीन प्रमुख भक्तकवि एव उनकी भक्तिभावना

[प्रस्तुत अध्याय म भारतेन्दुयुगीन प्रमुख भक्तकवियो एव उनकी भक्ति-भावना का सम्यक् अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।]

सुमेरसिह 'साहबजादे'

जीवन रेखा

सुमेरसिह साहबजादे का जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ जिलान्तगत 'निजामाबाद' नामक कस्बे में भाद्र शुक्ल ३, स० १६०४ वि० को हुआ था।[१] ये सिक्ख सम्प्रदाय के तीसरे गुरु- वशज थे। तीसरे गुरु का नाम अमरदास था। अत वश परम्परा के अनुसार य साहबजादे कहे जाते थे। आपके पिता का नाम बाबा साधुसिह था, जो बडे भजनानुरागी, दीनदुखियो के सहायक, रमतायोगी, ईश्वरीय सत्ता में दृढ विश्वासी और परम सिद्ध पुरुष थे।'[२] खालसा-पथी लोग उनको गुरु गोविन्द सिह का मानते थे। वे ऐसे आनन्दी जीव थे कि बालको के सग बाल युवको मे युवक और वृद्धो म वृद्ध बन जाते थे।[३]

सात वर्ष की अवस्था म आपका अक्षरारम्भ हुआ। भाई गरीब सिह जी इनके गुरु थे। आपके पिता जी स्वय आपके दीक्षा गुरु थे। पजाब से पाच वर्ष की अवस्था मे पटना आये और यही रह गये। यही आपने गुरुग्रन्थ साहब, न्याय, व्याकरण और पिंगल आदि की शिक्षा प्राप्त की।

आपकी बुद्धि बडी प्रखर थी। अल्प वय मे ही बिहार के प्रसिद्ध कवियो म आपकी गणना होने लगी। आप काशी कवि-समाज और काशी-कवि-मण्डल के सदस्य थे। पटना मे आपने ही सन् १८९७ ई० मे कविसमाज की स्थापना की। भारतेन्दु जी आपके मित्र थे।[४] कविवर हरिऔध जी,[५] मारकण्डेय[६] जी और रत्नाकर[७] जी ने आपसे काव्य की शिक्षा प्राप्त की। इतनी विद्वता और विख्यात कवि के होने पर भी भी भारतेन्दु मण्डल मे आपका परिचय नही मिलता है। न जाने क्या ब्रजरत्नदास ने भी अपने ग्रन्थ मे इनका उल्लेख नही किया। अन्य इतिहासकार भी बाबा सुमेर सिंह साहबजादे

---

१ शिवनन्दन सहाय सिक्ख गुरुओ की जीवनी, साहित्य, खण्ड ६, सख्या ३, जून, १९१४, पृ० २७।

२ शिवपूजन सहाय (सपादक) हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० २८६।

३ वही, पृ० २८६।

४ अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ५२२।

५ किशोरीलाल गुप्त (अनुवादक) हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम सस्करण, १९५७, पृ० ३०५।

६ शिवनन्दन सहाय सिक्ख गुरुओ की जीवनी, साहित्य पत्रिका, खड ६, सख्या ३, जून १९१४ ई०, पृ० २७।

७ वही, पृ० २७।

के बारे में मौन हैं ही। आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों में केवल अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' को ही इनके बारे में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त है। उन्होंने अपने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' नामक ग्रन्थ में साहबजादे के विषय में जो विचार उद्धृत किया है, वह द्रष्टव्य है—

बाबा सुमेरसिंह सिक्ख गुरु और पटने के महन्थ थे। जिला आजमगढ़ के निजामाबाद कस्बे में उनका निवास था। वे सिक्खों के तीसरे गुरु अमरदास के वंशज थे। इसलिये साहबजादे कहे जाते थे। जाति के भल्ले खत्री थे। परमात्मा ने उनको बड़ा सुंदर रूप दिया था। जैसा सुंदर स्वरूप था, वैसा ही सुंदर उनका हृदय भी था। हिन्दी भाषा के बड़े प्रेमी थे। इस भाषा का ज्ञान भी उन्हें अच्छा था। वे संस्कृत भी जानते थे। बाबू हरिश्चन्द्र से उनकी बड़ी मैत्री थी। बनारस के महल्ले, रेशमकटरे की बड़ी संगत में आ कर वे प्रायः रहते थे और यहीं दोनों का बड़ा समागम होता था। बाबा सुमेरसिंह ब्रजभाषा की बड़ी सरल कविता करते थे। उन्होंने इस भाषा में एक विशाल प्रबन्धकाव्य लिखा था, जो लगभग नष्ट हो चुका है, केवल उसका दशम् मण्डल अब तक यत्र तत्र पाया जाता है। इस ग्रंथ का नाम प्रेम प्रकाश था। बड़ी ललित भाषा में लिखा थी। दशम् मण्डल में गुरु गोविंदसिंह का चरित्र था। गुरुमुखी में वह मुद्रित हुआ और वहां अब भी प्राप्त होता है। शेष नौ मण्डल कराल काल के उदर में समा गये। बहुत उद्योग करने पर भी न तो वे प्राप्त हो सके, न उनका पता चला। उन्होंने 'वर्णाभरण' नामक एक अलंकार ग्रंथ भी लिखा था। अब वह भी अप्राप्य है। गुरु गोविन्द सिंह ने फारसी में जफरनामा लिखा था, उसका अनुवाद भी उन्होंने 'विजयपत्र' के नाम से किया था। बाबा सुमेरसिंह ने आजीवन कविता देवी की ही आराधना की। उन्होंने न तो गद्य लिखने की चेष्टा की और न गद्यग्रंथ रचे। उनका जीवन काव्यमय था और वे कविता पाठ करने और कराने में आनन्द लाभ करते थे। अपनी कविता के विषय में उनकी बड़ी बड़ी आशाएँ थीं। वे उसका बहुत प्रचार चाहते थे और कहा करते थे कि हिन्दू सिक्खों का भेद जाति का संसार इसी के द्वारा होगा'।'

आप बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। आप गानविद्या में भी निपुण थे जिससे कविता पाठ करते समय आप अपने पाठकों को अपनी तरफ आकर्षित कर लेते थे। 'कविता-पाठ आप बड़े आकर्षक और प्रभावशाली ढंग से करते थे।'[2] इस प्रकार आप ब्रजभाषा के प्रमुख कवि थे। रीतिकालीन परम्परा का निर्वाह आपकी कविताओं में खूब हुआ। आपने हिंदी साहित्य के भंडार में बीसों पुस्तकों को दिया, लेकिन वे गुरुमुखी लिपि में थीं। कारण है कि आज हिन्दी भाषी जनता उनसे अपरिचित है। आपके ग्रंथों में हिंदू धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाया गया है उनमें हिंदू भावना स्पष्ट परिलक्षित होती है।[3]

भक्तिभावना

आप सिक्ख मतावलम्बी थे। सिक्ख धर्म को हिंदू धर्म का ही अंग मानते। रामचरितमानस के अनन्यभक्त थे। पटना के हरमन्दिर का वातावरण आपको एक सिद्ध भक्तकवि के रूप में माँ भारती के भव्यभवन के पुजारी के रूप में प्रस्तुत किया। आप जब कभी भी रामचरिमानस का अर्थ कहने लगते थे तब आँखों से अविरल आँसुओं का प्रवाह श्रोताओं को चकित कर देता था। इनका अन्त भक्ति

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, दरभंगा, पृ० ५२२-२४।

२ शिवनन्द सहाय सिक्ख गुरुओं की जीवनी, साहित्य-पत्रिका, ख० ६ स० ३, जून १९१४, पृ० २७।

३ शिवपूजन सहाय (सम्पादक) हिन्दी साहित्य और बिहार भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, पृ० २८८।

की स्रोतस्विनी से आप्लावित था। तभी तो आप कबीर के साहब राम को मौन देखकर उपालम्भ देते हैं। प्रस्तुत उदाहरण अपने व्यापक अर्थ के लिये हिन्दी साहित्य का शृंगार है—

रसना कसाई कौन सुकृत कमाई नाथ
मालन के मा के सुफेरे गनिका ने कौन।
कौन तप साधना सो सबरी ने तुष्ट कियो
सोचाचार कुबरी न कियो कौन सुख कौन।
क्या हरि सुमर जाय जप्यो कौन अजामेल
गज को उबारयो बार बार कवि भाख्यो तौन।
एते तुम तारे सुना साहब हमारे राम
मेरी बार बिरद बिचारे कौ गहि मौन ॥[1]

यहाँ कवि का दृष्टिकोण कितना उदार है। बाबा थे तो सिक्ख सम्प्रदाय के लेकिन रचना को देखकर पाठक को सहज ही भ्रम हो सकता है कि वे रामभक्त वैष्णव कवि थे। राम के प्रति उनकी इस अटूट श्रद्धा का जितना भी वर्णन किया जाय, वह थोड़ा है। भक्त भगवान् पर अपना कितना अधिकार रखता है, यह इस पद से स्पष्ट लक्षित होता है।

बाबा की अधिकतर रचनाएँ शृंगाररस से ओतप्रोत हैं। शृंगार माधुरी में कवि का भक्त हृदय उमड पडता है। वह अपने कृष्ण की आराधना में परकीया का भाव दर्शाता है। इस तरह उसे लोकवेद की मर्यादा को त्यागना पडता है और पराभक्ति में यही आवश्यक है। लोकवेद की मर्यादा का त्याग पराभक्ति की आवश्यक कसौटी है।[2] अतः कवि सुमेरसिंह की भावना में यही भाव परलक्षित होता है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

जिहि ते तजि दीन कालिन्दी को कूल और भूलहूँ आई न जाय कै री।
कुलकानि का आनि हूँ एती हुती सो भई दुखदानि बनाय कै री।
अब कौन सा सोच रह्यो है 'सुमेर हरी' जो निसंक बनाय कै री।
जा कलंक लग्यो मोहि धाय कै री, तौ सुअकहु लागि हौं धाय कै री[3]॥

यहाँ कवि का परकीया प्रेम अनायास ही लोक मर्यादा का त्याग करने को प्रस्तुत है। सर्वप्रथम तो कालिंदी कूल पर मन का बस जाना अवश्यम्भावी प्रतीत होता है। लेकिन ज्योंही कुल मर्यादा का ख्याल आता है, प्रेम के रास्ते में एक व्यवधान उपस्थित हो जाता है। नायिका अपने प्रण से अलग हो जाती है। पर इतने पर भी उसे कलंक लगता ही है। अतः वह अपने कृष्ण-कन्हैया के अंक में निःशंक भाव से लिपट जाना चाहती है। कवि का परकीया माधुर्य चरम सीमा पर है।

भक्त भगवान् के लिये लोक वेद का त्याग कर देता है। यदि वह भगवान के प्रेम में लोकवेद की परवाह करता है तो भक्ति सार्थक कहाँ। भक्ति तो तब सार्थक है जब भक्त और भगवान् के बीच लोक और वेद की खाई को पाट दिया जाय। प्रेम की इसी एकान्तता के कारण परकीया का स्थान भक्तों के बीच श्रेष्ठ है। अपने गोलोक विहारी के रूप सुधा रस पान के लिये कवि के हृदय में अभिलाषा जागृत होती है। वह गुरुजनों द्वारा मिलनेवाली निन्दा ही नहीं बल्कि प्रचंड दंड भी चुपचाप सह जाने को तैयार है। गाँव के लोग भले ही बदनाम करें, लेकिन, ब्रजराज के लिये लाज की आज कोई परवाह नहीं। कवि का परकीया प्रेम उसके भक्त हृदय का परिचायक है—

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिन्दीभाषा और साहित्य का विकास पृ० ५२३।
२ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ३५७।
३ वही, पृ० ३५७।

गुरुलोग करेंगे चवाव घनो, तिनकी सुनि कै नहिं माखिहौं मैं।
करिहैं जु पै दह प्रचंड तुपै, 'सुमेरस हरी' भाखिहौं मैं।
बदनाम जो गाव करे सिगरो, तऊ रूप सुधा रस चाखिहौं मैं।
ब्रजराज जो आज मिलै सजनी, इहि लाज सो काज न राखिहौं मैं॥[१]

कृष्ण के प्रेम में कुल-लाज का ध्यान न करने वाली को उसकी सखी सीख देती है कि वह कृष्ण जालिम है। तुम उस 'जालिम कान्ह' के प्रेम में बावला यौवनोन्माद में मेरी बात नहीं मानती हो, लेकिन तुम्हें पश्चाताप करना पड़ेगा। अभी तो तुम्हें कुछ भी नहीं सूझता, कालान्तर में मेरी बात याद करके पछताओगी—

कुल लाज गवाय कै हाय, बनाय रयो पाय, व्यथा को चितारहुगी।
वह नीकी कहे तो सुमेर हरी' तब तो यह नानि निकारहुगी॥
मेरो तेरो मिटै मिलै तस संगत ईस।
विहरहुँ हु उनमत धारि ब्रजरज निजसीस॥

इस तरह कवि में राम एवं कृष्ण दोनों के प्रति अटूट श्रद्धा है। राम के प्रति उसकी वैष्णव भावना उपालम्भ का प्रयोग करती है तो कृष्ण को शृंगार सम्राट मानकर प्रणय निवेदन करती है। कवि मीरा की भांति अपना प्रमादगार प्रकट कर सका सिद्ध होता है। उसकी भक्ति में प्रेमाकुलता है किन्तु प्राचीनता में नवीनता का जो आग्रह है वह एक अलग लकीर ही खींच देता है। कवि की मौलिक भावनाओं में भक्ति की सरिता प्रवाहित होती है। उसका समस्त जीवन भगवान् के रूप का चितेरा है। वह अपने भगवान् के रूप सुधा रस पान के लिए कबीर की विरहिणी की भांति उन्मत्त हो जाता है और कभी मीरा की प्रेम साधना में पागल दीख पड़ता है।

अब तो इहि जोबन जोग में जालिमशाह के साथ सिधारहुगी।
दिन बातें कछूक हमारी भटू, ये हमारिय बात बिचारहुगी॥[२]

कवि ने बिहारी के दोहों पर कुंडलियाँ लगाई हैं। यहाँ भी उसकी भक्ति का प्रवाह अबाध गति से प्रवहमान है। वह दोहों के घट से भटपट उलट रस छलका देना चाहता है—

मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोय।
जा तन की झाइं परे स्याम हरित दुति होय॥

यह बिहारीलाल का प्रसिद्ध दोहा है, इस पर निम्बार्क की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है। बाबा सुमेर सिंह साहबजादे ने इसे या प्रकट किया है—

स्याम हरित दुति होय, होय सब कारज पूरो।
पुरुषारथ सहि स्वारथ चारि पदारथ रूरो॥
सतगुरु सरन अनन्य छूटि भय भ्रम की फेरी।
मनमोहनमित सुमरेस हरी गति मति मे मेरी॥

बिहारीलाल अपने कृष्ण के प्रति भक्ति प्रकट करते हुए कहते हैं कि—

सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उरमाल।
एहि बानिक मो मन बसहु सदा बिहारीलाल॥

---

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ५२३।
२ नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ६ अंक ३ कार्तिक सं० १९८५ वि०, पृ० ३४१।

बाबा अपने कृष्ण को प्रियतम मानकर उनके चरणो की चेरी बन जाना चाहते हैं। साथ ही उनकी कामना है कि तुम्हे तजकर कहाँ जाऊँ। कवि का द य प्रबल हो उठा है—

सदा बिहारीलाल करहु चरनन को चेरो।
तुहि तजि अनत न जाइ कतहुँ प्रियतम मन मेरो॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

जीवन-रेखा

वैश्य-अग्रकुल मे प्रगट बालकृष्ण कुलपाल।
ता सुत गिरिधर चरन रत, वर गिरधारीलाल॥
अमीचन्द तिनके तनय फतेचन्द ता नन्द।
हरखचन्द जिनके भए निज कुल सागर चन्द॥
श्री गिरिधर गुरु सेइ कै घर सेवा पधराइ।
तारे निज कुल जीव सब हरि पद भक्ति दृढ़ाइ॥
तिनके सुत गोपाल ससि प्रगटित गिरिधरदास।
कठिन करम-गति मेटि जिन कीनी भक्ति प्रकास॥
मेटि देव देवी सकल छोडि कठिन कुल रीति।
थाप्यो गृह मे प्रेम जिन प्रगटि कृष्ण-पद प्रीति॥
पारबती की कूख सौं तिनसौ प्रगट अमद।
गोकुलचन्द्राग्रज भयो भक्त दास हरिचन्द॥[1]

हिंदी भाषा के उन्नायक श्रीभारतेंदु बाबू एक बडे प्रतिष्ठित घराने के कुलरत्न थे। उनका जन्म काशी के चौखम्भा मुहल्ले मे भाद्रपद शुक्ल ५, स० १९०७ वि० चन्द्रवार (९ सितम्बर १८५० ई०) को हुआ था।[2] इनके पिता का नाम गोपालचन्द्र था। ये गिरिधरदास नाम से जगत्प्रसिद्ध कवि थे। माता का नाम पार्वती देवी था। यह भी एक सम्भ्रान्त कुल की विदुषी महिला थी। मातृकुल भी विद्याव्यसनी था। इस प्रकार भारतेंदु को पितृ एव मातृ दोनो पक्षो से विद्या का अश मिला।[3] भारतेंदु जी अल्पायु मे ही मातृ एव पितृ विहीन हो गये। मातृ एव पितृ दोनो पक्षो से प्यार का न मिलना सतान की प्रकृति मे एक अजीब परिवर्तन ला देता है। कृष्णकिशोर मिश्र ने लिखा है कि 'प्राय ऐसा देखा जाता है कि जिन अल्पायु बच्चो के माता पिता कम ही आयु मे स्वर्गवासी हो जाते हैं वे कुशाग्रबुद्धि निकलते है।'[4] भारतेंदु बाबू की माता का देहान्त ५ वर्ष की उम्र मे और पिता का देहान्त नौ वर्ष की अवस्था मे हुआ। इस प्रकार इन्हे माता पिता दोनो से लाड-प्यार न मिल सका। अत आपकी प्रकृति मे गम्भीरता का समावेश बचपन से ही हो गया। बाबू गोपालचन्द्र काशी नगरी के एक सम्भ्रान्त

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेंदु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड, उत्तरार्द्ध भक्तमाल छ० ४८-५३, पृ० २२७।

२ नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५५, स० १, पृ० २।

३ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेंदु और उनके अन्य सहयोगी, वाराणसी पृ० १।

४ कृष्णकिशोर मिश्र भारतेंदु काव्यान्श, पीयूष प्रकाशन, कानपुर, प्रथम सस्करण, १९६३ ई०, पृ० १९।

व्यक्ति थे। उनकी विद्यानुरागिता अत्यन्त प्रवल थी। इनका दरबार कवियों का दरबार था। यहाँ कवियों को उचित सम्मान मिलता था। उनके कवि दरबार के प० ईश्वरीदत्त, सरदार कवि, दीन दयाल गिरि, कन्हैयालाल, प० लक्ष्मीशंकर व्यास, बाबू कल्याणदास, माधाराम जी गौड, गुलाबराम नागर तथा बालकृष्ण टेकमाली आदि कवि और विद्वान् सभासद् थे।[1] भारतेंदु बाबू इसी अखाड़े का का रोज दर्शन करते थे। अत इनकी साहित्यिक अभिरुचि का यह दरबार मूल कारण बना। बीज और उवरापन दोनो एक ही जगह प्राप्त हो गया था। बस क्या था? भारतेन्दु बाबू ने मौखिक रूप से अक्षरारम्भ किया।

ले ब्योडा ठाढ भए श्रीअनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सैन को हतन लगे भगवान्॥[२]

जिस बच्चे का अक्षरारम्भ इस दोहे से होता हो उसके भविष्य के बारे म क्या लिखा जा सकता है। गिरिधरदास जी ने कहा—तू मेरा नाम बढ़ायगा।'[३]

प्रसग था, गोपालचन्द्र जी बलराम कथामृत की रचना कर रहे थ। वही भारतेंदु जी बैठे थे। पिता की कलम चल रही थी। स्वर, स्वरचना के साथ निकल रह थ। बालक वही मौन सुन रहा था। बाल सुलभ चपलता ने जोर मार कर कहला दिया। पिता जी आज्ञा हो तो मैं भी कविता बनाऊँ! और सुना ही तो दिया।

एक दूसरा प्रसग है। कवि दरबार लगा था। कृष्ण कथामृत के एक सोरठे की व्याख्या हो रही थी कि भारतेंदु जी वहाँ आ गए और व्याख्या सुनते हुए एकाएक बोल उठे, बाबू जी हम अर्थ बतलाते हैं। आप भगवान् का यश वर्णन करना चाहते हैं जिसको कछुए छुआ है—अर्थात् जान लिया है।[४] सोरठे की प्रथम पंक्ति यह है—

करत चहत जस चारु कछु कछुवा भगवान को।

यहाँ तक तो हुई 'तू मेरे नाम को बढ़ावेगा।' अब कुल बोरने का प्रसग भी आप सुन लें, क्योंकि दोनो का भारतेंदु के जीवन पर प्रभाव स्पष्ट पडा है। प्रसग इस प्रकार है—एक बार इनके पिता तर्पण कर रहे थे। भारतेंदु जी ने उनसे पूछा बाबूजी, पानी म पानी डालन स क्या लाभ? धार्मिक प्रवर बाबू गोपालचन्द्र न सिर ठोका और कहा—जान पडता है कि तू कुल बोरेगा।[५] इसस यह सिद्ध होता है *कि भारतेंदु जी बडे जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे।*

गिरिधरदास जी साधु प्रकृति के थ। उनकी दोनो भविष्यवाणियाँ अक्षरश सिद्ध हुई। नाम बढाने का आशीर्वाद और कुल बोरन का अभिशाप दोनो ही सिद्ध हुए। फलत भविष्यवाणियों के अनुसार आप एक तरफ हिंदी भाषा और साहित्य के उन्नायक हुए दूसरी तरफ पैतृक धन एव ऐश्वर्य सब कुछ नष्ट कर दिए।

भारतेंदु जी को शिक्षा सर्वप्रथम घर पर हुई। घर पर ह इन्हे हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी की शिक्षा मिली। पश्चात् ये क्वीन्स कालेज के वार्ड स स्कूल मे भर्ती हुए। एक तो स्वय य स्वच्छन्द प्रकृति के थे, दूसरे माता पिता के न रहने से उनकी स्वच्छन्दप्रियता और बढ गई। फलस्वरूप स्कूली

१ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेंदु और उनके अन्य सहयोगी पृ० १।
२ नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५५ स० १, पृ० ३।
३ कृष्णकिशोर मिश्र भारतेंदु का ग्रन्थ, कानपुर, १९६३ ई०, पृ० १८।
४ नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५५, स० १ पृ० ३।
५ वही, पृ० ४।

पढ़ाई बहुत ही जल्द खत्म हो गई। इनकी मेधाशक्ति तीव्र थी, जिससे जितनी भी परीक्षाएँ इन्होंने दीं सभी में सफलता मिली। हाँ, ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा थी जो कुछ पढ़ते झट याद हो जाता। बीस-बाइस भाषाओं के ज्ञाता थे। भाषा सीखने की कला उनकी अजीब थी। इसे उन्हीं के शब्दों मे सुनें—

'ग्यारह वर्ष की अवस्था मे हम जगन्नाथ जी गये थे। मार्ग में वर्द्धमान में विधवा विवाह नाटक बंग मे मोल लिया, सो अटकल से ही उसको पढ़ लिया।'[1]

जगदीश यात्रा का उनके जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा। वे लौटते ही देश के उद्धार के बारे में सोचने लगे। अतः नागरी के उद्धार एवं अंग्रेजी के प्रचार का उत्तम मार्ग समझा। बस वे समाचार पत्रों के प्रचलन के लिये प्रयत्नशील हुए। फिर तो कविवचनसुधा (भाद्रपद १९२६) हरिश्चन्द्र मेगजीन (१९३० वि०), बालाबोधिनी (१८७४ ई०) आदि पत्रिकाओं का सम्पादन शुरू किया। यहाँ उनका अपना निजी कर्त्तव्य था। इनके अतिरिक्त उन्होंने अपने मित्रों को भी पत्रों के प्रकाशनार्थ उत्साहित किया। फलस्वरूप आनन्दकादम्बिनी, नागरीनीरद हिंदी प्रदीप, ब्राह्मण, आर्यमित्र, काशी पत्रिका, आदि इनके जीवनकाल मे ही प्रकाश मे आईं। इस प्रकार हिन्दी समाचार पत्रों को जन्म देने का श्रेय भारतेन्दु जी को ही है।

भारतेन्दु जी शील, सौजन्य और औदार्य की प्रतिमूर्ति थे। उनका स्वभाव कोमल था। परन्तु खलकातरता से उनका कोमल हृदय बराबर द्रवीभूत रहता था। समाज सेवा के कार्य में इन्होंने अपने धन को पानी की तरह बहाया और परवाह तनिक भी नहीं की। ब्रजरत्नदास ने लिखा है कि इन्होंने वित्त से बढ़कर गुणियों, कलाविदों, विद्वानों तथा सुकवियों का आदर सत्कार किया। दीन-दुखियों के दुःख दूर किये और कितने ही लोगों की सहायता कर उन्हें व्यवसाय में लगा दिया। यह सब करते हुए भी इन्हें कभी अपनी दातव्यता, अमीरी कवित्वशक्ति आदि पर अहंकार नहीं हुआ।[2] पूरा परिचय इन्हीं द्वारा रचित एक पद से प्राप्त हो जाता है जो निम्नांकित है—

सेवक गुनी जन के चाकर चतुर के है
कविन के मीत चित हित गुन ग्यानी के।
सीधेन सों सीधे महा बांके हम बांकेन सौं
'हरीचंद' नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिवे की चाह काहु की न परवाह नेही
नेह के दिवाने सदा सूरत निवानी के।
सरवस रसिक के सुदास दास प्रेमिन के
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के॥[3]

भारतेन्दु जी का हृदय समाज सुधार की भावना से ओतप्रोत था। ये बाल विवाह के विरोधी थे। विधवा विवाह के पक्षपाती थे। स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। मांस मदिरा आदि का डटकर विरोध इन्होंने किया। सामाजिक कुरीतियों एवं अंध विश्वासों के प्रति आपका दृष्टिकोण सुधारवादी था। यही कारण था कि अपनी कन्या के विवाह में गाली गाना बन्द करा दी थी।[4] समाज-सुधार के ख्याल से ये पत्रिकाओं और विद्यालयों का खोलना अनिवार्य समझते थे।

---

१ नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५५, सं० १ पृ० ४।
२ नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५५, सं० १, पृ० ५।
३ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, भाग २, पृ०
४ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ५।

आप सत्य के पुजारी थे। यद्यपि इस सत्य ने आपको जी भर कर लूटा लेकिन आपका यह सिद्धान्त वाक्य—

चन्द टरै सूरज टरै टरै जगत व्यौहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द को टरै न सत्य विचार ॥[1]

कभी भी अपनी कसौटी से विचलित नहीं हुआ। आजीवन आप इस सत्य की रक्षा में हँसते रहे। आपकी विनोदप्रियता काशी में मशहूर थी।

भारतेन्दु जी का साहित्यिक जीवन केवल १८ वर्षों का है। इस अवधि में आप हिन्दी साहित्याकाश में पूर्ण चन्द्र बनकर आये। आपने गद्य-पद्य, नाटक, कथा, कहानी, पुरातत्व, आलोचना, निबन्ध आदि सभी साहित्यिक विधाओं को स्पर्श किया और उसे पारस बना डाला। डा० किशोरीलाल गुप्त ने लिखा है कि भारतेन्दु पारस थे। लोहा भी इन्हें छू लेता था, तो सोना हो जाता था।[2] इस अल्प साहित्यिक जीवन में आपने साहित्याकाश में जो जो सुमन खिलाये उतना दूसरा कोई सौ वर्ष जीने के बाद भी नहीं कर सकता।

भारतेन्दु बाबू सौन्दर्य के उपासक थे। सरिता सतरण में उनकी रुचि थी। प्रकृति सौन्दर्य, नारी सौन्दर्य, काव्य सौन्दर्य का चित्रण आपने बड़े मनोयोगपूर्वक किया है। सौन्दर्य की उपासना आप क्यों न करें। आप तो खुद ही सावलियाबिहारीलाल की भांति ही कद लम्बा, नाक सुडौल, आँखें छोटी, कान बड़े, ललाट भव्य, बाल घुंघराले और सूरत साँवली पाए थे। जो देखता मुग्ध हो जाता। शरीर की कान्ति के साथ ही अन्त की कान्ति के भी धनी थे। यही कारण है कि मल्लिका और माधवी आपके सम्पर्क से बराबर सुधापान करती रहीं।

भारतेन्दु की भक्तिभावना

भारतेन्दु जी परम वैष्णव भक्त थे। उन्होंने तीन वर्ष की अवस्था में ही गोपाल मन्दिर की अधिष्ठात्री श्रीश्यामा बेटी से वल्लभ मत की दीक्षा ली। इस प्रकार उन्होंने अष्टछाप के कवियों की भाँति ही अपने गुरु श्रीवल्लभ के प्रति श्रद्धा के सुमन पिरोये हैं।

जे जन अन्य आसरो तजि श्रीविट्ठलनाथहिं गावै।
ते बिनु श्रम थोरेहि साधन मैं भवसागर तरिजावैं ॥
जे निसदिन श्रीविट्ठल विट्ठल ही मुख भाखैं।
'हरीचन्द' तिनके पद की रज हम अपुने सिर राखैं ॥[3]

इस प्रकार भारतेन्दु जी जन्मजात भक्त थे। उनको गुरु ही नहीं बल्कि गुरु-खानदान के प्रति भी अटूट श्रद्धा थी। श्रीकृष्णकिशोर मिश्र ने लिखा है कि वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी वैष्णव भक्त श्रीभारतेन्दु जी की रुचि बाल्यावस्था से ही धर्म की ओर विशेष थी। आप तो धर्म के तत्त्व को भलीभाँति समझते थे। तथा आपकी नस नस में भगवान् श्रीकृष्ण का प्रेम समाया हुआ था।[4]

आपका हृदय भक्तिरस स्नात था। आपकी वाणी से भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित होती थी। आपके शब्दों में भक्ति सुधा का मधुर समन्वय था वाणी में भक्ति का मधुर विधान था और

१ ब्रजरत्नदास (सम्पादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, पहला खण्ड नागरी प्रचारिणी सभा काशी, स० २००७, पृ० २६६।

२ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ४३५।

३ ब्रजरत्नदास (सम्पा०) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, राग संग्रह छं० ३६, पृ० ४५०।

४ कृष्णकिशोर मिश्र भारतेन्दु काव्यान्श, पृ० ५८।

आपके क्रियाकलाप मे भक्ति का मधुर योगदान था। अत यही कारण है कि आपने भक्ति को भाव मात्र न मानकर उसे रस को सज्ञा दी है और उसे शान्तरस से भिन्न माना है। इस रस के अगो के विषय मे आपकी धारणा इस प्रकार है—'भक्ति कहिये इसको आप किसके अन्तगत करते हैं, क्योंकि इस रस का स्थायी भाल श्रद्धा है और इसके आलम्बन भक्त और इष्ट देवता हैं और उद्दीपन पुराणादि भक्तो का प्रसग तथा सत्सग ह्। जब जो इस शान्त के अन्तगत कीजियेगा ता शान्त का स्थायी वैराग्य है।'[1]

भारतेन्दु जी की धार्मिक प्रवृत्ति उदार थी। वे किसी भी धम को घृणा की दृष्टि से नहो देखते थे। धार्मिक उदारता सम्बन्धी उनकी रचनाएँ 'जैन कुतूहल म सकलित हैं। वे नदिया एक, घाट बहुतेरे की भाँति सभी धर्मों को ईश्वर के नजदीक पहुँचने का भिन्न भिन्न माग मानते थे। वे अपनी उदारता के कारण अहत,[2] ऋषभ[3] और पार्श्वनाथ[4] आदि जैन महाप्रभुओ को विष्णु का अवतार मानते थे।

सभी धर्मों का अपना अलग अलग विश्वास है। अपना अलग अलग मत है। उन्होंने अपने मत के अनुसार ईश्वर को देखा है। इस प्रकार ईश्वर के रूप म मत विशेष के कारण भिन्नता आ जाना अति आवश्यक है। भारतेन्दु जी इस भिन्नता म एक ही परमात्मा के रूप को देखते हैं। और इसीलिय वे अपने प्रिय को बहुरुपिया की सज्ञा से अभिहित करते हैं—

१ कविबचनसुधा जिल्द १, स० २५ २६ पृ० १४६
वेंकट शर्मा 'आधुनिक हिन्दी साहित्य मे समालोचना का विकास,

२ पियार दूजो को अरहत
पूजा जोग मानि कै जग मैं जाको पूज सत ॥
अपुनी रुचि सब गावत पावत कोउ नहि अत।
'हरीचद' परिनाम तुही है तासा नाम अनत ॥
ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड, जैनकुतूहल, छ० १, पृ० १३३।

३ जय जय जयति ऋषभ भगवान्।
जगत ऋषभ बुध ऋषभ धरम के ऋषभ पुरान प्रमान ॥
प्रगटित-करन धरम पथ धारत नानावेश सुजान।
'हरीचद' कोउ भेद न पायो कियो यथा रुचि गान ॥
ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, जैनकुतूहल, छ० २, पृ० १३३।

४ तुमहि तो पार्श्वनाथ हो प्यारे।
तलपन लागे प्रान बगल तें छिनहु होउ जो न्यारे ॥
तुमसों और पास नहिं कोऊ मानहु करि पतियारे।
'हरीचद' खोजत तुमही को बेद पुरान पुकारे ॥
वही, छ० ३, पृ० १३३।

कत है बहुरुपिया हमारो।
ठगत फिरत है भेष बदलि जग आप रहत है न्यारो ॥
कूचे-ज्ञान-जती जोगिन को स्वाग अनेकन लावै।
कबहूँ हिन्दू जैन कबहूँ अरु कबहूँ तुरक बनि आवै ॥

मरक्त वांके भेन्न म सव भूले घोखा खात।
हरीचन्द जानत नहिं एकै ह्व बहुरूप लखात॥[1]

वे मायावाद, वेदान्त, कर्मकाण्ड आदि के विरोधी थे। उदाहरणार्थ अद्वैत के सम्बन्ध में उनका अकाटय तर्क है—

वहो अद्वैत कहाँ सो आयो।
हम छाडि दूजो है को जेहि सव थल पिया लखायो॥
बिनु नैसो वित्त पाएँ झूठो यह क्या जान बनायो।
'हरीचद बिनु परम प्रेम के यह अभेद नहिं पायो॥[2]

उनका तो विश्वास था कि—

नहिं इश्वरता अटकी वन्द म।
तुम तो अगम अनादि अगोचर सो कैसे मतभेद म॥
तुम्हरी अनित अपार अहै गति जाको वार न पारो।
ताको इति करि गाइ सकै क्यों बापुरो वद बिचारो॥
वेदलिखी ही होय तुम्हारी जो पै महिमा स्वामी।
तो परिमिति गुन मय तिहारे नेति नति के नामी॥
वद मार गहि वारा प्यारे जो इक तुमको पावै।
तौ जग-स्वामी जग जीवन क्या तुमरो नाम कहावै॥
जो तुव पद रज-अंजन नैनन लाग तो यह सूझै।
हरीचद बिनु नाथ-कृपा क्यो यह अभेद गति बूझै॥[3]

और उनका विश्वास द्वैतवाद म है व जीव और ब्रह्म दोनो की अलग अलग सत्ता को मानते हैं क्योकि दोनो की अभेदता से भक्ति का रूप खडा हो नही हो सकता। अत वे अद्वैतवादियो को फटकारते हैं—

शिवोऽहं भाखत सबही लाग।
कहँ शिव, कहँ तुम कीट अन्न के यह कैसो सयोग॥
आध अग मैं पारवती हैं शिवहि न काम जगावै।
तुमको तो नारी के देखत अग गुदगुदी आवै॥
तुमको कहा सबध ब्रह्म सो क्या छांदत हौ ज्ञान।
हरीचन्द मनमथ जागगो तबै पड़ेगी जान॥[4]

यदि ऐसी बात है तो जोरू और जननी म फर्क कहा रहा—

जो पै सबै ब्रह्म ही होय।
तो तुम जोरू जननी मानो एक भाव सो दोय॥
ब्रह्म ब्रह्म कहि काज न सरनो वृथा मरो क्या राय।
हरीचन्द' इन बातन सा नहिं ब्रह्महि पै हो काय॥[5]

---

१ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, जैनकुतूहल, छ० १६, पृ० १३७।
२ वही, पृ० १३७।
३ ब्रजरत्नदास (सपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा खण्ड, छ० ६, पृ० १३४।
४ वही, जन कुतूहल, छ० २२ पृ० १३८।
५ वही, छ० २३, पृ० १३६।

अन्त में वे धार्मिक मान्यताओं के विरुद्ध जैनियों का आस्तिक स्वीकार करते हैं।[1] फिर उनका खंडन मंडन में विश्वास भी नहीं है, यह विरोधाभास पाठक के सामने एक द्वन्द्व लेकर उपस्थित हो जाता है। उनका विश्वास सभी मतों में है। किसी मत को वे घृणा की नजर से नहीं देखते। यही कारण है कि उनका खंडन-मंडन में विश्वास नहीं है, यथा—

खंडन जग में काको कीजै।
सब मत तो अपने ही है, इनको कहा उत्तर दीजै॥
तासों बाहर होइ कोऊ जब तब कछु भेद बतावै।
होय तो वही सबै मत ताके तहँ दूजो क्यों आवै॥
आपुने ही पै क्रोधि बावरे अपुनो काटत अंग।
हरीचन्द' ऐसे मतवारेन को कहा कीजै संग॥[2]

साम्प्रदायिक दृष्टि से उनका मायावाद और अद्वैतवाद के विरोध में होना सामाजिक भी था। अद्वैतवाद के प्रमुख सिद्धांत 'ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्या' को भी भारतेन्दु जी नहीं मानते थे। उनका अकाट्य तर्क था कि ब्रह्म सत्य है तो उसकी सृष्टि भी सत्य होना चाहिये। उनका तर्क है—

जो पै ईश्वर साँचो जान।
तो क्यों जग को सगरे मूरख झूठो करत बखान॥
जो करता साँचो है तो सब कारजहू है साँच।
जो झूठो है ईश्वर तौ सब जगहू जानौ काँच॥
जो हरि एक अहै तो माया यह दूजी है कौन।
हरीचन्द कछु भेद मिल्यौ न बक्यौ जिय आयो जौन॥[3]

भारतेन्दु जी वाह्याडम्बर से बहुत ही दूर रहा करते थे। उनका विश्वास था कि हृदय ही भक्ति का आगार है। वाह्याडम्बर व्यर्थ है इनसे समष्टि का विनाश ही सम्भव है। अतः समस्त हिन्दुओं को इन्हें भुलाकर एक सूत्र में बंध जाने का आदेश उन्होंने दिया। देश में प्रचलित वाह्याडम्बरों को कबीर की भाँति ही निरर्थक बतलाया एवं आडम्बरों का विरोध ही किया। यथा—

लखो हरि तीन ताग में लटक्यो।
रीझि रह्यो पानी चाटन पै करमजाल में अटक्यौ॥

---

१ जैन को नास्तिक भाखै कौन ?
परम धरम जो दया अहिंसा सोई आचरत जौन॥
सत् कर्मन को फल नित मानत अति विवेक के भौन।
तिनके मतहिं विरुद्ध कहत जो महामूढ़ है तौन॥
सब पहुँचत एक हि थल चाहौ करौ जौन पथ गौन।
इन आँखिन सों तो सब ही थल सूझत गापी रौन॥
कौन ठाम जहँ प्यारो नाहीं भूमि अनल जल पौन।
'हरीचन्द' ए मतवारे तुम रहत न क्यों गहि मौन॥
ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, जैन-कुतूहल, छं० ७, पृ० १३४-३५।
२ वही जैन-कुतूहल, छं० १२, पृ० १३६।
३ वही, छं० २४, पृ० १३६।

हाथ नचावत सोर मचावत अगिन कुंड है पटक्यो।
हरीचन्द' हरिजाई बनि कै फिरत लखहु वह भटक्यो ॥[1]

वास्तव मे वे ज्ञान मार्ग के नहीं, प्रेममार्ग के समर्थक थे। उन्होने प्रेम या रागानुगा भक्ति को अपनाया। प्रेमलक्षणा भक्ति की सुरसरिता को प्रवाहित किया, क्योंकि उनका भगवान् तो प्रेम में वास करता है—

पियारो पैये केवल प्रेम मैं।
नाहिं ज्ञान मैं नाहिं ध्यान मैं नाहिं करम कुल नेम मैं ॥
नहिं भारत मैं नहिं रामायन नहिं मनु मैं नहिं वेद मैं।
नहिं झगरे मैं नाहिं युक्ति मैं नाहिं मतन के भेद मैं ॥
नहिं मंदिर मैं नहिं पूजा मैं नहिं घटा की घोर मैं।
'हरीचन्द' वह बाध्यो डोलत एक प्रीति की डोर मैं ॥[2]

भारतेन्दु जी सगुणोपासक थे। सगुणोपासना अवतारवाद की प्रधानता है। भारतेन्दु जी वल्लभ को भगवान् का अवतार मानते थे। इसके अतिरिक्त भी उन्होने नृसिंह, वामन, राम और कृष्ण—इन चार अवतारो का वर्णन किया है। नृसिंहावतार का वर्णन कवि ने बड़े ही ओजपूर्ण शैली में व्यक्त किया है। यह पद बहुत बड़ा है इसलिये कुछ ही अंश अवलोकनार्थ प्रेषित है—

आजु अपमान अति ही निरखि भक्त को
बैकुंठ बा सिंह बहुत कोप्यो।
पटकि कर भूमि पै झटकि सिर केश रद
चाबि ओठन तेज गगन लोप्यो ॥
खंभ को फारि चिक्कारि केहरि-नाद
गर्भिनी-गर्भ गरजन गिरायो।
सटा फटकारि कै नछत्रगन नभहिं
फेंकि ईत सी उतहिं क्रोध छायो ॥
सदा प्रभु सवन्न गवहर अभय कर
जनन उर सौख्य कर दुःखहारी।
पीर 'हरिचन्द' की हरहु करुनायतन
नसित कलि काल तव सरनधारी ॥[3]

कवि के राम विषयक पदों की संख्या कम है। इनका वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है। यहाँ राम की प्रशंसा मे एक पद उद्धृत किया जाता है।

एई हैं गौतम नारि के तारक कौसिक के मख के रखवारे।
कौसलानंदन नैन अनंदन एई हैं प्रान जुड़ावन हारे॥
प्रेमिन के सुख दैन महा हरिचन्द के प्रानहुँ ते अति प्यारे।
राज-दुलारी सिया जू के दुलह एई हैं राघव राज दुलारे ॥[4]

---

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, जन-कुतूहल, छं० ३१, पृ० १४०।
२ वही, छं० १३, पृ० १३६।
३ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली दूसरा खण्ड, राग-संग्रह छं० ७, पृ० ४३७ ३६।
४ वही, रामलीला, छं० २२ पृ० ७७६।

कवि ने रामभक्ति सम्बन्धी रचनाओ का सृजन अपने राम-लीला नामक चम्पू काव्य में किया है। इसमे रामचरित सम्बन्धी ३५ पदो की रचना है जो एक से एक भाव सौन्दय के लिये अप्रतिम हैं।

भारतेन्दु जी अवतारवाद के प्रशसक थे। उन्होने अपने एक पद म दशावतार का एक ही साथ वर्णन प्रस्तुत किया है। देखिए—

जयति वेणुधर चक्रधर शखधर,
पद्मधर गदाधर शृगधर वेत्रधारी॥
मुकुटधर क्रीटधर पीतपट-कटिनधर,
कठ - कौस्तुभ धरन दुखहारी॥
मत्स को रूप धरि वेद प्रगटित करन,
कच्छ को रूप जल मथनकारी।
दलन हिरनाच्छ वाराह को रूप धरि,
दत के अग्र धर पृथ्वि मारी॥
रूप नरसिंह धर भक्त रच्छा-करन,
हिरनकश्यप - उन्र नख विदारी।
रूप बावन धरन छलन बलिराज को,
परसुधर रूप छत्री सहारी॥
राम को रूप धर नास रावन करन,
धनुधर तीरधर जित सुरारी।
मुशलधर हलधरन नीलपट सुभगधर,
उलटि करपन करन जमुन-वारी॥
बुद्ध को रूप धर वेद निन्दा करन,
रूप धर कल्कि कलजुग - सधारी।
जयति दश रूपधर कृष्ण कमलानाथ,
अतिहि अनात लीला विहारी॥
गोपधर गोपिधर जयति गिरराजधर,
राधिका बाहु पर बाहु धारी।
भक्तधर सतधर सोइ 'हरिचन्द' धर
वल्लमाधीस द्विज देपकारी॥[1]

रगीले हरिश्चन्द्र ने भगवान् श्रीकृष्ण को ही अपना उपास्य माना। उन्ही की चरण शरण म अपनी भक्ति-लता को हरी भरी की। यही कारण था कि वे अपने पापिया का सरदार कहते थे। उनका हृदय ही सभी पापियों के पाप को समेटे हुए था—

सब दीननि को दीनता सब पापिन को पाप।
सिमटि आइ मो मे रह्यो, यह मन समुझहु आप॥[2]

---

१ सतवाणी अंक, (कल्याण विशेषाक), वष २६, स० १, स० २०११, पृ० ५१२।
भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, प्रेम मालिका, छ० २६, पृ० ५२-५३।
२ कल्याण संतवाणी विशेषक, वर्ष २६, स० १, स० २०११, पृ० ५११॥

वे जन्मजात भगवत रसिक थे। उनकी आत्मा रासरसिकेश्वर घनश्याम के लिये सदैव लालायित रहती थी। उन्होंने कहा है—

भरित नेह नवनीर नित बरसत सुरस अथार।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर ॥[1]

भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति उनकी स्थायी अनन्यता थी। उनकी आत्मा विरहिणी की भाँति प्रेमाकुल हो दरस के लिये सदैव विकल थी। चाहे वह घनश्याम का बाल रूप हो, या यौवनकालीन रासलीला का। भक्त भारतेन्दु की वाणी आजीवन उनके लीलागान से अपने को कृतार्थ करती रही। कवि की व्याकुलता में मीराबाई के दर्शन सहज ही में हो जाते हैं—

मोहन दरस दिखा जा।
व्याकुल अति प्रान-प्यारे दरस दिखा जा॥
बिछुरी मैं जनम जनम की फिरी सब जग छान।
अबकी न छोडो प्यारे यही राखा है ठान॥
'हरीचन्द' बिलम न कीजै दीजै दरसन दान ॥[2]

कभी वे दाम्पत्य भाव से ओतप्रोत होकर नन्दनन्दन का आवाहन करते हैं। गोपियों की अचल भक्ति की तरफ कवि जब संकेत करता है तो उसकी भक्ति सलिला में एक क्रन्दन का स्वर गूंज उठता है। उस समय वह मन को एक ही मान कर ज्ञानोपदेश देने वाले उद्धव के ज्ञान गर्व को चूर चूर कर देता है। सचमुच यदि मन एक नहीं अनेक होता तो किसी भी लौकिक कार्य में बाधा उपस्थित नहीं होती। वे सारे एक ही साथ सम्पन्न होते। कवि कहता है—

उधो जो अनेक मन होते।
तौ इक स्याम सुंदर को देते, इक लै जोग सजोते॥
एक सा सब गृह-कारज करते एक सा धरते ध्यान।
एक सो श्याम रंग रंगते तजि लोक-लाज कुल-कान॥
को जप करै जोग को साधै को पुनि मूँदै नैन।
हिये एक रस श्याम मनोहर मोहन कोटिक मैन॥
ह्या तो हुतो एक ही मन सो हरि लै गए चुराई।
हरीचन्द कोउ और खोजि कै जोग सिखावहु जाई ॥[3]

उद्धव का ज्ञान-योग-सन्देश गोपियों के प्रेम-योग के सामने विपन्न हो जाता है।

भारतेन्दु की भक्ति में दास्य भाव की प्रधानता है। उन्हें भगवान् की भक्तवत्सलता पर पूर्ण विश्वास है। डा० किशोरीलाल गुप्त ने लिखा है कि 'भारतेन्दु को भी भगवान् की रीझ, उसकी भक्त वत्सलता पर अनन्य विश्वास है। वे भगवान् की रीझ पर बलिहार जाते हैं क्योंकि महापतितो से भी प्रेम करने वाला उनके अतिरिक्त अन्य कोई देव नहीं दिखाई देता।[4] भारतेन्दु ने भगवान् की रीझ का जिन पदों में वर्णन किया है, कवि की आत्मविभोरता सूर की सरस वाणी से अधिक प्रभावप्रद है—

१ भक्त चरिताक (कल्याण विशेषांक), वर्ष २६, स० १ सं० २००८, पृ० ७८३।
२ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रंथावली, दूसरा खण्ड, प्रेम-तरंग, छ० ६०, पृ० २०७।
३ वही, प्रेम मालिका, छ० ६८, पृ ६५।
४ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, वाराणसी, पृ० ५२।

भरासो रीझन की लखि नारी ।
हमहूँ को विश्वास होत है मोहन पतित उधारी ।
जो ऐसो सुभाव नहिं होता क्या अहीर कुल भायो ।
तजि के कौस्तुभ सो मनि गल क्यों गुंजा-हार धरायो ।
क्रीट मुकुट सिर छोड़ि पखौआ मोरन को क्या धार्यो ।
फेंट कमी टेंटनि पै मेवन को क्यो स्वाद बिसार्यो ॥
ऐसी उलटी रीझ देखि के उपजत है जिय आस ।
जग निंदित 'हरिचंदहु' को अपनावहिंगे करि दास ॥[1]

भारतेन्दु जी सच्चे अर्थ में भक्त थे । उनका भगवान् से अटूट नाता था । वे उसे प्रियतम मानते हैं । प्रियतम मानकर उसकी उपासना करना तथा उसकी निर्ममता पर उसे उलाहना देना, यह कोई जन्म जात भक्त ही कर सकता है । भारतेन्दु जी का भावुक मन श्रीराधाकृष्ण के प्रेमार्णव मे सदा डूबता उतराता था । उनकी भक्ति गंगा मे ज्ञान और प्रेम का अभूत समन्वय था । वे सदा कृष्ण को ही चाहते थे—

हमहूँ कबहूँ सुख सा रहते ।
छाड़ि जाल सब, निसदिन मुख सो केवल कृष्णहि कहते ॥
सदा मगन लीला अनुभव मे, दृग दोउ अविचल बहते ।
'हरीचंद' घनस्याम बिरह इक जग-दुख तृन सम दहते ॥[2]

कवि कृष्ण को प्रियतम मानता है, लेकिन उनकी रीझ खीझ मे राधा की तरफ विशेष आकर्षित होना उनके भजनानन्द हृदय की प्रेममूलकता का परिचायक है । वह राधा के चरणों की उपासना मे अपने को विशेष तल्लीन करता है । उसने समस्त जगत् म श्रीराधिका रानी की सरस परिव्याप्ति पायी है । एक तरफ उसकी वाणी मे स्वयं राधा के रूप में चकोरी[3] बन जाने का आग्रह है तो दूसरी तरफ वह श्रीराधारानी से एक सच्चे सीधे सादे भक्त की भांति अहर्निश कहा करते हैं—

श्रीराधे मोहि अपनो कब करिहौ ।
जुगल रूप रस अमित माधुरी कब इन नयननि भरिहौ ॥
कब या दीन हीन निज जन पै ब्रज को वास वितरिहौ ।
'हरीचंद' कब भव बूडत तें भुज धरि धाई उबरिहौ ।[4]

---

१ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, प्रेम-फुलवारी, खंड ६, पृ० ५७६ ।

२ वही, प्रेम प्रलाप, छ० ११, पृ० २०५ ।

३ 'हरीचंद' एतेहू पै दरस दिखावै क्यो न,
तरसत रैनदिन प्यासे प्रान पातकी ।
एरे ब्रजचंद ! तेरे मुख की चकोरी हौ मैं
एरे घनश्याम तेरे रूप की हौं चातकी ॥
कल्याण भक्ति चरितांक, वर्ष २६ स० १, २००८, पृ० ७८३ ।

४ ब्रजरत्नदास (संपादक) भारतेन्दु ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, प्रेम फुलवारी, छ० १, पृ० ५७७ ।

इस प्रकार का भाव राधावल्लभ सम्प्रदाय का द्योतक है। वह इस सम्प्रदाय से विशेष प्रभावित हैं।[१]

अंत मे कवि अपने क्रियाकलाप पर पश्चाताप करता है। उसकी कविता कालिन्दी के तट पर ज्ञान-पुष्प पुष्पित हो जाता है। उसकी आत्मचेतना सबल हो जाती है, फिर तो कवि को सच्ची भक्ति की प्राप्ति में किसी प्रकार की शिकायत नही रह जाती।

मजा कही नहिं पाया जग मे नाहक रहा भुलाया।
छिन के सुख की लालच जित तित स्थान लार टपकाया।
यह जग मे जिसको अपनाकर भूठा भरम बढ़ाया।
तिन स्वारथ पसि कूकर सूकर सब दुतकार बताया॥
अपना अपना अपना करकै बहुत बनाई माया।
अंत सबै तजि दीना मल राम जिनको अनि अपनाया॥
साचे मीत स्यामसुदर सा छिनहु न नेह बढाया।
'हरीचद' मल मूत्र कीट बनि नर जीवनहिं गँवाया॥[२]

इस प्रकार भारतेंदु की भक्ति रचनाओ मे उनका दैन्य प्रबल है। इसके अतिरिक्त विनय, बाललीला, प्रेम सम्बन्धी सख्यभाव सबधी आदि सभी प्रकार के पद मिलते हैं। आपने तो पुष्टिमार्ग की इस राधारानी के जन्म एवं बाल्यकाल का जो वर्णन प्रस्तुत किया है, वह आपकी एक अनोखी सूझ है। अष्टछाप भक्त कवियो ने भी इस प्रसग को स्पर्श नही किया था। आपको रसिकता राधा-कृष्ण के प्रेम, मान और विरह उद्धव-गोपी सवाद विरह के अन्तर्गत मानी जाने वाली सभी दशाओ का विशद् वर्णन मिलता है। आपकी भक्तिपरक रचनाओ मे गीतिकला का पूर्ण निर्वाह पाया जाता है। उनमे गीतितत्व प्रचुर मात्रा मे प्राप्य है। पद के अतिरिक्त आपने होली, ठुमरी सोरठा, तथा उर्दू की भी कविताओ का सृजन किया है, वहा भी भक्ति भागीरथी किलोल करती दिखायी पडती हैं। उनकी भक्ति के बारे मे अन्त मे यही कहा जा सकता है कि वे चन्द्रावली के रूप मे प्रभु के दाम्पत्य भाव को और विरहोन्माद का स्पष्ट प्रकट कर हिन्दी साहित्य के पाठको के भ्रम का निवारण करते हैं। यथा—

मगल भयो मोर मुख निरखत मिटे सकल निसि दाग।
हरीचद आओ गर लागो साचो करो सोहाग॥
× × ×
तोसा और न प्रभु कछु जाचौं।
विस्फुलिंग के जग दुख तजि तव विरह-अगिन तन ताच्यौ॥[३]

---

१ गुलाबराय का भी यही मत है कि वे राधावल्लभ सम्प्रदाय से विशेष प्रभावित थे। क्योंकि ऐसा देखा जाता है कि उनके पदो की कुल सख्या १२५० से अधिक नही है। इन्हें हम दो भागो में बाँट सकते हैं—विनय और कृष्णचरित। कृष्णचरित मे भी बाललीला सम्बन्धी पद कम हैं। गोपियो के प्रेम का बहुताश है। इसमे भी सयोग शृगार की प्राधान्य है—ऐसा राधावल्लभ सम्प्रदाय ही मे सम्भव हो सकता है।'
साहित्य सन्देश, वर्ष १२, अक ४, ५, अक्टूबर नवम्बर, १९५०, पृ० २०५।

२ कल्याण सतवाणी विशेषाक, वर्ष २९, स०, १ स० २०११, पृ० ५१८।
भारतेंदु ग्रथावली, दूसरा खण्ड, विनय प्रेम-पचासा, छ० ३९, पृ० ५५०।

३ व्यथित हृदय (सपादक) चन्द्रावली, प्रयाग द्वितीय सस्करण, १९५७, पृ० ८०।

कवि चन्द्रावली को स्वयं कृष्ण चित्रित करते हुए अपनी तन्मयता का परिचय दिया है। वे वैष्णव थे। वैष्णव होने के कारण वैष्णव गुरुओं के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है। उन्होंने इसी भाव से प्रभावित होकर तदीय समाज की स्थापना भी की थी। साथ ही साथ वैष्णव परम्परा के अनुसार उन्होंने हिन्दू पर्वों, त्योहारों को महत्ता और प्रभु चरण चिह्नों आदि का भी वर्णन प्रस्तुत किया है।

भारतेन्दु जी जनक के समान गृहस्थ थे और कर्ण के समान दानी भी थे। उनका हृदय भक्ति का चित्रकूट था, त्रिवेणी का संगम था। एक तरफ ज्ञान गरिमा भक्तिलता लहरा रही थी तो दूसरी तरफ प्रेमलतिका, प्रेममार्ग की स्थापना कर रही थी। बीच में भारतेन्दु के भक्त हृदय की सच्चाई एवं नवीनता, नवनूतन रस का संचार कर रही थी। उनकी भक्ति के बारे में प्रेमधन जी ने लिखा है। वे गृहस्थ थे जनक के समान, धर्मात्मा थे जनक के समान—

जनक सरिस दुहु लोक के कारण मे लवलीन।
नारद लौ हरि भक्ति या जग दिखाय जो दीन।
परहित साधन मे रह्यो रात दधीचि समान।
सो बिन लोमस लौं भया चिरजीवहु सुजान॥[1]

श्रीधर पाठक ने भी लिखा है—

हरिश्चन्द्र सम सत्य सदा प्रतिपालन कीनो
गोपिन-सरिस-अनन्य भक्ति-सवस - रस भीनो।
टेक एक अह्लाद - अटल प्रह्लाद प्रबल प्रन
ध्रुव सम ध्रुव विश्वास-आस ध्रुव आनि अविचल-मन।
जय परम भक्त गन-गनित-पद भनित भक्ति-वैभव विमल
जय जत जाल-सु विमुक्त सद् भक्त-माल मुक्ता नवल।
हरि समान हरि कुमति निस-तम, सुमति प्रकासी
परम पुरातन प्रेम-बेलि नववलो विकासी॥[2]

भारतेन्दु जी ने अपने अधूरे अरमानों[3] को हिय मे सजोये हुए अन्तिम दिन 'श्रीकृष्ण! श्रीराधा कृष्ण, हे राम आते हैं मुख दिखलाओ' कहा और कोई दोहा पढ़ा जिसमे से श्रीकृष्ण सहित स्वामिनी इतना धीरे स्वर से स्पष्ट सुनाई दिया।[4] अम्बिकानाथ सिंह के शब्दों मे अन्तिम समय का दृश्य इस प्रकार है —'अन्त समय मे राजा शिवप्रसाद जी 'सितारे हिन्द' से जो उनकी शय्या के पास ही थे, कहा—बड़ी प्यास लगी है।' राजा साहब ने चाँदी के कटोरे में जल भर कर दिया। बाबू साहब की आन्तरिक वेदना ने तड़प कर कहा—'पानी नहीं घनानन्द का सवैया चाहिये।' राजा साहब ने

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (सम्पादक) प्रेमघन सर्वस्व, शोकाश्रुबिन्दु, छ० ४० ४१, पृ० १३०।
२ श्रीधर पाठक मनोविनोद हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९१७ पृ० ६७।
३ अभी तक मेरे पास पूर्ववत बहुत धन होता तो मैं चार काम करता—(१) श्री ठाकुर जी के बगीचे मे खूब धूमधाम से षटऋतु का मनोरथ करता (२) विलायत फरासीस और अमेरिका जाता (३) अपने उद्योग से एक शुद्ध हिन्दी यूनिवर्सिटी स्थापन करता (४) एक शिल्पकला का पश्चिमोत्तर देश म कालिज करता। (कविवचन सुधा पृ० ८, जिल्द १६, स० २३, २४, जनवरी १८८५)
४ कविवचन सुधा जिल्द १६, स० २३ २४, जनवरी, सन् १८८५ ई०, पृ० ६।

'तुम कोन से पाटी पढे हो लला ! मन लेहु पै देहु छटाक नही,' की सुधावाणी से उनके अधर की प्यासो बुझाई।[1] इस प्रकार मत्यु शय्या पर भी अपनी भक्ति और रसिकता का परिचय दिया।

उस समय बाबू साहब की उम्र ३४ वर्ष ३ महीने २७ दिन १७ घंटा ७ मिनट ४८ से० थी।[2]

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

जयति प्रेमघन नाम सुकवि बद्रीनारायण।
भारतेन्दु को मीत रसिक साहित्य परायन।
आनन्द कादम्बिनी पत्रिका जाने थापी।
रची मनो गभीर मनोहर नव रस-वापी।।[3]

जीवन रेखा

प्रेमघन जी का जन्म मिर्जापुर जिलान्तर्गत दत्तापुर नामक ग्राम म भाद्रपद कृष्ण ६ स० १९१२ वि० को हुआ था।[4] इनके पिता जी का नाम प० गुरुचरणलाल उपाध्याय था। ये बहुत ही धार्मिक और उदार व्यक्ति थे। प्रेमघन जी का अपन गाव से विशेष सम्बन्ध रही रहा। उन्होंने लिखा भी है—

जन्मभूमि वह यदपि तऊ सबध न कछु अब।
अपनो वा सों रह्यो टूटि सो गयो कबै सब।।
और और ही ठौर भयो अब ता गृह अपनो।
तऊ लखत मन किहि कारण वाही को सपनो।।[5]

प्रेमघन जी का अक्षरारम्भ इनकी माता द्वारा सम्पन्न हुआ। पिता हिन्दी फारसी और सस्कृत के विद्वान् थे। इसलिये पढ़ने की तरफ इनकी प्रवृत्ति थी। अन इनकी शिक्षा मिर्जापुर, गोंडा, फैजाबाद आदि स्थाना मे चलती रही। अध्ययन म अभिरुचि थी। फलस्वरूप ये अपने पिता से एक कदम और आगे बढ गये और अग्रजो सीख ली। इनके काव्य गुरु प० रामानन्द पाठक थे जो इन्हे सस्कृत पढाया करते थे।

प्रेमघन जी बडे शौकीन व्यक्ति थे। इनकी वेश भूषा स भारतीय रईसी साफ स्पष्ट होती थी। पठन-पाठन के अलावे इन्हे घुडसवारी का भी शौक था। ये भारतेन्दु जी के अनन्य मित्र थे। भारतेन्दु जी की भाँति ही इनकी प्रवृत्ति बडी उदार थी। ब्रजरत्नदास ने लिखा है कि प्रेमघन की बातो म प्रकृत्या कुछ वक्रता रहती थी और उसम एक निजी निरालापन, विनोद तथा दूसरा को बनाने की प्रवृत्ति भी रहती थी।[6]

आपका व्यक्तित्व बडा ही आकर्षक था। आप जिस प्रकार अपनी सर्जनात्मक शक्ति के हिमायती थे, ठीक उसी प्रकार अपनी रियासत के भी हिमायती थे। यही कारण था कि आपके यहाँ मजलिस

१ कल्याण भक्तचरिताक, स० १, वर्ष २६, स० २००८, पृ० ७८४।
२ कविवचन सुधा, जि० १६, स० २३ २४, जनवरी, सन् १८८५ ई० पृ० ६।
३ वियोगी हरि कवि कीर्तन पृ० ६६।
४ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, काशी, पृ० ७८।
५ वही, पृ० ७८।
६ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, पृ० ८०।

बराबर जमी रहती थी। आपके बारे मे आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि मजलिस लगी है, बीच म लैम्प जल रहा है। अचानक वह भभक गया। लोग चाहकर भी बुझा न सके। चौधरी जी ने नौकर को आवाज दी 'अरे जब फूट जाई तबै चलत जाव है।' अत मे चिमनी फूट गई पर हाथ लैम्प की तरफ न बढा[1]।' प्रेमघन जी के यहा बराबर भीड लगी रहती थी। इसी प्रवृत्ति के कारण इहोने 'सत्कर्म सभा और रसिक समाज की स्थापना की थी। कालान्तर म यही रसिक समाज रसिक वाटिका और रसिक मित्र नामक पत्रो का सम्पादन करने लगा।

प्रेमघन जी का साहित्यिक प्रवेश कविवचन सुधा से हुआ। कुछ दिनो के बाद आपने आनन्दकादम्बिनी नामक पत्र भी प्रकाशित करना प्रारम्भ किया। इसी म आपके लेख, आपकी कविताएँ आदि प्रकाशित हुआ करती थी। यह पत्र आठ-नौ वर्षो तक चलता रहा। इसके अनन्तर आपने नागरी-नीरद एक साप्ताहिक समाचार पत्र का प्रकाशन भी किया।

आपने अपने जीवन के ६८ वर्षों तक साहित्यिक काय किया। स० १९७९ के फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशी का आप इस ससार को छोड कर चल बसे।

भक्ति-भावना

प्रेमघन जी अपने परिवार स धार्मिक परम्परा नहा प्राप्त कर सके थे। वहाँ उन्हें भक्ति शिक्षा नही मिली थी। लेकिन पिता की विद्वत्ता, सस्कृत के प्रति प्रेम और माता का विदुषी होना उनके हृदय सर को तरगायित करता रहा। अत अपने धम की खाल खीच कर उसकी आत्मा से सम्बन्ध स्थापित किया। भारतेन्दु युगीन साहित्यिक जगत् मे आपकी भक्तिभावना एक 'माइल स्टोन' का काम करती है।

युग की धमनिया म स्फुट-कविता का प्रवाह हिलोरें ल रहा था। प्रबन्धात्मकता का पूण अभाव था। रामकथा प्रणयन म प्रबन्ध की सीमा निर्धारित हो चुकी थी। कृष्ण-कथा का प्रवाह स्फुट कविताओ मे ही सीमित था। कवि कृष्ण कथा को प्रबन्धकाव्य का रूप 'अलौकिक लीला' के रूप मे देता है। कथा का प्रवाह पाच सग तक चला जाता है। इन पाच सर्गों म कथा का प्रवाह छन्दो की छटा, गीतो की गेयता कवि की काव्य प्रतिमा का परिचायक है। लकिन यही कथा का प्रवाह टूट जाता है। प्रेमघन सवस्व के पृष्ठ १२३ पर इस अधूरी रचना के बारे म एक नोट है जो इस प्रकार है—'प्रेमघन जी इस काव्य को इसी स्थान तक लिख सके थे। १९७२ वि० म उन्होंने यहाँ तक लिखकर बाद में पूरा करने के लिये छोड दिया था, पर दुर्भाग्यवश यह काव्य फिर न लिखा जा सका।

कवि कृष्ण का अनन्य भक्त है। उस कृष्ण की उदारता और महनीयता पर पूण विश्वास है। इस कृति में कवि कृष्ण की अलौकिक लीला का वणन करता है। उनके जन्म के साथ ही उसे यह विश्वास हो जाता है कि भगवान् ने मनुष्य का अवतार ले लिया है। गीताकार[2] का यह विश्वास है कि जब-जब ससार मे पाप का प्रचार बढ जाता है तब-तब भगवान् भूतल पर अवतार लेते हैं। कवि इसी भाव का वणन बड़े ही सुन्दर ढग से करता है—

---

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय प्रेमघन सवस्व, (भूमिका लेखक रामचन्द्र शुक्ल), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ८।

२ यदा यदा हि धमस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
श्रीमद्भगवद्गीता, ४।७

देखि पाप को जग पुनि प्रभु प्रचार।
सम्भव है हरि होय मनुज अवतार॥
जब जब होय धम की जग म ग्लानि।
बढहिं असुर कुल सकुल अति अभिमानी॥
जब तिनसा दबि दीन सतायें जाहिं।
जबहि साधुजन ह्वै व्याकुल चिल्लाहिं॥
तब करुनाकर करुना करि प्रगटाय।
दुष्ट दलन निज जन लहि बचाय॥[१]

यहाँ गीता की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। कस द्वारा वसुदेव देवकी पर किये गये अत्याचार से जग पीडित है। ससार म यत्र तत्र सवत्र त्राहि त्राहि की आवाज आ रही है, साधुजन सन्तप्त है। अत कवि को विश्वास हो जाता है कि—

वैसाई सब जोग जुरयो अब आय।
परिनामहुँ तब वै सोई होन लखाय॥[२]

अक्रूर और कस का परामश कही कृष्ण की अलौकिकता प्रकट करता है तो कही कृष्ण को साधारण मानव की कोटि म रख उनम मानवीय गुणो का आरोप किया जाता है। लेकिन प्रलोभनो से मनुष्य के एकाग्रचित को चचल कर देना आसान बात है। कस अक्रूर स कृष्ण को लाने को कहता है। अक्रूर की चिन्ता बढ जाती है। उसे विश्वास है कि कृष्ण मनुज रूप मे भगवान हैं उसे फुसलाया कैस जा सकता है। यथा—

तो बहु बधन चहत तिहि तितो बुलाय।
भेज्यो मुहि जिहि ल्यावन हित फुसलाय॥[३]

कवि को कृष्ण के शौर्य पर पूण विश्वास है। वह जानता है कि जिसने बडे-बडे वीर को मार दिया है, वह कस का अवश्य ही काल बनेगा।

बडे बडे बीरन जो मारयो बाल।
अवसि होइहै सो कसहु को काल॥[४]

कृष्ण अलौकिक पुरुष हैं नही बताने पर भी सभी कुछ जान जाते हैं। सवज्ञाता हैं। अत वह अक्रूर की अगवानी कर उनसे पूछता है। कवि की पक्तियाँ अलौकिकता का भास झटके से करा जाती हैं। कृष्ण की व्यवहार कुशलता और वाक्य चातुय दशनीय है—

पूछो मृदु मुसुकाय मनमोहन अक्रूर सन।
कहहु चचा समुझाय कुशल क्षेम सकुटुम्ब निज॥
परम अनुग्रह कीन दीन दरस इत आइकै।
अब जो वृत्त नवीन होय कहहु मो करि कृपा॥
चित्त चिन्ता सो चूर ससय विसमय सो भर्यो।
कह्यो सकुचि अक्रूर उहै कुशल सानन्द सब॥[५]

---

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (सपादक) प्रेमघन सवस्व, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ६९।
२ वही, पृ० ७०।
३ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (सपादक) प्रेमघन सवस्व हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० ६८।
४ वही, पृ० ६९।
५ वही, पृ० ८२।

कवि कृष्ण को अजमा बताता है—

सब अचरज मय बात सुनत लखत इह आय म ।
कह्यो कछु नहिं जात सकै न मन अनुमान करि ।
यह शिशु परम अयान होन जोग अति स्वल्प वय ।
सो बल बुद्धि निधान दुसह तेजयुत है महत ।
धन्य धन्य वसुदेव धन्य देवकी देवि तु ।
जाया जग नही भेव जयो अजमा जिन सुवन ॥[1]

प्रेमघन जी कृष्ण के सगुण रूप के उपासक हैं । अत नवधाभक्ति मे उनका पूर्ण विश्वास है । कृष्ण अक्रूर के साथ गोपिकाओ को छोडकर चले गये हैं । इधर विरह विदग्ध ग्वाल-बाल भगवान् के ऐश्वर्य का स्मरण कर आकुल-व्याकुल है । विधि का विधान विचित्र होता है । कवि के शब्दो म—

कैसो हो विधान विधिना का न जनाय कछु
जाय मधुपुरी फिर कब इत आइहैं ।
नाग सिर नाचि हैं उठाई धरा धर कर
दावानल पान करि हमहि बचाइहैं ।
गाइन चराइहैं कदम्ब चढि प्रेमघन
बासुरी बजाइहै औ रस बरसाइहैं ।
जाको भुजबल सो रह्यो वैरिहीन व्रज
सोई वृजराज आज वृज तजि जाइहैं ॥[2]

और फिर भी

विधि को विधान अति अटल जानि
नहिं पडित जन मन करत ग्लानि ॥[3]

अत कवि उस सावरिया के दर्शन के लिये ललच जाता है । सारा ब्रजमण्डल यमुना-पुलिन पर जुट जाता है । मनौतियाँ होने लगती हैं—

करि नित्य कृत्य निवृत्त सब जमुना पहुँचै जाय कै ।
अरचन लग निज इष्ट देवहिं गोप सकल मनाय कै ॥[4]

कवि कृष्ण की महिमा का वर्णन करने म किसी प्रकार का टोटा नही रखता । उस रास्ते म किसी ने छेड दिया—कृष्ण बच्चे हैं । कवि की कवित्व शक्ति इस चुनौती को कब तक बर्दाश्त करती । बस क्या था ? कविता का स्रोत फूट ही तो पडता है—

री बावरी इन्हें निपट बालक ही न जान ।

ये—

केशी अरिष्ट अघासुरन गज हन्यो जिन बनि केहरी ।
पय पीयत मास्यो पूतना बक व्योम वत्सासुर हयो ।

---

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (संपादक) प्रेमघन सर्वस्व, प्रयाग, पृ० ८३ ।
२ वही, पृ० ८६ ।
३ वही पृ० १०६ ।
४ वही, पृ० ११२ ।

धेनुक शकट शर त्रणावर्त सहारि अजित अहे वयो ।
कालीय नाग कराल नाथ्यो नृत्य तिहि फन पर कियो ।
नास्यो पुरन्दर विधि गरव सुनि कम को काप्यो हियो ।
मारो सुदर्शन शख चूडहि पान दावानल कियो ।
भज्यो जमल अर्जुन कराहि पर धारि गोवर्धन लियो ।
कोउ कहत ससय कछू नहि देवी कही सो है सही
नृप कस को जो काल जायो देवकी सो है यही ॥[1]

बस कवि का दैन्य प्रबल हो जाता है । अत दीन होकर उसने भगवान् से भव भय ताप हरने के निमित्त अपनी कामनाएँ निवेदित की है—

स्याम घन सम सोमित घा स्याम
दामनी सी राधा रानी सग मोहत मन आम राम
भव भय ताप हरहु प्रभु मरे सुखदायक छवि धाम
बरसहु प्रेम प्रेमघन हिय निजा अवर आठहु जाम ।

अत कवि भारतीय आशावाद की व्याख्या कर हृदय को सान्त्वना देता है—

दिन एक से बीतत बराबर नहिं कोउ के नित्य हैं ।
जो मात्र सुख सो सोवतो लहि सकल सुउ साहित्य है ॥
कल्ह उन्हें बेकस देखियत बेकल परे जो आज हैं ।
उन ही न कल जो देखिये लखि परत यह सुखसाज हैं ॥[2]

कवि कृष्ण का ही नही राधा का भी ध्यान करता है । राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति हैं । अत कवि युगल रूप की उपासना को ही सवश्रेष्ठ समझता है—

राधा राधा रट लगी माधव माधव टेर ।
सहित प्रेमघन परम सुख ससचय साँझ सबेर ।
राधा राधा रट लगी माधव माधव टेर ।
दोउन के उर ध्यान ते दुइ लोक सुख ढेर ।
श्रीराधा राधा रटत हटत सकल दुख द्वद ।
उमडत सुख को सिंधु उर ध्यान धरत नदनद ॥[3]

कवि वामनावतार भगवान से भी मगल कामना की प्रार्थना करता है—

ब्रह्मचारी बनि लैलियो सकल जगत जिन जीत ।
सब बिधि सो मगल करें श्री वामन उपनीत ॥[4]

कवि गोपीभाव का उपासक है, वह मुरली की ध्वनि सुन कर बेचैन हो जाता है—

जब सो मुरली तान सुव आन परी है कान ।
धुनि सुनि कैसी हूँ कहुँ परत आन नहिं जान ॥

---

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (सपादक) प्रेमघन सवस्व प्रयाग, पृ० ११२ ।
नागरी नीरद (१८ जुलाई १८२५)

२ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (सपादक) प्रेमघन सवस्व, प्रयाग, पृ० ११६ ।

३ वही, लालित्य लहरी, पृ० ३३१-३२ ।

४ वही, पृ० ३३२ ।

स्याम सौंह स्यामा नही भूलत तेरे बोल।
करत कान मैं प्रेमघन मानहुँ काम कलोल ॥[1]

कवि यहाँ राधिका के श्यामा रूप का तथा कृष्ण के श्याम रूप का उपासक है। स्पष्ट है कि यहाँ हरिदासी सम्प्रदाय का भाव लक्षित होता है।

कवि सखी रूप मे कृष्ण का साहचर्य सुख प्राप्त करना चाहता है। वह कुंज की पृष्ठभूमि से रतिरणागन में मस्त युगल सरकार के आनन्द का रसास्वादन करता है—

दोउ मिली केलि कुजन करत।
राधिका राधे रमन की सरस छवि लखि परत ॥
रास रग राते रसीलै भामिनी भुज परत।
झमकि नाचत सखिन सग लखि मोर लाजन मरत ॥
मधुर अधरा धरनि उपर लसित वसी धरत।
मोहिब हित कोकिलन कल सरस सुभ सुर भरत ॥
रति मनोज दुहुन की दुति जनु जुगन मिल हरत।
बिमल बद्रीनाथ कविवर छविन हिय ते टरत ॥[2]

कवि की भक्तिभावना मे किसी प्रकार की शका उपस्थित नही करनी चाहिये। क्योंकि कवि की सर्व प्रथम प्रकाशित कविता मे ही उसकी भक्ति कविवर विहारीलाल की भाँति होउस रँगीले लाल की तरफ आकृष्ट होती दीख पडती है—

मुरली राजत अधर पर उर बिलसत बनमाल।
आय सोई मन बसौ सदा रगीलेल ॥[3]

कवि आगे कहता है—

जय मुकुन्द मधुसूदन माधव मदन लजावन।
जय मुरारि मधुरेश मधुर मुरलीहि बजावन ॥[4]

कवि ससार की सम्पत्ति को तुच्छ समझता है, उसे तो भगवान् की कृपा कोर ही भाते हैं—

सम्पत्ति सुयस का न अत है बिचार देखा
तिसके लिये क्यो शोक सिंधु अवगाहिये।
लोभ की ललक मे न अभिमानियो के तुच्छ
तेवरा को देख उन्हे सकित सराहिये।
दीन गुनी सज्जनो म निपट विनीत बने
प्रेमघन नित तातें नेह को निवाहिये।
राग रोप औरो से न हानिलाभ कुछ
उसी नन्द के किसोर की कृपा की कोर चाहिये।[5]

---

१ वही, पृ० ३३५।
२ प्रभाकेशवर उपाध्याय (संपादक) प्रेमघन सर्वस्व, पृ० ४३६।
३ वही, पृ० १२६।
४ वही, पृ० १३८।
५ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (संपादक) प्रेमघन सर्वस्व, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० २००।

प्रेमघन जी राधा कृष्ण के अतिरिक्त सूर्य की भी उपासना करते हैं। वे सूर्य भगवान से भवभय को दूर करने के लिये प्रार्थना करते हैं—

मैं पापी पामर परम तरयो पाप के ताप।
द्रवहु दया वारिद क्षमहु नाथ सरन अब आप ॥[1]

कवि की दीनता यहा चरम उत्कर्ष पर है। अत वह सूर्य भगवान् से कहता है कि अब उसके उद्धार की अन्यत्र आशा नहीं है—

त्राहि त्राहि हे दीन बन्धु करुणा के सागर।
त्राहि त्राहि त्रय ताप हरन तिहुँ लोक उजागर।
तासौं अब हे नाथ ! त्यागि औरन की आसा।
आयौ तुमरी सरन लहन मन की अभिलाषा।[2]

इस तरह प्रेमघन की भक्ति भावना मे कृष्ण और उनकी परम आराध्या राधा का स्थान विशेष है। उनकी भक्तिधारा म निर्गुण के धवल प्रवाह का एक अलग स्थान है। कविवर प्रेमघन जी उद्धव से निर्गुण की गाथा भी सुनवाते हैं लेकिन कृष्ण की गोपियो के सामने उनकी एक भी नहीं चलती। गोपियाँ सुनकर प्रसन्न नहीं होती बल्कि उल्टे उन्हे डाट देती हैं। उद्धव अपना सा मुह लेकर रह जाते हैं—

वादिह बढाओ बक बादिहि छुटै ना प्रीति
चन्द की चकोर की और सुमन मलिन्द का।
लागी मोहि चाह की चुडैल कुछ ऐसी मगी
ममरि कै जासौ लाज गुरजन-वृन्द की।
'प्रेमघन' प्रेम मदिरा की मत वारी होय
खायै बुधि चैली भई मै मनाजरिन्द की।
भूल्यो उभय लोक सोक बीर जबही सौं आनि
बसी मन मेरे वाकी मूरति गुबिन्द की ॥[3]

श्रीकृष्ण गोपियो के प्राणवल्लभ हैं। कुब्जा की प्रीति का वश उन पर नहो चल सकता। लेकिन कुब्जा जादूगरनी हैं। उसके वशीकरण मन्त्र के प्रवाह म कृष्ण का आ जाना भी तात्कालिक वशीकरण मान्यता का द्योतक है।

कहावत तो हूँ स्याम सुजान।
प्रीति करी कुब्जा दासी सग सब अवगुन की खान।
तजि राधा रानो सी रमनी के उर अन्तर ध्यान।
कह व्रजराज कहा वह डाइन यह अचरज महान।
श्री 'वद्रीनारायन' जू ये कठिन लगन लगि जान ॥[4]

उद्धव का ज्ञानोपदेश गोपियो की प्रेम विह्वलता के सामने जलकर राख हो जाता है। वे अपने प्रियतम की चर्चा सुनना चाहती हैं।। उनके लिये ज्ञान की गरिमा का नहीं बल्कि प्रेम की महिमा की

१ वही, पृ० २४०।
२ वही, पृ० २४३।
३ प्रभाकेश्वरप्रसाद उपाध्याय (सपा०) प्रेमघन सर्वस्व, प्रयाग, पृ० १४०।
४ वही, पृ० १५६।

आवश्यकता है। उनका विश्वास अटल है कि श्रीकृष्ण का सन्देश निर्गुणोपासना के पक्ष में कभी नहीं हो सकता। वो रसिक है। उनके सन्देश में सरसता है, नीरसता नहीं—

ऊधो, बात कहो कुछ नीकी।
सुन्दर स्याम मदन मोहन की, माधव प्यारे, पी की।
कानि कानि जानि सिखावहु, मानो उनके जी की।
हम प्रेमिन तजि प्रेम नेम नहि मानत बतियाँ फीकी।
बरसाओ रस प्रेम 'प्रेमघन' और लगै सब फीकी।।[1]

और सगुण के तटों से प्रवाहित होती हुई सगुण की स्वरूप माधुरी ही पुष्ट पाई है। निर्गुण की असफलता हुई है। सगुण की सरसता का निर्वाह कवि पूर्ण रूप से करता है।

कवि रीतिकाल से प्रभावित है, लेकिन जहाँ तक भक्तिभाव का प्रश्न है वहाँ उसकी कविता में पुनीत भक्तिभावना का प्रवाह प्रवाहित होता है। कवि अपने प्रबन्ध काव्य 'अलौकिक लीला' में कृष्ण के जन्म से लेकर व्रज छोड़ने तक की कथा सुनियोजित ढङ्ग से प्रस्तुत करता है। लेकिन क्या मजाल कि कहीं भी शृङ्गार की अभिव्यञ्जना हो गये। बहुत ही आश्चर्य की बात है कि कवि की लेखनी ने अपनी चुलबुलाहट को पैग छोड़ दिया है। वास्तव में प्रेमघन जी का हृदय भक्तिभाव से भरपूर था। उनका रूप भी कुछ साँवलिया के सगोत्र था। यदि उनका सच्चा भक्त हृदय की अनुभूति न होती, तो इस प्रबन्ध में देशभक्ति और राजभक्ति की अभिव्यक्ति अवश्य होती। क्योंकि तद्युगीन समाज की धमनियों में यही भाव हिलोरे मार रहा था। अपनी भक्तिपरक रचनाओं में प्रेमघन जी रीतिकाल की विचारधाराओं को एक दम भूल ही गये हैं 'प्रेमघन' इस युग के कवियों के सामने एक माइलस्टोन की भाँति अपनी भक्ति सम्बन्धी रचनाओं को लेकर खड़े हैं।

पं० प्रतापनारायण मिश्र

कविवर मिश्र प्रतापनारायन प्रेम प्रमानी।
भारतेन्दु-अनुगामि रंगीलो नवरस-स्वामी।
हिन्दी हिन्दू प्रान विविध भाषा-गुन-ग्याता।
पूरो प्रतिभावान, हास्य प्रिय सुभट-विधाता।।[2]

जीवन रेखा

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का जन्म कानपुर में आश्विन कृष्ण ९ चन्द्रवार सं० १८१३ को हुआ था।[3] इनका नामकरण इनकी चाची ने किया जो श्रीरामानुज सम्प्रदाय की थी, क्योंकि उनके पितृकुल के सभी लोग इसी धर्म को मानते थे, इसलिए मिश्र जी का नाम भी उन्होंने अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही रखा था।[4] ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता जी का नाम संकटाप्रसाद मिश्र था। मिश्र जी अपने पिता के इकलौते पुत्र थे।

---

१ प्रभाकेश्वरप्रसाद उपाध्याय (सम्पा०) प्रेमघन सर्वस्व, प्रयाग, पृ० २०७।

२ वियोगी हरि कविकीर्तन, पृ०७१।

३ डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य, युगवाणी प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, २०२१ वि०, पृ० ३।

४ ब्राह्मण, खण्ड ५, सं० ४ (प्रतापनारायण मिश्र प्रताप चरित्र)

मिश्र जी की पढ़ाई सर्वप्रथम संस्कृत में तथा ज्योतिष से प्रारम्भ हुई।[1] इनके पिता ज्योतिष के अच्छे विद्वान् थे। संस्कृत और ज्योतिष की नीरस पढ़ाई में इनका चित्त नहीं जमा। परिणामस्वरूप इन्होंने मिशन स्कूल में प्रवेश लिया। वहाँ भी मन नहीं लगता था, लेकिन येन-केन प्रकारेण १६ वर्षों तक यह क्रम चलता रहा। इसी वर्ष इनके पिता का देहान्त हो गया और अध्ययन का क्रम टूट गया। अब आप घर पर ही पढ़ने लगे। अध्ययनशील व्यक्ति थे। इसलिए फारसी, अंग्रेजी, संस्कृत और बंगला का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

मिश्र जी मस्त तबियत के फक्कड़ व्यक्ति थे। अपनी अनियमितता के कारण ये बराबर रोग से ग्रस्त रहते थे। इस तरह की रोगावस्था में भी अपनी मस्ती और मौज अपनी स्वच्छन्द प्रकृति को दर्शाता था। डा० सुरेशचन्द्र के शब्दों में—उनमें घुमक्कड़पन, मस्तमौलापन, फक्कड़पन और अल्हड़पन कूट कूट कर भरा था पर इसका अर्थ यह नहीं कि वह उच्छृंखल थे।[2] वे सीधे सादे बड़े गम्भीर व्यक्ति थे। इनकी भाव प्रवणता बड़ी निराली थी।

मिश्र जी को साहित्यिक वातावरण परिवार से विरासत में मिला था। इनके पूर्वज बड़े धार्मिक साहित्यानुरागी थे। गृहकार्य से जो भी समय मिलता था भजन-पूजन में लगाते थे। पिता भी ज्योतिष के विद्वान थे। साथ ही पिता जी के सहयोग से कानपुर के प्रतिष्ठित लोगों से आपका सम्पर्क बहुत ही अच्छा बन गया। इस तरह आपने अपनी अल्पावस्था में ही सहज जन-सम्पर्क कायम कर लिया।

बचपन से ही मस्तमौली थे। अपनी साहित्यिक रुचि के कारण साहित्यकारों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लिया। अपने स्कूली जीवन से ही कविवचनसुधा को बड़ी रुचि से पढ़ते थे और इसी से उन्हें काव्य रचना की प्रेरणा मिली।[3] अतः भारतेन्दु जी को अपना काव्य गुरु और आराध्य-देव मानने लगे।[4] फिर तो भारतेन्दु जी के ये कृपापात्र ही बन गये। भारतेन्दु जी ने इनकी प्रेमपुष्पावली की प्रशंसा इन शब्दों में की है—

हमने पं० प्रतापनारायण मिश्र जी की बनाई हुई प्रेमपुष्पावली देखी। इसके विषय में कुछ विशेष लिखना नहीं चाहता केवल इतना ही लिख देता हूँ कि इसमें वह सुगन्ध है जो औरों में नहीं पाई जाती और आपके दर्शन मात्र पाठकों को लुभाते हैं। सब को चाहिये कि इसे धारण करें। इस भूमिका के अतिरिक्त यों पुष्प एक अनूठा रत्न होगी[5]।

मिश्र जी ने ब्राह्मण होते हुए भी हिन्दी साहित्य की भरपूर सेवा की थी। हिन्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तान के प्रबल हिमायती थे। ये सामाजिक विषमता के प्रति उदार होते हुए भी कट्टर स्वाभिमानी थे।

पारिवारिक व्यवस्था

मिश्र जी का परिवार साधारण स्थिति का ब्राह्मण था। पितामह रामदयाल मिश्र अच्छे कवि थे पर इनका बचपन देहात में बीता जाता। संवत् के अभाव में सब सुख हो गया।[6] परिवार में भजन पूजन का महात्म्य बढ़ रहा था। इसका सर्व प्रथम कारक था। परिवार का धार्मिक वातावरण

---

१ [illegible] भारतेन्दु मण्डल पृ० ९९।
२ डा० सुरेशचन्द्र गुप्त : प्रतापनारायण मिश्र व्यक्तित्व और कृतित्व पृ० ७।
३ वही पृ० १४।
४ ब्राह्मण (हिन्दी) प्रतापनारायण मिश्र सम्पादक कानपुर १५ अक्टूबर १८८९, ई०।
५ डा० विनोदशंकर गुप्त : भारतेन्दु और उनके प्रमुख सहयोगी कवि, पृ० ३८३।
६ प्रतापनारायण मिश्र : ब्राह्मण, खण्ड [illegible] संख्या ३।

उनके हृदय मे भक्तिसत्ता को प्रस्फुटित किया। ब्रजरत्नदास ने लिखा है कि धर्म के प्रति भी यह परम उदार थे और इन्होंने अन्य धर्मों से कभी घृणा नही की। यह थे जन्मत सनातन धर्मी। 'शैव सवस्व' से शैव ज्ञात होते हैं। आर्य समाज, ब्रह्मसमाज सभी के उत्सवों में ये बहुधा सम्मिलित होते थे। इनका सिद्धान्त 'प्रेम एव परोधम' था और यह सच्चे भक्त थे।[1]

मिश्रजी मे प्राचीनता के प्रति मोह कम है। ये सतकाव्य जगत अपनी आस्था कम रखते हैं। फिर भी इनके कुछ भजनो पर कबीर का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कवि ने निस्सारता की चर्चा करते हुए लिखा है—

साधो मनुवा अजब दिवाना।
माया मोह जनम के ठगिया तिनके रूप भुलाना॥
छल परपच करत जगधूनत दुख को सुख करि माना।
फिर फिर तहाँ भी तनिक नही है अत समय जह जाना॥
यहि मनुवा को पाछे चलि के सुख का कहाँ ठिकाना।
जो परताप सुखद को चिन्हे-सोई मरम सयाना॥[2]

कवि को विश्वास है कि यहाँ कोई किसी का नही है, केवल अपना कर्म ही सच्चा साथी है। अत वह मानव मात्र के लिये चेतावनी देता है—

जागो भाई जागो रात अब थोरी।
काल चोर नहि करन चहत है जीवन धन की चोरी॥
औसर चूके फिर पछितैहो हाथ मीजि सिर फोरी।
काम करो नहि काम न ऐहैं बातें कोरी कोरी॥
जो कुछ बीती बीत चुकी सो चिन्ता ते मुख मोरी।
आगे जामे बनै सो कीजै करि तन मन इक ठौरी॥
कोऊ काहु को नहि साथी मात पिता सुत गोरी।
अपने करम आपने सगी औंर भावना भोरी॥
सत्य सहायक स्वामि सुखद से लेहु प्रीति जिय जोरी।
नाहि तु फिर परताप हरी कोऊ बात न पूछिहै तोरी॥[3]

प्रतापनारायण जी भक्ति-साधना के क्षेत्र में फैले हुए मतवादों से अपने को बराबर अलग रखे। उनका कहना था—

झूठे झगडा से मेरा पिण्ड छुडाओ।
मुझको प्रभु अपना सच्चा दास बनाओ॥[4]

कवि आगे अपनी प्रवृत्ति का उल्लेख करता है—

न कभी हूँ किसी मजहब का न पाबन्द मिल्लत का।
किसी अपन का कोई एक हूँ बन्दा मुहब्बत का॥[5]

१ ब्रजरत्नदास भरतेन्दु मडल पृ० ६८

२ नारायणप्रसाद अरोडा एव सत्यभक्त प्रताप लहरी, मीष्म एण्ड ब्रदर्स, [illegible] सस्करण, सन् १९४९ ई०, पृ० १८।

३ वही, पृ० १९।

४ वही, पृ० ८५।

५ ब्राह्मण, खण्ड ५, स० ६ (उसकी मुहब्बत)।

मिश्र जी भक्ति के क्षेत्र मे एक अलग राह ही अपना चुके थे, जहाँ तर्क और वाद विवाद का कोई महत्व नही था। वहा वे केवल समन्वय की सुरसरि म अपने को सराबोर पाते थे। एक प्रेम के प्याले मे उन्होंने सभी मतो को मिला दिया है। उनकी समन्वयात्मक दृष्टि स्तुत्य एव वरेण्य है—

वाद विवादन म फसि प्रानी नाहक जनम गवावै रे।
सुख चाहे तौ दुबिधा तजि कै चाहे न हरि गुण गावै रे ॥[1]

व प्रेमोपासक थे। यह सृष्टि उनके ईश्वर की सृष्टि है। इसकी विशालता देखकर वे आत्मविभोर एव विस्मित हो जाते है। यत्र तत्र सवत्र उस ईश्वर का प्रेम ही दिखलाई पडता है। विश्व मे समुद्र म अग्नि मे उसी की सत्ता विद्यमान है। कवि के प्रेमदेव की छटा अकथनीय है—

चहुँ ओर मेरे नाथ की महिमा अमित लखि परे हो।
सब भाति सब समर्थ है, अकथ प्रभुता करे हो ॥
चल देख प्यारे विपिन मे जह विटप अगनित खरे हो।
जल देन को तुम म गयो ? तौहूँ रहत नित हरे हो ॥
चल देख प्यारे समुद्र म अति अगम जल जह भरे हो।
बचत न कहुँ कुछ देखिये हर ठौर ते नहिं टरे हो ॥
चल देख प्यारे अगिन म जह सब पदारथ जरे हो।
विद्वान् मूरख एक को तेहि बिन न कारज सरे हो ॥[2]

और उसका ब्रह्म, वह तो सभी ज्ञान का भण्डार है, दया का सागर है। वह सदैव अहकार को मिटाता है—

सभी ज्ञान का जो कि आगार है दया का बडा जोकि भडार है।
है मिटाता सदा जो अहकार है, उसे ही हमारा नमस्कार है ॥[3]

उनका प्रेम तो चरमोत्कर्ष पर तब पहुचता है जब कि कवि सासारिक प्राणियो से उस अरूप भगवान् को सरूप रूप म नह नयन से देखने को कहता है। कवि भ्रम म नही डालता बल्कि स्पष्ट शब्दो म कह देता है कि ससार के सुदर रूप को देख लो—

जो काउ ब्रह्म अरूप को, देख्यो चहै सरूप।
नेह नयन सौं लेहि लखि जग के सुन्दर रूप ॥[4]

उसका ब्रह्म न तो सगुण है और न निर्गुण। वे प्रभु के सच्चे उपासक हैं। उनका प्रभु सच्चा है। उसकी आभा ससार म व्याप्त है। वह अरूप होते हुए भी इस प्रकार सरूप है। अत उन्होने सगुण और निर्गुण के बखेडे को सृष्टि को प्रभु का रूप मानकर खत्म कर दिया है—

अगुण सगुण व्यापक पृथक अगणित रूप अरूप।
अमित महिम अचरज्जमय जय जय त्रिभुवन भूप ॥[5]

यदि भक्त भगवान् का दशन चाहता है तो वह देख सकता है। कवि के अनुसार सारी सृष्टि ही भग

---

१ नारायणप्रसाद अरोडा (सपादक) प्रताप लहरी, कानपुर १९४९, पृ० १८३।
२ वही प्रेमपुष्पावली, पृ० १५१।
३ नारायणप्रसाद अरोडा (सपा०) प्रताप लहरी, कानपुर १९४९, पृ० २५६।
४ प्रेमस्तोत्र, ब्राह्मण, खण्ड ८, सख्या ४।
५ नमो प्रेम भगवान्, वही, खड ५, स० १।

धान् स्वरूप है। ज्योंही प्रेम का सिंधु उमड पडता है, ठीक उसी समय भगवान का दर्शन हो जाता है—

प्रेम सिन्धु उमगत उर जबही, ईश्वर मिलत ततच्छन तबही ॥
औरहु सुनि राखहु बुध भूपा, यदपि जगत पति अतनु अरूपा ॥
पै भक्तन की रुचि अनुसारा, दरश देहु नित प्राण पियारा ॥[1]

अत कवि प्रेम को ही सर्वोपरि मानता है। उसकी दिव्य दृष्टि के सामने सासारिक माया मोह सभी तुच्छ है। यदि सच्चा है तो केवल इश्क ! यह ससार ही बखेडा है। कवि के शब्दो मे—

दीदारी दुनियादारी यह नाहक का उलझेडा है।
सिवा इश्क के, यहा जो कुछ है निरा बखेडा है ॥[2]

अत कवि अपने प्रेमदेव का ध्यान करता है। उसी मे वह तन्मय दीखता है। वह उसी का हो चुका है। उसकी तन्मयता इतनी बढ जाती है कि सिवा उसके ध्यान के उसे कुछ अच्छा नही लगता है—

सिवा तेरी सूरत के देखना और तो कुछ भाता नहीं।
मेरे प्यारे चैन मुझको तुझ बिना आता ही नहीं ॥

अत वह उसकी आराधना मे मस्त दीख पडता है—

प्रभु मन्दिर की नीरवता मे
कर विलीन अपन मन प्राण
धर्म धुरीण हिन्दुओ को है
धरते देखा मैंने ध्यान।
देखा है करते-करते मस्जिद मे
मुल्ला को भी दीर्घ पुकार
पडी कान म गिरिजाघर की
मधुर प्रार्थना की स्वर धार ॥[3]

यहाँ कवि की समन्वयात्मक दृष्टि बडी उच्च है। उसकी जितनी भी प्रशसा की जाय वह थोडी है। भगवान् तक पहुँचने का उसका रास्ता अनोखा है। वह मदिर मस्जिद और गिरिजाघर को एक म मिला देना चाहता है।

मिश्र जी की भक्ति मे उनका प्रेम-पथ बडा ही निराला है। वस्तुत प्रेम-पथ निराला होता है। इस पथ पर कोई विरला ही चलता है। मिश्र जी इसके कष्टो की परवाह नही करते। उन्होने अपने को उसका गुलाम स्वीकार कर लिया है, फिर तो कष्टो की क्या बात—

तुम्हारे जब हो चुके तो फिर अपने स रहा कुछ काम नही।
मरजी से तुम्हारी कभी सर फेरें हम वह गुलाम नही ॥
सहगे सब दुख आखो से उज्र का लेंगे नाम नही।
हाँ अर्ज है इतनी कि बिन देखे दिल को आराम नही ॥[1]

यहा 'साहब' कबीर का ही साहब दीख पडता है। निर्गुण परम्परा की छाप स्पष्ट है।

---

१ श्री प्रेमपुराण, वही, खड ३, स० ९ १०।
२ नारायणप्रसाद अरोडा (सपादक) प्रताप लहरी, मन की लहर, पृ० ७५।
३ रामनरेश त्रिपाठी (सपादक) कविता कौमुदी, २ पृ० ४७७ ७८।
१ नारायणप्रसाद अरोडा (सपादक) प्रताप लहरी, मन की लहर पृ० ८६।

कवि एक और पद मे भी अपने को भूल कर गुलाम मान रखा है—

कहने सुन्ने को था मुझ पास एक दिले नाकाम अपना।
मुद्दत गुजरी, बनाया तूने उसे गुलाम अपना॥
अब तो तेरे सिवा न कोई खुदा न कोई राम अपना।
जो कुछ है तो तू ही है और से क्या है काम अपना॥
तेरी याद याद मैं भूल गया अब आज जो अंजाम अपना।
किसे खबर है, कहाँ हूँ ? कौन हूँ ? क्या है नाम अपना॥[1]

अत वह अपने को भगवान् की मर्जी पर छोड देता है। इस तरह की अनन्यता देख पाठक विस्मय विमुग्ध हो जाता है। निणय नही हो पाता कि कवि भक्त-काल परम्परा का निर्वाह करता है कि सधिकाल मे खडा हो आधुनिक काल की अगवानी करता है। इस प्रकार वह यश अपयश सभी को विस्मृत कर प्रेम की हर दशाओ के लिये तत्पर है—

इस मुरशद के पैरा इस आका के खिदमतगार हैं हम।
हर सूरत से, हजरते इश्क के ताबेदार हैं हम॥
इश्क अगर है खुदा तो उसके बदए गुनहगार हैं हम।
इश्क जो बुत है तो उसके लिये अहले जुनार हैं हम॥
इश्क अगर ईमान है तो पाबन्दे शरए दीदार हैं हम।
इश्क कुफ्र है, तो कहते क्या डरिए कुफ्फार हैं हम॥[2]

विशेष कर मिश्र जी की भक्ति धारा दास्य और दाम्पत्य के कगारो से होकर बही है।

दास्य भाव में उनका दैन्य बडा प्रबल है। उसका विश्वास है कि भगवान् ने गनिका, गज और गीध जैसे पापियो को तारा है। अब वे लोग नही हैं। यहाँ तो केवल अब पापी प्रताप ही बच गया है। अत भगवान् से वह प्रार्थना करता हैं—

आगे रहे गनिका गज गीध सुतौ जब कोऊ दिखात नही हैं।
पाप परायन ताप भरे 'परताप' समान न आन कही हैं॥
है सुखदायक प्रेमनिधे जग यो तो भले और बुरे सबही हैं।
दीनदयाल और दीन प्रभो, तुम से तुमही हमसे हम ही हैं॥[3]

इसीलिये तो कवि अपने को प्रेमदास कहा करता था। प्रेम की प्रशस्ति म उसकी कवित्व प्रभा निखर उठी है—

प्रेम बिना नहिं देखेहु भावत पूत कपूत जो आतम जात है।
प्रम भए निज सवसु वारिए तापर जासो न नेकहुँ नात है॥
ब्रह्म सदा सबही ते परे, सोउ प्रेम के नाते सखा पितु मात है।
'नेह सगा तो सगा' बस सत्य है सत्य है, प्रेमहि ते सब बात है॥[4]

अत वह ईश्वर की शरण तज कर अन्यत्र नही जाना चाहता। उसका लघुत्व उसकी दैन्यता को प्रकट कर देता है—

१, वही, पृ० ८०।
२ नारायणप्रसाद अरोडा (स पा०) प्रताप लहरी मन की लहर, पृ० ६५।
३ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, प्रतापनारायण मिश्र, पृ० १०७।
४ नारायणप्रसाद अरोडा (संपादक) प्रताप लहरी, पृ० २०३।

मेरो दूसरो नहिं द्वारा ।
दीन बन्धु कृपायतन ! म सर्वाहि भाँति तुम्हार ॥

दाम्पत्य भाव की उपासना मे मिश्र जी अपने को स्त्री तथा भगवान् को पुरुष मानकर सत परम्परा की कोटि मे जा बैठते हैं । कवि की यह प्रेमोपासना अवलोकनीय है—

करो प्रिय अब तो जीवन दान ।
तुम बिन बुरी बियोगिन की गति निकस पैठत प्राण ॥
कबहुँ कैसेहु सुधिहु भई तो नाहिन दूजो ध्यान ।
द्वारे की दिशि देखि रहत धरि, पग आहट पर कान ॥
मुख ते कढत अध खुले अखरन हा गुण रूप निधान ।
बिन तव दश सुधा परतापहि रहुतो उपाय न आन ॥[1]

कवि की अभिव्यक्ति मे भक्तिकालीन कवियो की भाति उपदेशात्मकता भी पाई जाती है । वह मनुष्य को इधर उधर भटकाने से मना करता है । यहा वह कबीर की पक्तियो से मुकाबला करता है—

मनुआ काहे इत उत धावै ।
मतवालेन की चाल सीखि कै नाहक बुद्धि गवावै ॥
मसजिद मन्दिर औ गिरजे मे दौरत पाव थकावै ।
घट के भीतर साहब बैठा तेहिते लो न लगावै ॥
अपने हाथन अपनी महिमा लिखि लिखि दुनिया गावै ।
विना पढे एक प्रेम की पोथी कबहु मरम न जावै ॥[2]

उसे तो केवल अपने प्रभु पर विश्वास है । उसी के आसरे वह बैठा है । वह जानता है कि उसके सिवा दीनो का हितकारी और कोई नही है—

शरणागत पाल कृपाल प्रभो ! हमको इक आश तुम्हारी है ।
तुम्हरे सम दूसर और कोऊ नहिं दीनन को हितकारी है ॥
परवाहि तिन्हें नहिं स्वगहु की जिनको तव कीरति प्यारी है ।
धनि है धनि है सुखदायक जो तव प्रेम-सुधा अधिकारी है ॥
सब भाँति समर्थ सहायक हो तव आश्रित बुद्धि हमारी है ।
प्रतापनारायण तो तुम्हरे पद पकज पे बलिहारी है ॥[3]

वह भगवान जिनके कोई नही है, उनका वह कर्णधार है । उसकी महिमा अपार और अपरम्पार है । उसे कोई बिरला ही समझ सकता है—

पित मातु सहायक स्वामि सखा तुमही इक नाथ हमारे हो ।
जिनके कहु और अधार नहीं तिनके तुम ही रखवारे हो ॥
भूले हम हो तुम तुम को तुम ता हमारी सुधि नाहि विसारे हो ।
उपकारन को कुछ अन्त नही छिन ही छिन जो विस्तारे हो ॥
महराज महामहिमा तुम्हारी समुझे विरले बुधिवारे हो ।
शुभ शाति निकेतन प्रेमनिधे मन मन्दिर के उजियारे हो ॥

---

१ प्रेमप्रमाण, ब्राह्मण खण्ड ३, स० ११ ।

२ नारायण प्रसाद अरोडा (सपादक) प्रताप लहरी, प्रेमपुष्पावली, पृ० १४५ ।

३ रामनरेश त्रिपाठी (सपादक) कविता कौमुदी, भाग २, १९७७, पृ० ६६ ।

यहि जीवन के तुम जीवन हो इन प्रानन के तुम प्यारे हो।
तुम सो प्रभु पाप प्रताप हरी किहि के अब और सहारे हो ॥[1]

यहा कवि अपनी बात कहते कहते लोकजीवन की बात कहने लगा है। इस तरह उसकी भक्ति-भावना मे स्वान्त सुखाय की भावना नही बल्कि परान्त सुखाय की भावना प्राप्य है।

और जब वह अपनी बात कहने लगता है तब वह सूर और तुलसी की भाँति ही भगवान् से कहता है कि हे प्रभु तुम्हें छोडकर किसकी शरण मे जाऊँ—

प्रभु तजि शरण काको जाउ।
आश करिये योग जन के एक ही तो ठाउ ॥
तिनहु की सुधि लेत जो जानत न दाहिन बाउ ॥
कौन ऐसो और जाको प्रणत पालक नाउ ॥
कौन सुख लूटत जो जग के फिरत पूजत पाउ ॥
कौन दुख मोको जो तेरे आसरे ऐडाउ ॥[2]

मिश्र जी प्रेमी जीव थे। उनकी प्रेमोपासना म राधा का वियाग और सयोग का वर्णन न किया जाय तो लगता है कि भक्ति परम्परा का पूर्ण रूपेण निर्वाह नहा हो पाया है। अत उनकी माधुर्य भक्ति की ओर भी दृष्टपात कर लना समीचीन प्रतीत हाता है।

कवि ने उद्धव-गोपी प्रसग वर्णन बडे ही कुशल कलाकार की भाति प्रस्तुत किया है। राधिका के सामने उद्धव कृष्ण का सन्देश लेकर खड़े हैं। विरह विन्न राधा का मन-मयूर सयोगकालीन सुखद स्मृतिया से मुर्च्छित हो जाता है—

सीचि सीचि चन्दन सुगन्धन सी अग ऊधौ,
फूलन सो सावरे छबीले छवि लटके।
कुज कुज बेलिन म नवल-नवेलिन मे,
लैन्ल प्रताप डोल ओट पीत पटके ॥
ते गात मेरे अब राखन चढाइबे को
सावरो पढाई जो पाती जग जटकै।
ऊधौ उपाय अब दूसरो न आनि रह्यो,
तजि है परान अब काह कान्ह रटिके ॥[3]

इस तरह कवि गोपिया की भावन्शा का वणन करने मे अपनी कान्य प्रतिभा का पूण परिचय देता है।

अस्तु उद्धव जब मथुरा जाने लगते हैं तब गोपिया की दीनता प्रबल हो जाती है। उनका निवेदन बडा ही मार्मिक है—

आखिन ते आसू के प्रवाह नित व्यापे रहें,
कोर भये शोभा प्रताप कुच पटके।

---

१ रामनरेश त्रिपाठी (सपादक) कविता कौमुदी, भाग २, हिन्दी रत्नमाला कार्यालय, प्रयाग, पष्ठ सस्करण, १९७७, पृ० ७०।
२ नारायणप्रसाद अरोडा (सपादक) प्रतापलहरी, प्रेमपुष्पावली, पृ० १४५।
३ नारायणप्रसाद अरोडा (सपादक) प्रताप लहरी पृ० १८५।

आह के दाह मे दहत निशिवासर देह,
कुशल कलेवर म खाल रह्यो सटके ॥
अधो जो कृपा करि कहियो संदेशो ऐ तो,
गहि के चरण सरोज वा नट के।
ब्रज की नेवली विरहाकुल वियोग धारी,
तजि हैं परान अब कान्ह कान्ह रटिके ॥[1]

इस प्रकार मिश्र जी भक्तिभावना मे किसी प्रकार का मिश्रण नहीं है। उनके हृदय म एक प्रेम की टीस है जो सच्चे भक्त हृदय की विभूति है। उन्हे भक्त हृदय प्राप्त था और उनकी अनुभूतियो मे भक्ति की भागीरथी तरगायित थी। डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल न लिखा है कि इनमे एक ओर कबीर की सी प्रेमाकुलता है तो दूसरी ओर तुलसी और सूर की-सी अनन्यता तन्मयता और सगुणोपासना के प्रति निष्ठा है।[2] मिश्रजी की भक्ति म भक्तिकालीन परम्परा का पूण निर्वाह हुआ है। कबीर, सूर, तुलसी आदि इनके प्रेरक रहे हैं। भक्ति के उद्गारो मे कवि की अनन्यता, तन्मयता और दैन्यता दशनीय है। सचमुच म उनके हृदय की कोमलता ही भक्ति के रूप मे फूट पडी है। अत उन्हें निश्छल भक्त कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

ठाकुर जगमोहन सिंह

कवि जगमोहन सिंह सखा श्री भारतेन्दु का।
मधुकर लोलुप लीन काव्य-पियूष बिन्दु को ॥
रितु सहार सु मेघदूत' रचना चित करष।
स्यामा स्वप्न प्रबध अलौकिक आनद बरषे ॥[3]

जीवन रेखा

ठाकुर साहब का जन्म विजयराघवगढ दुग म स० १६१४ वि० को हुआ। उस दिन श्रावण शुक्ल चतुर्दशी थी। आप अपने पिता सरयूप्रसाद सिंह की एक मात्र सतान थे। इनके पूवज राठौर आमेराधिपति के वशज थे। यह वश लहुरे भाई के नाम स प्रसिद्ध था। फलस्वरूप जागीरें ही प्राप्त करने का अधिकारी हो सका।'[4] ठाकुर साहब के पिता को सन १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता सग्राम के समय कालेपानी की सजा मिली थी। लेकिन आत्महत्या के लिये मृत्यु ही को इन्होंने वरण किया और स्वय आत्महत्या कर ली।

ठाकुर साहब अल्पवय म ही पितृ सुलभ मधुर प्यार से वचित हो गये। अत नौ वष की अवस्था मे सरकार की ओर से आपकी शिक्षा की व्यवस्था हुई। आँग्ल महाप्रभुओं की कृपा से आप, वाड स इस्टिट्यूट, क्वीस कालेज बनारस भजे गये। यही आपन हिन्दी, सस्कृत और अग्रजी का ज्ञान प्राप्त किया। आप बडे ही अध्यवसायी व्यक्ति थे।

सन् १८५७ ई० की प्रज्वलित अग्नि म ही आपकी मातृभूमि मे इतिहास का नया पृष्ठ खुल गया

---

१ वही, पृ० १८५।
२ डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल प्रतापनारायण मिश्र जीवन और साहित्य, पृ० २२५।
३ वियोगी हरि कवि-कीर्तन, १६२८, पृ० ६६
४ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूव स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० ११०।

राजधानी पर अंग्रेजो का कब्जा हो गया था। अंग्रेजो द्वारा ही आपकी शिक्षा हुई थी। अत अंग्रेजो ने अध्ययन के बाद तुरत ही आपको तहसीलदार के पद पर नियुक्त कर लिया। ठाकुर रायबहादुर हीरा लाल, बी० ए० के वक्तव्य से इस तथ्य की पुष्टि होती है। उन्होंने लिखा है कि 'विद्याध्ययन पूरा करने पर सरकार ने आपको तहसीलदार के पद पर नियुक्त किया, जिससे आपको मध्यप्रदेश के अनेक भागो मे भ्रमण करने और वन-श्री का प्राकृत सौंदर्य देखने का अवसर मिला आप सरकारी नौकरी मे आदि से अंत तक तहसीलदार ही बने रहे, क्योकि आप बडे स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे डिप्टी कमिश्नरो अथवा कमिश्नरो की भी कुछ परवाह नही करते थे।[१]

ठाकुर साहब ने बनारस म रहकर केवल उर्दू, अंग्रेजी, हिंदी आदि भाषाओ की शिक्षा ही नही प्राप्त की, बल्कि कवि शिक्षा भी उन्हे यही प्राप्त हुई। व्रजरत्नदास ने लिखा है कि इन्हें छात्रावस्था ही मे कविता करने तथा गद्य लिखने का शौक हो गया और उसी समय कई छोटे छोटे संस्कृत काव्यो के पद्यमय अनुवाद किये। इनमे से कई उसी समय प्रकाशित भी हो गये थे।[२]

ठाकुर साहब बडे ही प्रेमी जीव थे। काशी मे रहने समय भारतेन्दु जी से आपने परिचय प्राप्त कर लिया। आप दोनो म अत्यन्त स्नेह हो गया। 'दोनो की प्रकृति प्राय एक सी थी और प्राय मिलते रहने तथा साहित्य चर्चा स ठाकुर साहब भी मातृभाषा की सेवा मे दत्तचित्त हो गये।'[३] अत भारतेन्दु जी का ठाकुर साहब के व्यक्तित्व एव कृतित्व पर प्रभाव स्पष्टरूपेण पडा है।

साहित्य सेवा की तरफ वाराणसी और विशेषकर भारतेन्दु के सहवास ने इन्हे प्रेरित किया। फलस्वरूप सरकारी नौकरी से ज्योंही कुछ अवकाश मिलता, ये साहित्य सेवा की तरफ जुट जाते। प्रलय नामक कविता तथा 'आकार चन्द्रिका' खण्डकाव्य इसी प्रयास के प्रसून हैं।

आप बहुत ही स्वतन्त्र व्यक्ति थे। फलस्वरूप अपनी स्वच्छन्दता के कारण ये नौकरी म विशेष उन्नति नही कर सके। जीवन के अन्त मे आप प्रमेह रोग से पीडित हो गये। अत नौकरी से मुक्ति-लाभ प्राप्त कर ४ मार्च १८९९ ई० को दिवगत हुए।

भक्ति भावना

ठाकुर साहब स्वच्छन्द प्रकृति के एक भक्त जीव थे। उनका जीवन बडा ही विलासपूर्ण था। एक तो वे विलास एव विनोदप्रिय घराने के थे ही, दूसरे जीवन म प्रवेश करते ही उन्हें सरकारी नौकरी मिली। अत श्यामा नामक एक सोनारिन स इनका अगाध स्नेह हो गया। इसी श्यामा के स्नेह से श्यामास्वप्न नामक उपन्यास का प्रणयन हुआ।

श्यामा के मधुर प्रेम से कवि का जीवन श्याममय हो गया। उनके अन्तस्तल मे भक्ति की जो पावन धारा निःसृत हुई वह श्यामा के मधुर सहवास स ही। श्यामा की सलोनी मूर्ति ने मानो ठाकुर साहब के मन मयूर को बाँध कर विवश कर दिया। अत ठाकुर साहब ने अपने चित्र संग्रह म अप्रतिम सुन्दरी श्यामा का चित्र संजोकर रखा था। फलस्वरूप कवि की कविता का समस्त वस्तुविधान श्यामा के इर्द गिर्द चक्कर काटता है।

ठाकुर साहब को श्यामा के साहचर्य से प्रेमतत्त्व की सच्ची अनुभूति हो चुकी थी। इसीसे उनके काव्य म प्रेम-परक शृंगार प्रभूत मात्रा म विद्यमान है, वस्तुत मौलिक है। कवि स्वय अपनी

१ राय बहादुर हीरालाल, बी० ए० कविवर ठाकुर जगमोहन सिंह, द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १४६।

२ व्रजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, कमलमणि ग्रंथमाला, काशी, प्रथम संस्करण, २००६, पृ० ८८।

३ वहीं, पृ० ८८।

श्यामा का श्यामसुन्दर है। अत वह उसके नयन शर से बचता नही, घायल होता है। फिर तो लोक लाज का बाध टूट जाता है और कवि प्रेमलक्षणा भक्ति की उद्घोष करता है—

लोक लाज की गाठरी पहिले देहु डुबाय।
प्रेम सरोवर पथ मे पाछे राखो पाय॥
प्रेम सरोवर को यहै तीरथ गैल प्रमान।
लोक लाज का गल को देहु तिलुजुलि दान॥[1]

कवि को एक मात्र प्रेम का ही अवलम्बन है—

एम प्रेम अवम्ब तुमहिं मूरति जु प्रेम कर।
गावत श्रुति व्यासादि भक्त प्रन रोपि रोपि घर॥[2]

प्रेम सयोग और वियोग दानो की मधुर लीलाओ का केन्द्र स्थल है। ठाकुर जी के काव्य साहित्य म प्रेम की प्रमुखता है। उन्होने श्यामा को आधार मानकर सयोग और वियोग की भावनाओ को अभिव्यजित किया है। यही कारण है कि डा० रामचन्द्र मिश्र, ठाकुर साहब के काव्य मे भक्ति भावना मान लेना एक साहित्यिक त्रुटि मानते हैं[3]। वस्तुत ऐसी बात नही है। श्यामा है तो उनकी प्रेमिका श्यामा का साहचय सोन मे सुगन्ध का काम करता है। कवि की अनुभूतिया के मूल मे वस्तुत वासना की गध होती तो वह श्यामा और श्याम की वदना भव भय तरन की कामना के निमित्त नही करता। कहाँ श्याम के पार्थिव शरीर स प्रादुभूत प्रेम कहा श्यामा श्याम के वदन से चारो फल के मूल की प्राप्ति। बडी ही अनहोनी बात लगती है। अत निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कवि हरिदासी सम्प्रदाय के श्यामा श्याम का उपासक है। भावनाओ म माधुर्य की कल्पना तो तद्युगीन कविता की प्रमुख धारा है। अत कवि का सवथा उसस बचना असत्य तो नही, लकिन कठिन अवश्य है।

बन्दौ श्यामा श्याम चारहु फल को मूल।
करहु मार उर धाम हरहु पीर अन पाइनी॥
विनय करौ कर जोर सुनु जगमोहन लाडली।
करहु दया की कोर तुअ प्रभाव भव भय तरत॥[4]

कवि के हृदय मे भक्ति का बीज श्यामा के द्वारा पड गया है। उसे अनुकूल हवा, पानी और मिट्टी की आवश्यकता है। जब कभी अनुकूल वातावरण का सृजन होता है, तब कवि गोपी या सखीभाव से उपासना करन म चूकता नही। उसका भक्त हृदय जब राधा के विरहातुर हृदय की दुदशा को नही बर्दाश्त करता तो लौकिक मर्यादा का अतिक्रमण कर जाता है और तब कृष्ण वृषभानु-सुता के पाव पलोटते दृष्टिगोचर होते हैं—

मान समय वृषभानु सुता के चरन पलोटे।
बस वियोग सहि विरह आचपरि सीस खरोटे॥[5]

---

१ डा० श्री कृष्ण लाल (सपादक) श्यामा-स्वप्न नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ६०।
२ वही, पृ० १५८।
३ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का स्वच्छन्दतावादी काव्य प० ११८।
४ ठा० जगमोहन सिंह श्यामा स्वप्न, सपादक डा० श्री कृष्णलाल, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १६४।
५ वही, पृ० १५९।

ठाकुर साहब भगवान् के थे। उनका भगवान् पर भरोसा था। यदि उनका भगवान् भक्त की करुणा पुकार सुनकर द्रवीभूत नही हो जाता तो उसके दयानाथ आदि सभी नाम झूठे हैं—

कौन सुजस तुम नाथ गाइहो सो किन भाखो।
मेरी ओर न करी दया की कोर जु साखो॥
तुमने अपुने नाव सरिस गुन कौन दिखाये।
कौन भरोसे आरत दुख दारत कहवाए॥
सो न आजु कहि देहु घनश्याम दु ख दूरी करन।
करि करिया अब हेरिए दीनभक्त जोरे करन॥
तुम सवन कहाय जो न मम परिहि जोई।
तौ झूठे सब नाम तिहारे जगतल होई॥[1]

अत कवि दु ख सहते सहते थककर प्रभु से उसकी कृपा मे विलम्ब नही चाहता है। वह अपने प्रभु को तुरन्त ही बुला लेना चाहता है—

जौ तुम साचे दु ख हरन प्रमिन अवलम्बन।
वृन्दाविपिन सुचद चारु चरचित तन चदन॥
तौ न बर लखहु अहो दीनानाथ असरन सरन।
करहु सुरत अब तुरत प्रभु जै जगमोहन दुख दरन॥

उक्त पद से कवि सुरत आशा गोपी भाव की माधुर्य भक्ति की तरफ स्पष्ट सकेत करती है।

किसी काय का शुभारम्भ करते उसके सुखद अन्त की कामना भारतीय मनीषियो प्रबल इच्छा है। अत वे भगवान स नत सिर वन्दना करते हैं। ठाकुर साहब भी इस की निर्वाह करने मे सिद्धहस्त हैं। यह देखकर कि कवि की आधुनिकता प्राचीनता स परम्परा वा कवि तुलसी की भाँति ही सभी देवी-देवताओ की उपासना करता है। दे छिपाने लगती है। करते हुए वह लिखता है— यानी ग्रथ का वह शुभारम्भ

सीताराम मनाय नाथ माथ
कीजै कवित सहाय बनवौं बहुरि।
कविता देनि तारहु मुहि निज दास गुनि॥
जननी चार देवि, भारती भव हारनि।
तनिक निहारु विश्वविमोहिनि विधु बरनि॥
बन्दा गिरा भवानि जा चारिउ फल दायिनी।
तारिनि तरनि निदानि आदि शक्ति अनपायिनी॥
जाकी शक्ति अपार, ब्रह्मादिक हारे कहत।
वेद न पाया पार यह जड जन कैसे कहै॥
दीजिय शक्ति अनन्त जिमि न लखनी मम रुक।
आखर ललित लसत लिखत लिखत लेश न थकै॥[2]

---

१ ठाकुर जगमोहन सिंह श्यामा स्वप्न, सपादक डा० श्रीकृष्ण लाल नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० १५८।

२ ठाकुर जगमोहन सिंह देवयानी, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्रथम सस्करण, १८८६ ई०, पृ० १५।

कवि लौकिक प्राणी है। अतः उसे पाप पक्ष से सर्वथा अछूता रहना नितान्त असमत्र है। फिर भी तो कवि के रसाभ्यासी हृदय को उभरती हुई जवानी मे अनिंद्य श्यामा का साहचर्य प्राप्त होता है। कवि अपने अंतिम जीवन मे इस पाप प्रवृत्ति का उल्लेख कर पश्चाताप करता है—

जब सौं जान्यौं सदा विषय कीन्हौं अनुरागा।
परदारा अपहरन चाटु पटु यह रस भागा ॥[१]

और तब वह अपने पाप शमन के लिये शिव जी से प्रार्थना करने लगता है—

तुम्हरे सन्मुख किये सकल अपराध कबूला।
जो चाहो सो करो परो तुम चरनन मूला ॥
छमिहो जो तुम आशुतोष करि गहि अपनाई।
तौ निहचै जग होय उमापति आपु बड़ाई ॥[२]

कवि अपनी चूक को बालक की चूक मानता है। अतः भगवान् से निठुरता त्याग कर वाम कर पकड़ने के लिये प्रार्थना करता है। कवि की यह दीनता स्तुत्य एवं वरेण्य है—

श्यामा अरु घनश्याम, छमहू चूक बालक अहो।
छाडि निठुरता बाम कर गहि मुहि अपनाइयं ॥[३]

शृंगार सवलित भक्ति की भागीरथी सम्पूर्ण ठाकुर काव्य-जगत् मे प्रवहमान् है। कवि ने प्रेम की रसवती धारा से अपने ब्रह्म की उपासना मे कोई कसर नही उठा रखी है। लेकिन इसके अतिरिक्त भी उसने वात्सल्य भाव जगत् की अवहेलना नही की है। कवि का शुक्र अपनी पुत्री के करुण विषाद से व्यथित होकर उसके विषादपूर्ण वातावरण का नाश करता है—

करन विषाद न रोवहुँ प्यारी
तोसों करै कौन दुख भारी
मुएहु कौन पुनि जीवन पावै
यह जिय सोचि न सोवहु आवै ॥[४]

और इसके बाद ससार की निःसारता का सच्चा उपदेश कवि की भक्ति भावना का परिचायक है—

जाके ब्रह्म इन्द्र अरु देवा
वसु ब्राह्मण अश्विनि करि सेवा
सुर रिपु जगत् चराचर जेते
नावैं माथ मोहि सुर तेते ॥
जिय फेरि निधन ह्व तेहि होई
कसी करौ पुनि सुन ओरी
अब नही कब तुहि मिलै बहोरी ॥[५]

———

१ ठा० जगमोहन सिंह शृंगार चन्द्रिका, हरिप्रकाश प्रेस, बनारस, प्रथम संस्करण १८९४ ई०, पृ० ८।

२ ठा० जगमोहन सिंह देवयानी, बनारस, १८८६ ई०, पृ० ६७।

३ वही, पृ० २६।

४ ठाकुर जगमोहन सिंह देवयानी, बनारस, १८८६ ई०, पृ० २६।

५ वही, पृ० २६।

यहाँ एक तरफ वात्सल्य की वारिधारा और दूसरी तरफ पिता का पुत्री के लिये उपदेश, तीसरी तरफ ससार की नि सारता का मधुर समन्वय देखते ही बनता है। इस तरह त्रिवेणी का (निगुण, सगुण एव प्रेममार्गी) सगम बन जाता है। कवि एक ही तार से तीन तरफ प्रहार करता है। निशाना उसका अचूक है।

कवि श्यामा को राधा का प्रतीक मानकर अपनी भावनाओ को व्यक्त करता है। सचमुच मैं उसके पास एक भक्त हृदय प्राप्त था। उसकी समस्त रचनाओ म भक्ति की गगा किलोलें करती है। उनकी कविता म भक्तिकालीन उपदेशात्मकता है तो प्रेम के प्रति सच्ची व्याकुलता भी दीख पडती है। कवि अपना प्रेम प्रदर्शित करने के लिये बराबर छटपटाता रहता है क्योकि वह जानता कि तीनो लोक मे आनन्द भरपूर है, केवल कवि ही इस आनन्द से वचित है—

जो आनन्द घन तीन लोक आनन्द भरपूरा।
तो मैं दीन अकेल एक आनन्द अधूरा ॥[1]

इसलिये वह अपनी दीनता प्रभु के सामने प्रकट कर देता है—

कृष्ण जग आठ करी विनती सुन्दर श्याम।
हरहु पीर तन हीर की मन की जानत राम ॥[2]

कवि की श्यामा के बारे म साहित्यिक जगत् मे अनेक प्रकार की मनगढत किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। लेकिन विचारणीय प्रश्न तो यह है कि कवि जहाँ लौकिक उन्नत्त प्रेम की चर्चा करता है, वही नारी निन्दा का स्वर भी तरलायित होता है। कवि सन्तो की भाति ही नारी को विष घट की उपमा से विभूषित करता है—

या जग नारि नैन के शर सो को बचि रह्यो बताओ।
आखिन देखि पियत घट विष यह सो मन्दिरा बौराओ ॥
यासो बार बार कर जोरे कहहु देवि सब रगा।
विष पूतरि सम वाहि तरकिये वाको परसगा ॥[3]

भक्त प्रेमी जीव होता है। वह किसी भी हालत मे उदात्त प्रेम की ही व्याख्या करेगा। उसके सन्निकट लौकिक नारी का रूप भी राधा रूप मे पूजित हो सकता है। उसकी भावनाओ मे वासना की बयार का आ जाना नितान्त असम्भव है। कवि अपनी श्यामा के सम्बन्ध के बारे म श्यामलता के समपण म स्पष्ट घोषणा करता है तो भी पता नही क्या लाग उसे स्वीकार नही करते—

मैंने तुम्हारे अनेक नाम धरे हैं क्योकि तुम मेरे इष्ट हो न और तुम्हारे तो अनेक नाम शास्त्र, वे, पुराण, काव्य स्वय गा रहे है। तो फिर मेरे अकेले नाम धरने से क्या होता है। तुम्हारे सबसे अच्छे नाम श्यामा, दुर्गा, पार्वती, लक्ष्मी, वैष्णवी, त्रिपुर-सुन्दरी, मनमोहनी त्रिभुवनमोहनी, त्रलोक्य विजयिनी, सुभद्रा, ब्रह्माणी, अनादिनी, देवी, जगन्मोहनी इत्यादि—इनमे से मैं तुम्हे कोई एक नाम से पुकार सकता हूँ पर उपासना भेद से तथा इस काव्य को देख मैं इस समय केवल श्यामा ही कहूँगा।[4]

इसी आध्यात्मिक आस्था और भक्ति का उनके व्यक्तिगत जीवन मे इस प्रकार मेल हो गया है कि साहित्यिक जगत् उनके बारे मे त्रुटि करता जायेगा। समस्त काव्य साहित्य के प्रकाश मे आने

---

१ ठा० जगमोहन सिंह श्यामा-स्वप्न, सपा० डा० श्रीकृष्णलाल, बनारस, पृ० १६०।
२ वही, पृ० १६०।
३ वही,
४ ठा० जगमोहन सिंह श्यामा-स्वप्न (भूमिका) पृष्ठ १

पर ही शायद वह निर्णय हो सके और नहीं भ्रम में भक्ति का भावधारा पाठकों के खोज की विषय बनी रहेगी।

मुझे तो लगता है कि कवि इसी श्यामा को राधा मानकर अपने को समर्पित कर चुका है। वह कितनी तन्मयता से राधा कृष्ण के युगल विहार का चित्रण करता है वह अनुपम है और मौलिक है।

कवि ने राधा और कृष्ण के मधुर प्रभाव को अंकित करने में कमाल ही कर दिखाया है। उसका 'हँस दूत' भक्तिकाल के संत जगत् का अनुपम उपहार है। कवि राधा कृष्ण के युगल विहार का चित्रण करने में कभी राधा का प्रभाव दर्शाता है तो कभी राधा को कृष्ण द्वारा मुग्ध पाते हैं, का वर्णन करता है। इस तरह कृष्ण अपने अमिट प्रभाव को छोड़ने के लिये समस्त मधुबन को ही अपनी मधुरिमा से स्नात कर देते हैं। राधा का विरह चरम सीमा पर पहुँच जाता है। वह चिंता-सरिता में डूब जाती है। गोपियाँ यमुना पुलिन पर राधा को इस चिंता में पाती हैं।

सुषुप्ती मे जैसे खबर सब भूली बदन की
भई राधा जैसे सुधि-बुधि सबै छूट तनकी
लुटै सो धूलि पै सखिन तिहि घेरी चहुँ तहाँ
तबै कालिन्दी हू नयन जल बाढी मिलि जहाँ

हलैना डोलेना नहिन कछु बोले बिरहिनी।
खिलौना सी बैठी बिजन नमिनी पल्लव सनी।
करै शका जी की कुशल शत ध्यावै निसि दिना।
अंदेशो है भारी सखिन अति प्यारो पिय बिना॥

तबै खोल नैना चलत कछु कठो सुरमई।
गई आसा स्वासा सबन अब आसा जिय भई॥
कहाँ है री मेरी उरज अचरा घूघट कहाँ।
सुनै हर्षी सारी करत धुनि भारी मुद कहा॥[1]

इस प्रकार कवि की भावनाओं मे शृङ्गार की धारा जो प्रवहमान है उसमे भक्तिलता से खिले प्रसून बड़े ही अच्छे हैं। कवि की यह शृङ्गार भावना भक्ति-सरिता में आप्लावित है। कवि राधा-कृष्ण के चरित्र का परम्परावादी उद्घाटन करने मे पूर्ण सफल हुआ है। कवि ने इस चरित्रांकन मे रीतिकालीन परम्परा का निर्वाह करते हुए भी अपने भक्त हृदय से स्वच्छ मोतियो की माला पिरो दी है।

श्रीधर पाठक

जीवन रेखा

श्रीधर पाठक का जन्म जाधरी ग्राम में माघ कृष्ण चतुर्दशी स० १९१६ को रविवार के दिन हुआ था।[2] इनके पिता का नाम प० लीलाधर पाठक तथा माता का नाम लाडली देवी था। पाठक

---

१ ठा० जगमोहन सिंह हंसदूत, हस्तलिखित प्रति, नागरीप्रचारिणी सभा, पुस्तकालय सग्रह, काशी।

२ ग्राम में, स्मरण रमणीय प्रिय-नाम मे,
जन्म अपना हुआ ! अद्ध उन्नीस सौ
लह असित माघ निशि अद्ध चौदस रविज-
वार लग्न भूषित प्रयत धाम मे।

जी ही एकमात्र लीलाधर पाठक की, सात सतानो म जीवित बचे, जिससे परिवार फला एवं फूला। पाठक जी के पिता सद्गृहस्थ एव धमपरायण व्यक्ति थे। लेकिन इनके चाचा प० धरणीधर पाठक न्याय और धर्मशास्त्र के विद्वान् थे। अत श्रीधर पाठक के निर्माण म घर के सम्पन्न वातावरण का योगदान बहुत है।

पाठक जी का अक्षरारम्भ सस्कृत से हुआ। उन्होंने वर्णमाला बडी कठिनता से सीखी। बचपन मे स्मरण शक्ति बडी मन्द थी। पिता जी से 'कौमुदी का सधि प्रकरण' और आगे का प्रकरण भागीरथी पुरी की सहायता से सीखा। इस तरह कभी पिता के निकट, कभी भागीरथी पुरी जो धरणीधर के शिष्य थे और पाठशाला मे प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा होती रही।[१] इस तरह ज्योंही अध्ययन के क्रमिक विकास का अवसर आया कि पारिवारिक कलह के कारण इनके अध्ययन म व्यवधान उपस्थित हो गया। लेकिन अध्ययन की अभिरुचि थी। अत घर पर प्राचीन साहित्य जो सगृहीत था उस लगन एव उत्साह से पढा। डा० श्यामसुदर दास के शब्दो मे 'प्रारम्भ मे इन्हें सस्कृत पढाई गई और १० ११

पूर्व आषाढ नक्षत्र था जन्म का
नाम भूधर का तदनुसार रखा गया।
किन्तु पश्चात् कब किसी को ज्ञात नही
नित्य का नाम किस प्रकार श्रीधर पडा
नामकरणादि का स्मरण कुछ भी नही।
श्रीधर पाठक स्वजीवनी,

१ अक्षरारम्भ के बाद बहु काल तक
कठिन क्रम से नियत पठन चलता रहा
पिता जी के निकट कभी घर पर कभी
मदरसे मे तथा कभी टलता रहा।
पिताजी ने तत कौमुदी का करा—
या स्वय सविधि आरम्भ सुमुहूर्त्त स।
सधि का भाग श्रम सहित उनसे पढा
शेष क्रमबद्ध भागीरथी पुरी से।
थे परिव्राजक प्रवर वह विज्ञ श्रुत्
पज्ञ वैयाकरण सुमति सम्पन्न सद्
व्यसन सत्सग प्रिय यद्यपि ससार से
विरत, निस्सग अति सतत सु प्रसन्न मन,
प्रयत आचरण, मानव सभा-जागरण
बिना-नय निपुण सौजन्य के सिन्धु, सद्
रुचि-सुजन-बन्धु और छात्र थे वह स्वय
पितृचरण भ्रात के नाम जिनका रहा
देश सुग्रहीत श्रीयुक्त शास्त्री जगद्
विदित धरणी पर।
श्रीधर पाठक स्वजीवनी

वर्ष की अवस्था में अपनी तीव्र बुद्धि से उस भाषा में इन्होंने इतनी योग्यता प्राप्त कर ली कि संस्कृत में बोलने और लिखने लगे।[1]

पाठक जी में बाल सुलभ मौलिक प्रतिभा थी। अध्ययन के अतिरिक्त इनमें चित्र खींचने मिट्टी की मूर्तियाँ बनाने और प्राकृतिक वस्तुओं का संग्रह करने में बहुत उत्साह दिखलाई पड़ता है। प्रकृति सहचरी के साथ आपका विशेष अनुराग था। फलस्वरूप आप प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में निर्भीक घूमा करते थे। डा० श्यामसुन्दरदास ने लिखा है कि इस अवस्था में इन्हें आप ही आप चित्र खींचने और मिट्टी की सुन्दर मूर्तियाँ बनाने तथा प्राकृतिक शोभा की विविध वस्तुओं के संग्रह करने में अभिरुचि उत्पन्न हुई और इसी व्यवसाय में ये तत्पर रहे।[2]

पाठक जी का जन्म एक रूढ़िवादी परिवार में हुआ था। फलस्वरूप अल्पवय में ही इनकी शादी कर दी गई। लेकिन इस परम्परा का पालन केवल लीलाधर पाठक तक ही चलता रहा।

१४ वर्ष की अवस्था में उनका बाधित अध्ययन फिर प्रारम्भ हुआ। पहले तो कुछ फारसी पढ़ी और सन् १८७५ ई० में तहसीली स्कूल में हिन्दी की प्रवेशिका परीक्षा पास की। इस परीक्षा में प्रान्त भर में उनका नम्बर पहला रहा।[3] बाद में इन्होंने आगरा कालेज से अंग्रेजी मिडल और कलकत्ता विश्वविद्यालय से एण्ट्रेन्स की परीक्षा पास की। इन परीक्षाओं में भी आपने प्रथम श्रेणी प्राप्त की। कुछ दिन तक आपने कानून भी पढ़ा, लेकिन सरकारी कार्य से उनको नैनीताल जाना पड़ा, जिससे कानून की परीक्षा न दे सके।[4] इस प्रकार इनका क्रमबद्ध अध्ययन समाप्त हो गया।

अध्ययन के समाप्त होते ही पाठक जी ने अपनी जीविका एक अध्यापक के रूप में प्रारम्भ किया। आप बड़े ही कर्मठ व्यक्ति थे और बड़ी लगन से काम करते थे। फलस्वरूप सेवाकार्य में आपकी निरन्तर पदोन्नति होती गई। इस तरह आपने इरिगेशन कमीशन के सुपरिटेंडेंट के पद तक को सुशोभित किया। डा० श्यामसुन्दर दास का वक्तव्य है कि पाठक जी सरकारी काम बड़े परिश्रम और सावधानी से करते हैं और उत्तम अंग्रेजी लिखने के लिए ख्यात हैं। सन् १८९८ १८९९ की प्रान्तीय इरिगेशन रिपोर्ट में आपकी प्रशंसा छपी है।

पाठक जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। यही कारण था कि हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी पर समान अधिकार था। वे विशाल व्यक्तित्व के प्रकृति प्रेमी कवि थे। प्रकृति ही उनके काव्य की प्रेरणा का स्रोत थी। उनकी कविता में एक तरफ भारतेन्दु युग की भावना है, तो दूसरी तरफ द्विवेदी युग की दिव्यता, तीसरी ओर छायावादी युग का क्रियाकलाप किलोलें करता दिखाई पड़ता है। डा० रामचन्द्र मिश्र ने लिखा है कि उनहत्तर वर्ष के जीवन में 'भारतेन्दु-युग' में पल्लवित होकर 'द्विवेदी-युग' की परम्परामूलक प्रवृत्तियों को चुनौती तथा 'छायावादी-युग' के लिये सुदृढ़ शिलान्यास करते हुए पाठक जी ने अपनी स्वच्छन्दतावादी गरिमामय व्यक्तित्व से हिन्दी काव्य को चिर आभारी किया।[5]

---

१ डा० श्यामसुन्दर दास हिन्दी कोविद रत्नमाला, भाग १, इण्डियन प्रेस प्रयाग, पृ० १८०।
२ डा० श्यामसुन्दर दास हिन्दी कोविद रत्नमाला, श्रीधर पाठक, प्रयाग, पृ० १८१।
३ वही, पृ० १८१।
४ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, दिल्ली, पृ० २१४।
५ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, दिल्ली, पृ० २३३।

भक्तिभावना

पाठक जी म भक्ति का बीज परिवार से ही मिल गया था। उनका परिवार बहुत ही धर्मनिष्ठ एव कर्मकाण्डी था। इनके पिता धर्मपालन एव भक्ति म विशेष रुचि रखते थे। अत बालक पाठक पर परिवार की इस प्रवृत्ति की स्पष्ट छाप पडी। डा० रामचन्द्र मिश्र ने पाठक जी के पिता के बारे मे लिखा है कि भिक्षुक उनके घर से कभी निराश न जाता था। उनके स्वभाव और बोलचाल म स्नेह और सरलता का पूर्ण पुट था। अपने इन अप्रतिम गुणो के कारण वह शत्रु को भी मित्र बना लेते थे। भगवान् कृष्ण के प्रति उनकी अटूट भक्ति थी। सम्पूर्ण विश्व को गोपालमय मानते और हुए उनके अर्चन और आराधना म लगे रहते थे। अपने बैठने के स्थान पर उन्होंने गोपाल जी श्रीनाथ जी के चित्र सजा रखे थे। वह उनकी ओर घटा ताकते बैठे रहते थे और भक्तिभावना से ओत प्रोत हो नाचने भी लगते थे। भक्तिभावना के भावावेश मे वह कभी-कभी कृष्ण विषयक पद्यो की रचनाएँ भी करते थे, जो 'आराध्य शोकाञ्जलि' मे सगृहीत हैं।[१] इस तरह सम्पूर्ण परिवार का वातावरण भक्तिमय एव काव्यमय बना रहता था। पाठक जी की माता भी एक विदुषी धर्म-परायणा महिला थी। अत श्रीधर पाठक को भक्ति माँ बाप से विरासत म मिली।

पाठक जी के पिता रामायण, महाभारत और भागवत के अनन्य भक्त थ। 'वे कोटला के भूमिपति ठाकुर उमराव सिंह के यहा इन ग्रन्थो का पाठ किया करते थे।' पाठकजी पर इन ग्रथो का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

कवि राम का अनन्य भक्त है। राम के साथ वन प्रान्त-नगर का दर्शन करते वह दण्डकारण्य मे सीता के साथ है। सीता का रावण द्वारा हरण होता है। राम का विरह विदग्ध हृदय फूट पडता है। वह लखनलाल से अपने विरहातुर मन के उद्गार को प्रकट करते हैं। कवि इस प्रसग का वर्णन बड़े ही मर्मस्पर्शी ढग स करता है। पाठक द्रवीभूत हो जाता है। आखें जलपूरित हो जाती हैं। यथा—

भैया लछिमन हा सिया बिन दुख जीय।
अति मृदु गात तात! कोमल कृश प्राणपियारी सीय॥
वुही कुटी, वुही लता भवन घन वुही विटप वुही भूमि।
वुही दण्डकारन्य मत्त जह विहरत द्विरप-गन भूमि॥
वुही सिला वुही थल मृगया कौ वुही सरित-तट स्वच्छ।
वुही मत मधुकर मालति जह स्रवत लता अरु वृच्छ॥
बिना विदेह-नन्दिनी-दरसन लगत न एकहु अच्छ।
हिम कर किरन देखि दहकत तन मन लछ यह मलमच्छ।[२]

इस पद म वही शब्द का प्रयोग कवि ने बार बार किया है। यह व्याकरण सम्मत न होने पर भी कवि की भक्तिभावना पर कोई आँच नही डालता। श्रीधर पाठक अपने पिता के अनन्य भक्त थे। अत उनके प्रसन्नार्थ भी भक्तिपरक रचनाएँ किया करते थे। इससे उनके भक्त हृदय की स्रोतस्विनी की सुधाधारा का दर्शन हो जाता है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

---

१ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्वस्वच्छन्दतावादी काव्य, दिल्ली, पृ० २०६।

२ श्रीधर पाठक मनोविनोद, सपादक गिरिधर पाठक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम सस्करण, १९१७, पृ० १२०।

सिय-सुधि-अबहु न पाई, एहा ! वरखा ऋतु बीति गई ।
बिमल अकास प्रकासित चदा, नभ-नूतन छबि छई ॥
सूखे पथ, कास बन फूले, नलिनी विकसित भई ।
स्रोता, सरित, स्वतट ह्व आए निमल सर छबि नई ॥
खजन चपल दियौ अज्जन दृग रवि सोभा अधिकई ।
नृप-दल चले नृपन के देसन तिन प्रति जुद्धे ठई ॥
हम कायर सिय मिलन जतन की, अजहुँ न चिन्ता भई ।
स्वाति बूँद जल चातक पायौ तृषा तासु बुझि गई ॥
लीलाधर हम निपट अभागे मन दुख दहक्त दई ॥[१]

कवि म अन्धानुकरण नही है । उसकी अपनी जिज्ञासा ही काव्य सामग्री है । वह अकेला राम का ही नही कृष्ण का भी उपासक है । वह साहित्य जगत् को 'गोपिका-गीत' अपनी कृष्ण के प्रति अगाध श्रद्धा समर्पित करता है । कवि ने गोपियो के उद्दाम प्रेम को बडी ही विनम्रता से अभिव्यञ्जित किया है । उसकी वाणी गोपिया के मानस पटल से अकुरित अनुराग को अभिव्यक्ति प्रदान करती है । डा० रामचन्द्र मिश्र ने इस कृति का अनुशीलन करते हुए लिखा है कि 'पाठक जी के इस स्वच्छन्द छायानुवाद से निस्सन्देह भागवत की भक्ति भावना की रक्षा ही हो सकी है । मूल म गोपियों के गान में जिस उद्दाम भक्ति का स्रोत उमडा ह भुक्तभोगी होने के कारण उनके अन्तरतम का समर्पण जिस सरलता एव स्वाभाविकता स व्यक्त हो सका है और जिस अभिन्नता से अपने लाडले के निकट [illegible] करती हुई वे उसकी बलैया ल सकी हैं—वह पाठक जी के काव्य म अवश्य ही उपलब्ध नहीं हो [illegible] गोपिया के मानस-पटल के अनुराग को व्यक्त करने मे उनकी वाणी असफल नहीं है । [illegible] से अपने उन्मन चित्त की अनुरागमयी भावनाओ को वे व्यक्त कर सकी हैं, जिनमें मर्यादा एव नारी-सुलभ वियोगजनित करुण व्यथा की अभिव्यक्ति है ।[२]

ब्रजभूमि कृष्ण जन्म स धन्य हुई । ब्रजवनिताए कृष्ण को पाकर उनकी बलैया लती हैं ।[३] उनके सौन्दय और माधुय का देखकर आश्चर्यजनित हो जाती है । उनके नयन मन म श्रीकृष्ण का माधुरी मूर्ति बठ जाती है । लेकिन गोपिकाएँ भी तो मानवीय थी । वे उस अजिरविहारी की लीलाओं का [illegible] समझें । अत उनके मानवीय मानस का विकार निम्नोक्त पद म यो स्पष्ट हो जाता है—

महर नन्द का पुत्र नही,
निखिल सृष्टि का सान्ति रूप है ।
उदित हुआ वृष्णि वश म,
व्यथित विश्व के त्राण के लिय ॥[४]

---

१ वही, पृ० १२० ।

२ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, [illegible], पृ० ३०६ ।

३ एहो सखि आज यह बजत बधाइ कहाँ नौबत को घोर सुनि परियत बार बार ।
क्यो मन फूले से भूले से फिरत गोप कर दधि काद बीच कुसुम हार हार ।
श्रीधर जु सुघर सयानी सब गोपनारि सजत सुजावत क्या सरिकन भार भार ।
कौन काज गोकुल मे इतिक आनन्द आज तोरण पताका क्यों फहरत द्वार द्वार ।
—हिन्दी प्रदीप, जि० १ सं० ७, १८८५, पृ० १४ ।

४ रामनरेश त्रिपाठी (सपादक) कविता-कौमुदी, भाग २, पृ० १३० ।

अत उस महत्तम मंगल रूप के लिये व्रज-वनिताएं आकुल हैं—

स्वजन-वृन्द के क्लेश हैं हरे,
सुकृत हैं करें वीरता भरे।
हम प्रभो! तेरी प्रेम किंकरी,
बदन-चंद का दर्श चाहदे।[1]

श्रीकृष्ण सांवलिया हैं। गोपिकाएँ यदि उनकी रासलीला के लिये प्रार्थना करती हैं तो क्यों न वह रासलीला रचायें। फिर तो यमुना पुलिन पर कदम की छाहा में रास-क्रीडा का सुधामय स्रोत उमड पड़ता है। कृष्ण और राधा भूले पर आ जाते हैं। गोपिकाएँ आनन्द विभोर हो जाती हैं—

यमुना तीर कदम की छैयां भूलत राधा नन्दकिशोर।
परसत देह नेह नव सरसत बरसत प्रेम अथोर॥
भूमत भुकत भटक भोटा लगि भेंटत लपटि बहोर।
खग मृग छबि अवलोकि किलोलत बोलत दादुर मोर॥
श्रीधर हूँ प क्यों न होय वह सरस कृपा दृग कोर।
हरि सग डारि डारि गलबहियाँ भूलत बरसान की नारि॥
करि आलिग प्रेम रस भीजत अचल अलक उघारि।
टूटे बोल हिंडाल उठावत रुकि रुकि अंग सवारि।
श्रीधर ललित युगल छबि डारत तन मन वारि॥[2]

लेकिन प्रेमपथ तो बडा विकट होता है। उस पर चलने वाले को असाध्य कष्ट सहन करना पडता है। साथ ही साथ यह भी विश्वास नहीं रहता कि उसका प्रेमी विश्वास को कहाँ तक निभायेगा और उस पर भी कृष्ण तो छलिया है, चितचोर है, उसका क्या ठिकाना।

पति सुतादि को लाग छाड के,
तव समीप है आ गई छली।
मधुर गीत स मोह के हम,
उचित है अहो त्यागना नहीं॥[3]

बस राधिका मान कर बैठती हैं। कृष्ण द्वार पर खड़े होकर याचक के समान तृषित नेत्रों से राधा का ध्यान कर रहे हैं। राधा राधा रटते हुए वे व्याकुल हो जाते हैं—

ठाड़े हरि द्वारे प्यारी छाडो यह मान।
दरसन मिलन चाह चितवन के जाचक छुधित समान॥
राधा नाम रटत व्याकुल ह्वै करत तिहारो ध्यान।
मानत तुम्हे आपनो सरबस तन मन जोबन प्रान॥
पहला प्रीति रीति जो राखो सो अपने जिय जान।
आदर देहु मोहि भुज श्रीधर हरि अपन प्रिय जानि॥[4]

---

१ डॉ० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, दिल्ली, पृ० ३१०।

२ बालकृष्ण भट्ट (सपादक) हिन्दी प्रदीप अक्टूबर १८८८ ई०, जि० ६ स० पृ० १३।

३ डा० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० ३१०।

४ हिन्दी प्रदीप, १८८५ अक्टूबर, जि० ६, स० २, पृ० १५।

कवि की भावनाओ पर यहा राधावल्लभ सम्प्रदाय की स्पष्ट छाप विद्यमान है।

कवि अपने गोपाल का वणन बडे ही सुन्दर शब्दा मे करता है

सुन्दर है गोपाल।
सुन्दर वदन मदन कोटि छवि सोभा रूप रसाल॥
मोर मुकुट मकराकृत कुडल गल बैजयन्ती माल।
भ्रकुटि-कुटिल सुघर अलकावलि तिलक रुचिर वर भाल॥
नासा वर-बुलाकमुक्ता गज कौस्तुभ-वक्ष विशाल।
जलधर-वरन कमल-दल-लोचन मोचन भव भ्रम-जाल॥
निगुन-गुन-आगर नट-नागर ललित त्रिभगी चाल।
मुरली अधर मधुर सरगम सुर मोहित गोपी ग्वाल॥
रखवारो ब्रज को गिरवर धर प्यारो जसुमति लाल।
नन्द-नन्दन सुख-सदन प्रेम निधि लीलाधर प्रतिपाल॥[1]

कवि नवीनता का आग्रही है, लेकिन प्राचीनता का मोह भी उसकी भावनाओ से छूट नही पाता। गगा की स्तुति करते समय कवि का वणन विद्यापति की शैली मे बहुत ही मधुर हो उठा है—

जै जग तारिनि अधम उधारिनि सुर धुनि जै ज श्रीगगे।
हिमगिरि गुहा विदारि करि विस्तारित निज अगे॥
अधिक अथाह प्रवाह प्रवल जल धवल धार सगे।
मकर ग्राह अवगाह पवन थल तरल तर तरगे।
श्रीधर पाप कलाप शमन कृत शमन मान भगे॥[2]

कवि को उस जगन्नियन्ता पर पूण विश्वास है। वह जानता है कि यह सृष्टि सारी उसी का रूप है। हम तुम जड चेतन सभी उसी के रूप हैं। वही ससार का कर्त्ता है। ससार के सारे क्रिया-कलाप उसके खेल हैं—

सो है सब उसका ही खेल
उसका है सब बातों मे मेल।
वोही जग का करतार एक
कर रहा आप लीला अनेक।
है हम तुम सब उस ही के रूप
सब जड चेतन अनगिन अनूप।
इससे सबसे सब रखो प्रेम
यह सब-सुख मय जीवन का नेम॥[3]

अत कवि अति दीन होकर उससे प्राथना करता है—

मेरे जी मे दया का विकास करो
घृणा हिंसा, अविद्या का ह्रास करो।

---

१ श्रीधर पाठक मनोविनोद, संपादक गिरिधर पाठक, पृ० ६, पद ४।
२ हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर १८८५, जि० ६, स० २, पृ० १३।
३ श्रीधर पाठक मनोविनोद, सपादक गिरिधर पाठक, पृ० ५।

पूरी प्रेम प्रभा का प्रकाश करो
करुणा-वरुणालय, विश्वपते ॥[1]

इस तरह कवि की भक्तिभावना पर राधावल्लभ सम्प्रदाय की छाप तो दृष्टिगोचर होती ही है, साथ ही साथ कवि मे प्राचीनता का पूर्ण निर्वाह पाया जाता है। उसकी कविता भारतेन्दुकालीन भक्ति की नीव पर सुदृढ खडी है। उसमे न प्राचीनता के प्रति आग्रह है और न नवीनता के प्रति लोभ। बल्कि उसकी कविता एक भक्त हृदय का स्वच्छ उद्‌गार है, जो स्वच्छन्द गति से प्रवाहित होती है। यत्र तत्र साम्प्रदायिक पुट तो तत्कालीन साम्प्रदायिक प्रवाह का आग्रह है। मुख्यत कवि नवीनता का पोषक है।

महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदी

जीवन रेखा

सुधाकर जी का जन्म स० १९१७ चैत शुक्ल ४ दिन सोमवार को हुआ।[2] इनके जन्म के समय द्वार पर डाकिया सुधाकर पत्र लेकर खडा था। अत आपका नाम सुधाकर रख दिया गया। चूँकि दिन सोमवार था, इसलिये यह नाम और भी उचित जँचा। इनकी माँ इन्हे नौ महीने का छोडकर स्वर्ग सिधारी। परिणामस्वरूप उनका लालन पालन इनकी दादी ने किया। विशेष दुलार के कारण ये आठ वर्ष तक बालमडली के सरदार बने रहे। आठ वर्ष के बाद तो कही अक्षरारम्भ हुआ। इनकी स्मरणशक्ति बडी तीव्र थी। यही कारण था कि गणितशास्त्र मे पूर्ण दक्षता प्राप्त कर ली।

बाल्यकाल मे ये बराबर बीमार रहा करते थे। इन्हें बचपन से ही स्वभाव मे स्वतन्त्रता मिल गई। आडम्बर तो छू तक नहीं गया था। सत्यवादी थे और अपनी भूल स्वीकार कर एक आदर्श उपस्थित कर देते थे। इनमे सरलता कूट कूट कर भरी थी। बातें कम करते थे, ज्यादा काम करने के हिमायती थे। अत आपने विघ्नो पर बराबर विजय पाई।

आपने अपना जीवन अध्यापकी से शुरू किया। सर्वप्रथम सस्कृत कालेज म पुस्तकाध्यक्ष के पद को शोभित किया, बाद म वही गणित के प्रवक्ता बना दिये गये। सस्कृत और हिन्दी के भी ये कुशल विद्वान् थे। अत तद्युगीन कवियो और लेखको से इनका विशेष सम्पर्क था। भारतेन्दु जी के तो आप अनन्य भक्त थे। आपमे आशुकवित्वशक्ति विद्यमान थी। कहते हैं कि एक दिन भारतेन्दु जी के साथ राजघाट पुल देखने गये। वहाँ से लौटने पर उनकी कविताधारा फूट पडी—

राजघाट पर बधत पुल जह कुलीन की ढेर।
आज गये कल देखिके आजहि लौटे फेर ॥[3]

इस दोहे को सुनकर भारतेन्दु जी और रावकृष्णदेवशरण सिंह गोप बहुत ही प्रभावित हुए और इन्हे पुरस्कृत किया।

सुधाकरजी बडे अध्ययनशील व्यक्ति थे। इन्हे सूरदास, कबीरदास, तुलसीदास की कविताओ से विशेष प्रेम था। इन्होंने रामचरितमानस के बालकाड का सस्कृत मे अनुवाद किया था। काशीनागरी प्रचारिणी सभा के आप मृत्यु पर्यन्त सभापति रहे।

---

१ वही, पृ० ७।
२ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ३६५।
३ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, पृ० १३५।

ये एक बड़े धर्मप्रिय व्यक्ति थे। इनमे धार्मिक कट्टरता नही बल्कि उदारता थी। व्रजरत्नदास ने लिखा है कि 'काशी के पडित धार्मिक व्यवस्था देने म अपनी धर्मान्धता तथा कट्टरता के लिये प्रसिद्ध हैं और इस कारण उनसे किसी प्रकार की व्यवस्था लेना नैराश्यपूर्ण था। कुछ दिन पहले विलायत यात्रा का झगडा बराबर उठा करता था और विद्योपार्जन कर लौटे हुए सज्जनो को जातिच्युत कर देना सहज समाज धर्म समझा जाता था। द्विवदी जी ऐसी व्यवस्था के पक्के विरोधी थे और अत मे इन्होने ऐसे एक सज्जन को प्रत्यक्ष रूप मे प्रायश्चित कराया। जहा का पडित समाज इनके इस काय पर मौन रह गया।'[1] इस प्रकार व अपनी धार्मिक उदारता के लिए जगत्प्रसिद्ध थे।

भक्तिभावना

सुधाकरजी गणित के विद्वान् थे। इसलिय बराबर गणित म व्यस्त रहते थे। कविता करने का अवकाश कम मिलता था। लेकिन तद्युगीन प्रभाव स बचना दूभर था। अत इन्होने माधवपचक और राधाकृष्ण दानलीला आदि काव्यो का प्रणयन किया। समस्यापूर्ति करना भारतेन्दुयुग के कवियो का महान् कर्तव्य था। इन्ही समस्यापूर्तियो म इनकी भक्तिपरक रचनाओ के दर्शन होते हैं।

ये पण्डित थे। लकिन इनकी भाषा म सरलता विद्यमान रहती थी। सस्कृत की समास-पदावली इनकी कविताओ मे दृष्टिगोचर नही होती है। प्राचीनता के प्रति इनका दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण रहा है। यथा—

मल से उपजा मल बसा मल ही का व्यवहार।
नाम रखाया सत हम ऐसे गुरु हजार॥[2]

इस तरह कबीर का प्रभाव इन पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। कवि ने मन की मूढ़ता की ओर लक्ष्य करते हुए बडी ही अनूठी सूझ प्रस्तुत की है—

ऐसी मूढता या मन की।
परिहरि रामभक्ति सुरसरिता आस करत ओस कन की॥
घरम समूह निरखि चातक ज्यो तृषित जानि मति घन की।
नहि तह शीतलता न बारि पुनि हानि होत लोचन की॥
ज्यो गय काँच बिलोकि स्येन जड छाह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की॥[3]

द्विवदी जी ने रामकाव्य के प्रणयन मे मनोयोगपूर्वक काय किया है। उन्होने फुलवारी प्रसग का उद्घाटन किया है, जो रामकाव्य का बडा ही रुचिप्रद एव हृदयग्राही स्थल है। सीता के मुँह से उस अतीत का वर्णन बडा ही सुखप्रद प्रतीत होता है। अतीत की स्मृति बडी ही मधुर होती है—

पिया जब देखी मैं फुलवारिया।
अस मन भयो धाइ गर लागैं त्यागि सकल कुल गलिया॥
लखनलाल मोहि सेप सो लागैं विष सी सग की अलिया।
लाज भुजगिनि हकरति बाढी निरखि बाग के कलिया॥
मन चाहे पिय सग सग डोलू चुनू कुसुम की कलिया।
गूथि गूथि अभरन पहिराऊँ करि पिय सग रगरलिया॥

---

१ वही पृ० १३९।
२ रामनरेश त्रिपाठी कविता-कौमुदी, भाग २, पृ० १४०।
३ वही, पृ० १४०।

मनमह घसी सावरी सूरति फमी पिता पन जलिया।
प्रेम नेम दुविधा तरग उठि मची हिये खलबलिया॥
धनुप भगि पितु नेम प्रेम मम राखि लियो विधि भलिया।
सो इच्छा इकात बिहरन पूरई भुज गर डलिया॥[1]

वन-पथ पर त्रिमूर्ति है। सीता के सुकुमार पग म कुश का तीव्र अकुर चुभ जाता है। वह बेचारी लखनलाल के लाजवश कुछ कह नही पाती है। इस मम को मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम बूझ जाते हैं। लखनलाल को पानी के निमित्त दूर भेज देते हैं। लखनलाल उधर पानी के लिये प्रस्थान करते हैं, इधर श्रीराम जनक दुलारी को गोद म लेकर-समझाने लगते हैं। सीता अपार सुख का अनुभव करती हैं। कवि ने इस दृश्य का मनोमुग्धकारी वणन प्रस्तुत किया है, द्विवेदी जी को राम कथा प्रसग म माधुय की सृष्टि करने मे अप्रतिम सरलता मिली है—

पिया हो कसकत कुस पग बीच।
लखन लाज सिय पियसन बाली आइ नगीच।
सुनि तुरत पठयो लखनहि प्रभु जल हित दूरि सुजान।
लइ अक सिय जोवत कुस कन घवित पद जसुआन।
बार बार बार भारत कर सा रज निरखत छल बिललात।
हाय, प्रिये मायो न कह्यो लखु नहिं बन बिच कुसलात।
सहस सहचरी त्यागि सदन मधि सासु ससुर सुखकारि।
हठकरि लाग मो सग सहत तुम हा हा यह दुख भारि।
कहत जात या प्रभु बहु बतिया तिया पिया की छाह।
देह गलबहिया चली बिहसि कहि यह सुख नाथ अथाह॥[2]

जनक-तनया पति के साथ कुश की साथरी को ही अनुपम मानती हैं। उनके लिये महल का ऐश्वय राम के सहवास के सामने तुच्छ है—

नाथ कुस साथरी साथ सुहाई
जो सुख सुखनिधान निसि पाई सो क्यो हूँ न कहाई।
चहल पहल निसि राजमहल बिच चेरिन को समुदाई॥
सासु ससुर के अदब न दवकत दुरुह तुम्हार जुदाई।
मनभावन मन भावत बतिया बतराई तह नाही।
तजि तह ते सुगुन सुख बन बिहरत दे गलबाही।
जगन मगन सोभा मनलोभा देखत नखत निकाई।
जा छबि आगे सीस महल की पबि छबि प्रगट फिकाई।
आलस तजि आरसी बिलोकहूँ मगल द्विज जुति भाई।
बिनु गुन माल भली छबि पिय हिय कहि सिय मुरि मुसकाई॥[3]

सिया के एकान्त बिहरन की लालसा यहाँ जगत मे पूरी हुई। वह भर नजर भरे मौन मे कुल मर्यादा

---

१ रामनरेश त्रिपाठी (सपादक) कविता कौमुदी २ पृ० १४२।
२ रामनरेश त्रिपाठी (सपादक) कविता-कौमुदी, २ पृ० १४२।
३ वही, पृ० १४२।

के कारण राम को देख भी नहीं पाई थी । यहा आकर उसकी यह इच्छा पूरी हुई । नायिका की 'प्रबलतम इच्छा अपने नायक के साथ एकान्त बिहार की होती है—

पिया हो ! मन की मन ही माहि रही ।
तुव सन निज कर केस सवारू लाजन नाहिं कही ।
सो घर जरउ जहाँ निज मन भरि पिय मन राखि न रही ।
चाहि चाहि मन पछितायो बहु नाहक नाहिं कही ॥
सहस सहचरी नित घर घेरत परी लाज के फद ।
अखिया भरि कबहू नहिं निरखी तुव मुख पूरनचद ।
यह वन निज कर नाथ सवारत वेनी गुथत बनाय ।
को बड भागिनि मो सम तिहुँ पुर यह सुख जाहि जनाय ॥
कोटि मनोज लजावन भावन तुव दर्शन पीयत पीय
अखिया बहुत दिनन की प्यासी नेकु अघात न हिय की ।।[1]

इस प्रकार द्विवेदी जी की भक्तिभावना मे राम का स्थान विशेष है । द्विवेदी जी की भक्ति मर्यादा से पूर्ण है । माधुर्य का सृजन भी आपने जो किया है, वह मर्यादा वेष्टित है । कवि मर्यादावादी है । माधुर्य की सृष्टि मे वासना का पुट नही बल्कि एक सच्चे भक्त के हृदय का सच्चा उद्गार परिलक्षित होता है ।

गोस्वामी राधाचरण

राधारमनी पूज्य गुसाई वश उजागर ।
राधा चरन प्रवीन लीन काव्यामृत-सागर ॥
भारतेन्दु को सखा सनेही प्रेम विलासी ।
भजन भावना रग्यो रहत वृन्दावन वासी ॥[2]

जीवन रेखा

गोस्वामी जी का जन्म फाल्गुन कृष्ण छ सम्वत् १९१८ को वृन्दावन म हुआ था ।[3] इनके पिता जी का नाम गोस्वामी गल्लू जी था जो गुणमजरीदास के नाम से एक विख्यात कवि थे । इनका रचनाओ मे एक श्रीराधाचरण पद-मजरी मे नित्य सेवा के सतहत्तर पद सगृहीत हैं, जो सन् १८८५ ई० मे प्रथम बार प्रकाशित होकर बिना मूल्य वितरित हुआ था ।[4] गोस्वमी राधाचरण योग्य पिता के योग्य पुत्र थे । अपन पिता की बहुत सी रचनाएँ इन्होंने अपन जीवन-काल म छपवाई थी । इनका परिवार वैष्णव सम्प्रदाय का अनन्य भक्त था ।

गोस्वामी जी पाच वर्ष की अवस्था मे मातृहीन हो गये । अत इनके पालन-पोषण का भार इनके पिता जी पर पडा । इसलिये इन्हे अपने पिता जी के साथ बराबर बाहर रहना पडा । इस तरह इनकी पढाई यात्रा म ही यत्र तत्र होती रही । आप बडे ही विलक्षण प्रतिभा के विद्यार्थी थे । परिणाम

---

१ रामनरेश त्रिपाठी (सपादक) कविता-कौमुदी, २ पृ० १४३ ।
२ वियोगी हरि कवि-कीर्तन, पृ६८ ।
३ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, पृ० १४०
मिश्रबधु मिश्रबन्धु विनोद भाग ३ म स० १९१५ वि० जन्म तिथि अकित है, पृ० १२७३ ।
४ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु-मण्डल, पृ० १४१ ।

स्वरूप पिता की यात्रा का आपके अध्ययन पर कोई प्रभाव नही पडा। आपने संस्कृत का गम्भीर अध्ययन कर लिया। अंग्रेजी का ज्ञान भी कुछ छिपकर प्राप्त कर लिया। अंग्रेजी भाषा पढ़ना या समाचार सुनकर आपकी शिष्य मण्डली भड़क उठी और इन्हें धमकी दी गई कि यदि वे इसे न छोड़ेंगे तो वे इन्हें गुरु न मानेंगे।[1] पिता जी सनातनी थे। उनका प्राचीन रूढ़ि परम्परा में पूर्ण विश्वास था। परिणामस्वरूप अंग्रेजी की पढ़ाई यहा छूट गई। फिर भी लुक छिपकर आपने अंग्रेजी की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

गोस्वामी जी बड़े ही गम्भीर तेजी व्यक्ति थे। इनके विचार बड़े ही उदार एव परिष्कृत थे। आप सभा-समाजो के प्रति काफी जागरूक थे। हिन्दी के प्रबल हिमायती थे। शिक्षा कमीशन (सन् १८ ३ ई०) के समय आपने हिन्दी के प्रति अपनी कर्तव्य निष्ठा का परिचय दिया था। हिन्दी के पक्ष में आपने इक्कीस सहस्र समर्थन प्राप्त किये थे। आप आजीवन हिन्दी के प्रबल समर्थक रहे। आपकी योग्यता को देखकर वृन्दावन वासियों ने आपको अपना म्युनिसिपल कमिश्नर भी निर्वाचित किया था। आपने इस पद की बड़ी ईमानदारी से सम्हाला। फिर वहीं के आनरेरी मजिस्ट्रेट हुए। कांग्रेस जैसी विशाल संस्था के भी आप प्रतिनिधि थे। इस प्रकार आप में सनातनी प्रथा का प्राचुर्य होते हुए भी समाज सेवा का सुगन्ध बडा ही सुरभिमय लगता था।

आपका धार्मिक दृष्टिकोण उदार था। वैष्णव मतावलम्बी होने के अलावे आप किसी धर्म के प्रति कटुभाव नही रखते थे। अन्य धर्म ग्रंथो का आपने अध्ययन किया। ब्रह्म समाज सम्बन्धी आपके लेख ब्रह्म-बाधक नामक पत्र में प्रकाशित हैं। आर्य समाज के प्रति इनकी सद्भावना थी। इन्होंने दयानन्द जी के दर्शन किए और उनसे अपने विचारो को परिमार्जित किया। स्वामी दयानन्द जी को आप श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। स्वामी जी के बारे में आपके विचार बड़े ही पुनीत हैं। आपने लिखा है कि स्वामी दयानन्द जी के वाक्य मुझे वेद वाक्यवत् मान्य हैं और उनकी प्रत्येक बात मेरे उदाहरण स्वरूप हैं।[2] इस तरह उनकी धार्मिक जिज्ञासा बड़ी प्रबल एव परिष्कृत थी।

गोस्वामी जी भारतेन्दु को अपना साहित्यिक गुरु मानते थे। उनके प्रति इनकी अटूट श्रद्धा थी। यही कारण था कि ब्रह्मसमाज के प्रति उदारभावना रखते हुए भी भारतेन्दु जी की व्यवस्थाओं से आहत हो उस समाज से अपना सम्बन्धविच्छेद कर लिया। भारतेन्दु के प्रति गुरुत्वभावना को ब्रजरत्नदास ने स्पष्ट किया है—'वह स्वयं लिखते हैं कि हरिश्चन्द्र हरिश्चन्द्र थे। उनके स्थान की पूर्ति करने वाला मुझे तो अब तक कोई दिखाई नही दिया।[3] भारतेन्दु जी के ये कृपापात्र थे।

भक्तिभावना

ये वृन्दावन के एक रईस थे। वैष्णव सम्प्रदाय के उदार मनीषी थे। आर्य समाज और ब्रह्म समाज को आदर की दृष्टि से देखते थे। वल्लभ मत के अनुयायी होने कारण कृष्ण और राधा के अनन्य उपासक थे। मिश्रबन्धु विनोद भाग ३ में इनका परिचय दिया है। वहाँ लिखा है ये महाशय वल्लभाय सम्प्रदाय के गोस्वामी हैं और हिन्दी पर सदैव भारी प्रेम रहा है।[4] ये भक्त कवि थे। संस्कृत का अगाध ज्ञान था। इनकी भक्तिभावना के बारे में इनका अपना वक्तव्य उद्धृत है—

---

१ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु-मण्डल, पृ० १४१

२ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, पृ० १४३।

३ वही, पृ० १४३।

४ मिश्र बन्धु मिश्रबन्धु विनोद, भाग ३, पृ० १२७३।

'जीवितश, हमने तो अपना जीवन पयन्त तुम्हारे अर्पण कर दिया है, फिर तुम क्यो सकोच करते हो। हे मधुररस के एकमात्र आश्रय! मनमोहन अब हमारे जीवन की मर्यादा आ पहुँची है, यदि तुम्हारे हमारे सुख देखने का मनोरथ हो तो वेगही दर्शन दीजिये और हम अपनाय लीजिये नही तो पश्चाताप कराेगे। यही हमारी अन्तिम प्रार्थना है।'[1]

आप ब्रजभाषा के नाता ही नही बल्कि दिग्गज पडित थ। ब्रजभाषा आपके अनुसार स्वर्गद्वार की सीढ़ी है।[2] सचमुच ब्रजभाषा म जितना भक्ति साहित्य है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। ब्रजभाषा म कवियो ने कलि उद्धारन के हेतु कविता की। कृष्ण की रूपमाधुरी का जितना वर्णन ब्रजभाषा मे हुआ है, उतना और कही नही हुआ, कवि का ऐसा विश्वास है। ब्रजभाषा से सम्बन्धित उनके विचार द्रष्टव्य है।

ब्रजभाषा भाषा ललित कलित कृष्ण की केलि।
या ब्रजमडल म उठी ताकी घर घर बेलि ॥१॥
ह्यी से चहुँ दिसि बिस्तरी पूरब पच्छिम देस।
उत्तर दक्षिण लौ गई ताको छटा असेस ॥२॥
सूर सूर तुलसी ससी उडगन केशवदास।
देव बिहारी दयानिधि पद्माकर हरिदास ॥३॥
श्रीहरिवश हरिप्रिय आनदघन हरिचद।
ललित किशोरी माधुरी, ब्रजवासी अरु वृन्द ॥४॥
इन कविजन कविता करी, कलि उद्धारन हेत।
कृष्ण-कृपा भवसिंधु क उद्धारन हित सत ॥५॥[3]

प० अम्बिकादत्त व्यास

जीवन रेखा

प० अम्बिकादत्त व्यास का जन्म चैत्र शुक्ल ८ स० १९२८ वि० को जयपुर म हुआ था। इनके पिता का नाम प० दुर्गादत्त जी था य सस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे। य लोग जयपुर से काशी चले आए। उस समय व्यास जी केवल एक वर्ष के थ।[4] दत्त जी अपने समय के एक लब्ध प्रतिष्ठ कवि थ। ब्रजरत्नदास ने लिखा है कि इनकी समस्या पूर्तिया भारतेन्दुकाल के सग्रहो म मिलती है।[5]

व्यास जी का परिवार शिक्षित था। अत इनकी शिक्षा पाच वर्ष की अवस्था म शुरू हुई। इनके घर की औरते सुशिक्षिता थी, जिनसे खेल-कूद ही म इन्होने अमरकोष, श०` रूपावली आदि का अभ्यास कर लिया और सस्कृत की शिक्षा अच्छी तरह चलने लगी। इनके पिता इन्हे सस्कृत म बात चीत करने, सुभाषितो को कण्ठस्थ करने म सहायता देते रहे।[6]

इनके पिता जी अपनी विद्वता के लिये प्रसिद्ध थ। अत उनका घर कवियो का अखाड़ा था। गोस्वामी जीवनलाल जी स इनके पिता जी की आत्मीयता थी। य गोस्वामी जी क यहाँ बराबर जाया

१ कविवचन सुधा, पृ० ४ २३ जुलाई, १८७७ इ०।
२ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, काशी, पृ० ४२१।
३ वही, पृ० ४२१।
४ डा० किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, काशी, पृ० ४०८।
५ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, पृ० १११।
६ वही, पृ० ११२।

करते थे। गोस्वामी जी एक प्रसिद्ध कवि थे और उनके यहाँ बराबर कवियों का समागम रहता था। व्यास जी को कविता की पहली शिक्षा यहीं से मिली और गोस्वामी जी ही इनके काव्य गुरु हुए।

व्यास जी हिन्दी अंग्रेजी और संस्कृत तीनों जानते थे। कुश्ती लड़ना भी जानते थे। गायन वादन में उस्ताद थे। आशुकवित्व तो आपको विरासत में मिली थी। कवि सत्संग आपको बचपन से ही मिला। फलस्वरूप १० वर्ष के अल्प वय में ही आप अपनी कविता से सबको चकित करने लगे। उस समय कविता के क्षेत्र में समस्यापूर्ति का जमाना था। आपके सामने जोधपुर के राजगुरु श्री तुलसीदत्त ओझा की उनके काशी आगमन पर काव्य समस्या थी 'जनि तोरहु नेह को काचो तगा'। जिस समस्या की पूर्ति में व्यास की कविता फूट पड़ी थी। देखिए—

चमकि चमाचम रहे हैं मनिगन चारु
सोहत चहूँधा घूमधाम धन धाम की।
फूल फुलवारी फल फैलि कै फब हैं तऊ
छबि छटकीली यह नाहिन आराम की॥
काया हाड़ चाम की है राम बिहारी सुधि
जाम की को जाने बात करत हराम की।
अम्बादत्त भाषै अभिलाष क्यों करत झूठ।
मूँद गई आँखें तब लाखें कौन काम की॥[1]

व्यास जी के पिता का देहान्त सं० १९३७ वि० में हुआ और इनकी माता छह वर्ष पहले मर चुकी थी। पिता के मरने के बाद इनकी स्वतंत्रता छिन गई। इनके बड़े भाई साहब इनसे असन्तुष्ट रहा करते थे। परिणाम स्वरूप इन्हें भी अपनी जीविका के लिए कुछ व्यवस्था करनी पड़ी। अतः आप गोस्वामी जीवन लाल जी के साथ कलकत्ते चले गये। कलकत्ता में आपको अपनी विद्वत्ता के चलते काफी सम्मान मिला, लेकिन जीविका का प्रश्न हल नहीं हो पाया। पश्चात् ये वहाँ से चले आये। सं० १९४० वि में आप मधुबनी में एक संस्कृत पाठशाला में एक अध्यापक का पद स्वीकार किया। यहीं से आपके जीवन का प्रथम उन्मेष प्रारम्भ होता है। आप बिहार में सं० १९५५ तक कार्य करते रहते रहे।

आप कट्टर सनातन धर्मी एवम् विष्णु के उपासक थे। आप बिहार की कई संस्थाओं के संस्थापक बने। शास्त्रार्थ करने में आपकी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। आर्यसमाजियों से बराबर शास्त्रार्थ करते थे।

पिता जी का गुण इनमें प्रचुर परिमाण में वर्तमान था। ये पिता जी के साथ ही भारतेन्दु-दरबार में जाया करते थे। भारतेन्दु जी इनकी कवित्वशक्ति से बहुत प्रभावित थे। भारतेन्दु जी के सामने ही व्यास जी ने 'चिरजीवी रहौ विक्टोरिया रानी' समस्या की पूर्ति की। इनकी पुस्तकों की संख्या सत्तर बहत्तर के करीब है। हिन्दी और ब्रजभाषा में इनका समान अधिकार था। दर्शन और धर्म पर आपका विशेष अध्ययन था। 'बिहारी बिहार' इनका मशहूर ग्रंथ है जिसके बारे में पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है 'बिहारी बिहार में व्यास जी ने बिहारी के दोहों पर कुंडलियाँ रची हैं। बिहारी के दोहे रूपी छोटे-छोटे घड़ों में जो अमृत भरा है व्यास जी ने कुंडलियों के लपट से उसको छलकाकर बाहर लाने का प्रयास किया है।'[2]

---

१ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु पृ० १२२।
२ संपा० रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी, २ पृ० ८१।

भक्ति भावना

व्यास जी निम्बार्क मतानुयायी कविवर विहारीलाल जी की भक्ति भावना से पूर्णत प्रभावित थे। उनका सुकवि सतसई नामक ग्रथ जो आज उपलब्ध नही है उनको प्रेम भक्ति का परिचायक है। आप श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनकी बाल-लीला का वर्णन करने म आपकी लेखनी ने कमाल दिखलाया है। सात सौ दोहो म श्रीकृष्ण की बाल-लीला का वर्णन करना आपकी ही लेखनी के बूते की बात थी। ब्रजरत्नदास जी के शब्दो मे इनकी 'सुकवि सतसई' म श्रीकृष्ण की बाल लीला पर सात सौ दोहे हैं जो उक्तिवचित्र्य तथा प्रेम भक्ति से परिलुप्त हैं।"[1]

कवि भव बाधा से छुटकारा पाने के लिये श्रीकृष्ण एवम राधा से प्रार्थना करता है। युगल छवि का वह अनन्य उपासक है—

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की भाई परै स्याम हरित दुति होय॥
श्याम हरित दुति होय परत तन पीरी भाई।
राधा हु पुनि हरी होत लहि श्यामल छाई॥
नयन हो लखि होत रूप अरु रग अगाधा।
सुकवि जुगल छवि हरहु मेरी भव बाधा॥[2]

श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य पर कवि मुग्ध है। वह उसके लावण्य को देखकर सदा प्रसन्न चित्त रहता है। भक्त का भयातुर हृदय भगवान् के प्रति अपना लघुत्व और भगवान् के प्रति गुरुत्व भाव दिखलाया है। भक्त हृदय की सच्ची कसौटी यही है कि वह लघुत्व का भाव द्योतित करने म पूर्णत सिद्ध है।

सोहत ओढे पीत पट स्याम सलोने गात।
मनो नीलमनि लौ पर आतप परयो प्रभात॥
आतप परयौ प्रभात ताहि सो खिल्यो कमल मुख।
अलक और लहराय जूथ मिलि करत विविध सुख।
चकवा से दोउ नैन देखि इहि पुलकत मोहत।
सुकवि विलोकहु स्याम पीत पट ओढे सोहत।
जस अपजस देखत नही देखत साँवल गात।
कहाँ करौ लालच भरे चपल नैन चलि जात।
चपल नैन चलि जात रुकत रोके न किहूँ बिधि।
मूखत भीगत ढरत कहाँ धौं भयौ हाय विधि।
सदा उनमने रहत भये ऐसे कछु परवस।
सुकवि स्याम पै मोहे निरखत नहि जस अपजस॥[3]

ब्रजभाषा के अतिरिक्त आप खडी बोली म भी कविता करते थे। नवीन युग के वातावरण म पलकर नवीनता की छाप स वचित हाना नितान्त असभव था। अत प्रौढ, कविता कामिनी ब्रजभाषा को छोड खडी बोली के क्षेत्र म आकर नववय किशोरी के रूप म बन ठन कर शृङ्गार करने लगी। लेकिन इस शृङ्गार म भक्ति का जो पुट है, यह भारतेन्दु जी का साहसिक कदम था। इस साहसिक कदम म

१ ब्रजरत्नदास, भारतेन्दुमडल पृ० १२१।
२ संपा० रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी, भाग २, पृ० ८२।
३ वही, पृ० ८२।

कदम मिला कर चलने वाले व्यास जी की भाव भोगी भक्ति भावना में उद्गार अप्रतिम है। वह अपनी कविता के सौन्दर्य से सौंदय सम्राट श्रीकृष्ण को मोह लेना चाहता है। वह उसके रूप का चातक है। उसके दशन के लिए कविता बनाता है। कविता सुनाकर मनमोहन को रिझाने की यह सूझ व्यास जी की अनूठी है।

अमृत के रस की भरी सी उस मुरली को,
कब प्यारे आके मेरे सामने बजायेगा।
चढके कदम्ब पर चारो ओर देख भाल,
हाथ को उठाके कब बच्छो को बुलावेगा।
अम्बादत्त कवि की रसीली कविता को सुन,
मुकुट भुका के कब फिर मुसकावेगा।
मुझसे गवार की पुकार बार बार सुन,
सांवरे सलोने कब दरस दिखावेगा॥[1]

इस तरह व्यास जी की भक्ति म प्रेम का माधुय सन्निहित है। कवि श्रीकृष्ण और राधा के मनोमुग्ध रूप का उपासक है। वह युगल छवि की रास-लीला एवम् रूप सुधा का अहर्निश पान करता है।

राधाकृष्ण दास

जीवन रेखा

राधाकृष्ण दास का जन्म श्रावण शुक्ल १५ सवत् १८२२ को काशी मे हुआ। ये भारतेन्दु जी के फुफेरे भाई थे। इनके पिताजी का नाम कल्याणदास जी था। ये राधाकृष्णदास के जन्म के एक साल बाद ही स्वग सिधारे। अब इनके भरण पोषण का भार इनकी माता पर पडा। काशी मे रहने के कारण भारतेन्दु और इनमे अपार स्नेह था। भारतेन्दु जी इन्हें बच्चा बाबू ही कहकर पुकारा करते थे।[2] ये बचपन से बहुत ही कमजोर थे। अत पढाई लिखाई की व्यवस्था ठीक से नही हो सकी। लेकिन भारतेन्दु की विशेष कृपा रहने के कारण स्वाध्याय से इन्होंने विशेष योग्यता प्राप्त कर ली। साहित्य की तरफ विशेष अभिरुचि भारतेन्दु बाबू के सम्पर्क से ही हुई और गोकुलचन्द की महती कृपा से इनके जातीय सस्कार व्यावसायिक बुद्धि मे विकास हुआ। इस तरह ये भारतेन्दु परिवार के अभिन्न सदस्य थे।

राधाकृष्ण दास का स्वभाव सरल तथा ये बडे विनम्र एवम् विनोदप्रिय व्यक्ति थे। इनमे समन्वयात्मक सूझ बूझ थी। अहकार तो लेशमात्र भी न था। शाति एवम् सरलता की मूर्ति थे। ब्रजरत्नदास ने लिखा है कि कभी इन्हे किसी पर क्रुद्ध हुए किसी ने देखा हो।[3] आप बड़े ही व्यवहार कुशल व्यक्ति थे।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा के उन्नायको म स आप भी एक है। आपके ही समय से सभा में खोज का काय सपन्न हुआ। प्रेमघन जी ने आपके कार्यों से द्रवीभूत होकर बड़े प्रेम से याद किया है—

हे प्रिय राधा कृष्ण दास! विश्वास न ऐसो।
रह्यो तिहारे साहस त देख्यो हम जैसो।[4]

---

१ आचाय चतुरसेन हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास पृ० ४६२।
२ सपादक ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मडल, पृ० १६०।
३ वही पृ० १६१।
४ डा० किशोरी लाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ४२७।

राधा कृष्ण दास का जन्म एक धार्मिक परिवार मे हुआ था। साहचय भी मिला तो राधा के चाकर का ही। अत सनातन धर्म पर इनकी अटूट श्रद्धा थी और उस धम पर इनका अटल विश्वास जीवन पर्यन्त बना रहा। इस धार्मिक उदारता मे अध परम्परा का स्थान नही था। ये बराबर धर्मोन्नति के लिये क्रियाशील रहे। धार्मिक अवनति के कारणा पर आप बराबर प्रकाश डालते रहे। तनिक भी आपमे प्राचीनता नही थी। आप रूढिवादिता के कट्टर विरोधी थे। यही कारण था कि स्त्री शिक्षा, बाल विवाह और विधवा विवाह के बारे मे आपके विचार काफी गम्भीर हैं। इन विचारो के कारण पुराने अधविश्वासी लोग इन्हें आय समाजी कहने लगे थे।[1]

धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण आपकी चेतना को शुद्ध तीथयात्राओ ने भी विशेप बल प्रदान किया। साहित्यिक यात्राओ के अतिरिक्त आपने मथुरा वृदाबन, अयोध्या आदि स्थानो के दशन किये। आपका नवधा भक्ति म पूण विश्वास था। इन यात्राओ मे आपके साथ भारतेन्दु का परिवार भी था।

राधाकृष्ण दास कवि, लेखक, नाटककार और उपन्यासकार थे। ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। सपादन-कला मे आपकी चयन प्रतिभा और कारयित्री प्रतिभा का सयोग बडा ही आकपक लगता है। इन्होंने कई एक महत्वपूण ग्रथो का सम्पादन किया।

भारतेन्दु जी का प्रभाव इनके व्यक्तित्व से स्पष्ट झलकता है। उनके साहचय ने सोने मे सुगध का काम किया। भारतेन्दु जी की कीर्ति पताका का दिगतव्यापी सुयश प्रदान करने का श्रेय आपको ही है। आप भारतेन्दु जी के अनन्य भक्त थे। उनके प्रति अपार श्रद्धा आपके हृदय मे फूट-फूट कर भरी हुई थी। अत भारतेन्दु जी के प्रभाव से वचित होना चाहे वह किसी प्रकार का क्षेत्र हो, असमव है। ब्रजरत्नदास ने लिखा है "श्री राधाचरण दास मे भारतेन्दु जी के निरतर साहचय के कारण उन्हीं सी रुचि बहुत कुछ उत्पन्न हो गई और उनम भी प्रेमरस का कुछ न कुछ सचार हो गया।'[2] भारतेन्दु जी का अधूरा नाटक सतीप्रलाप आपने ही पूरा किया।[3]

भक्ति भावना

राधाकृष्णदास की भक्ति भारतेन्दु के साहचय से फूली और फली। अत उनकी ही भांति ये भी वल्लभाचाय के मतानुयायी थे।[4] अत कृष्ण भक्ति से उनका हृदय ओतप्रोत था। कवि भारतेन्दु की भाति ही य राधा की तरफ विशेष आकृष्ट थे—

हमरी चौथ चदा का करिहै।
श्रीवृजचन्द चद मुखी प्रेमी औरन सो का डरिहै।
कुलबोरिन सब कहत गाव म और नाम का धरिहै।
दास' कलवहु हम प्रेमिक के ढिग आवत थरहरिहै।[5]

कवि राधा रूप की उपासना मे अपने को न्योछावर कर देता है। उस मानिनी की छवि का वणन करते हुए कवि कहता है—

---

१ ब्रजरत्नदास, भारतेन्दु मडल, पृ० १६३।
२ वही, पृ० १७२।
३ चतुरसेन शास्त्री, हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, पृ० ४८३।
४ ब्रजरत्नदास, भारतेन्दु मडल १६३।
५ सपा० श्यामसुन्दर दास, राधाकृष्णदास ग्रथावली (फुटकर ५), पृ० ६४।

हो बलि जाऊं मानिनी छवि पर।
बैठि मोह चढाय रिस भरो, गोल कपोलनि कर धर।
नन बद अलकावनि छूटो अचल पट खसक्खो सर।
लाल मनावत मानहि रहि गए, धरि के प्यारी के पग पै कर।
विरह देखि प्रान प्रीतम को, मिली मन तजि प्यारे के गर।
वरनि सकै छविहि दास जो, जग मे ऐसो नाहिन कोउ नर॥[1]

अत वह राधा लाडिली के परो को छोडकर अन्यत्र जाने की अभिलाषा नही करता।

लाडिली ऐसी मति माहि दीज।
चरन छोडि नहिं जाऊं अनत कहुँ सरन आपनी दीजै।
नित उठि दरस करूँ पिय प्यारी हृदय पखान पसीजै।
इतनी अरज दास की सुनिये, निज जन कृपा करीजै॥[2]

इसी लाडली की दशा देखकर तो चदा चचल हो गया था। वह बदरो म अपना मुँह ढाप कर नोर बहाता है—

देखी लाडली की दसा चदा गयो लुकाय।
बदरी मे मुह ढाकि के नीर बहावत हाय॥[3]

कवि राधा का अनन्य भक्त है। वह उनके मुखचद की तुलना चन्द्र स करता है—

जनम लियो है व्रज प्रेम सुधा सागर वा।
बापुरो मयक प्रगटयो है जल खारी को।
घटत बढत तनहीन तजमान हात
बाढै दिन दूनो तेज कीरति कुमारी को।
वह सकलक 'दास' दुखद चकोर, वह
मेटत कलक भव पोषत बिहारी को।
घन मे छिपत यह घन स्याम सग सदा॥
मद करै चदहि अमद दुति प्यारी को॥[4]

दास जी वल्लभसम्प्रदाय म दीक्षित थे। अत उन्होने राधाकृष्ण के विहार का बडा ही विमुग्धकारी वणन किया है। उनकी राधा कृष्ण के साथ हिंडोले पर झूलते दृष्टिगोचर होता हैं। कवि की भावना मे शृङ्गार का पुट है लकिन भक्तितत्व की प्रधानता है—

भीनी भीना बूँदनि परति बडी सोभा अति,
चमकि चमकि विज्जु जिय डरपावत हैं।
लाल मखमली बीर बहू भूमि डालें मानो,
बूंद अनुराग नेह मेह बरसावै है॥
भरे अनुराग बैठे प्यारे प्यारी झूले माहिं
सखीजन गावत बजावत झुलावै हैं।

---

१ किशोरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ४३०।
२ किशोरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ४३१।
३ सपा० श्यामसुन्दरदास, राधाकृष्णदास ग्रथावली (फुटकर ४), पृ० ६४।
४ किशोरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ४३१।

'दास' देखि सोभा यह भूलि जात दुख सबै
प्यारी जू ढरति प्यारा अंग लपटावै है ॥[1]

कवि प्रेमोपासक है। अत प्रेममयी युगल सरकार की मूर्ति से मगल कामना करता है—

लखि प्रम विवम पिय जब झुक अति अति सकोच डारी गरै।
यह प्रेममई मूरति दोऊ नित नित नव मगल करै ॥[2]

प्रेम का पथ ही विचित्र होता है। प्रेम सरोवर मे जो जितना हो डूबता है, डूबता ही जाता है—

मन सो मन अरु हार सा हार उरझि रहे देह।
धनि उरझनि यह प्रेम की धन्य धन्य यह नेह ॥[3]

कवि मे दैन्य की प्रबलता है। वह सासारिक माया मोह और फन्दा से अपने को विलग करना चाहता है। फलस्वरूप अपने प्राणनाथ से प्राथना करता है। कवि का स्वकीय भाव यहा बहुत ही सरस और हृदयग्राही हुआ है—

प्राननाथ प्रीतम ललन, पूरन परमानन्द।
राखौ अपन चरन म करि सकल भव फद ॥[4]

राधाकृष्णदास ने बहुत कम कविताएँ लिखी हैं।[5] इसलिये उनकी कविता करने वाला के रूप मे विशेष प्रसिद्धि नही हुई है। फिर भी जितना काव्य साहित्य उपलब्ध है इससे सिद्ध होता है कि कवि मे भक्ति-भावना का प्रवाह अच्छा है, वह कृष्ण का ही नही बल्कि राम और जानकी का भी अनन्य भक्त है। एक पद द्रष्टव्य है—जिसम सीता अपन भाग्य की सराहना करते हुई कहती हैं—

यह कोकिल रव शीतल छाया यह तुम सग बिहार।
प्राणनाथ कहँ भाग हमारे यह सुख सहज पियार।
ज्यो ज्यो घन गरजत बरसत इत त्यो त्यो तुव गर लागि।
परमानन्द अलौकिक लूटत नित नित नव अनुरागि।
यह गिरि अवनि सोहावनि झरना झरते चारहुँ ओर।
प्रबल प्रवाह पहाडी नदिया बहनि करत कल रोर।
राज भवन सुख साज सबै, पै तुम बिन हमको फीको।
हमरे भाग सुहावत विराजत प्राणनाथ सुख टीका।
तुम मेरे जीवन धन प्यारे तुम चरननि सुख दीजै।
राधाकृष्णदास की जीवनि नैन प्रेम जल छीज ॥[6]

कवि राम की कृपा का आकाक्षी है। वह जानता है कि वह मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम भव भय से दूर कर देता है। वह अपन जना के रजन के निमित्त समस्त स्वार्थों को त्याग देता है। अत कवि उसकी आराधना मे अपन का लीन कर देता है। वह राम का अनन्य भक्त है। राम के नर रूप को भव भव भजनकारी मानता है।

---

१ सपा० श्यामसुन्दर दास, राधाकृष्णदास ग्रथावली, (फुटकर ३) पृ० ६३।
२ वही, पृ० ६६।
३ किशोरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ४३४।
४ सपा० श्यामसुन्दर दास, राधाकृष्णदास ग्रथावली, पृ० ६५।
५ किशोरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और उनके अन्य सहयोगी, पृ० ४३४।
६ सपा० श्यामसुन्दर दास, राधाकृष्णदास ग्रथावली, पृ० २५।

जाने लगा। गुप्त जी को संपादन कला मे पूर्ण सफलता मिली। उनकी प्रतिभा अनुकूल अवसर से चमक उठी। श्यामसुन्दरदास ने इनके संपादनकला की भूरि भूरि प्रशसा की है।[1]

गुप्त जी का हिन्दी पत्र 'हिन्दोस्थान' से संबध १८७७ ई० मे एक सहसम्पादक के रूप म स्थापित हुआ। बाद म १८९९ मे आप इसके सपादक हुए। इस प्रकार गुप्त जी ने हिन्दी बंगवासी, भारतमित्र आदि कई एक पत्रो का सपादन किया। आप एक कुशल सपादक के नाते हिन्दी साहित्य मे विशेष मान्य हैं।

गुप्त जी की वेश भूषा बडी साधारण थी। ये शरीर से स्वस्थ थे। आपका व्यक्तित्व बडा ही प्रभावकारी था। आप नियमित रूप से गगा स्नान करते थे। स्नानादि के उपरात वैष्णवोचित प्रमाद के कारण सध्यावन्दन, गीता और विष्णु सहस्रनाम का पाठ करते थे। इसके बाद तो आप कुछ लिखने बैठते थे। इस प्रकार गुप्त जी में हृदय की शुद्धता, निष्कपटता और पक्षपातहीनता थी। आप बड़े गंभीर लेकिन मृदुभाषी थे। हास आपका बडा ही तीखा होता था।

भक्ति भावना

बालमुकुन्द एक भक्त कवि थे। उन पर किसी सम्प्रदाय की छाप नही पडी थी। स्वतन्त्र रूप से वे प्रभु चिन्तन किया करते थे। राम और कृष्ण म भेद न मानकर वे दानो की उपासना किये हैं। विशेषकर वे एक राम की तरफ ही आकर्षित रहे। राम की उपासना करने म उनकी भक्ति निखर आई थी। प्रभु कृपा प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि प्रभु के समक्ष अपने दैन्य का प्रदर्शन किया जाय। अत हमे रामस्तुति के पद मिलते हैं जिनम भक्त अपने अवगुणा का उल्लेख कर अपने आराध्य देव का अनुग्रह प्राप्त करने की कामना प्रकट करता है। वह सब प्रकार से अयोग्य है। अपनी दशा के बारे मे जब जब सोचता है उसकी आँखें जल पूरित हो जाती हैं। अत वह कर्म-फल पर विश्वास कर मर्यादा पुरुषोत्त श्रीराम के रूप को हिय मे बसा लेना चाहता है। वह प्रभु की तारण-वृत्ति से अपरिचित नही है—

हम प्रभु दीन मलान हीन सब भाँति दुखारी।
धम्मरहित धनरहित ध्यान च्युत बहु अविचारी॥
यदपि न काहू भाँति सुख भोगत कर मन फल।
सोचि सोचि निज दशा मर्यो आवत आँखिन जल।
पै तदपि होत सूखो हियो,
हर्यो मुर्मर दिन आज को।
राज तिलक हिय में बसो,
श्रीरामचद्र महाराज को॥[2]

कवि अपनी दीनता के अचल स उचक कर भगवान् के ऐश्वर्य की तरफ आकर्षित होता है तो प्रभु अपनी अपार लीलाआ से उसे बाह्य जगत् म रमा लते हैं। वह उन्मत और तल्लीन होकर अपन इष्टदेव का ऐश्वर्य रूप दर्शन करता है और वह एक अपूर्व और सरस आनन्द का अनुभव करता है। उस

---

१ श्यामसुन्दर दास हिन्दी कोविद रत्नमाला, प्रथम भाग, इडियन प्रेस, प्रयाग प्र० सं०, १९०९, पृ० ९९।

२ बालमुकुन्द गुप्त, स० यशोदानन्द अखौरी, स्फुट कविता (एक स्तुति), भारत मित्र प्रेस कलकत्ता, पृ० ३।

जगन्नियन्ता की सासारिक लीलाएँ उसके मानस को उत्फुल्ल और आनन्दित करके एक ओर जहां उसे स्वान्त सुख प्रदान करती हैं वहा दूसरी ओर उसकी भक्ति-भावना को एक अतीन्द्रिय जगत् मे और अपने उपास्य म लगाकर वाणी को रस स्निग्ध करती हैं। निषाद और सुग्रीव से प्रभु की मित्रता का वर्णन कर कवि अपने को धन्य समझता है। उसके अग-अग पुलकित हो जाते हैं। गुप्त जी अपने आराध्य देव के ऐश्वर्य रूप को बहुत ही तल्लीनता और आत्मविभोरता से व्यक्त करते हैं—

नेही जानि निषाद नीच छाती सो लायो।
लछमन सम प्रिय भापि प्रेम सो हियो जुड़ायो ॥
स्वाद बखानि बखानि भीलनी फल खाये।
निज कर पकज ताहि दाह कर आगे धाये ॥
जय वालि सुतहि पायक करन,
निरखि जाहि पुलकित हियो।
करि तिलक माथ कपिराय के
मीत रग राजा कियो ॥[1]

विष्णु के अवतारो मे राम और श्रीकृष्ण को सर्वाधिक प्रसिद्धि मिली। राम सबमे रमने वाले हुए और कृष्ण गोपीवल्लभ क नाम से प्रसिद्ध हुए। कवि राम के रमने वाले रूप का वर्णन करते उनके शिशुत्व की भाकी प्रस्तुत करता है। वह अपने भक्त जनो के रञ्जन के निमित्त दशरथ के सदन मे अखिल ब्रह्म का रूप भुला कर शिशु रूप से क्रीडा करता है—

शिव विरचि अहिराज पार कोऊ नहिं पावै।
सनकादिक सुक नारद सारद ध्यान लगावै ॥
मुनिगन जोग समाधि करहिं बहु विधि जा करन।
तदपि रूप वह सकहिं न करि उर अतर धारन ॥
सो अखिल ब्रह्म रूप धरि,
खेलत दशरथ के सदन।
कौशल्या निरखत मुदित मन,
जपति राम आनन्द धन ॥[2]

गुप्त जी वैष्णव थे। उनका भगवान् के अवतारों मे पूर्ण विश्वास था। वे राम को विष्णु का अवतार मानते थे। इस प्रकार उनके राम सर्वशक्तिमान हैं। कवि उन्हें सर्वशक्तिसम्पन्न मान कर अपना दैन्य प्रदर्शित करता है—

जप बल तप बल बाहु चौथी बल हैं राम।
हमरे बस एको नही पाहि पाहि श्रीराम ॥[3]

कवि अपनी लघुता का वर्णन करते हुए दीनता की चरम सीमा पर पहुँच जाता है—

अपने बल हम हात की रोटी सकल न राम।
नाथ बहुरि कैसे मरैं मिथ्या बल करि साख ॥[4]

---

१ बालमकुन्द गुप्त, स० यशोदानन्द अखौरी, स्फुट कविता (एक स्तुति), भारत मित्र प्रेस कलकत्ता, पृ० ३।
२ वही, (राम स्तुति), पृ० २।
३ वही, (श्रीराम स्तोत्र), पृ ६।
४ बालमकुन्द गुप्त, यशोदानद अखौरी, स्फुट कविता (श्रीराम स्तोत्र), पृ० ६।

गुप्त जी के इष्टदेव का व्याप्त व्यक्तित्व (डिफ्यूजिव पर्सनाल्टी) वैष्णव धर्म मे ईश्वर की सार्वभौम शक्ति ही है। कवि उसकी शक्ति पर पूर्ण आस्था रख उसमे तन्मय हो जाता है और उसकी प्रम विभोरता भगवान् की भक्तवत्सलता पर अपना सुध-बुध गाँव देती है। कवि पर दु ख कातरता तथा दीन दुखिया की ओर प्रेम भाव की अनन्यता का जब वर्णन करने लगता है तो साश्रु नयन नाम की महत्ता का गुण गान करता है। ऐसे समय वह भवगान् की गरिमा का वणन करते हुए थकता नहीं—

अब आय तुम्हारी सरन हारे के हरिनाम।
साख सुनी रघुवशमनि निर्बल मे बल राम॥
जब लौं निज बल नर रह्यौ सरयौ न जग को काम।
निबल ह्वै हारे मज्यो छाये आधे नाम॥
छलबल करत कपीस को मिट्यो न नाथ कलेस।
निबल ह्वै जब पद गहे भयो सालि को सेस॥
दीन सुदामा के किये छन मे कचन धाम।
दशरथ गति भई गीध की जपत नाथ को नाम॥[1]

मनुष्य का अन्त मन बडा चचल होता है। उसकी चचलता का वणन सभी कवियों ने किया है। गुप्त जी को मन की चचलता का बोध शूल की भाँति बेधता है। उन्होने मन की विषय भाग म अनुरक्ति का बडा ही सजीव वणन प्रस्तुत किया है। कवि यहाँ कबीर की भाँति ही अपनी अक्खडता का परिचय देता है। उसे इसकी परवाह बिल्कुल ही नही है कि सासारिक सुखो में लिप्त समाज उसे क्या कहेगा। मन की चचलता तथा विषयासक्ति का वर्णन इस प्रकार है—

मन तू फिर थूकत फिर चाटत।
कबहु बन जब, बन मत गजे वीतराग भगु हाटत।
कबहु विषय भोग कर परतिय थूक लार तक चाटत।
मन ललचाति बहुरि हर पद रति कर सुख सूम न बाँटत॥
वृथा जनम जग जीव विषय सुख करि सन यो वय काटत।
ज्यो शत छिद्र पेम को बसता फिर काटत फिर साटत॥[2]

गुप्त जी वैष्णव मतावलम्बी थे। लेकिन अय धर्मों की इज्जत करते थे। इन्होने कभी किसी धर्म पर प्रहार नही किया। उनके अतगत धार्मिक सकीणता का भाव नही था। हिंदू धम की विशिष्टता स्वीकार करते हुए भी वे हिंदू और मुस्लिम ऐक्य की बात कहकर कबीर के निकट स्थान बना लेते हैं यथा—

अल्ला गाड अरु निराकार मे भेद न जानो भाई रे।
इन तीनों को जी मे अपने जानो भाई भाई रे॥[3]

हिन्दू धर्म मे प्रचलित कुप्रथाओ का उन्होंने घोर विरोध किया। धर्म के प्रति अविश्वास वेद, पुराण, गीता आदि की बिगडी मर्यादा के प्रति उन्होंने आक्रोश प्रकट किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि कट्टर सनातनधर्मी है। उन्होंने लिखा है—

---

१ वही, पृ० ६।

२ डा० नत्थन सिंह, बालमकुन्द गुप्त जीवन और साहित्य, पृ० ३६४।

३ बालमकुन्द गुप्त, स्फुट कविता (रामस्तुति), पृ० ११।

पै हमरे नहिं धम्म कम्म कुल कानि बड़ाई।
हम प्रभु लाज समाज आज सब धोय बहाई॥
मेटे वेद पुरान न्याय निष्ठा सब खोई।
हिंदू कुल मरजाद आज इन सबहि खोई॥
पेट भरन हित फिरै हाय कूकर से दर दर।
चाटहिं ताके पैर लपकि मारै जो ठोकर॥[१]

गुप्त जी राम के अनन्य भक्त हैं। उनके हृदय मे राम के प्रति जितनी श्रद्धा है, वह अवर्णनीय है। कवि अपनी करनी पर पश्चात्ताप करता है। उसे विश्वास है कि वह खुद ही भगवान् को भूल गया है। वह पतित है, उसके हृदय मे तो भक्ति है और न तन म बल है। यथा—

तुम नहिं भूले राम प्रभु हमही भूले हाय।
जहाँ तहाँ मारे फिरै तुमसो नाथ बिहाय॥
तन महँ सक्ति न हीय महँ भक्ति हमारे राम।
अधम निकम्मे आलसी पाजी डील हराम॥
डूबत अम्बु अगाध महँ बेगि अबारो आप।
हम पतितन को नाथ बिन नाहिन आन उपाय॥
अब तुमसो बिनती यहै गरीब नवाज।
इन दुखियन अखियान महँ बसै आपको राज॥[२]

गुप्त जी साकार ब्रह्म मे आस्था रखते थे। अब प्रभु की सेवा मे निरत रहना उसके जीवन का लक्ष्य था। नर देह की सार्थकता तभी सिद्ध होती है जब कि वह प्रभु के किसी काय में सहयोग प्रदान कर सके। यदि ऐसा करना संभव न हो सका तो कवि पश्चात्ताप की वह्नि मे अपने को भस्मीभूत समझता है। अपने को वह बन्दर और गिद्ध से भी हेय समझता है क्योंकि जटायु ने तो प्रभु की सेवा में आत्म समपण कर दिया—

और सुनो हम गीध एक लरयो तुम्हरे हेत।
जब लो तन महँ बल रयो तज्यो नाहिं रन खेत॥[३]

फिर तो कवि मानस में उथल-पुथल मच जाता है। वह आक्रोश भरे शब्दों मे कह उठता है—

बानर गीधहुँ ते गये प्रभु हम नर तनु पाप।
नाथ तुम्हारे एकहू काम न आये हाय॥[४]

अत उसकी प्रबलतम इच्छा है कि—

नाथ कबहुँ कछु आइहै हमहुँ तुम्हारे काम।
ऐसो अवसर हूँ कबहुँ पावैंगे हम राम॥[५]

कवि बार बार सासारिक वासनाओ से व्यथित जीवन को धिक्कारता है—

---

१ बालमकुन्द गुप्त, स्फुट कविता (राम स्तुति) पृ० ११।
२ बालमकुन्द गुप्त स० यशोदानन्द अखौरी स्फुट कविता, (राम स्तुति) पृ० १५।
३ वही पृ० १४।
४ बालमकुन्द गुप्त स० यशोदानन्द अखौरी, स्फुट कविता (रामस्तुति), पृ० १४।
५ वही, पृ० १६।

धर्म न अर्थ न काम के नाहिं राम सा प्यार ।
ऐसे जीवन पोच कहँ बार बार धिक्कार ॥[1]

उसे पूर्ण विश्वास है कि दयालु दीनबन्धु का वरद हस्त जिन पर पड जायेगा वह भवसागर से मुक्त हो सकता है । वही अनाथो का नाथ है । उसके बिना जीवन तरैया मझधार ही मे चक्कर काटती रह जाती । अत भगवान् से प्रार्थना करता है—

नाहिन पार बसात कछु बुद्धि करत नहि काम ।
सूझत नाहिं सुपन्थ प्रभु दया करो श्रीराम ॥
राम आप बिन का गहे परे गिरे को हाथ ।
नाथ अनाथन के सदा तुम ही हो रघुनाथ ॥
बूडत है भवसिंधु महं बेगि उबारो राम ।
नाथ आप सा दूसरो बिगरी देहि बताय ॥[2]

ईश आराधना के साथ साथ कवि गुप्त जी ने भक्ति स्वरूप लक्ष्मी और दुर्गा की भी आराधना की है । लक्ष्मी को वे जगत् माता मानते हैं । उनका विश्वास है कि जगत का कल्याण दुर्गा की कृपा दृष्टि से ही संभव है । विद्या-बुद्धि आदि जगत्-माता दुर्गा की अनुकम्पा का ही फल है । उनके विश्वास म अनन्यता परिलक्षित होती है । कवि के शब्दो म—

कहा भयो जो मरि पचि कै बहु विद्या पाई ।
पोथि पत्रन को घर मह अति भीर लगाई ॥
रही मात तव दया बिना सब विद्या छूछी ।
बहुत पसारे हाथ बात काहू नहिं पूछी ।
नहिं जननी विद्या बुद्धि को तब बिनु नेक उठाव है
धिक जीवन तब करना बिना तोसो कहा दुराव है ॥[3]

वह दुर्गा से गौरीशकर के चरणा मे चित्त रमा देने के लिए प्रार्थना करता है । वह दुनियाँ के समस्त वैभव को ठोकर मारता है । कवि को विश्वास है कि दुर्गा महारानी की कृपा से ही शिव गौरी की आराधना सभव है । इस प्रकार कवि यहाँ शव घोषित होता है ।

माँगता हूँ गति मुक्ति कछु अरु नाहिं विभौ की सुचाहना मेरी ।
नाहिन चाहत हूँ बहु नान नही कछु लोलुपता सुख कैरी ।
जाचत हूँ जननी अब तोहि दया करिकै मोहि सौ बर देरी ।
जीवन जीतै सुनो मन री शिव गौरी ही गौरी सदा जप ते री ॥[4]

दुर्गा माता को वह शक्ति का अवतार, दारुण दुःख दाहक और पाप-पुज भजक मानता है । अत वह तद्युगीन प्रवाह मे बहते हुए देश के कल्याणार्थ माँ दुर्गा का आवाहन करता है ।

जयति सिंहवाहिनी जयति जय भारत माता ।
जय असुरन दल दलनि जयति जय त्रिभुवन त्राता ॥

---

१ वही, पृ० १६ ।
२ वही, प० ६ ।
३ बालमुकुन्द गुप्त, संपा० योशोदा अखोरी, स्फुट कविता (देवीस्तुति), पृ० ४८ ।
४ वही, पृ० २० ।

सग सरस्वति अरु कमला सोमा बाढी अति ।
चारहु ओर गगन कारे सेना सुर सेनापति ॥
अब जननी चाही हम सा, सदा वास भारत करो ।
धनधान्य अनन्द बढाय कै, दरिद सोक ससय हरो ॥[१]

गुप्त जी मे कविकुल तुलसीदास और भक्तशिरोमणि सूरदास की भाति ही आत्मनिवेदन का पक्ष प्रबल है । वे पाप-पुज भजक दारुण दु ख निवारक परम पद दायक भागवन से अपना दैन्य प्रकट कर नाम स्मरण करने की शक्ति की याचना करते हैं । यहाँ उनकी भक्ति भावना स्तुत्य है । कवि के अन्तमन की यह लालसा अवलोकनीय है—

हम कोऊ लायक नही सब लायक प्रभु आप ।
दीनहु ते अति दीन हैं वेगि मिटावहु ताप ।
तुम बिनु प्रभु को दूसरो बिगरी कहि बनाय ।
दया करो फेरो दसा होहु कृपालु सहाय ॥
राज पाट धन बल गयो जावहु कृपानिधान ।
पै न जाय यह अरज है तुम्हारे पद को ध्यान ।

इस प्रकार गुप्तजी की भक्ति-भावना में वैष्णवता कूट कूट कर भरी हुई है । उनकी भक्ति-भावना मे तद्युगीन कविता धारा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होने के कारण देशभक्ति का स्वर ऊँचा था । इनकी भक्ति भावना म भारतीयता और देशप्रेम के स्वर ही विशेष रूप से अभिव्यजित हैं ।

राव कृष्णदेवशरण सिंह गोप

जीवन रेखा

राव साहब भरतपुर रियासत के श्री दुजन साल के वशज थे । कहा जाता है कि ये उनके पौत्र थे ।[२] इनके जन्म और मृत्यु की तिथि अभी अज्ञात है । मृत्यु तिथि के बारे मे ब्रजरत्नदास और किशोरी लाल गुप्त दोनो विद्वद्जनो के विचार एक स हैं लेकिन निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि १८९६ या १८९७ ई० म उनकी मृत्यु हुई ।

राव साहब ठाकुर जगमोहन सिंह की भाति ही काशी वाडस इस्टिट्यूट म पढ़ने के लिये सरकार द्वारा भेज गये । यही पर उनकी नागरी नागर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से मुलाकात हुई । प्रथम परिचय मे ही ये भारतेन्दु के अनन्य भक्त बन गये । राव साहब काशी म शिवपुर मुहल्ले के भरतपुर कोठी में रहते थे ।

राव साहब एक सज्जन पुरुष थे । काशी म इन्हें अपनी प्रवृत्ति के अनुसार ही समाज सुलभ हुआ । भारतेन्दु जी तथा अन्य कवियो के समागम से आप की छिपी कवित्व प्रतिभा का विकास पल्लवित हुआ । ब्रजभाषा पर आपका जन्मगत अधिकार था ।[४] आप भावुक और सहृदय थे ही । गायन वादन में आप प्रवीण थे । फलस्वरूप आपके कोमल हृदय की सरल प्रतिभा ने आपको माँ भारती

१ बालमुकुन्द गुप्त, स्फुट कविता (देवीस्तुति), पृ० २६ ।
२ वही, पृ० ६ ।
३ ब्रजरत्नदास, भारतेन्दुमडल, पृ० ३४ ।
४ वही, पृ० ३६ ।

के मन्दिर का पुजारी नियुक्त किया। आप एक सरस कवि हो गये। कविता की गेयता के लिए तत्कालीन कवि समाज मे आपकी ख्याति हो गई।

आप बड़े ही कलाप्रिय व्यक्ति थे। वीणावादिनी की उपासना मे आपकी 'दिनराम' नामक वीणा के तार जब कोमल उगलियो का साहचर्य पाते तो मधुर स्वर लहरिया से समस्त काशी की काया को कपन बना देती। इस तरह आप वीणा के बड़े शौकीन थे। कहा जाता है कि शुतुमुर्ग के अडे का एक छोटा सा सितारा आपने स्वय बनाया था। आपकी कारीगरी का इससे उत्तम उदाहरण और क्या हो सकता है। इसके अतिरिक्त भी आप की कारीगरी के अनेक उदाहरण मौजूद हैं। कहा जाता है कि इन्होंने लोहे का एक बहुत बडा फव्वारा स्वय ढाला था, जिसमे बहुत सी गोपियाँ हाथ मे पात्र लिये चारो ओर खडी हैं और इनके बीच मे एक पहाड बना हुआ है, जिस पर श्रीकृष्ण ऊपर को छोडने के भाव से हाथ मे पिचकारी लिये हुए बैठे हैं तथा, उनकी गोद म सिर रखकर राधिका लेटी हुई हैं। पिचकारी से बराबर फुहारा छूटा करता है। यह फव्वारा बीस फीट के घेरे म बना हुआ है। इसका मूल्य एक अमेरिकन सज्जन अस्सी सहस्र दे रहे थे।[1] इस प्रकार की कारीगरी से गोप जी की कला प्रियता और उनकी भक्ति भावना दोना का पता चलता है। कला का किसी कवि के हाथ से ऐसा सौन्यजन्य स्वरूप अन्यत्र दुलभ है। राव साहब फोटोग्राफी भी जानते थे। राव साहब बडे ही मिलन सार स्वय विनोदप्रिय व्यक्ति थे। खानदानी रईस होने के कारण विलासी भी थे। भावुकता इनमे इतने थी कि मानापमान का बिल्कुल ख्याल ही नही करते थे। इसकी भावुकता के प्रबल प्रवाह म पडकर जौनसन की अनिद्य सुन्दरी पुत्री के पीछे पीछे बम्बई तक गये। जब वह अपने देश के लिये जहाज पर चढने लगी तो इनके रसाभ्यासी हृदय की मोह निद्रा टूटी।

आप विनोदप्रिय स्वय साहित्यमर्मज्ञ थे। कवि समा मे आपकी ख्याति विशेष थी। सुधाकर जी आपसे विशेष प्रभावित थ। भारतेन्दु जी जो के तरुण समाज के आप सदस्य थे। आप अपनी गलती को स्वीकार करते म सकोच नही करते थे।

भक्ति भावना

गोप जी एक भक्त कवि थे। वे रागानुगा भक्ति के पायक थ। उनकी भक्ति भावना मे प्रेम का मनमोहक वणन मिलता है। कवि का विश्वास है कि भगवान् के भेद के बारे म सभी अनभिज्ञ हैं। वह अपन दृढ निश्चय से सबको परिचित करा देता हे। उसके रूप के बारे मे मतक्य नहीं हो पाया। वेद, पुराण आदि दृढ निश्चय पर नही पहुँच पाये। तब कवि के विश्वास को बल मिल जाता है। वह अपने प्रेम की गोपनीयता के बारे मे स्पष्ट सकेत कर देता है कि जो प्रेम को छिपा कर रखता है उसे परम पद कहा सुलभ है। यथा—

नाथ तेरो भेद न जानत कोय।
निगुन कहत अरूप गिनत पुनि जडहूँ मानत सोय।
छुद्र जीव अति मूढ ग्रसित मल ताकतो तोहि समोय।
यदि सिद्धान्त निकारि यहै जिय आपु रहे सब खोय।
वेद पुरान वाद नाना करि हरि थकि पुनि रोय।
गोप परम पद पावै क्यो जो प्रेमहिं राख्यो गोय॥[2]

---

१ व्रजरत्न दास, भारतेन्दुमडल, पृ० २७।
२ हरिश्चन्द्र मैगजीन, १८३३ ई० दिसम्बर, सख्या ३, पृ० ७७।

गोप श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त हैं। उन्हे शृंगार सम्राट श्रीकृष्ण पर पूर्ण विश्वास है। उनके प्राण उनके लिये तडपते रहते हैं। कृष्ण उनके हैं और वे कृष्ण के हैं—

ब्रजराज राखिये मेरा मन।
सब जानत हम आपुहि के हैं काहू की नहिं करत कान।
यापै जो मोहि बिसरायौ तो इस बिहारी होय नादान।
मिलो विलम्ब न करो पियारे तुम बिन तलफत पापी प्रान।
गोपहि दै विश्वास मिलन की चाहत हौ क्यो अब मगि जान॥[1]

कवि का प्यारा भगवान् बडा ही सुकुमार है। उसने दीनो की आशा बहुत बार पूरी की है। कवि का पूर्ण विश्वास है कि वह नन्दकुमार छोडेगा नही—

प्यारे दीखत सो बहुते सुकुमार।
कठिन बानी कसे यह मोहन धरी जीय अतिहि निरधार॥
दीनन की आसा हू पूरी करत सुनी तुम बहुतै जार।
ललकि रहे लोचन निरखनि को चरन युगल जन सुख दातार।
जो भक्तन केवल सुख दीवै प्रगट्यो भूमि हरन बहु भार।
गोपहि सो पहिचान छाडि हैं नहिं कबहूं वह नन्दकुमार॥[2]

कवि सासारिक प्रपचों से ऊबकर भगवान् से प्रार्थना करता है कि हे करुणासिन्धु तुम अपने गोप की लाज बचाओ। तुम अशरण के शरण हो और तुम्हारे जन की यह दुर्दशा। भक्त भगवान् को उपालम्भ देता है—

माधो यह गति तुम्हरे जन की।
बूडत है घबराय सोई प्रभु चरन चाह जिहि रही लखन की॥
सरनागत प्रतिपाल होय हरि सुरत बिसारत अपने जन की।
भूलत नहिं गज धाय अवारन मुकुट समारन फेंट कसन की॥
तुमको कहा बहुत अब कहिये अन्तरजामी जानत मन की।
करुनासिन्धु काहू अपनैये लाज राखिये गोप लगन की।[1]

ससार म किसी चीज का विचार नही है। भगवान् के भजन मे भी बाधा है। जो उसका ध्यान करता है वही मूख और गँवार है। लोग अपन विवेक से काम नही लेते। वे कम रज्जु मे बध कर बार बार देह धारण करते हैं, लेकिन उस प्रभु से प्रम नही करते—

प्रभु यह कहा जगत विचार।
तोहि जो सब त्यागि निसदिन भजत होत सो खार॥
लोग सबही गिनत निज के ताहि मूर्ख गवार।
हँसत निंदा करत यद्यपि लहत नहिं कछु सार॥
कर्म रज्जु बँधे पावत नीच देह अनेक।
गोप नहिं जिय प्रेम लावत छाडि बुद्धि विवेक॥[4]

---

२ वही, पृ० ७६।
१ हरिश्चन्द्र मैगजीन, सन् १८७३ ई०, दिसम्बर सख्या ३, पृ० ७६।
२ वही, पृ० ७७।
१ हरिश्चन्द्र मैगजीन, सन् १८७३, दिसम्बर, संख्या ३, पृ० ७७।

नन्दलाल श्रीकृष्ण के मथुरा गमन पर सभी को दुःख है। गोकुल के ग्वालबाल, बछड़े आदि सभी उनके लिये व्याकुल हैं। समस्त गोकुल मे शोक का समुद्र लहरा उठा है—

अब कहा गयो वह मोहन यार।
गाइन बछरन गोप गोपिकन सबसौं घनौं पियार॥
जमुना कूल निकुंज चलन मे सबके कर तो पूर करार।
मैया बाप बियाकुल छोड़े नहिं काहू की सुनी पुकार॥
सब सो तोरि गयो ब्रज सो कढ़ि सोग बखेरयो घरन मझार।
गोप कठिन भई दसा सबन की बरनन पावै कोऊ पार॥[1]

ब्रज के लतापता में व्याकुलता क्यो न हो ? कृष्ण तो सबके सखा थे। सभी को वे प्यारे थे। वे दुराव नही जानते थे। यदि जानते थे तो कवि उनसे इस दुराव के लिये बड़े ही ममपूर्ण वाणी मे निवेदन करता है—

तू तो मोहि प्रानन ते प्यारो है काहे को करत दुराव।
आओ मेरे ललना चारि घरी को मोहन मुख दरसाव॥
अंग अनग मरोरत जारत हिय लगि ताहि बुझाव।
गोप पियासी जानि बहुत मन भावन अधर पियाव॥[2]

वह और अधीर होकर कहता है—

प्यारे अब नाही रहि जात।
सह्यौ न जात दुसह दुख मोहन जोव न धीर धरात॥
कब लौं तुम बिन प्रान देह मे रहि हैं नाहि लखात।
तुम तो सुरत न करत ललन पै विरह जरावत गात॥
केहि अपराध लागि मन फेर्यो सो नहि माहि जनात।
हौं ब्रजराज गोप वह बिसरत जात न सहि यह बात॥[3]

कवि अपनी दीनता को प्रकट करते हुए अपने को सर्वश्रेष्ठ पापी घोषित करता है। उससे और उसके प्रभु मे होड लगी है। वह पतित ही नही बल्कि पतित शिरोमणि है। उसके पापो का लेखन करने मे चित्रगुप्त थक गये हैं—

पाप करन मे कोउ सरि मेरी नर तन नाहिं लखाय।
मेरे पातक भार अपाराहि धरनि धरै न सहाय॥
सैसहि स्वेद होत नहि सहरत सीसन रह्यो नवाय।
चित्रगुप्त हूँ हारे करि करि लेखन ही ठहराय॥
जम हूँ उचित देउ नहि पाव चकित रह्यौ सिरनाय।
नक खल भलौ परयौ देखिवे भीरीन तहां समाय॥
बहुत कहा कहौ सुरसरि हूँ जिहि वेदन महिमा गाय।
सोऊ समरथ भई न तक कछु शुचि करिबे भो काय॥
हरि हूँ पावन पतित रहे तऊ चली न कछु बसाय।
क्षमा मेड उल्लंघि गये सो पातक रोस बढाय॥

---

१ वही पृ० ७६।
२ वही पृ० ७६।
३ हरिश्चन्द्र मैगजीन, दिसम्बर १८७३, सख्या ३, पृ० ७७।

क्यो न होय मोहिं गव होड मे हरि सो जीती जाय।
पतित शिरोमनि गोप कहायो किन्ही पाप अघाय ॥[1]

उस परमात्मा के प्रति गोप का अनन्य प्रेम है। उनके बिना उनके प्राण निशदिन तडफते रह जाते हैं। उसकी गति के बारे मे कवि हैरान है। कवि की इस अज्ञानता में उसकी कातरता स्पष्ट झलकती है—

अब प्रभु तलफन लोग प्रान।
अति कठोर दु ख सह्यो जात नहिं बिसरत तुम्हरो ध्यान ॥
जोय नहि धीर धरत कैसहु दरस रूप ललचान।
अतरजामि होय कृपानिधि [illegible]बानि कठिन किमि ठान ॥
नैन दिये को कहा दयानिधि जौं नहिं रूप लखान।
कहा रहत क्यो का पर रीझत गोप परत नहिं जान ॥[2]

कवि की उपासना मे सखी भाव की उपासना की अप्रतिम स्थान है। वह अपने सावलिया के विरह से घायल है। उसे पता ही नही चलता कि यह विरह-दु ख कब तक सहना पड़ेगा। वह अपने प्रेमोपासक के लिये अधीर हो उठा है। उसके धैय का बाध टूट गया है। क्या न टूटे ? वह तो उसका मन तन प्रान सब कुछ है। कवि अपने प्रियतम व्रजराज पर अपने को न्यवछावर कर चुका है—

विरह दुख सजनी कब लौं सहिये।
हरि चरनन ते विमुख रहे जे तिन सग बसि जिय दहिये ॥
कोउ नहिं मिलत बियोगी पिय को जासो मिलि कछु कहिये।
नहिं जीय धीर धरन अब कैसहुँ छिन छिन विथा उलहिये ॥
गोप प्रान तन मन तुम सरबस लालन विसरि न चहिये ॥[3]

अत ऐसी परिस्थिति मे अब वह इस ससार म रहना ही नहीं चाहता। प्रेम की इस तरह की अभिव्यक्ति अन्यत्र दुलभ है—

अब मोहि भावत नहिं जग रहिवो।
आवत सुरति हियो फाटत पिय यह दु ख कासो कहिवो ॥
कह वे रास विलास जमुना तट प्रीति रीत को चहिबो ॥
अति एकान्त कुञ्ज की लीला आनन्द सिन्धु उमहिबो ॥
निसदिन नैनन हेरि हेरि मुख सोभा अति सुख लहिबो।
गोप राज व्रज सुरति विसारी परयो विरह दुःख सहिबो ॥[4]

कवि अपने प्रियतम की इस रीति को अनीति की सज्ञा देता है। उसे वह उपालम्भ देता है कि उमकी यह रीति उपहास्यास्पद है।

मोहन क्यो अनीति मन भाई।
सब सो तोरि नेह चरनन म जोरि यहै मन आई ॥
ताहू पै परतीति न मानो जग उपहास कराई।
यद्यपि हती अघम निंदित अति पै निज ओर लगाई ॥

---

१ वही, पृ० ७८।
२ हरिश्चन्द्र मैगजीन, दिसम्बर १८७३ ई०, संख्या ३, पृ० ७८।
३ वही, पृ० ७७।
४ हरिश्चन्द्र मैगजीन दिसम्बर १८७३ ई०, संख्या ३, पृ० ७७।

गोप निरास [होय जग जीवति पूरे भूठ धलाई।
मेदहु मानत जाकी वातें तिनहिं हाय ठगाई॥[1]

उसकी प्रबलतम लालसा है कि वह प्राण प्यारा मोहन मयनो मे वास करे। एक क्षण के लिये भी वह अपने प्यारे से विलग नहीं होना चाहता—

प्यारे नैनन करिये वास।
छिन मति टरो युगल आगे ते रहो सदा अब पास॥
नहिं जानत कब प्रान निकसि हैं दुख नित बाढत जात।
सपनहूँ मे जो नहि तुम दीखे क्यों हैं न दिवस सिरात॥
देह धरि इहि ठौर प्रानपति जिय तुमसो नहिं दूरि।
गोपहि जानि प्रसति रज मारी दोजै दरसन मूरि॥[2]

और फिर उनके आनाकानी करने पर उसे विश्वास दिलाता है कि इसमे तुम्हारी हानि ही क्या है—

यामे कहा तिहारी हानि।
झलक तनिक निज रूप जुगल की जो दिखरावहु आनि॥
नहिं जापै नहिं कुछ फिर मागे मौन गहे जिय ठानि।
ह्वै हैं मीच छूटि हैं दुख सो यह निहचै जिय मानि॥
छाडि सबै धन धाम नाम जप तप लज्जा कुल कानि।
गोप बिचारि ब्रजभूमि रैन दिन लाभ गिनै नहिं हानि॥[3]

गोप जी मे अपने प्रभु के प्रति अगाध श्रद्धा है। उनकी विह्वलता मे सूर का सा भाव स्पष्ट व्यजित होता है। वह सूर की भाँति ही अपने को दीन[4] और पतित[5] की सना से विभूषित राधा-कृष्ण की युगल रसीली मूर्ति के सामने भाव विह्वल हो जाता है। विलम्ब उससे सहा नही जाता। युगल चरन की शीतल छाँह ही उसके लिये अलम् है। कवि की वाणी में कितनी कशमकश है, यह देखते ही बनता है—

---

१ वही, पृ० ७७।
२ वही, पृ० ७७।
३ हरिश्चन्द्र मैगजीन, दिसम्बर १८७३ ई०, पृ० ७६।
४ अहो हरि दीनन पर करि छोह।
अपने जनहिं न नाथ विसारिये करिये कुछ जिय मोह॥
प्रभु जिन गहे भरम अति गाढे रहे जात हैं सोह।
दरस लालसा जिय अति गाढी नहि पावत कहूँ जोह॥
भटकत फिरत लहत फल कछु नहिं होय तिहारो दास।
गोप भली नहीं रीति रावरी बिसरत है विश्वास॥
वही, पृ० ७६।
५ सुनो हरि या पतितहु की टेर।
बहुत दीनन को पर्‌यो पुकारत भई अब बहुत अबेर॥
करुणासिन्धु चरन पकज की छांह राखिये चाहे।
पुरवहु यह अभिलाख कृपानिधि गोप न कछु जग चाहे॥
वही, पृ० ८०

अहो हरि अब मति बिलब लगाओ।
बेगि कृपानिधि सुरति कीजिये छिन न मोहिं बिसराओ ॥
प्रीति बाधक जे सजन सनेही तिनसो मोह छुराओ।
तुम दोउन की अधिक रसीली मूरति हिये बसाओ ॥
प्रेम नेम हिय एक धारि निसि वासर नीर बहाओ।
गोपहिं प्रभु अब युगल चरन की सीतल छाँह बुलाओ ॥

अन्त मे भक्त भगवान् को चुनौती देता है—

प्यारे कब लौ अरज करौं।
तुमरो हिय तो कठिन कुलिस ते याही सोच मरौं ॥
जो मूरति दिन टरै न नैनन बिरह बढाय जरौ।
ताहि मूँद दृग ध्यान धारियत यह दुख क्यो बिसरौ ॥
मेरी बेर अवसि करुना करि परखहु मन अभिलाख।
गोप जगत नाही तो तुमरी जैहैं सबरी साख ॥

अध्याय ६

भारतेन्दुयुगीन अल्पज्ञात भक्त कवि एवं उनकी भक्तिभावना

बाबा रघुनाथ रामसनेही

जीवन रेखा

बाबा रघुनाथ रामसनेही अयोध्या के महंथ थे। इनका जन्म सं० १८७३ वि० में 'जिला बाराबंकी के चैतेपुर ग्राम में हुआ था। इनका रचनाकाल सं० १९०० वि० है।[1]

ये बड़े तपस्वी और भगवद्भक्त महात्मा थे। ये सरयू के निकट छावनी में रहा करते थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'ये अयोध्या के एक साधु थे और अपने समय के बड़े भारी महात्मा माने जाते थे। सं० १९११ वि० में इन्होंने 'विश्रामसागर' नामक एक बड़ा ग्रंथ बनाया जिसमें अनेक पुराणों की कथाएँ संक्षेप में दी गई हैं। भक्त जन इस ग्रंथ का बड़ा आदर करते हैं।[2] भक्ति सम्बन्धी उत्कृष्ट काव्य रचना आपने की है जो साधारण श्रेणी की है।[3] आप हिन्दी और संस्कृत दोनों के ज्ञाता थे। भाषा आपकी गोस्वामी तुलसीदास से मिलती जुलती है।

आप रामानुज सम्प्रदाय के महंथ थे। आपने देवदास जी से दीक्षा ली। वियोगी हरि ने इनके सम्बन्ध में लिखा है—

रामभक्त रघुनाथ दास जू रामसनेही,
रामानन्दि महन्त सहज सन्तन गुन गेही।
विरचि ग्रंथ विश्राम सागरहिं हरिगुन गायो,
घर घर भो परचार जासु पद ऊँचो पायो ॥[4]

आपका विश्राम सागर एक बड़ा ग्रंथ है। आप राम ही नहीं कृष्ण के भी परम भक्त थे। कवि इसमें मंगलाचरण के अतिरिक्त वीर पुरुषों महात्माओं, सती नारियों और पुनीत व्यवहारों का वर्णन करते हुए नवधाभक्ति और पदशास्त्रों का भी उद्घाटन करता है। समस्त ग्रंथ में दोहा और चौपाईयों की छटा गोस्वामी तुलसीदास की याद दिला जाती है। कवि बाल्मीकि के बारे में कहता है—

मारा मारा कहे तो मुनीस ब्रह्म लीन भयो
राम राम कहे तो न जाना कौन पद है।
जनम हराम कह्यो राम जू को धाम पायो
प्रगट प्रभाव सब पोथिन में गय है ॥
ऐसेहू समझि सीताराम नाम जो न भजै
जन रघुनाथ जानौ तासो पेरि हय है।[5]

---

१ मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद भाग ३, हिन्दी ग्रंथप्रसार मंडली, प्रथम संस्करण, १९७० वि० पृ० १०९५।

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५३२।

३ मिश्रबन्धु विनोद मिश्रबन्धु विनोद, भाग ३, पृ० १०९५।

४ वियोगी हरि ब्रजमाधुरी कीर्तन, साहित्य भवन प्रा० लि०, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९८० वि०, पृ० ५९०।

५ मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद, भाग ३, पृ० १०९५।

युगलानन्दशरण

आपका जन्म पटना जिले के इस्लामपुर नामक ग्राम मे सन् १८७५ वि० (सन् १८१८ ई०) की कार्तिक शुक्ल सप्तमी को हुआ था।[1] आप ब्राह्मण परिवार के सुपुत्र थे। बाल्यावस्था मे ही आप की माता का देहान्त हो गया। अत मातृस्नेह आपको नही मिला। बचपन म ही आपका उपनयन सस्कार हुआ। आपके दो भाई और दो बहने थी। बचपन मे आपके कृष्ण जी नामक विद्वान से विभिन्न शास्त्रो की शिक्षा प्राप्त की।

आपने स० १८६० वि० मे सत युगलप्रिया जी से दीक्षा ली। युगल प्रिया ने ही आपका नाम युगलानन्दशरण रखा। इसके पूर्व आप हेमलता के नाम से पुकारे जाते थे। कहते है कि आप बचपन से ही विरक्त स्वभाव के थे। आपकी बस्ती फल्गु नदी के तटवर्ती होने के कारण प्राकृतिक सुषमा का केन्द्र है। अत आप प्रकृति की पुनीत गोद मे किसी झाडी के नीचे बैठकर भगवद्भजन म तल्लीन हो जाते, भूख-प्यास बिसर जाती। बड़े प्रेम से भगवान् शकर की आराधना करते।[2]

आपका व्यक्तित्व बडा ही विशाल था। आप बहुभाषाविद् थे। आप यात्रा, सगीत और मल्ल युद्ध के प्रेमी थे। स्वामी युगलप्रिया का शिष्यत्व ग्रहण करने के बाद से आपकी रुचि तीर्थाटन की तरफ हुई। इसी उद्देश्य से आपने काशी, चित्रकूट और अयोध्या आदि पुण्य तीर्थों के दर्शन किये। अयोध्या का लक्ष्मण किला तो बाद मे आपका निवास स्थान ही बन गया। इस तरह आपने यात्रा मे अपने जीवन का बहुलाश खर्च किया। आपकी यात्राओ के दो उद्देश्य थे। एक तो भारतीय धर्मसाधना के इतिहास मे इन स्थानो की पुण्य प्रतिष्ठा है, दूसरे इनके भक्त हृदय को इन स्थानो के भ्रमण से एक प्रकार की शान्ति मिलती थी।

- आपकी रचना के बारे मे कोई स्पष्ट तिथि तो ज्ञात नही है, लेकिन इतना निर्विवाद है कि आप भारतेन्दुकाल के प्रमुख रामभक्त कवियो मे से हैं। आप प्रभु के निराकार और साकार रूप के विभेद का कारण स्पष्ट करते हुए कहते है कि निराकार मे सुख नही है। साकार रूप ही सरस है। विवेकहीन पुरुष ही यत्र तत्र भटकता फिरता है—

निराकार सब म बसत, भक्तन हिय साकार।
युगल-अनन्य विचार बिनु भटकहिं अघ गवार॥
निराकार म सुख नही केवल व्यापक रूप।
सरस रहस साकार मधि श्री श्रुति शेष निरूप॥[4]

इस विभेद के कारण ही भक्तों की विभिन्न कोटियाँ बन गई हैं—

कोई बाम रूप भजि शाक्त हुए, कोई अस्मृति शासन ग्रसे हुए।
कोई निर्गुण ब्रह्म समझते है सुप मात्र आमन करते हुए॥

---

१ डा० भगवतीप्रसाद सिंह रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, अवध साहित्य मन्दिर, बलरामपुर, प्रथम सस्करण, स० २०१४ वि०, पृ० ४६५।

२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, सन् १९६३ ई० प्रथम सस्करण, पृ० ८।

३ रामलाल शरण परमाचार्य युगलानन्दशरणजी, भक्तचरिताक, वर्ष २८, सं० १, सं० २०६८ वि० पृ० ५१७।

४ डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव राममक्ति साहित्य म मधुर उपासना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पृ० २६५।

कोई महा विष्णु का जाप किए उर माल छाप मुज लसे हुए ।
जालिम ! हम हाय कहाँ जावें तेरे जुल्फ जाल मे फसे हुए ॥[1]

कवि उसे सौभाग्यशाली समझता है, जो राम रस का पान करता है—

रामरस पीवत जो न सुभागी ।
तिनके भाग अनाग सराहत सुर मुनीश अनुरागी ॥
लाय लाय लय लगन मन मगन अतन तीन तम त्यागी ॥
होय रहे मदहोश जोश छकि परा प्रीति मति पागी ।
युगल-अनन्य शरन साँचे सद शौकी विमल विरागी ॥[2]

रामभक्ति सम्प्रदाय का रसिक भक्त विधि मर्यादा की सीमा का अतिक्रमण करने का साहस नही करता । यह विधि-मर्यादा रसिक भक्त की प्रमुख उपलब्धि है, लेकिन युगलानन्यशरण के निम्नोक्त दोहे में इसका उचित निर्वाह नही हो पाया है । यहाँ उपास्य युगल की मधुर लीलाओ के वर्णन में कवि ने मर्यादा की अवहेलना कर दी है ।

मधुर मनोहर चरित वर, दम्पति केलि कलान ।
निरखे हरखे एक रस, परि हरि अमित विधान ॥[3]

प्रस्तुत दोहे म कृष्ण-काव्य का प्रभाव स्पष्ट लक्षित है । कृष्ण भक्त कवियो के पदो मे सखियो का लता गुल्मो से राधाकृष्ण की रति केलि के दशन का वणन बहुलाश पदो मे प्राप्य है । यह कृष्ण काव्य की सखी भावोपासना का प्रमुख अग है ।

भारतेदु के प्रादुर्भाव के समय आपके हाथ मे लेखनी थी । आप एक वैष्णव भक्त थे । लेकिन आपके बारे मे यह किंवदन्ती है कि स्वय भगवान् शकर ही आपको षडक्षर (ॐ रामायनम) मत्र का उपदेश दिया । आपकी भक्तिभावना से प्रभावित होकर रीवा नरेश 'महाराज सिंह' और मौलाना हक तथा अन्य सूफी सन्त भी आपके दशनाथ आये थे ।

आप बहुभाषाविद् तो थे ही, साथ ही साथ सस्कृत और हिन्दी पर आपका पूण अधिकार था । आपकी काव्य रचनाभक्तिभाव से ओतप्रोत है । आपके रचे हुए कुल ८४ ग्रन्थ बतलाये जात हैं । इनके ग्रथ प्रणयन प्रवृत्ति के बारे मे हिन्दी के शीषस्थ विद्वान् श्रीशिवपूजन सहाय ने लिखा है कि ग्रन्थो की सख्या की दृष्टि से सम्प्रदाय के पूरे इतिहास मे इतना अधिक पुस्तकाकार रचना और किसी की नही मिलती ।[4]

इस तरह युगलयानन्यशरण जी की भक्तिभावना मे विशेष कर साखलिया बिहारीलाल का ही प्रमुख स्थान है । कवि की उपासना म शृगार सम्राट श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी का माधुय भक्तजन के मन को रसार्द करता परिलक्षित होता है । कवि कृष्ण के रूपसागर मे सदैव मस्त रहता है ।

आचार्य गुरुदत्त दास

आप बाराबकी जिलान्तर्गत पुरखा देवीदास के रहने वाले थे । आपका जन्म वि० स० १८७७ मे हुआ । आप सत्यनामी महत थे । बचपन से ही रामनाम की धुन मे लग गए थे । आप रामभक्त

---

१ वही, पृ० २७३ ।
२ डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृ० २७४ ।
३ डा० भगवती सिंह रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४६७ ।
४ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ६ ।

कवि हैं। राम की भक्ति ही आपके जीवन का लक्ष्य था। भारतेंदु से तीस वर्ष बड़े होने पर भी आपने भारतेंदु युग की अवधि को स्पष्ट देखा था।

यदि जग राम रूप सब जानहु।
एकै राम रमेव सबहिं मां अंबर न दूसर मानहु॥
दीन अधीन रहो सबही तें हरिजस सदा बखानहु॥
सुमिरत रहो नाम दुइ अच्छर अनत ठोर नहिं तानहु॥
जन 'गुरुदत्त' जगे अनुभवै उर जो प्रतीत मन आनहु॥
काम क्रोध उपज नहीं, लोभ मोह अभिमान।
यहि पायन ते बचि गये, ते ठहरे चौगान॥
दस अपराध बचाय कै, भजे राम का नाम।
'गुरुदत्त' साची कहै पावै सुख विश्राम॥
रामनाम गुप्तै रहै, प्रगट न देय जनाय।
'गुरुदत्त' तेहि भक्त की बार बार बलि जाय॥
मर्म न सीताराम को करे न पर उपकार।
'गुरुदत्त' तेहि मनुस तें सन्त रहो हुसियार॥[1]

गुरुदत्त जी एक साधु प्रकृति के कवि थे। राम के अनन्य उपासक होने के कारण इनकी वाणी राममय हो गई थी। इनका विश्वास था कि 'राम-नाम' अनमोल मंत्र है। इसके जपने से संसार-सागर से मनुष्य पार उतर जाने का सामर्थ्य उपलब्ध कर सकता है। 'राम-नाम' नहीं जपने वाले मनुष्य पर आप विश्वास भी नहीं करते थे। रामनाम ही इनके जीवन का सार है। कवि के हृदय में राम के प्रति अगाध श्रद्धा है।

महात्मा बनादास

जीवन रेखा

ये भारतेंदुयुगीन रामोपासक कवि थे। यद्यपि इनका जन्म भारतेंदु युग से पहले हुआ है, लेकिन इनकी साहित्य साधना का प्रस्फुटन भारतेंदु के आविर्भाव के बाद ही हुआ है। इनका जन्म सन् १८२१ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम गुरुदत्त सिंह था। गोंडा जिले के अशोकपुर ग्राम के वासी थे। ये क्षत्रिय वंश को सुशोभित करने वाले एक महात्मा थे। इन्हें साधारण शिक्षा मिली थी, लेकिन ज्ञान की अंत:सलिला इनके पास प्रकृति से विरासत रूप में आई थी। परिणामस्वरूप बचपन में ही आपने पुनर्जन्म न लेने का व्रत ले लिया।[2]

बचपन में ही आप शिवपूजा-मानस पाठ आदि धर्म साधनाओं में जुड़ गये। पिता जी को यह शुष्क व्यापार अच्छा नहीं लगा। अतः आपकी शादी कर दी गई। शादी से आपकी पूजा, उपासना में किसी प्रकार का अवरोध उपस्थित नहीं हुआ। कुछ दिनों के पश्चात् आपको एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। उसने भी आपकी भक्ति साधना में बाधा न डालने के ख्याल से अल्पवय में ही साथ छोड़ दिया।

---

१ कल्याण संतवाणी विशेषांक, वर्ष २९, सं० २०११ वि०, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० ३६४।

२ बाढ़ी श्रद्धा हिये बालपन ते अतिभारी।
यहि तन नाथौं जक्त फिरौं नहिं अबकी पारी॥
डा० भगवती सिंह : राममक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४८२।

बनादास शव के साथ ही अयोध्या चले गये। फिर क्या था? सांसारिक मोह माया छोड़कर परम विरक्त महात्मा हो गये। यहीं से आपके जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन होता है। आप तीर्थ यात्रा को निकल पड़े। तीर्थयात्रा में ही आपने भक्ति का ज्ञान परमहंस सियावल्लभशरण से लिया।

आप इस युग में रामभक्तिशाखा के प्रमुख कवि थे। राम ही आपके आराध्य थे। आपने ६४ ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों से आपके अध्ययन और ज्ञान का विशद परिचय मिलता है। आप बड़े ही निस्पृह व्यक्ति थे। धन का लोभ तो आपको बिल्कुल ही नहीं था। कहते हैं कि एक बार महाराज रघुराज सिंह आपको दस हजार की थैली देना चाहते थे, लेकिन आपने यह दोहा—

जाचव, जाव, जमाति, जर जोरू जाति जमीन।
जतन आठ के जहर सम, बनादास तजि दीन॥[1]

पढ़कर उन्हें निरुत्तर कर दिया।

आपका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली था। आपने किसी को सिर झुका कर प्रणाम नहीं किया। आपका अटल विश्वास था कि जब सिर भगवान् को अर्पण कर दिया तो दूसरे के सामने सिर झुकाने से इष्टदेव का अपमान होगा—

सिर दिया सरकार को सो और को कैसे नव।[2]

आप बड़े ही मदुभाषी थे, लेकिन कठोर सत्य के पुजारी थे। आपको जीवन में भिक्षा मांगने की आवश्यकता नहीं पड़ी। बाह्याडम्बर से आपको बड़ी चिढ़ थी। निर्गुण परम्परा प्रवर्त्तक कबीरदास की भाँति ही आप इनकी कटु आलोचना करते हैं। आपका अनुभव अगम्य है। आप कितने कुशल पारखी थे। देखिये—

अजब रंग अनुभौ बरसै लाग।
काम क्रोध मद आस बासना, अक जवासहिं झरसै लाग॥
लोभ-मोह परद्रोह दोप दुख कलि कुचाल सब तरसै लाग॥
जाग्रत स्वप्न सुपुप्ति तीनि गुन विधि निषेध को गरस लाग॥
इन्द्री दमन शमन सब मातिहिं अरुचि होन अब छरसै लाग।
मन बुधि चित हंकार धूरि मे, जग बेवहार सो जरसै लाग।
धीर विवेक बोध अनुरागहिं ज्ञान बिरागहि परसै लाग॥
क्षमा सील संतोप सुराई सांति सहज सुख सरसै लाग।
दास बना अपि नाम सों उपजा मुक्त करत नहिं अरसै लाग।[3]

× × ×

आप राम और जानकी के अनन्य भक्त थे। जनकनंदिनी जानकी को ही आप माता समझते थे। अतः आप खान पान औषध उपचार आदि की फिक्र किंचित मात्र भी नहीं करते थे। यथा—

भोजन सिय क भेजो पेहो।
रूखो सूखो सरो नकारो परम प्रेम ते लेहा।

---

१ डा० भगवती सिंह रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४८३।
२ कल्याण, भक्तचरिताक (विशेषाक) वर्ष २६, २००८ वि०, पृ० ५५७।
३. कल्याण भक्तिचरिताक (विशेषाक), वर्ष २६, स० २००८ वि०, पृ० ५५८।

जगत आस तजि भयो आपु को अब पर घर नहिं जैहो ।
बनादास किमि आस करै पर आपु को दास कहै हो ॥[1]

और भी—

को तन ताप हरै सीता बिन ।
बात सीत ज्वर जुरे जोर करि जानि अबल मोहिं अति त्रासा इन ।
बहु उपाय करि मैं हार्यो हिय आय सूझत कोऊ नाहिन ।,[2]

× × ×

आपकी भक्ति दास्य भाव की है । आपका विश्वास है कि राम भजन से यह शरीर राममय हो जाता है—

राम भजे भये राम यही तन, जे मन बुद्धि औ चित्त अहं सब ।
बिधि और निषेध न जानत बेद, गये सब खेद अनद भये अब ॥
सृष्टि प्रलै थिति भूलि गई नहिं जानत देस औ काल अहै कब ।
'दास बना' हम ब्रह्म, हमी स्वर, आवत है उठे स्वास जबै जब ॥[3]

× × ×

सेवत सेवत सेव्य के सेवकता मिटि जाय ।
'बनादास' तब रीझि कै स्वामी उर लपटाय ॥
नाचत बीते बहुत दिन रीझ्यौ नहिं रिझवार ।
'बनादास' तेहि नाथ को बार बार धिरकार ॥
कला कुसल सो सुन्दरी घूँघट को नहिं दीन ।
बनादास जाकी अदा एक तास बस कीन ॥[4]

× × ×

रहना एकान्त सब वासना को अंत किये,
सात रस साने औ न खेद उत्साह है ।
धीर कुटिछायें, जाल जटा को मुडायें, मोह,
कोह को नसायो सदा बिना परवाह है ।
उधिम को डारें, मन मारे, औ बिसारें बेद,
हार हक सारे औ बिचारें गुन गाह है ।
तरक तकरीरो औ जगीरी तीनिहूँ लोक
'बना' आस फरक तो फकीरी वाह वाह हैं ।[5]

बनादास की कविताओ मे रचनाशैली की विविधता, प्रबन्ध की पटुता और काव्य सौष्ठव का अद्भुत संयोग पाया जाता है । डा० भगवतीप्रसाद सिंह ने लिखा है कि गोस्वामी तुलसीदास के बाद बनादास रामभक्ति शाखा के सर्वोत्कृष्ट कवि ठहरते हैं । इनकी कृतियो मे निर्गुणपंथी, सूफी और रीतिकालीन

१ वही, पृ० ५५८ ।
२ वही, पृ० ५५७ ।
३ संतवाणी विशेषांक, कल्याण, वर्ष २९, सं० २००८ वि०, पृ० ४३९ ।
४ वही , पृ० ४३९ ।
५, वही, पृ० ४३९ ।

रचना-पद्धतियो का भी प्रयोग हुआ है ।[1] इनकी भक्ति-साधना का आधार रामभक्ति है। आप रसिक सम्प्रदाय के सिद्धहस्त कवि थे। आपने तुलसी के माग का ही अनुसरण नही किया बल्कि रामकाव्य को भवर जाल मे पडी नौका का मार्ग प्रदशन किया। रामकाव्यधारा राजनीतिक प्रपचो म पडकर क्षीण होती जा रही थी। राम का उज्वल चरित्र भक्तजनो के मानस-पटल से प्राय लुप्त हो चला था। वना दास की लेखनी ने रामकाव्य की सुरसरि बहा पुन मा भारती के मजुल मानस म राम को महिम का स्थान सिद्ध कर दिया। इस प्रकार रामकाव्य को धारा पुन प्रतिष्ठापित हुई। कवि मानम राम के मर्यादापुरुषोत्तम रूप को शृङ्गार की धारा में अववाहित कर झूम उठा। उनका मनमयूर नाच उठा। भक्तो की वाणी भावपूरित हो गई।

महाराज रघुराज सिंह

जीवन रेखा

य एक अत्यन्त सस्कारी और उन्नत जीव थे। इनका जन्म स० १८८० वि० म हुआ था।[2] रीवा के महाराज विश्वनाथ सिंह आपके पिता थे। इस राज्य परिवार की भक्ति निष्ठा और काव्य प्रेम आदि इतिहासगत तथ्य है। यह परिवार बडे बडे सतो विज्ञाना और पण्डितो का आश्रयदाता रहा। महाराज रघुराज सिंह की भक्ति और शिक्षा परिवार से विरासत म मिली थी। बचपन से ही आप पढने मे बड़े मेघावी थे। साधु-सत्सग सुलभ होन के कारण आपके हृदय म धम की धारा प्रवाहित हुई। परिणामस्वरूप आप राम और कृष्ण के अनन्य उपासक हो गये। आपकी धमनिष्ठा अत्यन्त स्तुत्य और सराहनीय थी। आप त्रिकाल सन्ध्यावन्दन के अभ्यासी थे। कहा जाता है कि बिना एक हजार गायत्री मन्त्र का जाप किये आप जल तक ग्रहण नही करते थे।[3]

आप के दीक्षा गुरु वष्णव महात्मा मुकुन्दाचाय थे तथा विद्या गुरु रामानुजादास थे। मुकुन्दाचाय को आपने राजगुरु के पद प्रतिष्ठित किया था।

आपका व्यक्तित्व बडा ही विशाल था। आप कुशल प्रशासक, कवि और कलाकार थे। कविता तो आपकी पैतृक सम्पत्ति ही थी। पूण यौवनावस्था में ही आपने तीर्थयात्रा आरम्भ की। उस समय आप २८ वष के थे। द्वारका, मथुरा, पुष्कर, काशी आदि स्थाना की यात्रा से भक्ति का बीज जो आपके अन्त स्तल मे था वह पुष्पित ही नही बल्कि फलदाता भी बना। जगन्नाथपुरी भगवान् की मूर्ति के सामने पहुँचते ही मन्दिर का पट बन्द हो गया। भक्त विकल हो उठा। विरह विदग्ध हृदय से करुणा की धारा छन्दा के रूप में प्रवाहित हो 'जगदीश शतक' प्रभु के चरणा मे समर्पित कर दिया। इस समय आपकी अवस्था ततीस वष की थी। यही आपकी पहली रचना है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि आप भारतेन्दुयुगीन कुशल कवि थे, क्योकि आपकी इस यात्रा का आपके जीवन म बडा महत्व है। यह यात्रा स० १९१२ वि० में सम्पन्न हुई थी। यही से राजनीति साहित्य के सामने माथा टेक देती है। महाराज रघुराज सिंह ने भगवान् राम और शृङ्गार सम्राट कृष्ण की परमपवित्र कथा लिखने मे अपनी कवित्व शक्ति का सदुपयोग किया। भगवान् कृष्ण यदि आपके उपास्य थे तो राम म आपकी महती निष्ठा थी। यदि राम के चरणो मे 'रामस्वयवर' समर्पित किया तो रसिकराज कृष्ण के सामने

---

१ डा० भगवती प्र० सिंह रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४८५।

२ रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ५३२।

३ कल्याण भक्तचरिताक विशेषाक, वर्ष २६, सं० २००८ स० १, पृ० ७६१।

मनोमुग्धकारी वातावरण उपस्थित करने के लिये 'रुक्मिणी परिणय' की रचना की। आपकी भक्ति दास्यभाव की थी।

भारतेन्दुकालीन पुरानी धारा के प्रधान कवियों में आपका स्थान है। आप वर्णनात्मक प्रबन्ध काव्य लिखने में सिद्धहस्त थे। 'रामस्वयम्बर' लिखकर आपने एक बड़े अभाव की पूर्ति की है। यदि बनादास गोस्वामी तुलसीदास के बाद रामभक्तिशाखा के सर्वोत्कृष्ट कवि ठहरते हैं तो प्रबन्ध पटुता में आपकी प्रतिभा उनसे होड़ लेने लगती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार आपके चार ग्रंथ राम स्वयंवर, रुक्मिणी परिणय, आनन्दाम्बुनिधि और रामाष्टयाम काफी प्रसिद्ध हैं।[1]

आप वैष्णव भक्त ही नहीं थे बल्कि वैष्णव मत के प्रचारक भी थे। वैष्णव भक्ति के प्रचार एवं प्रसार में आपने भक्तिविलास और भक्तमाल आदि ग्रंथों की रचना की। आप संसार को राममय मानते थे। आपने एक स्थान पर स्वयं कहा है कि 'मुझे ऐसा लगता है कि इस संसार में राम से बढ़कर कोई दूसरा कृपालु नहीं है।[2]

आप एक रामभक्त कवि थे। राम के अनन्य उपासक थे। राम के ऐश्वर्य का वर्णन आपने बड़े ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

अनल उदंड को प्रकाश नव खंड छायो,
ज्वाल चंड मानो ब्रह्मंड फोरे जाय जाय।
पुरी ना लखात ज्वालमालै दरसाति एक
लोहित पयाधि मयो छाया एक छाय छाय॥
देवता मुनीस सिद्ध चारण गन्धर्व जते,
मानि महा प्रलै बेगि व्योम और धाय धाय।
देखि रामराय हेत दीन्ही लंक लाय सबै,
चाप मरे चले कविराय यश, गाय गाय॥[3]
—रघुराजसिंह

आपका देहावसान सं० १९३६ वि० में हुआ।

स्वामी जानकीवरशरण जी

आपका जन्म फैजाबाद जिलान्तर्गत कलाफरपुर नामक ग्राम में संवत् १८७९ वि० में हुआ था[4]। आपके पिता का नाम मेहरबान मिश्र था। आप सरयूपारीण ब्राह्मण थे। बचपन में ही आपने संस्कृत और फारसी का गम्भीर अध्ययन प्राप्त कर लिया। यौवन प्राप्त करते ही आपके पिता जी ने आपको गृहस्थी में लाने के विचार से विवाह कर दिया। लेकिन आपके हृदय में भक्ति लता का अंकुर बचपन से ही अंकुरित हो रहा था। अतः स्वामी युगलानन्दशरण ने इन्हें 'श्रीसीताराम' युगल मंत्र की दीक्षा दी। तदुपरान्त आपने काशी, चित्रकूट, कामाख्या आदि तीर्थस्थानों के भ्रमणार्थ गृहत्याग किया।

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ५३२।
२ कल्याण, भक्तचरितांक विशेषांक, वर्ष २१, सं० १, सं० २००८ वि०, पृ० ७६२।
३ चतुरसेन शास्त्री हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, गौतम बुकडिपो, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, १९४६ ई०, पृ० ४५५।
४ डा० भगवती सिंह रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४८०।

आपको भगवत्कृपा प्राप्त हुई। युगल उपासना ही आपके जीवन का लक्ष्य बना। आप सीताराम की युगल छवि का मधुर दर्शन प्राप्त करने के लिये बराबर विकल रहते थे। आपने अनेक लोगों को साधना की सुधा सलिला में अवगाहन कराया। आप करुणा और उदारता की मूर्ति थे। किंवदन्ती है कि आप अवध से सुलतानपुर जाकर कई मास रहे। वहाँ से कहीं जाते समय एक भयंकर जंगल में जा पहुँचे। जंगल में ही रात्रि हो गई। ये एक वृक्ष के नीचे भूखे ही पड़े रहे। उस समय लीलामय ने सुन्दर बालक का रूप धारण करके इन्हें भोजन बनाकर खिलाया और तुरन्त अदृश्य हो गये[१]। आप द्वारा रचित मिथिला महात्म्य नामक ग्रन्थ का पता चलता है। स्फुट कविताएँ ज्यादा उपलब्ध हैं। आपका उपनाम प्रीतिलता था।

आप सं० १९५८ में माघी अमावस्या के दिन परलोक सिधारे[२]। आपकी रचनाओं में से भक्ति-भावना प्रकट करने वाला एक पद यहाँ प्रस्तुत है—

> चित्त लै गयो चुराय जुलफों में लला।
> हम जानी, वे कृपासिन्धु हैं तब उनसे भई प्रीति भला।
> बिरहा जनको दु:ख उपजावत करत नयी नयी अलब्य कला।
> प्रीति लता पीतम बेदरदी छाडि हम कित गयो चला॥[३]

संत सालिगराम

संत सालिगराम का जन्म आगरा शहर के पीपलमण्डी मुहल्ले में सं० १८८६ वि० को फाल्गुन सुदी ८ शुक्रवार के दिन साढे चार बजे प्रात:काल के समय एक प्रतिष्ठित माथुर कायस्थ कुल में हुआ था[४]। इनका उपनाम हुजूर साहब था। इनके पिता का नाम रायबहादुर सिंह था। ये बड़े शिवभक्त थे। कहते हैं कि सालिगराम अपनी माता के गर्भ में १८ मास रहने के बाद उत्पन्न हुए थे। इनकी शिक्षा फारसी से प्रारम्भ हुई और बी० ए० तक शिक्षा चलती रही।

ये बडे मेधावी तथा कर्मठ व्यक्ति थे। सर्व प्रथम आपने डाक विभाग में नौकरी शुरू की। इसी विभाग में आप पोस्टमास्टर जेनरल तक उन्नति करते चले गए। इसी योग्यता के कारण इन्हें राय बहादुर की उपाधि मिली।

ये राधास्वामी सत्संग के दूसरे गुरु थे। इन्हें इस सत्संग की शिक्षा शिवदयाल सिंह से मिली थी। शिवदयाल सिंह से साक्षात्कार संयोगवश सिखों की पुस्तक 'पंचग्रंथी' के गूढ रहस्यों को समझने के लिये हुआ। शिवदयाल सिंह से प्रथम मुलाकात में ही ये काफी प्रभावित हो गये। और उन्हें गुरु मानकर उनकी सेवा करने लगे। प्रसिद्ध है कि 'स्वामी जी महाराज के प्रभावशाली व्यक्तित्व की इन पर ऐसी धाक जम गई कि ये उन पर पूर्णत: मुग्ध हो गये और उनके निकट प्रति सप्ताह, फिर सप्ताह में दो-तीन बार तथा अंत में प्रतिदिन जाने लगे और फिर उनकी सेवा-टहल तक करने लगे। इनका सेवा-कार्य कुछ दिनों के अनन्तर यहा तक पहुच गया कि ये तृतीय सिख गुरु अमरदास की भाँति अपने गुरु के आराम के लिये प्रत्येक छोटा से छोटा काम भी करने लगे और इस प्रकार इन्होंने अपने को उनके चरणों में अर्पित कर दिया[५]।

---

१ भक्तचरिताक विशेषाक कल्याण वर्ष २६, सं० २००८ वि०, पृ० ७१८।
२ संतवाणी अंक, कल्याण वर्ष २९, सं० २०११ वि०, पृ० ४०६।
३ कल्याण, संतवाणी विशेषांक, वर्ष २९ सं० २०११, पृ० ५०६।
४ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ६६२।
५ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की संत परम्परा, पृ० ६६४।

आप हुजूर महाराज साहब के मरने के बाद सत्सग कराने लगे। आपका व्यक्तित्व बडा आकर्षक था। आपकी रचनाओ का एक सग्रह 'प्रेमवाती' के नाम से प्रसिद्ध है। आपने राधास्वामी मत प्रकाश नामक एक गद्य ग्रथ अग्रेज़ी मे लिखा है। इस ग्रथ म राधास्वामी-सत्सग की मुख्य बातो पर प्रकाश डाला गया।

आप एक सत कवि थे। अपने गुरु के परमभक्त थे। अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता की झलक आपके हर कामो से स्पष्ट झलकती है। वे गुरु के प्रति परम कृतज्ञ हैं और उन्ह परम पुरुष पूरन धनी राधास्वामी कहकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है—

सतगुरु पूरे परम उदारा दया दृष्टि से मोहि निहारा ॥
दूर देश से चलकर आया दरशन कर मन अति हरखाया ॥
सुन सुन बचन प्रीत यह जागी चरन सरन मे सूरत पागी ॥
करम भरम सशय सब भागा राधास्वामी चरन बढा अनुरागा ॥
पहुँची फिर सतगुरु दरबारा, अलख अगम को जाय निहारा ॥
वहा से भी फिर अधर सिधारी मिल गए राधास्वामी पुरुष अपारी ॥
वहा जाय कर आरत गाई, पूरन दया दासने पाई ॥[1]

कवि की भक्ति के स्वरूप के बारे मे जो विचार है वह बहुत ही महत्वपूर्ण है, यथा—

तन मन धन से भक्ति करा री।
कोरी भक्ति काम नहिं आवै, याते हिये मे प्रेम भरा री ॥
परम पुरुष राधास्वामी चरनन म जो सतसग मे प्रीत धरोरी ॥
दया कर गुरु भेद बताव तब धनु सग सुत अधर चढोरी ॥
दीन गरीबी धार हिये मे उमग उमग गुर चरन पडोरी ॥
राधास्वामी मेहर कर जब अपनी भवसागर से सहज तरोरी ॥[2]

कवि प्रेमाभक्ति का अनन्य उपासक है। उसके विचार से घर का कोई भी काय प्रेम के बिना सम्पन्न नहीं हो सकता। उदाहरण प्रेषित है—

प्रेम बिन चले न घर की चाल।
सतसग करे समझ तब आवे गुरु चरनन म प्रीत सम्हाल।
गुरु भक्ती की रीत सम्हारे छोडे जग की चाल औ ढाल।
गुरु स्वरूप का धारे ध्याना शब्द सुने तज माया ख्याल।
घट मे देखे विमल प्रकाशा, मगन होय सुन शब्द रसाल।
प्रीत प्रतीत बढे तब दिन दिन पावे राधा स्वामी दरश विशाल ॥[3]

वह अपने प्रभु का अनन्य उपासक है। वह उससे विनय करता है। उसकी प्रार्थना मे उसका दैन्य प्रबल है।

रगीले रग देओ चुनर हमारी।
ऐसा रग रगो किरपा कर जग से हो जाय न्यारी।

---

१ परशुराम चतुर्वेदी (सपादक) सत काव्य, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण, १९५२ ई०, पृ० ५५६।
२ परशुराम चतुर्वेदी सत काव्य, इलाहाबाद, १९५२, पृ० ५६३।
३ वही, पृ० ५६३।

यह मन नित्त उपाघ उठावत, याको गढ लो सारी।
निर्मल होय प्रेम रग भीजे, जावे गगन अटारी।
तुम्हारी दया होय जब मणि सुरत अगम पद धारी।
राधास्वामी प्यारे मेहर करो अब जल्दी लेव सुधारी ॥[1]

कबीर की भाँति ही इन्होंने साखी भी लिखा है—

चुपके चुपके बैठकर, करो नाम की याद।
दया मेहर से पाइहौ तुम सदगुरु परशाद ॥
पिया मेरे और मैं पिया की कुछ भेदो न जानो कोई।
जो कुछ होय सो मौज से होई पिया समरथ कर सोई ॥
जो सुख नही तू दे सके तो दुख काहू मत दे।
ऐसी रहनी जो रहे सोइ शब्द रस ले ॥[2]

इस प्रकार हुजूर साहब की भक्तिभावना मे प्रिया प्रियतम के भाव की प्रधानता है। कवि परमात्मा को पिया मानता है। उसके पिया और उसम किसी प्रकार का भेद नही है।

इनका देहान्त स० १९५५ म हुआ[3]। इस प्रकार इन्होंने पूरे भारतेन्दु युग को अपनी रचनाओ से सुवासित किया।

पं० राधावल्लभ जोशी

जीवन रेखा

इनका जन्म स० १८८८ वि० मे ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्दशी, शुक्रवार को डुमराव (शाहाबद) म हुआ था।[4] ये गौड ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम काशीराम जोशी था। ये वही शिवालय के पुजारी थे।

बाल्यकाल से ही अपने पिता की इच्छानुसार वेद का अध्ययन प्रारम्भ किया। बाद मे सस्कृत, व्याकरण, कोश, काव्य, छन्द आदि का अध्ययन करने लगे।

ये सस्कृत, प्राकृत और हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वान थे। इनके यहाँ अम्बिकादत्त व्यास, ठग मिश्र अजान कवि आदि पढ़ने आया करते थे। आप बहुत ही उदारमना व्यक्ति थे। सदैव ही देवाराधन, समाजसुधार, लोकोपकार आदि कामो म लगे रहते थे। यद्यपि आप राज्याश्रित तथा डुमराव महाराज के शिवालय के पुजारी थे, फिर भी आप म दृढता का पूर्ण विकास हुआ था। आप बड़े ही निर्भीक थे। आप वहाँ दरबारी कवि थे। समस्या पूर्ति करने म बड़े सिद्धहस्त थे। तद्युगीन पत्र पत्रिकाओ मे आपकी कविताए प्रकाशित होती थी।

आप राम और कृष्ण दोना के अनन्य भक्त कवि हैं। दोहा, चौपाई छन्द मे श्रीरामचन्द्र की विजयादशमी के उत्सव का वर्णन करते हैं तो साथ ही श्रीकृष्ण की स्तुति मे श्री कृष्ण की लीलाओ का वर्णन भी। लीला वर्णन का माधुर्य बडा ही चित्ताकर्षक एवं मनोमुग्धकारी है। वल्लभ सम्प्रदाय

---

१ वही, पृ० ५६५।
२ परशुराम चतुर्वेदी सन्त काव्य पृ० ५६५।
३ वही, पृ० ५५५।
४ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृ० ३८।

की स्पष्ट छाप आपकी भक्तिभावना पर परिलक्षित होती है। आपके जीवनकाल में ही निम्नांकित भक्ति-ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ—

१—रसिक रंजन रामायण
२—रसिकोल्लास भागवत
३—विजयोत्सव
४—कृष्णलीलामृतध्वनि
५—वल्लभ-श्रुतबोध
६—वल्लभ विनोद
७—वल्लभोत्साह।

उदाहरण प्रस्तुत है—

वामन कमठ मीन सूकर वपुष धारे भक्त सुखकारे
खलु राम रखवारे हैं।
वल्लभ निहारे नृहरि कल को पद सुधारे
देवकी के बारे वसुदेव के दुलारे हैं।
आप अवतारी अवतरन कर निहारे
राधा सुमन सरि सुभ लीला रसिकारे हैं।
पीत पटवारे कर मुरली धरन हारे,
मोरपंख वारे सो हमारे रखवारे हैं॥[1]
राधा राधा रमन के चरण कमल जुग पोत।
सुमिरत ही भवसिंधु तें पार तुरत ही होत॥[2]

राधा कृष्ण के विहार का दर्शन कर उसी के ध्यान में सदा लीन रहना ही कवि की उपासना एवं भजन की रीति है। कवि अपना इस भजन रीति के अनुरूप ही राधाकृष्ण के झूलन प्रसंग को उद्घाटित करता है। निम्बार्क सम्प्रदाय की माधुर्य स्रोतस्विनी का प्रबल प्रवाह हृदय को बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यथा—

कालिन्दी के कूलनि कदंबन की डारन में,
डार्‌यो है सुरंग झूलो रेसम के डोरे में।
कहै 'विप्रवल्लभ' या सावन सुहावन में,
आय गई आली छोटी बूंदन झकोरे में॥
लै लै मकरन्द को सुमन सुगंधन को,
बहै पुरवाई सुखदाई कुंज कोरे में।
हँसी-हँसी आली झ्यां झुलावैं मोद फंसि फंसि,
स्यामा-स्याम झूलें तहाँ हेम के हिंडोरे में॥[3]

१ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (संपादक) कविवचनसुधा, १६ नवंबर, १८८३ ई०। पृ० २।
२ वही, पृ० २।
३ हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ४१।

कवि का एकमात्र सहारा वही यशोदानन्दन है जिसकी प्रशंसा मे वह स्वयं कहता है—

उदधि मथैया कालीनाग को नथैया प्रभु
द्रुपद-सुता को वर चीर चीर बढवैया है।
व्रज उबरैया कर छिगुनी धरैया गिरि,
इन्द्र को भरैया मद बल, को सुमैया है।
मुरली रैया मोर मुकुट लसैया सीस,
पाप को हरैया, धर्मधुर को धरैया है।
नन्द को कन्हैया नन्दरानी को पिवैया दूध,
विश्व को भरैया 'विप्रबल्लभ' सहैय है ॥[1]

कवि सखाभाव की उपासना मे सिद्धहस्त है। वह सखि ललिता के माध्यम से इस सत्य का उद्घाटन करता है कि जहाँ भक्ति का योग है, वही श्याम का वास है, अन्यत्र नही। यथा—

ललिता ललित बुझे गोपिन के सग जूरि
एहो ब्रजराज उधो बसे ठाम कामै है।
सुनि दृग मूदि करि खोजन लगे हैं जाको
रहै चहूँ वेन्न की श्रुति हूते लामे हैं।
तब घबराय दृग खोलि यह बोल उठे,
जोग की जुगति भई मेरी ये निकाम हैं।
भक्ति जोग जामे हैं बसत स्याम तामे नित
काह द्वारका मे हैं पै प्राण राधिका मे हैं ॥[2]

बैजनाथ कुरमी

जीवन रेखा

बैजनाथ कुर्मवंशी का जन्म बाराबकी जिला के डेहरामानपुर गाँव म स० १८९० वि० की शरद् पूर्णिमा को हुआ था।[3] इनके पिता हीरानन्द उसी गाँव के जमीन्दार थे। सुखोपभोग के अनेक साधनो के होते हुए भी लडकपन से ही ये विरक्त से रहते थे। इसी अवस्था म इन्होंने अपने चाचा फकीरेराम से जो गृहस्थ वेश मे सत थे मत्र दीक्षा ले ली। दैवयोग से स० १८९८ वि० म फकीरेराम के गुरु महात्मा वैष्णवदास मानपुर आये। वहाँ कुछ दिन ठहरकर वे अयोध्या चले गये। इस घटना के बाद आठ वर्ष तक किसी प्रकार फकीरेराम घर पर रहे। स० १९०६ वि० मे घर का सारा भार बैजनाथ के पिता हीरानन्द पर छोडकर वे अयोध्या चले गये। स० १९१४ वि० मे पिता का स्वर्गवास हो गया। तब से गुरु आज्ञा लेकर बैजनाथ गाव मे ही पुस्तक रचना तथा सत्सग करते हुए जीवनयापन करने लगे। बैजनाथ कुरमी आरम्भ मे दास्यभाव के उपासक थे। इनकी गुरु परम्परा निम्नोक्त है[4]—

१ वही, पृ० ४२।

२ कविवचन सुधा, २६ नवम्बर १८८३ ई०, पृ० २।

३ डा० भगवती सिंह रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४७७।

४ बैजनाथ कुर्मी (टीकाकार) श्रीतुलसीकृतरामायण बालकाड लखनऊ, १९२७ ई० पृ० १।

१ स्वामी रामानन्द	११ जकृष्णदास
२ अनन्तानन्द	१२ सन्तोषदास
३ गयादास	१३ रघुनाथदास
४ लक्ष्मीदास	१४ पूर्णदास
५ माधवदास	१५ प्रह्लादास
६ खोजीदास	१६ श्यामदास
७ चतुरदास	१७ रामदास
८ रामदास	१८ वैष्णवदास
९ हरिदास	१९ फकीरेराम
१० कृपाराम	२० बैजनाथ

आप रामावत सम्प्रदाय के परम प्रवीण भक्त माने जाते हैं। ये मानस के कथावाचक भी थे।[1] किन्तु आगे चलकर इनका झुकाव शृंगारोपासना की ओर हो गया। उस रस का स्वाद इन्होंने रसिक महात्मा सियावल्लभाशरण से लिया। निम्नलिखित पंक्तियों से इसका समर्थन होता है—

रसिकलता अवलम्बहित, कल्पद्रुम सीतारु
गुरु सिय वल्लभशरण कहि बैजनाथ पितुपारु ॥[2]

इनकी 'रामायण की टीका' में अनेक स्थलों पर रसिकभाव की झलक मिलती है। अध्यायों के अन्त में दी गई पुष्पिकाओं से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि वे इसी सम्प्रदाय के भक्त थे। इनके निम्नांकित ग्रंथ हैं[3]—

काव्यकल्पद्रुम
कवितावली की टीका
रामचरितमानस की टीका
रामसतसैयाभावप्रकाशिका
रामसियासयोग पदावली।

बैजनाथ कुरमी रामावत सम्प्रदाय में दीक्षित थे। उनकी भक्ति मधुरभाव की थी। प्रभु की माधुर्यपरक लीलाओं का आपने मनोयोगपूर्वक वर्णन किया है। जनकतनया जानकी के अप्रतिम सौन्दर्य का अंकन कवि ने झूले पर कितनी रसिकता से किया है, जो अवलोकनीय है—

झूलत सीय झुलावत नारी।
कनक जटित मणि रुचिर पालने शोभित आगन रूप उज्यारी ॥
कर कमलन सजि रुचिर पहुँचि या पगन पहुचिया रुनझुनकारी ॥
सुखमा सदन बदन आनन्दनिधि जननी निरखि जात बलिहारी ॥
छवि देखि मगन रघुनन्दन की मिथिलापुर की सब कामिनिया ॥
श्रुति कुण्डल लोल छुटी अलकैं मुखचन्द्र मना सित यामिनिया ॥

१ भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव रामभक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ४०४।
२ बैजनाथ कुरमी (टीकाकार) श्री तुलसीकृत रामायण, भूमिका पृ० १।
३ डा० भगवती सिंह रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४२७।

घनश्याम शरीर पै वारि धरी पट पीत मनो थिर दामिनिया ॥
लखि सुदर रूप शिखा नख लौ, सब मोहि गई गज गामिनिया ॥
अब बैजनाथ सयोगवयो वर योगि मिल्यो सिय स्वामिनया ॥[१]

सीता रूप रस का चतुर चितेरा कवि राम की छवि का भी वर्णन बडे ही मधुर ढग से करता है—

राम बना जस अजब सलोना ।
तस नहिं सुना दीख नहिं नैन ज्यो न है नहिं आगेहु होना ।
श्याम अनूप भूप लालन को रूप समान विरचि रचोना ।
भूलिनि लखि मुखचद माधुरी कामिनि [देह गेह सुधि होना ।
औसर आजु राज मन्दिर मे लेवै लाभ लाज धरि कोना ।
सो पछिताइ खाइ विष मरि है खोलि नयन लखि लेवे रि जोना ।
मैं मरि अब सफल तन करिहा उमगो मैं न लाज उर भोना ।
बैजनाथ सीतावल्लभ पै निश्चय आयु पतिव्रत खोना ॥[२]

कवि राम जानकी को हिंडोरे पर लखकर बहुत ही प्रभावित होता है । इस प्रकार वह युगल रूप की उपासना म अपने को न्यवछावर कर देता है । यथा—

हिंडोरे माई झूलत युगल किशोर ।
दशरथ सुत अरु जनकनन्दनी अरस परस भुज जोर ॥
शीश मुकुट मणि माल दूलन की पलन चलन चितचोर ।
सुखमा सर युग कमल नयन लखि कुण्डल जनुरबि मार ॥
मन्द हसन तन लसन विभूषण बमन बसन जर कोर ।
जनु घन तडित विलास विविध लखि सखि दृग चकित मयोर ॥
भाल तिलक लखि झलक अलक को पलक सहत नहिं कोर ।
ज्यो जस को तस ह्व रस की वश हाथ फम्यो मन मोर ॥
नील पीतपट अद्भुत रा त श्याम वपुप ढिग मोर ।
वारो मै बैजनाथ यहि छवि पर रति युत काम करोर ॥[३]

कवि राम का अनन्य उपासक है । उसके नयन मन म राम का लोकोपकारी मधुर रूप घर कर गया है । उसके नयन राम छबि के लिये लालायित हैं—

तिहारी छवि चाहत नयन पिये
चद चकोर मोर घन दामिनि जल ज्यो मीन जिये ।
श्रवण सुयश मुख गान चरित की चाहत रूप हिये ॥
बैजनाथ गति एक रावरी नहि कछु चाह जिये ।
राम तेरी माधुरी प्यारी मो दृग लखि न अघाय ॥[४]

---

१ भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधब राममक्ति साहित्य मे मधुर उपासना बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम सस्करण १९५७ पृ० ४०४ ।

२ वही, पृ० ४०६ ।

३ भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव राममक्ति साहित्य मे मधुर उपासना, पृ० ४०७ ।

४ वही, पृ० ४०९ ।

कवि को ज्यों ज्यों दर्शन अपने प्रभु का नहीं होता है, त्यों त्यों उसके धैर्य का बांध टूटता जाता है—

लाल बिन कैसे मन धीर धरै।
बिन देखे मुख श्याम को शोभा नैनन नीर झरै॥
होइ प्रभात बदन कब देखौ जियरा कल न परै।
बैजनाथ कोऊ श्याम मिलावे उर की तपनि हरै॥[1]

इस प्रकार कवि भारतेन्दुयुगीन काव्य में रामभक्ति का प्रचार एवं प्रसार करने में पूर्णतया सफल होता है।

दीनदासजी महाराज

जीवन रेखा

आपका जन्म सं० १८९२ वि० में हाशंगाबाद जिलान्तर्गत रहट नामक ग्राम में हुआ था। बचपन का नाम आपका सदाशिव शुक्ल था। आप माननीय ब्राह्मण कुल को सुशोभित करते थे। आपके पिता का नाम नरोत्तम शुक्ल था। कृष्णानन्द जी रत्ननाथ से आपने शिक्षा ली। आप भारतेन्दु से १५ वर्ष बड़े थे। भारतेन्दु के आविर्भाव के बाद ही आपने भक्ति की शिक्षा ली। फलस्वरूप भारतेन्दुयुगीन प्रभाव आप की कविताओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है। आपके गुरु कृष्णानन्द भी आपके ही कुल के थे और उसी जिले के रहने वाले थे। आप एक उच्च महात्मा थे। कृष्णानन्द से दीक्षित होने के बाद से आप दीनदास जी महाराज के नाम से विख्यात हुए।

आप एक रामभक्त कवि हैं। राम का नाम ही आपको प्यारा है। रामनाम का भजन आप झांझ मृदंग और करताल बजा बजा कर करते थे। आपका विश्वास है कि रामनाम रसायन है। इसे पाकर ही वाल्मीकि महामुनि का पद प्राप्त कर सकने में सफल हुए। रामनाम में जिसकी अगाध श्रद्धा हो जाती है उसे परम पद सुलभ हो जाता है। राम नाम के सुमिरन से त्रय तापों का विनाश हो जाता है—

गुन गाई लीजो रामजी को नाम अति मीठो॥ टेक॥
राम रस मीठो सो तो मीठो नहीं कोई रे,
जाने जितने पियो दूजो स्वाद लागे सीठो।
जो नर राम रसायन त्यागे तेखे जमका
दूत कूटी कूटी कर पीठो॥
राम नाम बालमीक भजन करियारे।
लगी समाधि उपर टूई गयो मीठो।
महामुनि की पदवी पाई मोल,
करम तन मन से छूट्यो॥
निश्चय कर आवे तेखे प्रभु पद पावे रे,
जैसे गुड में लपटत चीटो।
मुड की टूटे वाकी चगुल नही छूटे रे,
ऐसो भजन मे मन कर ढीठो॥

---

१ वही, पृ० ४०८।

दीनदास जी सन्त हृदय के कवि थे। अत उनकी भक्तिभावना म उपदेशात्मकता कूट कूट कर भरी हुई है। यह कबीर आदि निगुणमार्गी सत कवियो की भाँति इस ससार को बाजार मानकर चेत जाने को आग्रह करता है। उसके आग्रह म विश्वबन्धुत्व की भावना स्पष्ट भासित होती है—

जाग सबेरा चलना बाट ॥ टक ॥
जाग सबेरा नही तो होयगा अवेरा कब उतरोगे भव चौडो पाट ॥
मोह कीच भ्रम वग मन फस गया मान मनीकी सिर बाधी गाठ ।
या मन चचल हाथ न आवत मन छे गठीलो भैया आठों गाठ ॥
भजन करार करनि तू आयो भूल गयो धन देखित ठाट ।
दीनदास रघुबीर भजन बिन छूटे नही तेरे मन को गाठ ॥[1]

कवि मानव जावन मे अन्त की ओर लक्ष्य करके कहता है—

पड़े बाकी बखत कोई आवै नही काम ॥ टेक ॥
तन मन से धन धान सवारो कियो सग्रह धन कस कर चाम ॥
बात पित किफ कठ कु रोकत ठसमक देखत सुत अरु बाम ।
जब काया म आग लगाई भगे लोग देखे जरतो चाम ॥
बाकी वक्त को राम वसीलो सीतापति शुभ सुन्दर श्याम ।
दीनदास प्रभु कृपा करे जब अत समय दु ख आवत राम ।[2]

दीनदास जी की रचना मे रसना का राम रस स्नात रूप वहुत ही चित्ताकर्षक है। कवि रसना को भगवान् रूप रसमाधुरी का वणन ही करने को कहता है, क्योकि रसना ही एकमात्र साधन है जिससे हम राम के रूप का निकट से अवलोकन कर सकते हैं। अत सुन्दर नरमुख पाकर रसना को सुधा स्नात वाणी से पवित्र करना चाहिये। उदाहरण प्रेषित है—

रसना रामनाम क्यो नही बोलत ॥ टेक ॥
निशिदिन पर-अपवाद बखानत क्यो पर-अघ को तोलत ॥
सत-समागम प्रेम कटोरा राम रसायन घोलत ।
तहा जाप कुशब्द उचार के क्यो शुभ रस तू टोलत ॥
जो कोई दिन आवै तब सम्मुख मर्म वचन कहि बोलत ।
मर्म बचन मे सार न निकसत ज्या कादे खु घोलत ॥
नर मुख सुन्दर पाप के सुधा वचन क्या न बोलत । -
दीनदास हरि चरित बखानत आनद सुख क्यों न डोलत ॥[3]

कवि आयु पर विश्वास नही करता। वह ससार के समस्त रिश्ते नातो को तुच्छ समझता है। उसका विश्वास है कि सभी सुख के साथी है। ज्यो ही उनका स्वार्थ सध जाता है, वे इन सभी सरस सबधो को ठुकरा देते हैं। अत रामनाम धाम जाने के लिये तन मन धन से भगवद्भजन आवश्यक है।

भजन कर आयु चली दिन रात ॥ टेक ॥
या नर देही सुदर पाई उठो वडी परभात ।
राम भजन कर तन मन धन से मान ले इतनी बात ॥

---

१ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, पृ० ५४० ।
२ वही, पृ० ५४० ।
३ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, पृ० ५४० ।

कुटुम्ब कबीला सुख के साथी अंत कू भारत लात ।
दीनदास सुत राम धाम तजि क्या जमपुर को जात ॥[१]

कामदमणि जी

जीवन रेखा

आपका जन्म गया जिला के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था।[२] अनुमानतः आपका जन्म सन् १८३८ ई० में हुआ था।[३] आरम्भिक अध्ययन के पश्चात् ही आप गृहस्थी में जुट गए। गार्हस्थ्य धर्म को निबाहते हुए आपको एक पुत्री हुई। तदनन्तर आप सपरिवार अयोध्या चले गये। यहीं आपने भक्ति-रस का अध्ययन मनोयोगपूर्वक किया। आपकी भक्ति-साहित्य में प्रगाढ़ रुचि थी। अयोध्या में ही रामसखे जी की तपोभूमि 'नृत्यराघव-कुंज' के समीप दासकुंज में रहने लगे और आजीवन वहीं रहे।[४]

आपका अध्ययन विशाल था। आप हिन्दी और संस्कृत दोनों पर बराबर अधिकार रखते थे। दोनों भाषाओं में आप रचनाएँ करते थे। हिन्दी में आपकी दो महत्त्वपूर्ण रचनाएँ उपलब्ध हैं—

(१) पंचभक्ति रसों के पद्यबद्ध पत्र, और
(२) केशव कहि न जाय का कहिये।

आपका देहान्त सम्वत् १९७५ में हुआ। आपकी भक्ति सख्यभाव की है। आप रामभक्त हैं। राम की उपासना में मस्त हो उनसे मिलने की इच्छा प्रकट करते हैं—

स्वस्ति सखा श्री सहित श्री जानकी जीवन पास।
पहुँचे पाती ललित यह, कनक भवन आवास॥
कामद नर्मसखा लिखित, काया-सहर निवास।
तन को मन भावत नहीं, बढ़त विरह की स्वास॥
गुण गावत आँसू बहत, भयो सिथिल तन वीर।
बन प्रमाद की सुरति करि, श्रीसरयू को नीर॥
मैं चाहौ तुमसो मिल्यो, कोटि कल्प सत जाप।
तुम चाहौ छिन मे मिलो, दुसह बिपत्ति बिहाय॥[५]

कामदमणि जी की भक्तिभावना में संत का सरल चित्त विद्यमान है। उनका विश्वास है कि काम, क्रोध मद लोभ से यह मानव शरीर संतप्त है। इस प्रकार वह संसार सागर से पार उतरने में अपने को पूर्ण असमर्थ पाता है। अतः वह दिलदार दिल से मिल जाने की इच्छा प्रकट करता है—

मदन मदन करि सहर को लूट लिया करि क्रोध।
लोभ विनस्सिया ध्यान का क्रोध बिनास्या बोध॥
मान विरागादिक सबै, भागे लै लै प्रान।
नर्मसखा तब जीव यह, कैसे बचै सुजान॥

---

१ वही, पृ० ५४०।
२ डा० भगवती सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ५२३।
३ शिवपूजन सहाय : हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ११२।
४ वही, पृ० ११२।
५ डा० भगवती सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ५२४।

याते बेगि बुलाय कै, रखिये अपने पास।
नर्म सखा निज जानि कै, दास कीजिये खास॥
विपुल विनोद बिहारहित, उपवन सखिन समेत।
समन सपन निरखत रबहु, लखिहौं मोद निकेत॥
मधुर वचन पियूष पिय, सुनिहौं चित्त लगाय।
पढ़ सखा दिलदार दिल, हिय ते मिल न जाय॥[१]

वह अपने दिलदार के लिये लालायित है। उसके बिना वह एक क्षण भी अकेले नहीं रह सकता। वह भगवान् के अकाश्रय के लिये प्रार्थना करता है—

हा दिलदार यार कब पैहौ।
जाके बिन छन कल न परतु है ताके बिना कसे जनम गवैहौं।
अंग अंग लखि मधुर मनोहर ह्वै मुद पकरि अंक भर लेहौं।
'कामदमणि' यह साच रैनि दिन कबे के आनन्द माहि समेहौ।

इस प्रकार कामदमणि की भक्तिभावना में मत हृदय की सरलता, उपदेश की पावनता और मिलन सुख की तीव्र लोलुपता की मधुर झांकी मिलती है। वह अपने दिलदार के प्रति अगाध एवं अपूर्व श्रद्धा रखता है। कवि की अन्तम अभिलाषा दिलदार के दिन मे मिल जाने की है। वह सखियो के सरस वातावरण के वातायन से मधुरतम झांकी का अवलोकन करता है।

नर्मदेश्वरप्रसाद सिंह

जीवन-रेखा

आपका जन्म जगदीशपुर (शाहाबाद) के राजघराने में सं० १८९६ वि० (सन १८३९ ई०) की आश्विन पूर्णिमा को अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण में हुआ था।[२] आप इतिहास प्रसिद्ध वीर बाबू कुंवरसिंह के वंशधर थे। आपके पिता का नाम तुलसीप्रसाद सिंह और माता का नाम पनवास कुंवरि था। आप दो भाई थे। आपके अग्रज का नाम भुवनेश्वरप्रसाद सिंह था। आपकी पत्नी का नाम धर्म राजकुंवरि था। इनसे आपको तीन पुत्र रत्न और दो कन्यायें प्राप्त हुई।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' कहावत आप पर चरितार्थ होती है। आप बचपन से ही बड़े होनहार एवं अध्ययनशील थे। अपनी कुशाग्रबुद्धि के कारण अमरकोष लघुसिद्धान्तकौमुदी आदि संस्कृत ग्रन्थों को कंठस्थ कर गये। पश्चात् आपने धर्मशास्त्रों, पुराणों और काव्यों का गम्भीर अध्ययन किया। अरबी, फारसी आदि का अध्ययन आपकी अध्ययन लिप्सा का ही द्योतक है। काव्यों का अनुशीलन एवं सम्सार चि त्त रस अलंकार एवं छन्दों में बाहुल्य कुशलता प्राप्त कर लेने में आप सक्षम थे। साथ ही साथ क्षत्रियोचित गुणों में भी आपने अस्त्रशास्त्र का संचालन और घुड़सवारी की कला में दक्षता प्राप्त कर ली।

सिपाही विद्रोह के पश्चात् आपने अंग्रेजी का भी अध्ययन किया। आप पं० नकछेदी तिवारी के साहित्यिक सहयोगी थे। आपके विद्याव्यसनी स्वभाव से कौन आकर्षित नहीं हो सका। यही नहीं आप एक कुशल चित्रकार भी थे। आपका बनाया हुआ शेर, बन्दर का चित्र अब तक आपके वंशधरों के पास सुरक्षित है।[3]

१ वही, पृ० ५२४।
२ साहित्य, वर्ष ३ अंक १ अप्रैल, सन् १९५२ ई०, हिन्दी साहित्य सम्मेलन बिहार, पटना पृ०६० ६८।
३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ५२।

आप हिन्दी साहित्य के कुशल पारखी थे। हिन्दी कविता-कानन के कुशल प्रहरी थे। छन्दशास्त्र में आपकी गहरी पैठ थी। सम्प्रति आप सं० १६३२ वि० से काव्य सृष्टा के रूप में काव्योद्यान में उपस्थित हुए। या तो आप प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात् ही रचना करने लगे थे।

आपने हिन्दी साहित्योद्यान में चार पुष्प उगाए। वे ये हैं—

(१) शिवा शिव शतक (२) शृंगारदर्पण, (३) धर्मप्रदर्शनी, और (४) पंचरत्न।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त तत्कालीन पत्रिकाओं में आपकी कविताएँ उपलब्ध होती हैं। शोधकर्ता को 'शवाशिवशतक' का बहुत अंश कविवचनसुधा (सन् १८८२) नामक पत्रिका में प्राप्त हुआ। इनमें कवि शिव-पार्वती की स्तुति करता है। इनके अध्ययन से यही आभास होता है कि कवि शिव की उपासना में अपना सब कुछ न्यवछावर कर देना चाहता है। कवि के पास भक्त हृदय है। उसकी समस्त पुस्तकों में भक्तिपरक रचनाओं की बहुलता है।

आप सं० १६७० वि० (सन १६१५ ई०) की फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को स्वर्गधाम गये।[१] इस समय आपकी अवस्था ७६ वर्ष की थी।

आप एक शिवभक्त कवि थे। शिव ही आपके एकमात्र उपास्य थे। शिव की उपासना में कवि सदैव तन्मय रहा करता है। भारतभूमि देवभूमि है। यहाँ अनेक देवता वास करते हैं। उन सभी देवताओं के पूजा विधान भिन्न भिन्न प्रकार के हैं। लेकिन कवि के शिव की चाल नई है। वे केवल आक की माला से ही प्रसन्न हो जाते हैं। उनके शिव तो अनाथों के नाथ हैं। नाथ के नाथ हैं। त्रिदेव हैं। जब कोई किसी का हाथ नहीं गहता तो शिव उसको अपनी शरण में रखते हैं। इस प्रकार के अशरण को शरण देने वाले सार्वकालिक देव हैं—

देव अनेक सुने निज थोन मैं एक महादेव हो पुर साल।
ईश तो और घनेरे बने पै महेश तो आपुही तीनहूँ काल।
होत प्रसन्न व पूजा विधान तैं आपु को चाहिये आक की माल।
नकु निहारे निहाल करो शिव साईं तिहारी नई यह चाल॥[२]

× × ×

नाथ के तुम नाथ सही हो अनाथ के नाथ तु ही जगपाल।
हाथ गहे नहिं जाको कोऊ तेहि साथ रहो तुमही सब काल।
देव के नाथ के नाथ निदेव त्यौं हौं तिनहूँ न के नाथ विशाल।
नेकु निहारे निहाल करो शिवसाईं तिहारी नई यह चाल॥[३]

कवि शिव की उपासना में रत है। वह शिव के प्रति दैन्य प्रकट करते हुए उसका उपासना के योग्य अपने को नहीं पाता है।

अस्तुति रावरो कैसे करौं मत मेरी ही थोरी न लाइक रावरी।
पै मन मेरो न मेरे अधीन हैं चंचल है अलि के सम बावरी।

---

१ कुछ विद्वानों के अनुसार आपका निधन सं० सन् १६७१ वि० (१६१५ ई०) को फाल्गुन शुक्ल अष्टमी को हुआ था।
माधुरी, वर्ष ५ खंड २ सं० ६ जुलाई १६२७ ई० पृ० ८४४।

२ कविवचनसुधा, जि० १६ सं० ११, १२, १३ अक्टूबर १८८४ ई० पृ०२।

३ वही, पृ० २।

जे है विपैरस फूल तापै भ्रमि नाही अघात ह्वै जात जो भावरी।
तो पन्कज मरद को दौरै जैहैं रम्यौ रगत मो गुन सावरी ॥[1]

उनके शिव कामधेनु की भांति समस्त फलो के दाता हैं। व भक्तिरस के स्रोत हैं। वे अघओघ को विनाश कर सुख पुज के बरसाने वाले हैं। इस प्रकार कवि उस कलाशवासी शकर भगवान् को स्तुति करता है।

कामधेनु गैया तहि समता करैया,
फल कामना करैया भक्तिरस वरसया तू।
तो सो को द्रवैया दास दुख को दरैया,
अघ ओघ सघरैया सुख पुज वरसैया तू।
छेम को छवैया तू कलास को बसैया,
निज सरन परैया ताहि पर दरसैया तू।
गनपति मैया सुधारस की पिवैया,
गिरिराज की तनैया ईश अग बसैया तू।[2]

कवि का विश्वास है कि इन्द्र, वरुण कुबेर विष्णु आदि देवता अनेक हैं। अगी अनगी जड चेतन नदी-नद बहुत हैं। इनका वर्णन वेदादि धार्मिक ग्रथो मे उपलब्ध होता है। लेकिन शिवशकर का रूप तो विचित्र है। उसका रूप तो भूत भविष्य, वर्तमान तीनो से परे है। यथा—

इन्द्र, जम, वरुण कुबेर विधि विष्णु,
रुद्र रवि रजनीस आदि देवता अनेक हैं।
पावन पवन पितृ असुर प्रसिद्ध सिद्ध,
नदी नद वारिधि चराचर जितेक हैं।
ईश्वर प्रसाद जग अगी औ अनगी जेते
वेद हूँ वरनि नहि सक एक एक हैं।
भय अरु होत ह्व जेते तिहुँ कालसग
भृकुटि विलास शिवा रावरे तितेक हैं ॥[3]

सिंह जी अब को ब्रह्म की रानी मानते है। अब ही एकमात्र अर्थ, धर्म, काम और मोक्षदात्री हैं।

धमनि को उपजावनि वातें तुही एक वेदन की जननीया।
अथन को एक मूल तुही नितही हो धनस हुते नमनीया ॥
कामहि पूरन वारी तुही जग कामना आदि हिये जननीया।
सत के मुक्ति के बीज तुही पर ब्रह्म की रानी सदा मननीया ॥[4]

कवि कृष्ण के विशाल रूप का वर्णन करते हुए कहता है—

जड अरु चतन त्यो सूक्षम सथूल जात
है जहाँ लो देपो जौन रूप है।
× × ×

१ वही, पृ० २।
२ कविवचनसुधा, जिल्द ६, सख्या ६७, १ सितम्बर १८८४ ई०, पृ० २।
३ वही, पृ० २।
४ वही, पृ० २।

नद को तनैया कसमद विनसैया निज
मैया को बचैया ऐसो भगिनी कहैया तू।
जगत भ्रमैया भव भौ की भजैया सत
मारग चलैया बिसरैया जे फन दैया तू।
गुन की कहैया सर्व संशय की हरैया बहु
बहु वेप को धरैया है गुनह बकसैया तू॥
सकल चवैया तेहि क्यो न होहु सैया
पै न कोउ बिगरया जा सुपवारि लेजया तू॥[1]

कवि जिस प्रकार उमापति महादेव का वणन करता है उसी प्रकार उमा का भी वणन प्रस्तुत करता है—

कैधो लोक-लोक म कपूर धूरि पूरि रह्यो
कैधो ए चमेलिन की अवलि बरसति है।
कैधो सची हास को प्रकास दस दिसि फैलो
कैधा यह छीरनि का छदै दरसनि है।
ईश्वरप्रसाद हिममयी सब दखि परै
कैधा चन्द किरनि समूह गरसति है।
कैधा अमीरस सो लिप्यो है पचभूत
कैधा गिरिजा निहारी प्यारी की रति लसति है।[2]

× × ×

तुम पावनि की करनो हा अपावन ईश्वरी तू हम दीन खरो।
तुम तो जगतारनि हो जग म हम सोक मरो तुम सोक-हरो।
सिसु 'ईस प्रसाद हो अम्बिका तू अधमाध्यि हो तुम दाया करो।
और कछु कहते न बने सरनागत हो रुचे सोई करो॥[3]

× × ×

जग उपजया मन मोद सिरजया
सद्‌बुद्धि प्रगटैया तिहुँ ताप ते रितैया तू।
दारिद दरैया कम रेख को टरया
मुनि मानम रमैया पापी पावन करैया तू।
ध्यान के धरैया हिम कन्द विकसैया
प्रभा पुज पसरैया तम-ताम को नसया तू।
ए री जगमैया कौन दूसरो सहैया
परी मोर लाज नैया यानी एक ही खेवैया तू॥[4]

---

१ कविवचनसुधा, जिल्द ६, सख्या ६७ १ सितम्बर स१ १८८४ ई०, पृ० २।
२ शिवाशिवशतक साहित्य, वप ३ अक १, अप्रैल, १९५२, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, बिहार पटना, पृ० ६८।
३ शिवाशिवशतक, साहित्य वप ३, अक १, अप्रल १९५२ पृ० ६८।
४ वही, शिवाशिवशतक भारत जीवन प्रेस, बनारस १८९२ ई०, छ० ७, पृ० ७।

कवि निर्गुण परम्परा की कविताओं की रचना में भी सिद्धहस्त है। यथा—

ईस तुम्हारे अंग में ब्रह्माण्डन के रोम।
ऐसे बिलसत है लसत ज्यों शरीर में रोम॥
अपने मे देखत नहीं ढूढत बनन बाजार।
बिलसत बालक गोद मे ढौंडी नगर मझार॥
करो अनेकन जोग जप तप मख पूजन दान।
वह जुलमी रीझत बिन आप बलिदान॥
जो जानत सो कहत नहिं कहत सो जानत नाहिं।
वद चरित ह्वै नेति कह और कहै का ताहि॥[1]

सीतारामशरण भगवान प्रसाद

जीवन रेखा

आप भक्ति-जगत् में श्री रूपकला जी के नाम से विख्यात हैं। आपका जन्म इलाहाबाद के आलमगंज मुहल्ले में सं० १८९७ वि० (सन् १८४० ई०) श्रावण कृष्ण नवमी को हुआ था।[2] आपकी माता का नाम श्रीमती शिवव्रती देवी और पिता प्रसिद्ध रामोपासक संत मुंशी तपस्वी राम थे।

आपकी भक्ति अपने पिता जी से विरासत में मिली थी। बचपन में ही साधुओं के सत्संग की सुलभता ने भक्ति के बीज को अंकुरित कर दिया। जब आपकी अवस्था आठ वर्ष की थी, आपके पिता किसी कारणवश मुबारकपुर (सारन) चले आये[3]। यहीं आपकी शिक्षा का प्रश्न हल हुआ। आप पढ़ने में बड़े मेधावी थे। यही कारण है कि जीवन में प्रवेश करते ही आपने राजपत्रित कर्मचारी तक के पद को सुशोभित किया।

आप धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। भोजन में बराबर आप भगवान् का प्रसाद ही लिया करते थे। सीताराम सीताराम कहकर ही आप काम करते थे। आपके धार्मिक गुरु, परसा (सारन) मठ के बाबा रामचरणदास थे। रामायण, गीता, भक्तमाल आदि ग्रंथों का अनुशीलन तथा साधु महात्माओं का सत्संग करना ही आपको प्रिय था। आप हिन्दी, संस्कृत और फारसी के ज्ञाता थे।

अन्त में गृहस्थाश्रम से मुक्ति पाकर अयोध्या में आप संन्यास ग्रहण कर नियमित रूप से रहने लगे। यहीं आपने भगवद्भजन, कीर्तन तथा प्रवचन में अपने ध्यान को एकाग्र कर लिया। अयोध्या में रूपकलाकुंज जानकी नवमी के दिन आपकी याद दिला देता है। आप थे तो रामानन्दी सम्प्रदाय के वातावरण में पले, लेकिन आपकी भक्ति चैतन्य की संकीर्तन पद्धति का मधुर समन्वय बड़ा ही आकर्षक है। प्रिया प्रिय भाव की भक्ति से स्नात स्फुट पदों की रचना आपने की है। आपके निम्नांकित ग्रंथों

---

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार भाग २, पृ० ५६।

२ हरिऔध अभिनन्दन ग्रन्थ, नागरीप्रचारिणी सभा आरा, पृ० १०२।
शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, २ पृ० ८।
सरस्वती, भाग १२ सं० १०, अक्टूबर सन् १९११ के पृ० ४८२ पर आपका जन्म दिन सं० १८९७ श्रावण शुक्ल नवमी अंकित है।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ५८।
डा० भगवती सिंह रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ४८०।

की चर्चा मिलती है—(१) भागवत गुटका, (२) श्रीभगवद् वचनामृत, (३) भगवन्नामकीर्तन, (४) श्री सीतारामभानस पूजा, (५) भक्तमाल की टीका, (६) मीराबाई। इन ग्रंथो मे आपकी भगवद्भक्ति की स्पष्ट झलक मिलती है। ये भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध भक्त कवि थे। इनका आकर्षण विशेषकर जानकी का रूपमाधुर्य रहा। यथा—

जय चकोर जानकि मुखचन्दा। मिथिला युवति वृन्द मन फन्दा॥
मोहि सब भाति तुम्हार भरोसू। समझौ पिय गुण अरु निज दोसू॥
जोरि पाणि बर मागं एहू। जन्म जन्म सियराम सनेहू॥
जेहि विधि पिय प्रसन्न मन होई। करुणा सागर कीजिय सोई॥
पिय सनेह चितवन की प्यासी। रूपकला श्री सिय की दासी।
मुख मयंक की माधुरी, मधुर बचन मुसुकान।
चितवनि जनमन हारिणी, जयति जानकी जान॥[1]

और भी माधुर्य का मनोरम दृश्य देखिए—

सुधि न लीन्हि पिय विरहिन हिय की।
सखि! मोहि कत दिन तरसत बीते, सुधि न लीन्हि पिय बिरहिन हिय की॥
आह धुआं मुख हिय विरहागी, ठाढ़ि जरो जैसी बाती दिय की।
अधिक दाह चित चातक कोकिन, विरह अनल जिमि आहुति घिय की।
सब उर व्यापक अंतरयामी, जानत है पिय रुचि तिय जिय की।
साच हु सपनेहु कब लगि देखिहौं, मधुर मनोहर छबि तिय पिय की॥
छमानिधान बिलोकिहैं निज दिसि करिहहिं खोज न मोरे किय की।
कृपानिधान दया-सुख-सागर, मनिहै सखि विनती लघु तिय की॥
रूपकला बिनवत हनुमत ही चन्द्रकला अरु गिरिवर घिय की।
एको उपायन सूझत आली मोहि आसा केवल श्री सिय की।[2]

× × ×

धय धय जे ध्यावहीं चरण चिन्ह सिय राम के।
धनि धनि जन जे पूजहीं साधु संत श्रीधाम के॥
तजि कुसंग सतसंग नित कीजिय सहित विवेक।
सम्प्रदाय निज की सदा राखिये सादर टेक॥
देह गेह बद्ध कर्म महं पर यह मानस नम।
कर जोडे सन्मुख सदा सादर खड़ा सप्रेम॥
तन मन धन सब वारि मन चित हिय अति प्रेम ते।
सम्मुख आखिन चारि चितइये राजिव नयन छबि॥[3]
आपु सहित सब धूर, विषय वासना तनु ममत।
कर्म मनन मजदूर आपन करता मैं नहीं॥

---

१ श्री सीतारामीय, प्रथम पुस्तक, प्रथम संस्करण, सं० १९६८ वि० पृ० ३४ ३५।
२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ६२।
३ कल्याण, संतवाणी विशेषांक, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ० ५०७।

सरन सुखद निष्ठा अचल, अति अनन्य व्रतनेम।
पिय सुभाव स्तुति मगन नयन चारि सुख प्रेम॥
प्रियतम तुम्हारे सामने काहू को न बसाय।
अनहोती पिय करि सको हानिहार मिट जाय॥
प्रियतम तुम्हरे छोह ते शान्त अचचल धीर।
बचन अल्प, अति प्रिय मृदुल शुद्ध सप्रेम गभीर॥
श्रीजानकि-पद कज सखि करहिं जासु उर ऐन।
बिनु प्रयास तेहिं पर द्रवहिं रघुपति राजिव नैन।[1]

रूपकला जी अपने को राममय कर देने मे हिचक नही रखते। उनका विश्वास है कि—

होठ पर नाम वही चित्त वही देह कही,
हाथ मैं कज चरन जाय वही आप वही।
इष्ट पर ध्यान वही चित्त वही देह कही,
खात पियत बीती निसा, अचवत भा भिनुसार।
रूपकला धिक धिक्तोहि गर न लगायो चार॥
दोष-कोप माहि जानि पिय जो कछु करहु सो थोर।
अस बिचारि अपनावहु समभि आपुनी ओर॥[2]

कवि रामभक्त है। राम की महती कृपा का उन्हें भरोसा है।

कवि जन्म जन्म भक्तवत्सल श्रीराम का स्नेह चाहता है। यही उसकी प्रार्थना है। कवि राम का अनन्य उपासक तो है, लेकिन उसकी वाणी मे सतो की वाणी का वैभव देखते ही बनता है। वह अपने को कबीर की भाँति ही भगवान् की बहुरिया मानता है। कृपानिधान दया-सुखसागर माने हैं सखि विनती लघु तिय की मे कवि का यही भाव है। इस तरह उसकी भक्तिभावना मे संतो की वाणी का विशेष आग्रह है। आपका निधन जनवरी, १९१२ ई० मे हुआ।

रामलोचनमिश्र

जीवन रेखा

इनका जन्म सं० १८९८ वि० (सन् १८४१ ई०) मे चैत्र शुक्ल ५ शनिवार को सारन जिलान्तर्गत मझवली ग्राम मे हुआ था।[3] आपके पिता का नाम प० रोहिणी मिश्र था। आप लब्ध प्रतिष्ठ रामायण भक्त थे। रामायण का गहन अध्ययन आपको था। आप राममक्त थे। आप बहुत ही प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। राममक्ति काव्य-जगत् के आप आशु कवि थे। भक्ति साहित्य के निम्नांकित ग्रथो की रचना आपने की थी—

१—श्रीसत्यनारायण कथा का हिन्दी पद्यात्मक अनुवाद,
२—रामायण महत्व,
३—रामनाम महिमा,
४—रामनाम भजनावली,

---

१ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, पृ० ५०७।
२ वही, पृ० ५०८।
३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २ पृ० ६६।

५—गगा सरयू महिमा,

६—हनुमत्प्रार्थना।

कवि राम का अनन्य उपासक है। रामनाम की महिमा का वर्णन करते हुए आप कहते हैं कि राम नाम का प्रभाव चारों युग में प्रचंड है। कलिकाल में तो रामनाम ही सब काम का आधार है। यथा—

राम नाम कहा करो पाप से डरा करो तू,
भरा करो कान मे सदा ही रामनाम को।
घर में रहो वा गिरि कन्दरा बसो तू जाय,
बिना रामनाम मुख चाम कौन काम को।
नाम को प्रभाव चारो जुग में प्रचंड जान,
कलि में प्रधान रामनाम सब काम को।
कहे रामलोचन दुखमोचन रामनाम ही है,
ताते राम नाम में बितावो आठो याम को।[1]

कवि पूर्ववर्ती कवि रसखान से निम्नांकित पद्य मे स्पष्ट ही प्रभावित होता दीख पडता है—

पिता यदि दीजै तो श्री दशरथ महाराज ऐसो
बन्धु यदि दीजै तो श्रीराम चारो भैया सो।
माता यदि दीजै तो श्रीकौशल्या सुमित्रा जी सो
भर्या जो दीजै ता अरुन्धती सुकन्या सो।
पुत्र यदि दीजै तो सुपुत्र श्रीश्रवण ऐसो
मित्र यदि दीजो तो सुदामा जी कन्हैया सो।
कहै रामलोचन जौने ही योनि जन्म दीजै
रामभक्ति दीजै अरु प्रीति रघुरैया सो।[2]

गोस्वामी तुलसीदास जी की विनय पद्धति का अपनाकर कवि ने अपनी भक्तिभावनाओं में चार चाँद लगा दिया है। विनयपत्रिका वाली शैली को अपनाने में कवि को कमाल ही हासिल है—

अवगुन जौ प्रभु हेरो हमारो।
तौ नहिं कल्प कोटि करुनानिधि यहि जन का निस्तारो॥
बेद-पुरान कहत करुनाकर बर बर अधम उधारो।
पाप करत निसि बासर बीतत अब लौं हिय नहिं हारो।
भटकत फिरत न सूझत मारग लै निज सिर अघ भारो।
जनमत मरत दुसह दुख पावत तुम बिनु कौन उबारो।
गिद्ध न हौ गनिकादि अजामिल सब पतितन तै न्यारो।
नाम पतित पावन तब शंकर कागभुशुण्डि उचारो।
रामलोचन पर करहु कृपा अब जाऊ तजि चरन तिहारो॥[3]

कवि राम के साथ ही कृष्ण को भी नहीं भुलाता। वह एक ही पद मे मुक्ति के लिये राम कृष्ण और शंकर तीनो की प्रार्थना करता है—

---

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ७०।

२ वही, पृ० ७०।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ७०-७१।

मंजु मन राम सिया सुखरासी।
रामचन्द्र रघुनन्दन रघुबर राघव अवध निवासी॥
रघुकुल तिलक सिया के स्वामी काटु हैं जम फासी।
मनमोहन मधुसूदन माधव मन्मथ मथुरा वासी।
माखनचोर मुकुन्द मुरारी अरिमर्दन अविनासी।
चारो युग चतुरानन कर्ता चारि लाख चौरासी।
चारि पदारथ करतल ताके जाकर माया दासी
पावत मुक्ति सुनावत शंकर मरत जीव जो कासी।
रामलोचन एक अधम सरन मह राख दुसह दुखनासी॥[1]

आपका देहान्त ७२ वर्ष की अवस्था में सं० १९७० वि० में माघ शुक्ल ११ को हुआ।

अक्षयकुमार

मैथिल देश सोहावनो मध्य बस इक ग्राम।
बाघीनाम प्रसिद्ध है, तहां जन्म को ठाम॥[2]

जीवन रेखा

उपर्युक्त दोहे के अनुसार आपका जन्म स्थान मिथिला तगत बाघी नामक ग्राम है। आपका जन्म सं० १९०० वि० (सन् १८४३ ई०) में हुआ था। आपके पिता का नाम नन्दलाल सिंह था।

आपका घर शारदा मन्दिर था। संस्कृत तथा हिन्दी पुस्तकों का विशाल संग्रह आपके घर पर था। परिणामस्वरूप अध्ययन की प्रेरणा इन्हीं पुस्तकों से आपको मिली। आप हिन्दी, संस्कृत और फारसी के ज्ञाता थे। आपकी एक रचना रसिक विलास रामायण आपकी भक्ति भावना का उद्घाटन करने में पूर्ण समर्थ है। आप बड़े धर्मप्रिय व्यक्ति भी थे। काव्य जगत् में प्रवेश के दिनों में आपने श्रीराम का बालवर्णन स्फुट कविताओं के रूप में मां भारती के मन्दिर में प्रस्तुत कर भक्तात्मक हृदय का परिचय दिया। आपने रसिकविलास रामायण का निर्माण कर रामभक्तिशाखा के कवियों की कड़ी में एक स्थान प्राप्त कर लिया है।

आपने भारतेन्दुकालीन कविता की भक्तिधारा में रामभक्ति का अजस्र प्रवाह प्रवाहित किया। आपकी कविता भक्तिभावों से ओत प्रोत तो है ही, साथ ही साथ भाव बहुत ही सरल और स्वच्छ है। कवि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के मिथिला गमन पर बड़ी ही गूढ़ बात कह सुनाई है। महाराज जनक का ब्रह्मज्ञान ही बिसर जाता है। ऐसी छवि है उस भक्तवत्सल राम की। राम के साथ उनके अनुज और कौशिक मुनि भी हैं। उदाहरण देना यहाँ अपेक्षित है—

राघो जी अनुज-सहित कौसिक मुनि संग में,
मैथिल-पति नग्र निकट जमेहि पधारे हैं।
शोर भया शहर में अद्भुत छवि छटा देखि,
देखन हित वृन्द वृंद आइ के जुहारे हैं।

१, वही, पृ० ७१।
२ अक्षय कुमार रसिकविलास रामायण, बिहार बन्धु प्रेस, बांकीपुर, प्रथम संस्करण, १९३६ ई०, पृ० १।

गिरत काहु झुकत काहु लरखरात पाव धरत,
देह को न खबर जानि परत मतवारे हैं।
निरखत विदेह को ब्रह्मज्ञान बिसरि गय,
डूबे मन प्रेमनिधि मिलत ना किनारे हैं ॥[1]

भारतेन्दु पूर्व हिन्दी साहित्य की काव्यधारा रीतिकालीन के रसविलास में ही मन्मस्त थी। अत पूर्वानुवर्ती कवि का होना अनिवार्य है। यही कारण है कि कवि रघुवीर के एक नयनबाण से कभी घायल सी घुमी गिरि अपने ठेकानो पर की मधुर सृष्टि कर एक कशमकश पैदा कर देता है तो कभी टोना और डिठोना का संकेत कर माधुर्य भक्ति की अपूर्व सृष्टि कर देता है। यथा—

कामिनी को सैन आज जुर्यो है विदेह नगर
चितवन को तीर चढे भृकुटी कमाना पर।
सीस-फूल आदि बहु भूषण सवारे सिर
सारो जरतारी लहरा रही निशाना पर।
चाहतो है वार करन देखति सब दाव घात
खचति कमान ताकि ताकि श्रेष्ठ बानो पर।
जैसे ही रघुबीर की छुगी एक नैन बान
घायल-सी घुमी गिरि अपने ठकानो पर।[2]

और भी—

जनक-नन्दनि बिलोकि रघुवर घनश्याम-रूप
नैनन में लाय प्रेम विवस पलक डार ली।
प्यारे को रूप को बिलोके नहिं और कोउ,
और रूप देखू नहिं चाहि व्रत धार ली।
बीती बहु काल सग सखियाँ सशंक भ५,
बोली उठि हा हा यह करत काह लाडली।
किन्ही काहु टोना कि डिठौना काहु डारि न्हिं,
सुनि सकोच लाग बिबस नैन उघार ली।[3]

कवि हनुमान की दास्य भक्ति का भी उल्लेख बहुत ही स्पष्ट शब्दों में चौपाई छन्द में व्यक्त करता है—

हरषे सुनत बानी। भूमश की सम्मति मन मानी ॥
धरि रूप बिशाल भये ठाढे। प्रजा लेत तन तेज प्रजा बाढे ॥
कहि बसहुँ इहा दुख सहि तबलौं। सीता सुधि मैं लाऊँ जब लौं ॥
जय जानकि जीवन कहि धाय। गिरि गहन सिख पर चढि आये ॥[4]

इस प्रकार सम्पूर्ण रामायण में राम का यशोवर्णन बहुत ही सरस ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्रबन्ध की पटुता, रचना वैशिष्ट्य और छन्दों की विविधता में कवि गोस्वामी तुलसीदास का अनुचर सा प्रतीत होता है।

१ अक्षयकुमार रसिकविलास रामायण, बाकीपुर, १६३६ ई०, पृ० ४।
२ वही पृ० ४५।
३ अक्षयकुमार रसिकविलास रामायण, बिहार बन्धु प्रेस, बाकीपुर, प्रथम सस्करण, सन् १६३६ ई० पृ० ६।
४ वही, पृ० ८७।

आपका देहान्त सन् १९०१ ई० में २ मार्च को हुआ।[1]

रामफलराय

जीवन-रेखा

ये सारन जिला के ताजपुर नामक ग्राम के निवासी ब्रह्मभट्ट थे। इनका जन्म सं० १९०१ वि० (सन् १८४४ ई०) में विजयादशमी के दिन हुआ था।[2] इनके पिता का नाम भृगुनाथराय था। ये दुर्गा के अनन्य उपासक थे। शिव भक्ति सम्बन्धी इनकी कविताएँ भी प्राप्त होती हैं। इनकी गणना सुकवियों में की जाती है। आपकी अनुप्रास प्रियता पद्माकर की याद दिलाती है। हिन्दी साहित्य और बिहार नामक ग्रन्थ के द्वितीय भाग में इनकी दो रचनाओं की चर्चा हुई है।[3] वे हैं—(१) विविध विनोद और (२) पावस पचीसी। विविध विनोद में दुर्गा स्तुति की कवितायें हैं। शिवभक्ति सम्बन्धी इनकी दो कविताएँ यहाँ उद्धृत हैं—

सुरसरि जटान है घटान सौं बिराजमान,
गोरेगात पंचमुख चक्षु त्रय लाले को।
धारे कंठ गरल प्रभा सो कहै रामफल,
मानो जल बिन्दु कुंज जम्बु हू जमाले को॥
फुंकके भुअंग अंग अम्बिका अरधंग माहिं,
जारे हैं अनंग उपवीत गर डाले को।
चारो फल देनहार कृपानिधि हैं उदार,
भजु ऐ मन बार बार चन्द्रमाल वाले को॥[4]

× × ×

गज चर्म का दुकूल सोहै कर में त्रिसूल,
जपै हिय मंत्र मूल ओढ़े व्याघ्र छाले को।
भृंगी टेरि भावे औ मसमन छार लावे,
सप्तराजन को गावे रीझे धुनि सुनि जाले को।
भैरोगन वीरभद्र मंत्री संगा सैन साजि
त्रिपुर संहारि चढ़ि वृषभ वृद्ध छाले को।
चारोफल देनहार कृपानिधि है उदार,
भजु रे मन बार बार चन्द्रमाल वाले को॥[5]

आप शिव के अनन्य उपासक हैं। कवि की भक्तिभावना में शिव का विशिष्ट स्थान है। उनका विश्वास है कि शिव ही चारो फल (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) के दाता हैं। अतः उन्हें छोड़कर है मन किसी अन्य को न भज। वह चन्द्रमाल वाला अनंग को जरा डाला है। वह अति ही उदार है। कवि को उसकी उदारता पर पूर्ण विश्वास है।

---

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, पृ० ७२।

२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ८०।

३ वही, पृ० ८०।

४ वही, पृ० ८१।

५ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ८१।

प० बालकृष्ण भट्ट

जीवन रेखा

भट्ट जी भारतेंदु युग के प्रमुख गद्य लेखक थे। कवि रूप मे इनकी प्रसिद्धि कम है। लेकिन शोधकर्त्ता को इनकी कुछ भक्तिपरक अप्रकाशित और प्रकाशित कविताए प्राप्त हुई हैं। अत य तद्युगीन अल्पज्ञात भक्त कवि हैं। इनका जन्म त्रिवेणी के पुनीत सगम पर बसी प्रयाग नगरी म अषाढ कृष्ण द्वितीया रविवार स० १९०१ वि० (३ जून १८४४ ई०) को हुआ।[1] इनके पिता का नाम वेणीप्रसाद था। ये दो भाई थे—बालकृष्ण भट्ट और बालमुकुन्द भट्ट।

भट्ट जी का लालन-पालन ननिहाल म हुआ। ननिहाल वाल सस्कृत के बडे प्रेमी थे। परिणाम स्वरूप इनकी शिक्षा का प्रारम्भ सस्कृत स हुआ। इन्ह लडकपन स ही विद्वानो का सत्सग मिला। इनकी माता सुशिक्षिता बुद्धिमती, उदार तथा दूरदर्शिणी थी और उन्ही की प्रेरणा से इन्होंने इतनी अधिक योग्यता प्राप्त की थी। माता जी के प्रयास से इन्होने अग्रेजी का अध्ययन भी प्रारम्भ किया और मैट्रिक तक अग्रेजी माध्यम से पढ़ा।

भट्ट जी बडे अध्यवसायी और मेधावी थे। सस्कृत के अतिरिक्त ये ईसाई विषयक पुस्तकों का भी अध्ययन करते थ। ब्रजरत्नदास ने लिखा है कि इन्होने बाइबिल-परीक्षा मे एक बार प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया था।[2]

भट्ट जी बडे ही विद्याव्यसनी थ। ये सजीवता और सहृदयता की प्रतिमूर्ति थे। इन्होंने जीवन पर्यन्त हिंदी की सेवा की। हिंदी के उन्नयन के लिये 'हिंदी-वर्द्धिनी सभा की स्थापना' की।

भट्ट जी एक कुशल अध्यापक, निर्भीक सम्पादक और सच्चे देशभक्त थे। आपका 'प्रदीप' पत्र आपकी विद्वत्ता का ढिंढोरा पीटता है। हिन्दी प्रदीप की सचिकाओ मे भट्ट जी का व्यक्तित्व खूब निखरा हुआ लक्षित हाता है। श्रीधर पाठक ने इनकी विद्वत्ता, स्वदेश प्रियता तथा हिन्दी के प्रति सेवा-परायणता के बारे मे ठीक ही कहा है कि—

जीवन तव अति धन्य सबहि बिधि अहो पूज्यवर।
अनुदित अनुकरणीय चरित पावन प्रशस्यतर॥
धनि स्वदेश सुचि प्रेम नेम प्रिय प्रानहु सो पर।
सात्विक शुद्ध विचार सतत भारतोद्धार कर॥
धनि हिन्दी प्रदीप प्रकासि जग मूरखता-तम नास हर।
तव पुण्य नाम प्रिय 'भट्ट श्रीबालकृष्ण' जग म अमर॥[3]

भट्ट जी गद्य के गौरवस्तम्भ थे। उन्होंने कविता लिखने का प्रयास ही नही किया वरन् भक्ति की गभीर रचना प्रस्तुत की हैं। शोधकर्त्ता को हिन्दी प्रदीप की सचिकाओ मे कुछ भक्तिपरक रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिससे पता चलता है कि उनका हृदय भक्तिभावना मे ओतप्रोत था। उनकी भक्ति-भावना मे वैयक्तिक सुख की आकाक्षा नही थी बल्कि उनकी भक्ति समाजोन्मुख है। उनकी भक्ति भावना में ऐश्वर्य की प्रधानता है—

---

१ ब्रजरत्नदास भारतेंदु मण्डल कमलमणि ग्रथमाला कार्यालय, वाराणसी, पृ० २।

२ वही प० २।

३ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु मण्डल, कमलमणि ग्रथमाला कार्यालय, वाराणसी, पृ० ३१।

जय जय करुणाकर माधव अशरणशरण मुरारी।
पतित पतग हीनगति पति को तुम प्रभु झटिति उबारी॥
वेद खेद तारन के कारन मच्छ सुभग तनधारी।
ह्वै वराह कनकाक्ष असुर पति वसुधाहि त्वरित उबारी॥
कच्छप वपु विशाल करि जग सब निज सुपीठ पर धारी।
हरनाकशिपु बिदारक नरहरि भक्त प्रणत दुखटारी॥
बलि छलि प्रगटि अलौकिक लीला सुरगण विपति निवारी।
भृगुपति जहि कराल शस्त्रन कह मलिन छत्र सहारी॥
रघुकुल तिलक विप्रश्रुति पालक हत दशमुख मद भारी।
बसुधा भार निवारक यदुकुल हलधर कृष्ण बिहारी॥
करुणासिन्धु असुर सम्मोहन बुद्ध रूप अनुसारी।
गोद्विज नासक दुष्ट दमन लगि ह्वै हौ फिरि असिधारी॥
द्रुपद सुता जग आरति मोचन लखि विभु रीति तिहारी।
भारत आरत शरण पुकारत धावहु बगि खरारी॥[1]

भट्ट जी कृष्ण और राधा की तरफ विशेष आकृष्ट थ। वे वृन्दावन को तीर्थ के समान मानते थे। वे युगल रूप के उपासक थे।

धन वृन्दावन धन वशीवर।
रूप उजागर सब सुख-सागर छवि आगर विहरत नागर नट॥
धन गोपी ओपी श्री हरि रस चित्त चापी टोकी अति दुर्घट।
लोकलाज कुल कानन ताडी तोडी निगम निगड तिनुका चट॥
पिय हिय पायन छुपनि कुजन की चख भख झपन तपन तन या तट।
परखी निपट निपट ही परखी मरखी नहिं हरखी जो हा पट॥
गावत गावत पार न पावत जाको यश दश आठ चारि खट।
युगल जाहि शिव धरत समाधी ताहि लगी राधाराधा रट॥[2]

उन्हें भगवान् की महिमा पर पूर्ण भरोसा है। ससार मे एकमात्र भगवान ही सच्चा है। अत कवि काम, क्रोध आदि को त्याग कर भगवान् का ध्यान करने को कहता है—

जय जगदीश परेश परात्पर शमन दमन मन्नारे।
जटाजूट पुट बद्ध समुद्र तल सुर तटिनी वारे॥
भूति विभूषित भोगि विराजित दुस्तर भव ससारे।
भक्त जनाश्रय दीन दयामय कुरु करुणा त्रिपुरारे।
काम क्रोध तजि हरि भजो यही जगत का सार।
पर जाहु भवसिंधु के राधारमन निहार॥[3]

शोधकर्त्ता को भट्ट जी की कुछ अप्रकाशित रचनाए भी प्राप्त हुई हैं जिनसे उनकी भक्तिभावना पर पूर्ण प्रकाश पडता है—

१ हिन्दी प्रदीप, मई १८७८ जिल्द १, सख्या ६, पृ० ६।
२ वही, पृ० ७।
३ हिन्दी प्रदीप, मई १८७८, जिल्द १, सख्या ६, पृ० ७।

राम नाम एक अंक है सबै साधना सून।
अंक रहित कुछ हाथ नहिं अंक सहित दस गून ॥

× × ×

दाता विधाता तू ही अन्नदाता जगत को पालन हार ॥
सुर नर मुनि धर तेरो ध्यान करके।

× × ×

ठिकाना सनम का बताते कहीं है पता तो हटवा तक से लगता नहीं है।
मैं दानो जहा ढूंढ के हार बैठा बस धूमने की भी ताकत नहीं है ॥
जरा आंख को खोल देखो तो साहब कौन वो जगह है जहां वो नहीं है।
समाया है सबमें अलग है जो सबमे जो है कौन भी जगह जो नहीं है ॥
यह आखो मे गफलत का परदा पड़ा है इसी से कभी सूझता कुछ नहीं है।
ऊपर है न खालिक न नीचे है मौला ये बातें हैं झूठी कहो कुछ नहीं है ॥
जरा आपको आप ही गौर कीजै जो है सो तू ही है और कोई नहीं है।
यह दरिया को कूजे म मैंने भरा है यह कासिद का नाम तो झूठा नहीं है ॥[1]

भट्ट जी ७१ वर्ष की उम्र मे २० जुलाई १९१४ ई० को इस प्रकार ससार को छोड चल बसे।

प० ठग मिश्र

जीवन रेखा

शाहाबाद जिला मे डुमराव अपनी साहित्य-साधना के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है। आप यहीं के शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम प० जानकी मिश्र था। मिश्र जी का परिवार यहीं कई पीढ़ियो से रहता आ रहा था। इसी कुल मे प० ठग मिश्र का जन्म स० १९ २ वि० (सन् १८४५ ई०) मे हुआ।[2]

आप पढने मे बड़े तीव्र बुद्धि के थे। थोडे ही समय में आपने हिन्दी-सस्कृत और सगीतशास्त्र का गहन अध्ययन कर लिया। व्याकरण और पिंगल मे भी आपकी गहरी पैठ थी। आप फारसी और उर्दू अच्छी तरह जानते थे। धर्म में आपका पूर्ण विश्वास था। सन्ध्यापूजन करना, तीर्थयात्रा करना पिंड दान आदि म अटल श्रद्धा थी। आप विन्ध्यवासिनी देवी के अनन्य उपासक थे। दुर्गासप्तशती का पाठ तो बिना किये आप जल तक नही ग्रहण करते। देश भ्रमण आपने खूब किया। अनेक राजदरबारों म आपको सम्मान प्राप्त हुआ।[3]

आपकी स्मृति बड़ी तीव्र थी। यही कारण है कि इन्हें प्राचीन हजारो कविताएँ कठस्थ थी। सरस्वती के आप वरद पुत्र थे। आशुकवित्व शक्ति आपको प्राप्त थी। समस्यापूर्तियो मे आपने अपनी

१ भट्ट जी की डायरी, से जो डा० मधुकर भट्ट, प्राध्यापक हिंदी विभाग, काशीनरेश डिग्रीकालेज ज्ञानपुर के पास सुरक्षित है।

२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २ पृ० ८५।
मिश्रबन्धुओं ने आपका जन्म स० १९०३ (सन् १८४६ ई०) माना है।
मिश्रबन्धु विनोद, भाग ३, क्र० सं० २२५५, पृ० १२३०।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, प० ८६।

विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। व्रजभाषा मे आपकी कविताएँ बहुत ही हृदयग्राही तथा सरस हुई हैं। विन्ध्यवासिनी देवी की स्तुति करते हुए कवि उनके चरणों को छोडकर अन्यत्र नही जाना चाहता। यथा—

अतुर अधीर छिन थीर न रहत नेक,
बावरो सो चचल सुवास रास पागै ना।
सुमन सरोज जुही मालती को दूरि करि,
सेमर सो आशा भूरि पूरि कहुँ लागै ना।।
कौने कौने ठौर ठग कादर कपूत फस्यो,
करु हगकोर जाते विषय रोग रागै ना।
चरन-सरोज विन्ध्यवासिनी तिहारे छोपड,
मधुप हमारो मन और कहुँ भागै ना ॥[1]

× × ×

चेते जगतीतल मे प्रकट चराचर है,
जिन्हे निज जानि नेह अखियाँ दरस तू।
कहे ठग स्वेत जस छाये लोक लोकन मे,
जीवन के मूल यातें सबमे सरस तू ॥
जाचक निहाल करी पौरे-पौरे जाय-जाय,
नेह भरे नैनन सों प्रीतिहु परस तू।
करो करजोरे जगदम्ब या अरज तोते,
निज-पद भक्तन पै भक्ति ही बरस तू ॥[2]

कवि को षट शत्रु से तथा भव -वारिधि से बचने के लिए एकमात्र विन्ध्यवासिनी देवी का ही भरोसा है। वह कहता ही नही बल्कि उसके भक्त हृदय का यही सच्ची उद्गार है। देखिए—

'ठग पापी कपूत कलकी तऊ पर कटक मे भकझोरियो ना।
नित ही षट शत्रु जो मेरे अहैं तिनको निज फद सौ छोरियो ना।
मम सारी कुबानिन को सुनि के अब हाय हिये विष घोरिये ना।
जगदम्ब भरोसो यही तुमरो भव बारिधि मे हमे बोरियो ना ॥[3]

आपका देहावसान स० १९५१ वि० (सन् १८९४ ई०) मे हुआ।

बनवारीलाल मिश्र

जीवन रेखा

इनका जन्म भागलपुर के लालूचक मुहल्ले में स०१९०२ वि० (सन् १८४५ ई०) में एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण के यहाँ हुआ था।[4] आपकी विद्यानुरागिता के साथ साथ वीरता की भी प्रशसा की

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, पृ० ८७।

२ वही, पृ० ८७।

३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, द्वितीय भाग, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ८८।

४ मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद, भाग ४, प्रथम सस्करण, १९९१ वि० पृ० १०४।

जाती है। किंवदन्ती है कि आपने १८ वर्ष की अवस्था में एक बाघ को लाठी से मार डाला था।[१]

आप सच्चे देशभक्त थे। हिन्दी की सेवा आप मृत्यु पर्यन्त करते रहे। प्राचीन साहित्य से आपका उत्कट प्रेम था। उपनिषद् एवं भगवद्गीता का आपने गहरा अध्ययन किया था। गोस्वामी तुलसीदास आपके प्रिय कवि थे। आप ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली दोनों में रचनाएँ करते थे। भारतेन्दु युग की भक्तिधारा में आप निर्गुण परम्परा के एक अद्वितीय कवि थे। उदाहरण अवलोकनार्थ प्रस्तुत है—

> काया बीच में जाकर बैठा देखत सकल तमासा है,
> देखा वह है अजब खिलाडी समझ में नहीं आता है।
> पंच बयारि लगे मन डाले तिहूँ लोक भरमाता है,
> जहँ जहँ मनुआ खेल करत है, तहँ तहँ खेल खिलाता है।
> चित्त माया दोउ नाच नचावत कुल परिवार बनाता है,
> बसे रहत चहुँ ओर से मन को ता बिच आप न आता है।
> है वह सदा सबन ते न्यारा छाया कर दरसाता है।
> मन थिर करके देखहु 'मंगलू' आप आप लखाता है।[२]

आप द्वारा रचित पदों में 'मंगलू' नाम आता है। यह नाम प्रतीत होता है कि आपका उपनाम हो लेकिन स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता।[३] आपका देहान्त कार्तिक सुदी गोपाष्टमी सं० १९७४ वि० को हुआ।[४]

संत मोरार साहब

जीवन रेखा

आप कबीर साहब के सम्प्रदाय के अनन्य भक्त थे। आपका जन्म मारवाड़ के थराद नामक राज्य में वि० सं० १९०२ में हुआ था। आप रवि साहेब के शिष्य थे। एक निर्गुण मार्गी संत कवि थे।

कवि को अपने प्रभु पर पूर्ण विश्वास है। अतः वह उसके चरण सुख की कामना करता है। देखिए—

> मुजरो आप करत मुरार।
> सरनागत सुख सुजस श्रवन, कर आए गरीब नेवाज॥

---

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ८८।

२ मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद, भाग ४, पृ० १०४।

३ भागलपुर निवासी पं० शिवरत्न मिश्र के कथनानुसार आपने सारी रचना मंगलू तिवारी के नाम से की थी। ये कुछ कविता करना भी जानते थे, लेकिन श्रीकमला (मासिक) ने लिखा है कि न जाने क्यों आप मंगलू मिश्र के नाम से ही कविता छपवाते थे।
मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद, भाग ४, पृ० १०४ १०५
श्रीकमला, दिसम्बर सन् १९१३, भाग २, अंक १२, पृ० ४८०।

४ हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ८८।
मिश्रबन्धु विनोद के अनुसार यह सं० १९७२ वि० है।
मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद, भाग ४, पृ० १०५।

अजामिल, गज गनिका, तारी आरत सुनि के आवाज।
ऋषि की नारि अहल्या तारी चरन सरन सुख साज ॥

वह अपने प्रभु से परम पद की आशा करता है, क्योंकि धन्ना, सेना व्याध गीध आदि को तो उसने ही तारा है—

धन्ना, सना सजन कसाई किये सबन के काज।
व्याध, गीध, पशु पारधि तारे पतितन के सिरताज ॥
पतितपावन नेह निभावन, राजत हो रघुराज।
दास मोरार मौज यह मागै दीजै अभय पद आज ॥

कवि को पूर्ण विश्वास है कि मोह ममता त्याग कर भजन करने से परमपद की प्राप्ति हो सकती है—

गोविन्द गुण गाया नही, आलस आवी रे अभागी।
अतर न टली आपदा, जुगने न जोयु जागी ॥
जनम गयो जजाल मा, शब्दे लक्षन लागी।
भजन तू भूल्यो रामनु मोह ममता नव त्यागी ॥

× × ×

धन रे जोवन न जोर मा बोले आँखे चढावी,
सत चरण ने सेव्या नही क्रम कुबुद्धि आवी।
अखड ब्रह्म ने ओलखो सुन्दर सदा रे सोहागी,
मोरार कहे महा पद तो मले मनवो होय रे वेरागी।[1]

प० शिवदयाल शुक्ल

जीवन रेखा

शिवदयाल जी का जन्म नागपुर के सीतावर्डी मुहल्ले मे स० १९०२ म हुआ था।[2] ये सस्कृत, उर्दू और हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् थे। इनका सारा जीवन नागपुर ही म बीता। नागपुर आपका केन्द्रस्थल आपके जीवनपर्यन्त रहा। काग्रेस की स्थापना स आपके हृदय म गो माता के प्रति बडी श्रद्धा उत्पन्न हो गई। अत आपन मन ही मन गो-माता की सेवा के लिये गोरक्षणी सभा की स्थापना की। प० शिवचरणलाल की सहायता से नागपुर गोरक्षणी सभा की स्थापना हुई। भारतेन्दु युग मे गो-सेवा के निमित्त गोरक्षणी सभा की विशेष आवश्यकता थी। आपके अदम्य उत्साह स यह सभा अखिल भारतीय स्वरूप प्राप्त कर सकी।

आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। गद्य और पद्य दोना म आपकी पैठ अच्छी थी। गद्य लिखने म आपको कुशलता प्राप्त थी। फलत आपने गोरक्षणी सभा से एक गोरक्षा पाक्षिक पत्र का भी सम्पादन किया। आपकी भाषा अवधी मिश्रित ब्रजभाषा है।

आप एक भक्त कवि थे। आपकी भक्ति भावना मे राम और कृष्ण दोना का स्थान बराबर है। राम काव्य एव कृष्ण काव्य के प्रणयन म आपकी कोई विशेष रुचि नहीं दिखाई पडती। लेकिन स्फुट पदों मे आपने दोनो की महिमा का गुणगान किया है। कवि राम के बारे मे लिखता है कि वही

१ कल्याण, सतवाणी विशेपाक, पृ० ४५२।

२ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विदर्भ की देन, विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागपुर, प्रथम सस्करण, १९६० ई०, पृ० १३४।

मनोरथो को सिद्ध करता है। उसके बिना दु ख हरने वाला कोई नही है। जनकतनया श्री जानकी के मुख से कवि उनकी महिमा की यशोगाथा कहलवाता है—

चद्रकला मृदुभाषत राम सो नाथ सुनी तुम्हारी प्रभुताई।
मारि सुबाहु उडाय मरीचहि ताडका नाश करी सुखदाई॥
राज समाज मे ताडि पिनाकहि कीरत है भुवमडल छाई।
गाठें न छूटत कक्न की अवलान के बीच कहा कठिनाई॥[१]

कवि के विचारो से उसका ऐश्वय भाव परिलक्षित होता है। वह राम के माधुय भाव का उपासक नही है। उसकी भक्ति मे भक्त की भीरता प्रबल रूप मे है, तभी तो वह सन्ता की भाँति उपदेश देता है—

भज राम मनोरथ सिद्ध करे। जग मे हरिनाम सुसिद्ध करे॥
नर ईश बिना दुख कौन हरे। रघुनाथ बिना सुख कौन करे॥
हठ छाड विचार करा मन म। रसना रिपुराज बसै तन मे॥
हरि भक्ति सुधार करै छिन म। रमणी रति छाड बसो वन म॥
भवजाग महा दुख सागर है। बनिता दुख मूल उजागर है॥
तप भक्ति विवेक सुधारक है। रह जाय सुकीर्ति वही नर है॥
मतिमान वही सुख दु ख सहै। तज शोक सदा धन धामद है॥
डरिये खल सो जु समीप रहै। रख धीरज शुक्ल विचित्र कहै॥[१]

आप कृष्ण के साँवलिया रूप के उपासक नही थे, बल्कि कृष्ण के वीर रूप की उपासना मे अपनी वाणी को लगाना धन्य समभते थे।

सुजान कान की यथा सुनी प्रमान की
तथा न होत आन की जहान न लखी गई।
समेत केस सैन्य को, पठाय देव ऐन को,
बिठाय उग्रसेन राज, आप चाकरी ठई॥
रही जू एक सेव की कुजात औ कुदेव के
वहू कहात देवकी, लगाय हीयरी लई।
अभग अग ज्यो हरि, कुढग नारि त्यों वरी,
उमग है घरी घरी अरी अली भली भई॥[२]

इस प्रकार कवि स्फुट पदो म राम और कृष्ण का मनोरम चित्र उपस्थित करता है। उसके लिए राम और कृष्ण दोनो बराबर हैं। दोना ही उसके उपास्य हैं। दोना क लिए भक्त काव्योद्यान से सरस सुमना का चयन करता हैं। इन पुष्पा स सरस सुगध स्नात समीकरण प्राप्त होता है। कवि आत्मविभोर हो जाता है।

गुरुसहाय लाल

जीवन रेखा

इनका जन्म स० १९०३ वि० मे (३० जून १८४६ ई० म) हुआ था।[३] आपके पिता नाम

१ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विदर्भ की देन, विदर्भ साहित्य सम्मेलन, नागपुर, पृ० १३५

२ वही, पृ० १३५।

३ (क) कल्याण मानसाक विशेषाक, वर्ष १३ स० १ २ अगस्त सन् १९३८ पृ० ९१३।
(ख) यशोदानन्द अखौरी आपका जन्म स्थान पटना जिले के ओढा नामक ग्राम में मानते हैं। वही, पृ० ९१७ तथा बिहार की साहित्यिक प्रगति, पृ० २९६।

मुंशी नरनारायणलाल था। आप गया जिलान्तर्गत नान्शि ग्राम के निवासी थे। कायस्थ परिवार के बड़े ही शान्तप्रिय व्यक्ति थे।

शशवास्था में आप बड़े ही विलक्षण प्रकृति के थे। खाने-पीने की इन्हें सुध-बुध नहीं रहा करती थी। किसी ने खिला दिया तो खा लिया अन्यथा चुपचाप पड़े रहते। किसी प्रकार का भय आपको नहीं था। वे जहाँ चाहते चल देते। इस तरह संसार से विराग की भावना ने इन्हें भगवद्भक्ति की ओर उन्मुख किया। बचपन में ही आप 'हरे कृष्ण गोविन्दाय वासुदेवाय नमोनमः' का मंत्र कंठस्थ कर जप करने लगे थे।

आपका अक्षरारम्भ आपके पिता द्वारा हुआ। पिता ने ही आपको हिन्दी पढ़ाई तथा आपने अपने बहनोई मुंशीलाल से फारसी पढ़ी। पढ़ने में भी आपका दिल नहीं लगता था। अतः पिता ने इन्हें गृहस्थी की ओर आकर्षित करने के लिये १२ वर्ष की अवस्था में ही इनकी शादी कर दी। लेकिन यह वैवाहिक सम्बन्ध भी आपको मोहपाश में न बांध सका। आप सांसारिक प्रपंचों से दूर रह साधुसन्तों का सत्संग करने लगे। इस तरह आपके हृदय से भक्ति की अविरल धारा फूट पड़ी।

बाबा सोहनदास आपके गुरु थे। आप योगाभ्यास की दीक्षा भी प्राप्त कर चुके थे। स्वामी विश्वम्भरादास आपकी योग-साधना के गुरु थे। आपने श्रीमद्भगवद्गीता का भी गहरा अध्ययन किया था। साधु स्वभाव की पूर्ण प्राप्ति के पश्चात् विद्यानुरागिता में प्रगति आई और आपने पिंगल, व्याकरण आदि शास्त्रों का गहरा अध्ययन किया।

आपकी लिखी ग्यारह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।[१] जिनमें निम्नांकित से भक्तिभावनाओं की भागीरथी प्रवाहित होती है—(१) सज्जन, (२) निर्वाणशतकम्, (३) श्रीतत्त्वचिन्तामणि, (४) श्रीसद्गुरुस्तवराज आदि।

कवि निर्गुण परम्परावादियों के अनुसार योग की शिक्षा में पूर्णतः कुशलता प्राप्त कर चुका था। उस पर नाथपंथ या कबीर की साधनाओं का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। कबीर की भाँति ही कवि समाज के स्वर के साथ न चलकर वह हिन्दू मुस्लिम ऐक्य की प्रधानता बतलाता है। उसका राम कबीर का ही राम है, दूसरा नहीं—

तत्वों को देखा स्वास में स्वर ले गये ब्रह्माण्ड में।
नि तत्त्व पद पाया नहीं स्वरोदय सधा तो क्या हुआ॥
कोई नासिका हिय त्रिकुटी ब्रह्माण्ड हू जा जा घुसें।
कुछ भी मरम अनबूझ ना अनुभव हुआ तो क्या हुआ॥
अनहद में सुरती जा लगी आनन्द में जीती पगी।
निज राम की धुन की गम नहीं ध्वजा बजा तो क्या हुआ॥
पढ पढ के नाना ग्रंथ को वृत्ती अहं ब्रह्मास्मि।
अनुभव न तुरीयातीत का बक बक हुआ तो क्या हुआ॥
हिन्दू बने कोउ मुसलमान और पंडित बने कोउ मौलवी।
पाया नहीं पिरतम कभी मजहब मिला तो क्या हुआ॥
पूज्यो न माना देवता और व्रत तीरथ भी किया।
सतगुरु शरन पाया नहीं रस पथ मुआ तो क्या हुआ॥[२]

---

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ६१।
२ वही, पृ० ६१।

कवि कबीर की भाँति ही गुरु शरण की प्रतिष्ठा करता है। उसकी भावनायें ब्रह्म तक पहुँचने की बड़ी गूढ़ हैं। साधारण पुरुष वहाँ तक नहीं पहुँच पायेगा।

इनका देहान्त सम्वत् १९६२ वि० चैत्र कृष्ण पंचमी (१४ मार्च, सन् १९०५ ई०) को हुआ।[१]

चतुर्भुज मिश्र

जीवन-रेखा

गुन नभ पुनि चन्द्रमा विक्रम संवत् क्वार।
रामजन्म नवमी तिथी जन्म दीन करतार॥[२]

इनका जन्म उपर्युक्त दोहे के अनुसार वि० सं० १९०३ में (सन् १८४६ ई० में) रामनवमी के दिन हुआ था।[३] आपके पिता का नाम पं० यदुराज मिश्र था। ये गया जिलान्तर्गत डुमरिया नामक ग्राम में रहने वाले थे। पता चलता है कि आपके एक जेठे भाई थे। आपकी शिक्षा-दीक्षा सर्वप्रथम घर पर ही हुई। स्कूली शिक्षा केवल तीन साल तक मिली थी। घर पर इन्होंने हिन्दी और संस्कृत का गहरा अध्ययन किया। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् आप गार्हस्थ्य जीवन में विभिन्न ट्रेनिंग और हाई स्कूलों में संस्कृत पंडित की जगह काम करते रहे।

आप हिन्दी और संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। साहित्यिक अभिरुचि बचपन से ही इनमें थी। सेवावृत्ति से अवकाश पाते ही आप साहित्य-साधना की ओर झुके। भक्ति-साहित्य में आपकी सूझ बूझ अत्यधिक थी। भक्तिकाव्य के आप प्रणेता ही नहीं थे, बल्कि भक्ति वाङ्मय का बराबर अध्ययन भी करते थे। यही कारण है कि भक्तों के बीच आप की रचनाओं को आज भी सम्मान प्राप्त है।

आपकी रचनाएँ निम्नांकित हैं—(१) आल्हा रामायण, (२) गयावासी रामायण, (३) गयावासी भागवत, (४) सरोज रामायण, (५) उद्देश्य आनन्द कल्लोलिनी, (६) मनोहर रामायण, (७) सुबोध चन्द्रोदय (८) गीतासार आदि।[४]

आप राम और कृष्ण दोनों के अनन्य भक्त हैं। कृष्ण की माधुर्य लीलाओं का आपने सरस वर्णन किया है। शृङ्गार सम्राट श्रीकृष्ण की रासलीलाओं के वर्णन करने में कवि आत्मविभोर हो जाता है। रसवल्लभा श्रीराधिका का यमुना पुलिन एवं कुञ्जों में रसराज किशोर श्रीकृष्ण से मिलना बड़ा ही हृदयग्राही है। देखिए—

समय को पायकर कन्हुआ, तुरत घर से पधारा है।
मिली पुनि राधिका जाकर जहाँ यमुना किनारा है॥
नहीं कोइ तीसरा वहवाँ, मिल दाउ वीर हैं जहँवाँ।
बिहरत तीर पै तरुतर, मानो गाटा किनारा है॥
चहकते डार पै चिड़िया, मिले दस बीस एक बिरियाँ।
लगे पुनि गूँजने भौरा, कुहुक कोकिल के प्यारा है।

---

१ कल्याण, मानसांक विशेषांक, पृ० ९१८।
अंजनीनन्दनशरण के मतानुसार यह तिथि १८९८ ई० है।
२ शिवपूजन सहाय हिन्दी-साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ९२।
३ वही, पृ० ९२।
४ वही, पृ० ९२।

मिली ज्यो आज से आखें, अधर रस चूमकर चाखें।
चमा चम सीस पै बेंदी, उगी जनु सुक्र तारा है॥
दई गल बाह कान्हा ने, भुकाई सीस राधा ने।
लचक गई अग प्यारी के, दिया कन्हुआ सहारा है॥
आधारी छा गई रातें, भये त्यो काम से ताते।
नयन के रग मे राते, भयो चन्दा उजारा है॥
सुनो मुजचार की बातें भय रसरग म राते।
चले पुनि गीत को गाते वही यमुना किनारा है॥[1]

कवि रामभक्तिशाखा को भी अपनी रचनाओ से सुशोभित करता है। उसे सीता के आकुल हृदय का अंकन करने मे पूर्ण सफलता मिली है। कवि अनुमान की सेवा को भी नहीं भुला पाता। उसकी भक्ति यहाँ दास्य भाव की परिलक्षित होती है। उदाहरण देना अपेक्षित है—

सीता को सोच भारी रोन लगी बेचारी।
भूले मुझे खरारी, सुध ना लिया हमारी॥
अब प्रान ही को खोवें, मिलने की आस धोवें।
भर नींद नाथ सोवें, हम बाट कब लो जोवें।
त्रिजटा न देख पाई, सपना तुरत सुनाई।
पहरा तुरत उठाई, बैठी किनार जाई॥
हनुमान ने बिचारा, कैसे करू सहारा।
परतीत हुँ हमारा, त्या मुद्रिका किनारा॥
अंगुठी तुरन्त डारा, मानो गिरा अगारा।
सीता करे विचारा टूटा सरग से तारा॥
मन मे बिचार आई, अगुठी तुरत उठाई।
वहँ राम नाम पाई, कैसे वहा पै आई॥
बनबास की कहानी, हनुमान ने बखानी।
यह बात मैंने जानी, तुही है राम रानी॥[2]

आपका देहान्त ७२ वय की आयु मे स० १९७५ वि० मे हुआ।

स्वामी निरजनानन्द जी तीर्थ

जीवन रेखा

आपका जन्म स० १९०३ वि० म भाद्रपद शुक्ल तृतीया को उत्तर प्रदेश में उन्नाव जनपद के काथा ग्राम हुआ था। इनके पिता का नाम गयादीन मिश्र था। बचपन से ही इनकी रुचि आध्यात्म परक थी। ये शिवसिंह सरोज के प्रणेता शिवसिंह के परम मित्र थे। शिवसिंह के सम्पर्क से ही काव्य तथा सगीत विद्या मे इन्हें निपुणता हासिल हुई। व्यक्तिगत जीवन मे दोनो का सम्बन्ध बडा ही मधुर बहुत दिनों तक बना रहा।

---

१ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० ६३।
२ शिवपूजन सहाय हिन्दी-साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० ६३।

सन् १८५७ ई० के विप्लव के उपरान्त दोनो के जीवन म क्रान्तिकारी परिवतन दृष्टिगोचर होते हैं। शिवसिंह गोंडा के थानेदार नियुक्त हुए और वहीं निरजनानन्द जी उनके सहायक के रूप मे बारह रुपये मासिक पर काम करने लगे।

निकृष्ट सेवावृत्ति और आध्यात्मिक प्रवृत्ति से मेल कब तक खाता। दोनो वृत्तियो का संघर्ष कुछ दिनों तक चलता रहा। अन्तत इन्हें गृहस्थाश्रम का परित्याग करना पडा। गोंडा के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त विश्वेश्वरदास से 'नारायण मत्र' की दीक्षा ली और घर पर ही एक हनुमान मन्दिर मे रहकर हनुमान की भक्ति करने लगे। हनुमान के आप परम भक्त थे। अवसर मिलने पर आपने तीर्थ यात्रा भी की। इस प्रकार आप निवृत्ति मार्ग के पूर्णावलम्वी हो गये।

स० १९६२ वि० म आपने काशी की यात्रा की। यहाँ स्वामी परमानन्द जी से सन्यास-दीक्षा लेकर एकान्त साधना मे लीन हो गये। रामशरणदास ने लिखा है कि 'सन्यास ग्रहण के पश्चात् वे सई नदी के तट पर एकान्त तथा रमणीय स्थान पर कुटी बनाकर विरक्तभाव से भजन करने लगे।'[1]

आप भजन कीर्तन आदि के बडे शौकीन थे। रामायण पर आप की अटूट श्रद्धा थी। रामायण पाठ बडी श्रद्धा से करते थे। आप ज्ञानी महात्मा और भक्त ही नही थे बल्कि एक उच्चकोटि के भक्त कवि भी थे। आपने विनय वसीठी, निरंजन भजनावली, धनुपयज्ञ और राग-सग्रह ये चार ग्रन्थ रचे।

आप सं० १९८१ वि० मे इस ससार को छोड कर परलोक सिधारे।

आपकी भक्ति सगुण भाव की थी। आप राम, हनुमान और देवी की उपासना किया करते थे। भक्तिभावना पर रामानुज के विशिष्टा द्वैतवाद की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। आपके रचे कुछ पद नीचे उद्धृत हैं—

भज ले सीताराम फिरत मन काहे भटका॥ टेक॥
गुरु पद सेइ सत सगति करि अहकार को पटका।
रामनाम का रटहि निरतर सीखि भजन का लटका॥
है संसार कछू नहिं माया मोह म अटका।
तेहि छूटन का वेगि जतन करु विपय भोग को सटका॥
छाडि उरासा मन का तन का धन का सुख का खटका।
निश्चल मन ते प्रेमभाव से लखि ले स्वामी घटका॥
बीति गई आपुही इतनी हाय न मन को हटका।
विषयवासना का नहिं छूटा ई तन ते यदि चटका॥
अत समय पछितावा करि है करि जग के टोटका।
सो आई कछु काम न जब ही परी यमन का झटका॥
तीर्थ निरजन कहि समुझावत राम भजन का चस्का।
भवसागर ते पार करइया है बेडा बेखटका॥
आत्मा में परमातमा लखहु सुमिरि ओंकार।
ज्योति सरूप हिय ध्यान करि उतर जाय भव पार॥[2]

१ कल्याण, भक्तचरितांक विशेषांक, (ब्रह्मानन्द जी मिश्र स्वामी निरजनानन्द जी तीर्थ), पृ० ७८४।

२ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, पृ० ५७४।

पण्डित पीताम्बर

जीवन रेखा

आप कच्छ देश के निवासी थे। आपका जन्म स० १६०३ वि० मे हुआ था। भारतेन्दु जी से आप चार वर्ष बड़े थे। आपकी भक्ति-परक रचनाओ म तत्कालीन भक्तिभावनाओ का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। नीचे आपकी कविताओ के कुछ अश उद्धत हैं—

जब जनत है निज रूपहिं कूं। जब जीवमुक्ति समीपहिं कूं॥
भ्रम बूंद निवृत्ति सदेहहि कूं। सुख सम्पत्ति होवत गेहहिं कूं॥
विद्वान तजै इस देहहि कूं। तब पावत मुक्ति विदेहहि हूं॥
तम लेश भजे सद नाशहि हूं। तज देत प्रपपच अमासहि कू॥
सरित इव सागर देशहि कू। चिन मात्र मिलाप विशेपहि कूं॥
चित होय मजे अवशेप हि कूं। नहि जन्म पीताबर शेषहि कूं॥[१]

आप एक सतमार्गी कवि है। आपकी रचनाओ से एक विरोगी का भाव द्योतित होता है। आपका विश्वास है कि विद्वान् मोक्ष प्राप्ति के हेतु इस देह को त्याग देने मे सकोच नही करता है। पुनर्जन्म को आप नही मानते हैं। इसलिये मगवद्‌मजन परमावश्यक प्रतीत होता है इस प्रकार कवि निर्गुण ब्रह्म का उपासक है।

रामकृष्ण बोवा करतालकर

जीवन रेखा

इनका जन्म १८४६ ई० मे मध्य प्रदेश के किसी नगर मे हुआ था। भोसला राज्य के अस्त होते ही ये नागपुर मे आ बसे। उस समय राजा बहादुर जानोजी राव गद्दी को सुशोभित कर रहे थे।[२] ये बड़े हा विद्वान् थे। अत इन्होने रामकृष्ण को अपने यहाँ आश्रय दिया।

रामकृष्ण सस्कृत और ज्योतिष के विद्वान् थे। गायन और वादन मे भी आप निपुण थे। ये बराबर करताल बजाया करते थे। करताल लेकर प्राय भगवन्नाम कीर्त्तन मे तल्लीन रहा करते थे। करताल बजाने के कारण ही लगता है लोग इन्हे 'करतालकर' कहने लगे। ये तीर्थयात्रा के बडे प्रेमी थे। इसी उद्देश्य से इन्होने समस्त भारत का भ्रमण किया था। ये गृहस्थ सत थे। भक्तिभावो से परिपूर्ण इनके कई आख्यान अप्रकाशित हैं।

ये भगवान् के अनन्य उपासक हैं। नाम कीर्त्तन मे इनकी अगाध श्रद्धा है। इनका पूर्ण विश्वास है कि ससार सागर से पार उतरने के लिये एकमात्र हरिनाम ही आधार है। क्योकि नाम कीर्त्तन से ही प्रह्लाद अजामिल, गणिका, वाल्मीकि, ध्रुव आदि सभी परमपद को प्राप्त हुए। अत सुख कामना की आशा छोडकर भगवान् का नाम भजो—

जगत मो तारक हरि को नाम।
भज ले तो प्रह्लाद प्रेम से आया दौड कर श्याम॥
पापी अजामिल गणिका तारी दिया वैकुंठ मो सुरधाम।
वाल्हा कोली वाल्मिक भया है उलट जपत मुखराम॥

---

१ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, पृ० ५४१।

२ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विदर्भ की देन, पृ० ५६।

ध्रुव बालक आगमनी देखा, दिया अचल पद ग्राम ।
रामकृष्ण हरिदास कहत है, छोडो विष ये सुखकाम ॥[1]

कवि कबीर की भाँति ही ससार की नि सारता की ओर लक्ष्य करके चेतावनी देता है—

राम भजन कर लेना एक दिन जाना है भाई ॥
सोना पहरे चाँदी पहरे पहरे पीतल काँसा ।
साहब के घर चिट्ठी आई, छूटी देह की आसा ॥
राजा गये काजी गये, गये बड़े बडे अधिकारी ।
साहेब के घर आया बुलावा, छोड चले सरदारी ॥
हँस छोड़ के जात पलक या पच तत्व का चोला ।
जान बूझकर क्यों वे भूला कहे रामकृष्ण वाला ॥[2]

कवि शरीर को, रेल का रूपक मानकर बडा ही सुन्दर वणन प्रस्तुत करता है । यहाँ शरीर रूप रेल मे आध्यात्मिक तत्व की कमी नही है । कवि को इस पद म पूर्ण सफलता मिली है । कबीर के भावजगत् मे कवि की पूरी पैठ है । प्रतीक योजना के माध्यम से वह आध्यात्मिक जगत् मे अपना अच्छा स्थान बना लेता है—

प्रभू ने कैसी रेल चलाई ॥
तन की गाडी बल का इजन क्रोध की आग जलाई ।
श्वास की सीटी बजाई ॥
नाड़ी तार सम खबर लेन को दशम द्वार फैलाई ।
इद्रिया के बनाई टेसन नान कि घटी बजाई ॥
सुनो तुम कान लगाई ॥
उत्तम मध्यम अधम तीन है दरजे इसके भाई ।
कर्म अकर्म की टिकट बटत है पाप पुण्य पहुँचाई ॥
धर्म कर्म की खेप लगाई ॥
जीवात्मा इसमे बैठे टिकट अपना दिखलाई ।
देखने वाला जो जगदीश जिसने रेल बनाई ॥
रामकृष्ण कहे मुझे प्रभू ने हित की रेल दिखाई ॥[3]

ये एक अच्छे कीर्त नकार थे । सगीत की स्वर लहरी मे भक्ति तत्वो का समावेश सोने म सुहागा जैसा फबता है । आप एक सत कवि थे । सतो की वाणी की प्रभावाभिव्यजकता आपके पदो म मौजूद है ।

आपका देहा त सन् १९०३ ई० मे हुआ ।[4]

बिहारीलाल चौबे

जीवन रेखा

आपका जन्म जौनपुर जिलान्तगत मधुरापुर नामक ग्राम म स० १९०५ वि० (सन् १८४८ ई०)

---

१ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी-साहित्य को विदर्भ को देन, पृ० ५९ ।
२ वही, पृ० ६० ।
३ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विदर्भ की देन, पृ० ६० ।
४ वही, पृ० ५९ ।

मे हुआ था। आपके पिता का नाम रक्षपाल चौबे था। ये जाति के सरयूपारीण ब्राह्मण थे।[१] घर पर ही पिता से आपने व्याकरण का अध्ययन किया। बाद मे काशी आकर आप ने सस्कृत और हिन्दी का अध्ययन किया। विद्यार्थी जीवन से ही आपने साहित्यिक जगत् मे प्रवेश पा लिया था। तत्कालीन पत्र पत्रिकाओ मे आपके निबन्ध और कविताएँ प्रकाशित होती थी। सदादर्श, कविबचन-सुधा, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका आदि म आपकी रचनाओ को स्थान मिलता है। अत यह निर्विवाद सिद्ध है कि आप भारतेन्दु युगीन कवि और लेखक है। आप एक कुशल अध्यापक थे। बिहार के कई एक स्कूलो मे आपने हिन्दी और सस्कृत का कुशलतापूर्वक अध्ययन किया। आपकी ब्रजभाषा मे रचनाएँ बहुत ही रोचक और सुबोध तथा सरस है। आपकी अधिकतर रचनाएँ विद्यालयो मे पढाने के निमित्त लिखी गई है। लेकिन तद्युगीन प्रभाव से वचित होना अत्यन्त ही अवश्यम्भावी है। अत युग की छाप के अनुसार शृङ्गार सवलित भक्ति-पदो की रचना कवि ने ब्रजभाषा मे की है। कवि सखिभाव का उपासक है। हरिदासी सम्प्रदाय की माधुर्य भक्ति का सखीभाव स्पष्ट ही कवि की रचनाओ मे परि-लक्षित होता है, यथा—

राधा जो बाधा हरै जग की हरि हेरि न कुज के बीच ठगी सी।
पत्र आगे परे नहिं पीछे परे पुनि स्वासे चले जनु शाक लसी सी।
सोचति शोक विमोचनि शोक विमोचन को जनु बाधा ग्रसी सी।
अवलोकति एक ही ओर खडी सुमृगी इव जाल विशाल फसी सी॥[२]

शिवप्रसाद

जीवन रेखा

इनका जन्म सन् १८५० ई० के आस-पास हुआ था।[३] ये जाति के श्रीवास्तव कायस्थ थे। आप एक रामभक्त कवि थे। रामभक्ति सम्बन्धी आपने कई मौलिक ग्रन्थो का प्रणयन किया। आप की भाषा मजी हुई है। आपको रामायण लिखने की कला ज्ञात थी। आपकी तीन पुस्तको—सत्त छपै रामायण, छन्द रामायण हरदण्ड रामायण—का पता चलता है।

आप राम के अनन्य उपासक थे। आप राम की ही उपासना म सदा मग्न रहा करते थे।

अवध जन्म लै बढो राम जानकी सुशोला।
पितु आयसु मुनि वेष जाइ बन करत बहुलीला।
तृया हरण पुनि गृद्ध मरण सुग्रीव राज पुनि।
हनुमतादिगण गमन दहन लका सिय सुधि सुनि॥
वर वारिधि बाधि सकोश दल। उतरि पार परिवार सह।
रण शिवप्रसाद रावण हत्यौ रामायण बुध जान यह॥[४]

इस पद मे कवि रामचरितमानस के कथानक को केवल छ पक्तियो म ही प्रस्तुत कर देता। वह अपने वाक्यचातुर्य के लिये प्रसिद्ध है। कवि पर तुलसी का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। वह भगवान् राम की पूजा मे तुलसी की कवितावली और विनयपत्रिका से प्रसून चुने हैं—

१ सरस्वती, हीरकजयन्ती विशेषाक, पृ० ५३८।
२ वही, पृ० ५४०।
३ कामेश्वर शर्मा हिन्दी साहित्य को बिहार का देन, सुहृद सघ, मुजफ्फरपुर, प्रथम सस्करण, २०१२ वि०, पृ० १६०।
४ वही, पृ० १६०।

जय जय गुणराशी सब उरवासी अज अविनासी
जन त्राता सब सुखदाता ।
जय विश्व दुखारी देवि अघारी जग हितकारी
पितु माता बुद्धि बल त्राता ।।
धरि चारि सुभग तन राम भरत लषन सत्रुदुहन
जन्म भले दशरथ घर लें ।
करि मख रखवारी मुनि तियतारी शिवधनु भारी
राम दले त्रिभुवन बिचले ।।
कहि भृगुपति जय जय फिरै धनुष दै कुटिल नपन्हगे,
गावहि रुदन नम झरे सुमन ।
मिथिलेश अनन्दे कौशिक बन्दे रघुकुल चन्दे
राखे पन हर्षे पुरजन ।
तारि अहिल्या तोरि हर धनुष भृगुपति मद मथि सिया विवाहि ।
व्याहि आई सब दुलहिनि लै घर आये सो सुख कहि न सिराहि ।
बाधि समुद्र पार उतरे प्रभु सकल घोर रण मारि ।
करि लंकपति जन विभीषणहिं चले पुष्पकारूढि रथराखि ।।[१]

इस प्रकार कवि की भक्तिधारा मे स्वान्त सुखाय कविताओ का सृजन जब तब हुआ है । भाषा पर उसका अधिकार है । भाषा और भाव देखकर यह सहज ही मे भान हो जाता है कि यदि उसे आसनस्थ होकर लिखने का मौका मिला होता तो वही मा भारती के पूजार्चन मे सुन्दर सुमनो की माला प्रस्तुत करता । इस तरह उसे भारतेन्दुयुगीन रामभक्त कवियो म विशेष स्थान प्राप्त होता है ।

केशव हरि

जीवन रेखा

आपका जन्म वि० स० १६०७ म हुआ था । भारतेन्दु का जन्म भी इसी सम्वत् म हुआ था । आप सौराष्ट्र के रहने वाले एक अच्छे महात्मा थे । आपके द्वारा रचित पदा म भक्ति की भागीरथी का प्रवाह देखते ही बनता है । उदाहरण द्रष्टव्य है—

जो शात दात सुममाहित बीतराग,
जेने नथी जगत मां रतिमात्र राग ।
जेने सदा परम बोध पवित्र धाम,
एने अमे प्रणय थी करिए प्रणाम ।।
जेनो थयो सफल जन्म नृजाति रूप,
जेने सदा सुखद एक निज स्वरूप ।
जेनो सुखाश्रम विषे समये विराम,
एने अमे प्रणय थी करिए प्रणाम ।।[२]

---

१ कामेश्वर शर्मा हिन्दी साहित्य को बिहार की देन, पृ० १६२ ।
२ कल्याण, सतवाणी विशेषांक, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ० ४४६ ।

आप एक सत कवि थे। निगुण परम्परा मे प्रणय की विशेष महत्ता है—

देखाय तोय पण अन्तर मोहि गूढ,
जेने विवेक विनयादि विचार रूढ।
जो आत्मलाभ थकि केवल पूण काम,
एने अमे प्रणय थी करिए प्रणाम॥
जो त्यागवान पण केवट एक रागी,
रागी जणाय पण अन्तर मा विरागी।
जेनु सदा रटण केशव राम नाम,
एने अमे प्रणय थी करिए प्रणाम॥[१]

यज्ञदत्त त्रिपाठी

जीवन रेखा

ये एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जन्म स० १६०७ वि० (सन् १८५० ई०) मे सारन जिलान्तगत बलुआ नामक ग्राम मे हुआ था।[२] इनका उपनाम 'यज्ञ' था।

आपके शरीर की आकृति बडी ही सुन्दर थी। आप भारतेन्दु के मित्र थे।[३] सितारवादन की कला आप जानते थे। हिन्दी, फारसी और सस्कृत का ज्ञान आपको अच्छा था। शिव जी के आप अनन्य भक्त थे। उन्ही के गुणगान मे आप पदो की रचना करते थे और उन्हें सितार पर गाया करते थे। शिव की स्तुति मे आपने एक ग्रन्थ की रचना की है जिसका नाम 'मन लहरी' है।[४] आपकी रचनाओ से निम्नलिखित पद्य उदाहरण के लिये उपस्थित हैं—

एकटक हेरत न फेरत अनत नैन,
मुदित चकोर जिमि चन्द्र छबि ध्याये ते।
नटत मयूर जैसे मन में आनन्द भरयो,
देखि देखि, गगन सघन घन छाये ते।
जैसे गजराज सुख सिन्धु में मगन होत,
भावत न आने रेनु खेह तन लाये ते।
वैसे 'यज्ञ' जन-मन-मधुप प्रमोद भर्यो,
सम्भु-पद-पदुम-पराग-पुज पाये ते॥[५]
एरे मन मेरो मैं तोंसो कहौं टेरो होय,
शकर को चेरो मानि काटत भव-फन्दे रे।
मग है अधेरो यहा कोई नाहि तेरो,
चोर विष आनि धरो सब छाड छल छन्दे रे।

---

१ वही, पृ० ४४६।

२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पृ० १०४।

३ वही, पृ० १०४।

४ वही, पृ० १०४।

५ वही, पृ० १०५।

प० अडकूलाल वैद्य

जीवन रेखा

आपका जन्म स० १९०८ वि० माघ वसन्त पचमी को ललितपुर मे हुआ था।[1] आपके पिता जी का नाम प० माधवप्रसाद था। आप बचपन से ही अध्ययन कुशल थे। अप सवत् १९२४ में मिडल तथा स० १९२७ मे इन्ट्रेन्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुए। यही आपका अध्ययन अर्थाभाव के कारण अवरुद्ध हो गया। अत आप गृहस्थी के काय मे जुटे। सव प्रथम आपका जीवन किरानी से प्रारम्भ होता है। आपकी बुद्धिमत्ता ने आपको भोपाल स्टेट के प्राइवेट सेक्रेटरी के पद तक पहुँचा दिया। आप स० १९३६ से १९८२ तक दीवान विजय बहादुर मजबूत सिंह नौधरा के मुख्तार रहे। स० १९८३ मे आपने वहाँ से अवकाश ले लिया फिर भी आप परामश देते ही रहे। आपका रचना काल स० १९१३ वि० हैं। आपके स्फुट पद काफी मिलते हैं। आपने एक पारजात रामायण' की रचना की है। सुकवि सरोज के लेखक का विश्वास है कि गोस्वामी तुलसीदास की भाति रामायण का दूसरा ग्रंथ इस काल मे प्राप्त नहीं होता। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। उनकी रचनाओं से निम्नांकित अंश उद्धत किया जाता है। इस पद में कवि एक ही साथ शेष, महेश, दिनेश, हनुमान और मुनिगण तथा निराकार साकार प्रभु की 'वन्दना करता है।

सिंदुरी प्रणवहुँ प्रथम श्रुति तज शेष महेश।
निराकार साकार प्रभु हनुमत गिरा दिनेश॥
बालमीक व्यासादि मुनि विश्वामित्र वशिष्ठ।
नाता भारद्वाज मुनि काक भशुंड वरिष्ठ॥
× × ×
जात रूप मणिगण बसन भूपण धेनु समेत।
हय गज रथ युत साज तब दीन द्विजन नृप हेतु॥
कौतुक लखन हेतु तेहि काला। काक भुशुंड महेश कृपाला॥
धर मानुप तन अवध पधारे। जहाँ प्रकट हरि नर तन धारे॥
जिहि पुर प्रगटे राम पविना। भरत जुगल सुनु सौमित्रा॥[2]

अडकूलाल जी प्रसिद्ध रामभक्त कवि हैं। इस ग्रंथ मे उनकी प्रबन्ध पटुता, रचना वैविध्य, वर्णन की बहुलता आदि का सुन्दर दशन होता है। कवि रामजन्म का वणन इस पद में करता है—

जो भव द्वन्द मिटावन हारा। हरन भार भू जग आधारा॥
तिहि पुर शोभा बरणि कि लाई। थकहि शेष जो करहि बडाई॥
भे प्रतिगृह आनन्द बधाए। मगल साज समाज सजाए॥
वरणे को अवधेश विभूती। सक्र कोटिहूँ ते सु अकूती॥
नृपत जाचकन कीन अजाची। नियगण धून मगल पुर राची॥
समय जान मन्त्री बुधवता। बुलवाए वशिष्ठ वर सता॥

---

१ गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' (सपादक) सुकवि सरोज, सनाढ्यान्श, ग्रन्थमाला, टीकमगढ, बुन्देलखण्ड, प्रथम सस्करण, पृ० ६१०, पृ० १६६।

२ गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' (संपादक) सुकवि सरोज, प्रथम सस्करण, १९९० वि०, पृ० १६६।

ह्वं प्रसन्न मुनिवर तह आए। नृप पूजन कर तिन बैठाए ॥
कीन भूप अस्तुति बहुभाती। बैठ नृप सह गुरुजन ज्ञाती ॥
पुरजन परिजन सब तह आए। सादर तिनहि भूप बैठाए ॥
बदि मुनिहि पुनि भूप उचारा। जन्म लग्न ग्रह कहहु विचारा ॥
त्रिकालज्ञ मुनि ज्ञान निधाना। कर विचार बोले तप माना ॥

कक लग्न गुरु उच्च शशि है, जुग तन सुख दैन।
राहु तीसरे दसम रवि, शनि तुरा कै ऐन ॥

सप्तम कुज कवि केतु मीन के। एकादसम् बुद्ध वृष गृह के ॥
पच उच्च ग्रह अनुपम सौहैं। रवि कुज गुरु शनि भृगु सुत जौहैं ॥
स्न ग्रही विधि अस जोग अनूपा। अब लग लखे सुने नहि भूपा ॥
सकल जोग फल शुभ शुचि जेते। धरित तौन तुव सुतविच तेते।
सब ग्रह तोर सुवन के ताता। है शुचि सुन्दर फल के दाता ॥
लोक प्रसिद्ध जान सुत भूपा। भे तिथि ग्रह अनुकूल अनूपा।
अज अद्वैत ज्ञान विज्ञाना। अजय अवध अजर भगवाना ॥
अमल अनत अखड अनूपा। अद्भुत ईश तोर सुत भूपा।
भूपति भूतल सर्व कौ हौ हरि है भू भार।
रघुकुल मडन तोर सुत तीन लोक भर्तार ॥[1]

कवि का 'पारजात रामायण' इस युग का गौरव स्तम्भ है। इसे रामकथाकाव्य के उद्घाटन म उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई है।

रसिक सत सरस माधुरी जी

जीवन रेखा –

आपका जन्म ग्वालियर राज्य के मन्दसौर ग्राम मे वि० स० १६१२ मे हुआ था। इनके पिता का नाम घासीराम तथा माता का नाम पावती देवी था। आप जाति के ब्राह्मण थे। आप कृष्णभक्त कवि है। नवधा भक्ति मे आपकी अगाध श्रद्धा है। भक्तिभावनाओ से स्नात आपकी कविता बडी ही सरस एव हृदयग्राही है। आप युगल उपासना को मान्यता देते हुए वेन्‌ की महत्ता को स्वीकार करते हैं। भक्ति से मुक्ति मिलती है, ऐसा आपका विश्वास है, आपकी कविता भावा से लथ-पथ है—

जय जय श्री युगल बिहारी।
ब्रज नृपति नव नागरि नागर,
रस सागर रसिकन रिझवारी ॥
अधम उधारन जन निस्तारन,
तारन तरन भक्त भय हारी।
श्यामल गौर किशोर किशोरी,
जोरी भोरी अति सुकुमारी ॥

---

१ गौरीशकर द्विवेदी 'शकर' (सपादक) सुकवि सरोज, पृ० १७०।

बिधि हरि हर विनवत निशि वासर,
अवतारन हू के अवतारी।
कीजिये कृपा कमल पद सेवा,
सरस माधुरी शरण तिहारी ॥[१]

कवि नामभजन की महत्ता को स्वीकार करते हुए इसे कलयुग का आधार मानता है।

भजो श्रीराधे गोविंद हरी ॥
युगल नाम जीवन धन जानो, या सम और धर्म नहिं मानो।
वेद पुरानन प्रगट बखानो, जपै जोइ है धन्य धरी ॥
कलयुग केवल नाम अधारा, नवधाभक्ति सन्त श्रुति सारा।
प्रेम परापन लहै सुखारा, रसना नाम लगावो भरी ॥
नृत्य करैं प्रभु के गुन गावें, गद गद स्वर तन मन पुलकावै।
टहल महल कर हिय हुलसावें, सरस माधुरी रग भरी ॥[२]

भज मन श्री राधे गोपाल।
करुणानिधि कोमल चित तिनको, दीना को प्रतिपाल ॥
जिनको ध्यान किये सुख उपजै दूर होत दुख जाल।
माया रहत चरन की चेरी, डरपत जिन सो काल ॥
बिहरत श्रीवृंदाबन माही, दोउ गल बैया डाल।
बिलसत रास बिलास रगीले, गावत गीत रसाल ॥
हस हस छीन लेत मन छल कर चचल नैन विशाल।
सरस माधुरी शरनागत का छिन मे करैं निहाल ॥[३]

राधिकावल्लभ ध्यान धरो उर, राधिका बल्लभ इष्ट हमारे।
राधिकावल्लभ नाम जपो नित राधिकावल्लभ ही हिय धारे ॥
राधिकावल्लभ जीवन है मम राधिकाबल्लभ प्राण ते प्यारे।
राधिकावल्लभ नैन बसे सरस माधुरी होत नही छिन न्यारे ॥

भक्त श्यामाश्याम की युगल छवि से प्रभावित हो श्याममय हो जाता है—

गावें श्यामा श्याम को, ध्यावें श्यामा श्याम।
निरखें श्यामा श्याम को यही हमारा काम ॥
यही हमारो काम नाम दपति लौ लागी।
निज सवा सुख रग महल लीला अनुरागी ॥
सरस माधुरी रग रगें मदमाते डोलें।
मिले सजाता सग खोल अतस मृदु बोलैं ॥

कवि एक रसिक भक्त है। वह भक्ति की महत्ता पर प्रकाश डालता है—

जगत म भक्ति बडो सुखदानी।
जो जन भक्ति करे केशव की सर्वोत्तम सोइ प्रानी।
आपा अपन करे कृष्ण को प्रेम प्रीति मन मानी ॥

---

१ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, पृ० ४४२।
२ कल्याण, संतवाणी विशेषाक, पृ० ४४२।
३ वही, पृ० ४४२।

सुमिरे सुरचि सनेह श्याम को सहित कर्म मन बानी।
श्रीहरि छबि मे छको रहत नित, सोइ सच्चा हरि ध्यानी॥
सब मे देखे इष्ट आपनो निज अनन्य पन जानी।
नैन नेह जल द्रवत रहत नित, सर्व अग पुलकानी॥
हरि मिलने हित नित उमगे चित, सुध-बुध सब बिसरानी।
बिरह व्यथा मे व्याकुल निशि दिन ज्यो मछली बिन पानी॥
ऐसे भक्तन के बल भगवत वेदन प्रकट बखानी।
सरस माधुरी हरि हस मेटें मेटें आवन जानी॥[1]

कवि रसिक जी भजन के बिना मनुष्य को कभी मरघट का भूत मानते हैं तो कभी नर रूप मे पशु की सना से अभिहित करते हैं। उनका विश्वास है कि एक दिन प्राण निकल भागेगा। उस समय किसी का वश नही चलेगा—

भजन बिन नर मरघट को भूत।
श्यामा श्याम रटे रसना से तिन को जान सपूत॥
बिन हरि भजन करम सब अकरम, आठो गाठ कपूत।
एक अनन्य भक्ति बिन कीये धृग करनी करतूत॥
निश दिन करत कपट छल बाजी, समझे नही अऊत।
सरस माधुरी अतकाल मे मारेंगे यमदूत॥[2]

भजन बिन सब नर पशू समान।
खान पान मे उमर बितावत, और नही कुछ ज्ञान॥
मिल्यो आप मागन सा नर तन, अब तो समझ अजान।
सत सगत मे बैठ ऐंठ तज, कर गोविंद गुणगान॥
छिन पल घडी घटत है स्वासा, काल रह्यो सर तान।
आप अचानक तक मारेगो, मौत सरूपी बान॥
फेर कछू नाही बनि आवे, निकस जाय जब प्रान।
सरस माधुरी सब तज हरि भज कही हमारी मान॥[3]

कवि भक्तिकालीन कवियो की भाति चेतावनी देते हुए नाम-नाव से भवसागर पार उतरने का उपदेश देता है—

जगत मे रहना है दिन चार।
चित हेत कर हरि सो, प्यारे हरि सुमिरन की बार॥
घरी पलक का नहिं भरोसा, मौत बिछाया जार।
इन्द्री भोग विषय बस हुये फस सकल नर नार॥
कर ले भजन सत गुर सेवा सब करनी को सार।
सुकृत सौदा सत्य यही है जीत जनम मत हार॥

---

१ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, पृ० ४४२।
२ वही, पृ० ४४२ ४३।
३ कल्याण, संतवाणी विशेषाक, पृ० ४४२ ४३।

चलाचलो लग रही रैन दिन, मन मे सोच विचार ।
चला गया काई चला जात कोइ चलने को तैयार ॥
स्वास स्वास मे सुमिर श्याम को दया धर्म उर धार ।
सरस माधुरी नाम नाव चढ उतरो भव जल पार ॥[१]

जगत मे सकल बटाऊ लोग ।
कोइ आवत कोइ जात यहा ते, झूठो सुख सजोग ॥
भुगते करम भरम चौरासी, जनम मरन दु ख रोग ।
जो उपजे सो निश्चै बिनसे, काका कीजे सोग ॥
करै भजन निष्काम श्याम को, फिर नहिं होत वियोग ।
सरस माधुरी सत्य कहू हैं करे अमरपुर भोग ।[२]

× × ×

थोडा जीवन जगत मे, सुन मेरे मन चार ।
सरस माधुरी सबन सो करो परस्पर प्यार ॥
राजी राखो सबन को, राजी रहिये आप ।
सरस माधुरी सुहृदयता मेटत त्रय विधि ताप ॥
जग दम्पति सब छाड के जावे खाली हाथ ।
सुमिग्न सेवा भावना चले जीव के साथ ॥
सपना यह ससार है मोह नीद से जाग ।
नेकी करो प्रभु से डरो, हरि • सुमरन को लाग ॥
जो जन सुमरे नाम हरि जागे ताके भाग ।
सरस माधुरी होइ सुखा, लहै युगल अनुराग ॥
यही ज्ञान अरु ध्यान है यही योग तप त्याग ।
सरस माधुरी समभ मन विषयन म मत पाग ॥[३]

कवि ससार को निशा का सपना मानता है । यहाँ सभी स्वार्थ के साथी हैं । केवल हरिनाम ही सच्चा साथी है । *यथा—*

जगत यह जान रैन का सपना ।
माता पिता परिवार नारि नर हरि बिन कोइ न अपना ।
निज स्वारथ के सगे सनेही, त्रिविध ताप मे तपना ।
बिछुरन मरन मिलन जीवन मे करिये नही कलपना ।
माया जाल जीव उरझायो, उपज उपज फिर खपना ।
सरस माधुरी समझ मूढ मन, साचा हरि हरि जपना ॥[४]

आप एक प्रसिद्ध कृष्ण भक्त कवि हैं । युगल उपासना ही आपके जीवन का लक्ष्य है—

---

१ वही, पृ० ४४२-४३ ।
२ कल्याण सन्तवाणी विशेषाक, पृ० ४४३ ।
३ वही, पृ० ४४३ ।
४ वही, पृ० ४४३ ।

जो सेवा श्रीयुगल की, तन सौं बनै न मित्त।
तो मन सौं कर भावना समय-समय की नित्त॥
गृह बन मैं जित नित रहौ, गहो मानसी सेव।
सरस माधुरी भाव सौं, सहचरि बन सुख लेव॥
सुख की दपति रासि हैं, तिन सौं प्रेम बढाव।
सरस माधुरी टहल को नित प्रति रख चित चाव॥
जुगल लगन मैं मन मगन राखहु आठो जाम।
सरस माधुरी सुरति सौं सुमिरहु श्यामा श्याम॥[1]

आप सनातन धर्मावलम्बी वैष्णव भक्त हैं। आपकी आराधना मे शुचिता का विशेष स्थान है। कवि ने भगवत् सेवा के बत्तीस अपराधो की चर्चा निम्नांकित की है—

वाह्नादि असवार हो, पहर खडाऊँ पाय।
पदत्राण को पहर के हरि मन्दिर नहिं जाय॥
जन्म अष्टमी आदि ले हरि उत्सव दिन जान।
सेव करे नहिं श्री हरी, यह अपराध पिछान॥
हरि मन्दिर मे जाय के, करे नही परणाम।
नमन करे नहिं प्रेमसो श्रीमत श्यामा श्याम॥
अशुचि अग जूठे वदन, लघुशकादिक जान।
बिन धोये कर दडवत यह अपराध प्रमान॥
एक हाथ सो ही करे श्रीहरि चरण प्रणाम।
युगल हस्त जाड़े नही यह अपराध निकाम॥
श्रीहरि मूरति सामने करे प्रदक्षिणा कोय।
मन मे निश्चय कीजिये यह अपराधहि होय॥
हरि मूरति के अगाडी बैठे पाव पसार।
यह पातक प्रकट है कियो शास्त्रनिर्धार।
श्रीहरि सन्मुख बैठ के भोजन करे जो आन।
यह भी पाप प्रत्यक्ष है समझे सत सुजान॥
हरि मन्दिर मे बैठ के मिथ्या बोले जोय।
झूठ बखान वार्ता, यह भी पातक होय॥
हरि मूरति सन्मुख कोई करे पुकार बकवाद।
यह भी है अपराध ही करनो वाद विवाद॥
हरि मन्दिर मे बैठ के जग चर्चा अनुवाद।
मनुष्य मडली जोड के करे सहित उन्माद॥
मृतक भये प्राणनि को, और जगत सताप।
रोवे मन्दिर बैठ के सो भी कहिये पाप॥
मन्दिर माही बैठ के करे ईर्षा जोय।
द्वेष करे प्राणीन सा यह भी पातक होय॥

१ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, पृ० ५४३।

हरि मूरति के सामने देहि किसी को दण्ड।
क्रोध करे मारे हने, यह भी पाप प्रचण्ड॥
श्रीठाकुर के सामने, जग लोगन को जान।
देवे आशीर्वाद ही सोहू पाप पिछान॥
हरि मंदिर म बैठ के बोले बचन कठोर।
चित्त दुखाने और को यह पातक सिर मोर॥
ऊन उपरणा ओढ के हरि सेवा म जाय।
बाल गिरे मन्दिर विषे, यह अपराध लखाय॥
ठाकुर सन्मुख बठ के निंदा करे बखान।
यह भी पाप पिछानिये होय पुण्य को हानि॥
श्रीहरि मूरति सामने अस्तुति भाखे और।
करे बडाई लोकहित यहै पाप अति घोर॥
हास्य करे जिय और की बोले बचन अयोग।
मन्दिर माही बठ के जीव दुखावे लोग॥
मन्दिर माही वैठ के छोड़े कुछ वायु अपान।
शुचि पवित्रता नष्ट हो यह भी पातक जान॥
निज समर्थ तजि लोभ वश करे कृपणता जान।
सेवे नहिं श्रीहरी को यथाशक्ति हित मान॥
बिना समर्थ प्रभु के भोग लगे बिन जान।
भखे वस्तु जो जीव यह सो पातक अनुमान॥
ऋतुफल भोग धरे नही, श्रीमत राधेश्याम।
लाड लडा सेवे नही, सो भी पाप पिछान॥
भूत पितर अरु देवता तिन के भोग लगाय।
सोह समर्पे प्रभु को यह भी पाप कहाय॥
पीठ फेर के बठनो, श्रीठाकुर की ओर।
यही अवज्ञा विमुखता, अतिशय, पाप कठोर॥
ठाकुर सेवा करत मैं जग जिय करे प्रणाम।
बमन करे डर लोभ वश, यहै पाप को काम॥
गुरु महिमा कोऊ करे सुनत रहे चुप चाप।
निज मुख अस्तुति नहिं करे सो भी कहियत पाप॥
और देवता को करे निन्दा आप बखान।
यह भी कहियत पाप है मन मे समझ सुजान॥
अपने मुख ही सौं करे आप बडाई जान।
लघुता गुण धारे नही, यही पाप ले मान॥
यह बत्तीस जो पाप है, त्याग करो हरि सेव।
अपनावें ताको प्रभो, ह्वै प्रसन्न हरि देव॥
श्रीवाराह पुराण म यह सेवा अपराध॥
इनको तजि के प्रीति सौं भगवत पद आराध।

भक्तिभाव कर सेइये, श्रीअरचा अवतार।
सरस माधुरी कर कृपा, मिले युगल सरकार॥[1]

इस प्रकार भक्त रसिक जी की उपासना मे श्यामाश्याम का विशेष स्थान है। कवि नवधा भक्ति मे विशेष विश्वास रखता है। भजन ही उसके जीवन का सार है। इस घोर कलिकाल मे ससार-सागर से पार उतरने के लिये भजन ही एक मात्र सहारा है। कवि की रसिकता हरिदासी सम्प्रदाय से विशेष प्रभावित है। आपकी भक्ति-सुधा सलिला म सुरसरि का सरस प्रवाह पाठकों के मन-मयूर को मत्त कर देता है।

विनायकराव

जीवन रेखा

विनायकराव का जन्म पौष शुक्ल स० १६१२ वि० मे जिला सागर मे हुआ था।[2] ये सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके पिता का देहान्त बचपन मे ही हो गया। फलस्वरूप इनके लालन-पालन का भार एक मात्र इनकी माता पर पडा। सागर म ही इन्होने विद्यारम्भ किया और यही से एन्ट्रेंस पास किया। इनकी शिक्षा एफ० ए० तक हुई।

आप बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। एफ० ए० तक शिक्षा समाप्त कर ये सव प्रथम एक अध्यापक के रूप में जीवन मे पदार्पण किये। शिक्षा विभाग मे सहायक शिक्षक से प्रधान शिक्षक और फिर आपकी सुपरिंटेन्डेन्ट तक तरक्की हुई। आप की कार्यकुशलता देखकर बराबर पदोन्नति होती गई। शिक्षा विभाग मे रहकर आपका हिन्दी प्रचार काय बडा सराहनीय रहा। आप एक कुशल अध्यापक थे। एक सच्चे प्रशासक भी थे। आप बड़े ही उदार व्यक्ति थे।

आप हिन्दी भाषा के बडे प्रेमी थे। ब्रजभाषा के आप कुशल कलाकार थे। आप द्वारा रचित १६ पुस्तकों का पता चलता है।[3] आप रामभक्त थे। रामचरित सम्बन्धी आपकी स्फुट कविताएँ हिन्दी कविता-कानन मे अपना अच्छा स्थान रखती हैं। कवि जनक-तनया जानकी के हृदय की आकुलता का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन करता है। पतिव्रता का यह उदाहरण कवि को सनातनधर्मी घोषित करने के लिए पर्याप्त है—

जनक दुलारी सुकुमारी सुधि पाई पिय,
चहत चलन बन इच्छा नर नाह की।
उठि अकुलाय घबराय सग जान हेतु,
सकुचति विनय सुनाइ चित्त चाह की।
सासु समुझाई राम बिबिध बुझाई कहि,
बन दुखदाई कठिनाई बहु राह की।
पतिपद प्रेम लखि नायक कहत सत्य,
तिया हुती पतिव्रता मानी नाही नाहकी॥[4]

---

१ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, पृ० ४४३ ४४।
२ रामनरेश त्रिपाठी (सपादक) कविता-कौमुदी, भाग २, पृ० ५४।
३ वही, पृ० ५८।
४ रामनरेश त्रिपाठी (सम्पादक) कविता कौमुदी, भाग २, पृ० ५८।

नारायण स्वामी

जीवन रेखा

आपका जन्म रावलपिण्डी (पजाब) स० १८८५ वि० मे हुआ था ।[1] जन्म से ही आपको भक्ति विरासत मे मिली थी । अत स० १९१६ वि० मे आप एकाकी वास के निमित घर छोडकर वृन्दावन चले गये । यही लाल बाबू के मन्दिर के कार्यालय में नौकरी कर ली । आप विरागी स्वभाव के थे । परिणामस्वरूप नौकरी छोड कर आप सन्यासी हो गये और केशीघाट पर खटपटिया बाबा के घेरे में रहने लगे । स० १९५५ मे आप गोवर्द्धन का दर्शन करने गये । यह स्थान अपनी रमणीयता के लिये काफी प्रसिद्ध है । अत यहा का मोहक वातावरण ने इनके मन-मयूर का बाघ लिया । अत यही आप जीवन पर्यन्त कुसुम सरोवर पर स्थित उद्धव जी के मन्दिर मे रहने लगे ।

आप पजाबी थे । आपकी मातृभाषा गुरुमुखी थी, लेकिन ब्रजभाषा पर आपका असाधारण अधिकार था । ब्रजभाषा पर जितना अधिकार आपका है उतना किसी और पजाबी का नहीं । आपका 'ब्रजभाषा' नामक ग्रन्थ अपनी प्रसादता के लिये भक्तो मे काफी समादृत है । इस ग्रन्थ मे प्रसाद गुण के अलावे कवि की सरलता और सहृदयता भी परिलक्षित हाती है ।

कृष्ण भगवान् के आप अनन्य भक्त थे । उन्हें आप लाल जी कहकर सम्बोधित करते थे । एक बार किसी व्यक्ति ने आपसे हरिद्वार चलकर गगा स्नान करने का आग्रह किया, तो आप बोले कि लाल जी हम तो महलो मे रहने वाली प्रिया प्रियतम की सहचरी हैं, हरि के अन्त पुर मे ही रहती हैं द्वार पर नही जाती ।' आपके सम्बन्ध मे राधाचरण ने प्रस्तुत पद अपनी नवभक्तमाल म लिखा है—

अच्छर अर्थ अनूप अलकरन सु अलकृत
भाव हृदय गभीर अनुप्रासन-गुन गुफित ।
राग नवीन नवीन प्रवीनन को मन मोहै
नृत्य करत गति भरत रास मडल अति सोहै ।
देश विदेश प्रचार श्रीवृन्दावन विश्राम
श्रीनारायन स्वामी नवल पद रचना ललित ललाम ॥[2]

स्वामी जी के इस विशेषण से यह भ्रम होता है कि वे कोई दण्डी सन्यासी हैं और अद्वैत मत के मानने वाले ! लेकिन ऐसी बात नहीं । वे सन्यासी तो थे, पर सावलिया बिहारी लाल के रस रङ्ग मे नख से सिख तक श्रीकृष्ण का प्रेम भीगें हुए । नन्दकुमार के नयनो के चोट से कवि आकुल-व्याकुल है ।

श्याम दृगन की चोट बुरी री ।
ज्यो ज्यो नाम लेति तू वाको, मो घायल पै नैन पुरी री ॥

---

१ पजाबी श्रीकृष्णभक्त नारायण स्वामी ।
रास बिलास विभोर प्रबोधानन्द अनुगामी ॥
नई ख्याति जग बीच रेखता अनुपम गई ।
ब्रज बिहार रचि रसिक-मडली सहज रिझाई ॥
वियोगी हरि कवि-कीत्तन, पृ० ६३ ।
सतवाणी अक, (कल्याण विशेषाक), वर्ष २९, स० १, स० २०१

२ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (सपा०) पो[illegible] ग्रन्थ, पृ

ना जानो अब सुध-बुध मेरी, कौन विपिन मे जाय दुरी री।
'नारायन' नहिं छूटत सजनी, जाकी जासा प्रीति जुरी री ॥[१]

कवि का अकाट्य तर्क है कि जब नन्द लाल दृष्टियन पर आ जाता है तो फिर ब्रह्मवाद पर भला उनकी आस्था कैसे टिक सकती है।

चाहे तू जोग करि भ्रकुटी मध्य ध्यान धरि,
चाहे नाम रूप मिथ्या जानि के निहारि लै।
निगुन, निर्भय, निराकार ज्योति व्याप रही,
ऐसो तत्त्व ज्ञान निज मन मे तू धारि लै ॥
'नारायन' अपने को आपुही बखान करि,
मोते वह भिन्न नही या विधि पुकारि ल।
जौं लौं तोहि नन्द को कुमार नाहिं दृष्टि परयौ,
तौ लौ भले बैठि ब्रह्म को विचारि ल ॥[२]

प्रीतम, तूँ मोहिं प्रान ते प्यारो।
जो तोहिं देखि हियो सुख पावत सो बड भाग निबारो ॥
तू जीवन धन, सरबस तू ही, तुही दृगन को तारो।
जो तोको पल भर न निहारूँ, दीखत जग अधियारो ॥
मोद बढावन के कारन हम मानिनि रूपहि धारो।
'नारायन' हम दोउ एक हैं फूल सुगन्ध न न्यारो ॥[३]

× × ×

जाहि लगन लगी घनस्याम की।
धरत कहूँ पग परत कि तैही, भूलिजाय सुधि धाम की ॥
छबि निहार नहिं रहत हार कछु धरि पल निसि दिन जाम की।
जित मुँह उठै तितैही धावै, सुरति न छाया धाम की ॥
अस्तुति निन्दा करौ मल ही, मेड तजी कुल ग्राम की।
'नारायन' बौरी मई डोलै, रही न काहू काम की ॥[४]

मूरख छाडि बृथा अभिमान।
औसर बीत चल्यौ है तेरो दो दिन को महमान।
भूप अनेक भये पृथ्वी पर रूप तेज बलवान।
कान बचौ या काल-व्याल तें मिटि गये नाम निसान।
धवल धाम, धन, गज, रथ, नारी चन्द्र समान।
अत समय सबही को तजि कं जाय बसे समसान।
तजि सतसग भ्रमत बिपयन मे, जा विधि मरकट, स्वान।
छिन भरि बैठि न सुमिरन कीन्हो, जासो होय कल्यान।

१ कल्याण, सतवाणी विशेपाक, ४२३।
२ वही, पृ० ४२३।
३ कल्याण, सन्तवाणी विशेपाक, वर्ष २९, सख्या १, स० २०११, पृ० ४२३।
४. वही, पृ० ४२४।

रे मन मूढ अनत जनि भटकै, मेरो कह्यो अब मान।
नारायन ब्रजराज कुवर सों बेगहिं करि पहचान ॥[1]
मोहन बसि गयो मेरे मन मे।
लोक लाज कुल-कानि छूटि गई, याकी नेह-लगन मे।
जित देखू तितही वह दीखै घर बाहर आगन मे।
अग-अग प्रति रोम रोम मे, छाय रह्यो तन-मन मे।
कुडल झलक कपोलन सोहै, बाजूबन्द भुजन मे।
कक्न कलित ललित वनमाला, नूपुर धुनि चरनन मे।
चपल नैन, भृकुटी बर बाकी ठाढ़ो सघन लतन मे।
नारायन बिन मोल बिकी हो याकी नेक हसन मे ॥[2]
नयनो पैं रे, चित चोर बताओ।
तुमही रहत भगवान रखवारे, बाके बीर कहावो।
तुम्हरे बीच गया मन मेरौं, चाहे सोहैं खावै।
अब क्यो रोवत हो दइमोर कहूँ तो थाह लगावौ।
घर के भेदी बैठि द्वार पै, न्नि मे घर लुटवावौ।
'नारायन' मोहि वस्तु न चहिये, लेवनहार दिखावौ ॥[3]

भारतेन्दु युग रीतिकालीन परम्परा म पला हुआ युग था। तत्कालीन समस्त कवियो की वाणी मे लावनी का स्वर मुखरित हुआ था। तत्कालीन भक्ति साहित्य का बहुत अश लावनी मे ही छिपा है। लावनी तद्युगीन काव्य जगत् की एक छद विधा है। भक्त नारायण स्वामी भी लावनी मे भक्ति की भावभूमि को अभिसिंचित करते हैं।

रूप रसिक, मोहन, मनोज मन हरन, सकल-गुन गरबीले।
छैल-छबीले चपल लोचन चकोर चित चटकीले ॥टेक॥
रतन जटित सिर मुकुट लटक रहि सिमट स्याम लट घुघुरारी।
बाल बिहारी कन्हैया लाल चतुर, तेरी बलिहारी ॥
बाल बिहारी कन्हैया लाल चतुर, तेरी बलिहारी।
लोलक मोती कान कपोलन झलक बनी निरमल प्यारी ॥
ज्योति उज्यारी हमैं हर बार दरस दै गिरिधारी।
बिज्जुछटा-सी दत-छटा मुख देखि सरद ससि सरमीले ॥
छल छबीले, चपल लोचन चकार चित्त चटकीले।
गाव बाग बिलास चरित हरि सरद रैन रस रास करै।
मुनिजन मोहैं, कृष्ण कसादिक खल-दल नास करै ॥
गिरिधारी महाराज सदा श्रीब्रजवृन्दाबन बास कर।
हरि चरित्र को स्रवन सुन सुन करि अति अभिलाप करै ॥

---

१ वही, पृ० ४२४।
२ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, वर्ष २९ स० १ स० २०११, पृ० ४२४।
३ वही, पृ० ४२४।

हाथ जोरि करि करै बीनती 'नारायन' दिल दरदीले।
छैल छबीले, चपल लोचन चकोर चित चटकीले ॥[1]

कवि कृष्णभक्त है। कृष्ण उसके आराध्य देव हैं। वह उसी के सुख में निज सुख समझता है। निम्बार्क सम्प्रदाय की स्पष्ट छाप उसकी रचनाओं पर परिलक्षित होती है। निज सुख की कामना तो केवल आलवार भक्तों में पाई जाती है। कवि निज सुख तो श्री कृष्ण की मधुर छबि के अवलोकन में ही समझता है। वह श्रीकृष्ण के स्वरूप सौंदर्य का वर्णन करता है—

रति पति छबि निंदत बदन, नील जलज सम स्याम।
नव जौवन मृदु हास बर रूप रासि सुख धाम ॥
ऋतु अनुसार सुहावने अद्भुत पहरे चीर।
जो निज छबि सों हरत हैं, धीरजहू को धीर ॥

× × ×

मोर मुकुट की निरखि छबि लाजत मदन किरोर।
चंद्र बरन सुख सदन पै भावुक नैन चकोर ॥
जिन मोरन के पंख हरि राखत अपने सीस।
तिन के भागन को सखी कौन कर सके रीस ॥
घुघरारी अलकावली, मुख पै देत बहार।
रसिक मीन मन के लिये, कांटे अति अनियार ॥
मकराकृत कुण्डल श्रवण, भाई परत कपोल।
रूप सरोवर मांहि ह्वै, मछरी करत कलोल ॥[2]

× × ×

कवि ने चेतावनी और वैराग्य सम्बन्धी पदों की रचना भी की है—

बहुत गई थोरी रही, 'नारायन' अब चेत।
काल चिरैया चुग रही निस दिन आयु खेत ॥
नारायन सुख भोग में, तू लपट दिन रैन।
अंत समय आयो निकट देख खोल के नैन ॥
धन जौवन या जायगो जा विधि उडत कपूर।
नारायन गोपाल भजि, क्या चाहे जग धूर ॥
नारायन या काल ने, किए सकल भट चूर।
जमक सुंभ निसुंभ अरु त्रिपुर आदि लै सूर ॥
हिरन्याच्छ जग में विदित हिरनकसिपु बलवान।
नारायन छन में भये, यह सब राख मसान ॥[3]

संत-लक्षण के बारे में कवि लिखता है कि—

---

१ कल्याण, संतवाणी विशेषांक, वर्ष २९, सं० १, सं० २०११, पृ० ४२४।
२ कल्याण, संतवाणी विशेषांक, वर्ष २९, सं० १, सं० २०११, पृ० ४२५।
३ वही, पृ० ४२४।

तजि पर औगुन नीर को, छीर गुनन सों प्रीति ।
हस सत की सर्वदा, नारायन यह रीति ।
तनक मान मन म नही, सब सा राखत प्यार ।
नारायन ता सत पै, बार बार बलिहार ।
परहित प्रीति उदार चित बिगत दंभ मदरोष ।
नारायन दुख म लखै निज कर्मन को दोष ।।
भक्ति कल्पतरु पात गुन, कथा फूल बहुरग ।
नारायन हरि प्रेम फल, चाहत सत विहंग ।
सत जगत मे सो सुखी, मैं मेरो को त्याग ।
नारायन गोविन्द पद दृढ राखत अनुराग ।।[1]

× × ×

आज मैं हरि घर देउरी बधाई ।
शुभ लच्छिन सुदर सुत आयो, बडभागिन है जसुमति माई ।।
वृद्ध-बधू सब जुरि मिलि आई जथा जोग कुल रीति कराई ।
दान, मान बिप्रन की दीने मनि मुक्ता पट भूषणताई ।।
मृगनैनी कल कोकिल बैनी करि सिंगार बैठी अगाई ।
लै लै नाम नन्द जसुमति को गावत गारी परम सुहाई ।।
धुजा, पताक, तोरन मनि जाला द्वारन बन्दन वार बधाई ।
'नाराइन' ब्रज आनन्द छायो प्रगट भये जहाँ कुवर कन्हाई ।।[2]

आप का देहावसान फाल्गुन कृष्ण ११ वि० स० १६५७ गोवर्धन के समीप कुसुम सरोवर पर स्थित उद्धव मदिर मे हुआ ।

ब्रह्मशकर मिश्र 'महाराज साहेब'

जीवन रेखा

आपका जन्म काशी के शियरी मुहल्ला मे स० १६१७ वि० चैत्र बदी २, तदनुसार १८६१ ई० की २८ मार्च को हुआ था ।[3] इनके पिता का नाम प० रामयत्न मिश्र था । ये मिश्र ब्राह्मण थे । इनके पिता जी सस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थ ।

मिश्र जी बड़े मेधावी छात्र थे । ये कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० ए० परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए । इनका परिवार बहुत ही शिक्षित था । इनके अलावे इनके तीन भाई और थे । वे तीनो भी एम० ए० पास थे । इन्होने अपना जीवन प्रोफेसर से शुरू किया । कुछ दिनो तक आप इलाहाबाद जेनरल आफिस मे एकाउन्टेन्ट भी थे ।

---

१ कल्याण सतवाणी विशेषाक, वर्ष २६, स० १ स० २०११, पृ० ४२५ ।

२ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (सपादक) पोद्दार अभिनन्दन ग्रथ, ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा, स० २०१०, पृ० ५८१ ।

३ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत-परम्परा, भारती भण्डार, प्रयाग, प्रथम सस्करण, स० २००८ वि०, पृ० ६६८ ।

आप बचपन से ही साधु प्रकृति के थे। ये आध्यात्मिक साधना व सत्सग मे बराबर लीन रहा करते थे। हुजूर महाराज साहब से ये बड़े प्रभावित थे। हुजूर साहब के ग्रंथ 'सार वचन' की इनके जीवन पर स्पष्ट छाप पडी थी। हुजूर साहब के मरने पर ये गद्दी के उत्तराधिकारी बने और इलाहाबाद के क्षेत्र मे बराबर सत्सग कराते रहे।

इन्हें अग्रजी का अच्छा ज्ञान था। अंग्रेजी से 'डिस्कोर्सेज आन राधास्वामी फेथ' नामक एक अधूरी पुस्तक से आपकी भक्ति भावना एव विद्वत्ता का पता चलता है। इनके बारे म परशुराम चतुर्वेदी का कथन है[1] कि 'इसके अतगत सच्चे धम, आध्यात्मिक उन्नति, सृष्टि विकास व क्रमवाद के विषय म बडी गम्भीर व विस्तृत विवेचना की गई मिलती है और इसके अन्त मे परिशिष्ट के रूप मे राधा स्वामी सत्सग का सक्षिप्त परिचय तथा उसकी केन्द्रीय प्रबन्ध समिति के वैधानिक नियमो का सार भी दिया गया है।' इसके अत मे कुछ भक्ति परक रचनाएँ भी दी गई हैं।[2]

इनका देहान्त आश्विन शुक्ल ५ स० १९६४ वि० को काशी मे हुआ।

ब्रजवल्लभ देव

जीवन रेखा

य मथुरा के मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पूवज दरभगा जिले के सरस गाव से आकर यहीं बस गये थे। यहीं इनका जन्म ज्येष्ठ शुक्ल १०, स० १९२७ वि० को मथुरा मे हुआ।[3] बचपन मे ही आप मातृ एव पितृ प्यार से वचित हो गये। क्रूर काल ने बबरतापूवक आप पर यह वज्रपात निपातित किया। इसलिये आप केवल नवी कक्षा तक ही शिक्षा प्राप्त कर सके। आपकी बुद्धि बड़ी ही विलक्षण थी। अत आपने घर पर ही स्वाध्याय से हिंदी, सस्कृत और फारसी का अध्ययन किया।

आपको सगीत और चित्रकारी का शौक था, कविता बचपन से ही करते थे। सगीत और चित्र कारी दोनो के माध्यम से कृष्ण की बाल-लीलाओ का मधुर रस आपके स्फीत हृदय का उद्गार था। आचाय बल्लभ की स्पष्ट छाप आप पर बचपन से ही पड गई थी। सूरदास आपके प्रेरणा स्रोत थे। युग नियामक भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी श्रीधर पाठक से आपकी यहीं भेंट हुई थी।[4]

आपका हृदय पुष्टिमार्गीय भक्तिधारा से पालित एव पोषित हो बहुत ही सरल एव सौजन्य पूण था। आप सखा भाव के उपासक थे। अत आपका रसिक विनोदी होना अत्यन्त आवश्यक है। आपने श्रीमद्भागवद्गीता का पद्यानुवाद किया है। आपने राम रास, प्रेम प्रीति-माला, ज्ञानगीता, नखशिख और सुबल सखा आदि काव्य ग्रथो का प्रणयन किया। इनम भक्ति के सरस सुमनो को पुन चुनकर गूँथा गया है। वियोगी हरि ने 'प्रेम प्रीतिमाला' की प्रस्तावना म लिखा है—'ब्रजवल्लभ के अनन्य सखा श्रीवल्लभ जी ने यह 'प्रेमप्रीतिमाला' काव्यनिकुज के सरस सुमनो को चुन चुन कर गूँथी है। यह छोटी सी पुस्तिका कैसी मजुल है, कैसी कोमल है और कैसी हृदयहारिणी है—पन्ने से ही प्रकट

---

१ वही, पृ० ६६८।

२ परशुराम चतुर्वेदी उत्तरी भारत की सत-परम्परा, भारती भण्डार, प्रयाग, प्रथम सस्करण, सं० २००८, पृ० ६६८।

३ प्रभुदयाल मीतल (सपादक) ब्रजभारती, वर्ष ११ अक १, स० २०११, पृ० ४७।

४ वही, पृ० ४७।

होगा। स्मरण आता है कि ब्रजविहारी अवश्य इस माला को धारण करेंगे, ऐसी धारणा है। सहृदय वल्लभ जी ब्रज के धूल भरे हीरे हैं, सचमुच आप मनमौजी या मस्तराम है।[१]

कवि राधा के पदा की अगुरियो का वणन करते समय मर्यान्दा स्नात माधुय रस की वर्षा कही कर देता है। श्रृगार माधुय के मद से नतमस्तक हो जाता है—

साचे की ढरी है, कैधों कज पखुरी हैं, कैधा,
धरमधुरी हैं, कै कला हैं कलाधर की।
छोटी-छोटी सुभग सुढौल लाल लाल नीकी,
देवी दसो दिस की हैं, भेवी विश्व भर की।
कैधो ऋतुराज जू की ओट की कगूरी भह,
वल्लभ सुकैधो चित चोरिवे की परकी।
कैधा पद आगुरी हैं मानु तनया की वीर,
कैधो कज वेधी सर पाँव पच सर की॥[२]
जिन्हें शीश धारे सौं मनात मानिनी को मान,
लखत उगात मैन चूरन की पूरिया हैं।
विद्रुम लता सी खासी तत्र सुख रासी पूर,
प्रेम की पताका रति खोलिब की गुरिया हैं।
वल्लभ निहारे नख-चन्द्रिका बिछात भूमि,
आली चितचोर चित चोरिब की छुरिया हैं।
श्याम उर बासिनी निकुज की विलासिनी,
श्रीराधे ब्रज-वासिनी के पद की अगुरिया हैं।[३]

कवि दास्यभाव एव सखा का रसिक भक्त है। सन्देह अलकारो की छटा मे अगुरियो की छटा भक्त हृदय को मोह लेती हैं। वह बडी ही मस्ती से उनका दशन करते हुए अपनी सुधि बिसार देता है। आपका देहान्त स० १९९२ वि० की अषाढ़ पूर्णिमा को हुआ।[४]

सियालालशरण 'प्रेमलता'

जीवन रेखा

आपका जन्म सं० १९२८ वि० मे हुआ था।[५] आपके पिता का नाम मौजीराम था। आप चैतन्य सम्प्रदायी भक्त थे। आपकी भक्ति भावना पर महाप्रभु चैतन्य की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती है। आप रसिक भक्ति-पद्धति के मर्मवेत्ता थे। आप द्वारा रचित ३३ ग्रथो का पता चलता है।[६] आपकी कविता के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

---

१ प्रभुदयाल मीतल (सपादक) ब्रजभारती, वर्ष ११ अं० १, स० २०११, पृ० ४८।
२ वही, पृ० ४८।
३ प्रभुदयाल मीतल (सपादक) ब्रजभारती, वर्ष ११ स० १, स० २०११, पृ० ४८।
४ वही, पृ० ४८।
५ डा० भगवतीप्रसाद सिंह रामकाव्य मे रसिक सम्प्रदाय, पृ०४६८।
६ वही, पृ० ४६९।

मानुस सरीर मिल्यौ केवल भगति हित,
ताहि बिसराय धावै भोगन की ओर है।
गर्भ मे करार कियो पायो अति दुख जहा,
बार-बार प्रभु-सनमुख कर जोर है।
रावरी सपथ नाथ! रटिहौ सुनाम तव,
नासिये कृपालु बेगि यहै नक घोर है।
'प्रेमलता' भूलि के करार रह्यो छिपि हत,
रटत न नाम सियाराम सोई चोर है॥
नाम को स्वाद लियो न सुजोम त काहैं को साधु भये तजि गेहा।
जाति जमाति बिहाय भली विधि नाम-सनेही सा कीन्ह न नेहा॥
काहे को स्वाग बनायो फकीर को भावै जो मौज अमीर की येहा।
'प्रेमलता' सियराम रटे बिनु भोग विरक्त कौं स्वान की खेहा॥[1]

कवि नाम की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहता है कि नाम रूपी नाव पर चढकर ही बिना श्रम के भवसागर को पार किया जा सकता है। यथा—

नाम-नाव पर चढहि जे इहि विधि जन कलिकाल।
सोइ बिनु श्रम तरि घोर भव, पैहहि श्रीसिय लाल॥
राम नाम सजीवनी, श्रीसिय नाम गिरीस।
'प्रेमलता' हनुमान रट ज्यायो जीव अहीस॥
रटहि नाम जो जीव जग, जीह पुकारि पुकारि।
विचरहि महि मन मोद भरि, आसा पास निवारि॥
रटु मुख सीताराम नित तजि सुख नाना सग।
प्रेमलता अनुपम, अमल चढहि सुरग अभग॥[2]

आपके बारे मे सियारघुनाथशरण के स्नेहलता लिखा है कि आप रामवल्लभाशरण के शिष्य थे। अहर्निश आप सियाराम सियाराम ही रटा करते थे। भोगविलास एव सासारिक ऐश्वर्य से कोसो दूर रहा करते हैं। सियाराम की रसिक लीला मे ही मस्त रहा करते थे। यथा—

मगि मधुकरी खाहि अजब मस्तान सुपाला।
बिचरि अवनि प्रभु मर्जाहि सबन ते ढग निराला॥
कछु दिन मिथिला कछुक अवध कछु दिन रहि काशी।
नाम रटन बल कलि मह सियवर भक्ति प्रकाशी॥
लहि रामवल्लभा शरण गुरु शरण भये तारण तरण।
सियालाल शरण जी सतवर नाम प्रचारक दुखहरण॥
गल गुदरी अलका सुभग शिर टोप बिराजै।
झोरि कमडल खप्पर धरे फकीरी साजै॥

---

१ कल्याण, सतवाणी विशेपाक, वर्ष २६, स० १, स० २०११, पृ० ५०६

२ कल्याण, सतवाणी विशेपाक, वर्ष २६, स० १, स० २०११, (जनवरी, १६५५), पृ० ५०६।

कण्ठी युग लर कण्ठ भाल लस तिलक रसाला।
विन्दु और चन्द्रिका सहित सोहत श्रीलाला॥
श्रीवैष्णव रसिक विरागि वर नाम प्रेम छकि रहैं।
जय सियाराम जय जय सियाराम नाम अहर्निश कहैं॥[1]

आपकी कविता मे भक्ति भावो की भागीरथी का कल कल निनाद हृदय को द्रवीभूत कर देता है।

आपका का देहान्त श्रावण अमावस्या स० १९९७ को हुआ।

रामरतन सनाढ्य 'रतनेश'

जीवन रेखा

आप कानपुर के रहने वाले थे। वही रसिक समाज के मत्री थे। आप बडे ही मनमौजी थे। प्रतापनारायण मिश्र के सहयोग से आपने कविता करना सीखा। हिन्दी तथा सस्कृत का अच्छा ज्ञान इन्हें था। ये ब्रजभाषा के अच्छे कवि हैं। इन्होंने कई एक ग्रन्थों की रचना की। शृ गार धारा का आपकी कविताओ म सुन्दर परिपाक हुआ है। रसिक भाव की भक्ति आपकी कविताओ का मूल उद्देश्य है। आपकी एक पुस्तक 'रतनेश' शतक शोधकर्ता को प्राप्त हुई। उसके प्राक्कथन म आपने लिखा है कि 'मेरा तो दृढ विश्वास है कि प्रेम ही ईश्वर है प्रेम ही जीवन है और प्रेम ही परमपिता के सन्निकट पहुँच सकने का एकमात्र साधन है।[2] प्रस्तुत पुस्तक म कवि राधामाधव की भक्तिरसपूर्ण प्रेममयी ललित लीलाओ का मधुर वर्णन करता है। उसके लिये ईश्वर और प्रेम म कोई भिन्नता नही। वह रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण का अनन्य उपासक है। कवि भगवान् श्रीकृष्ण से साझ सकारे निकुजो मे मिलने की प्रार्थना करता है—

जैसी प्रीति रावरे की मोसो लगी प्यारे श्याम,
ताते अति अधिक हमारे रही छाय छाय।
ब्रज के चवाई लोग चारिहु दिशाते देखो,
चौचद मयावन को रहे मुख बाय बाय॥
रतनेश साँझ और सकारे माहिं कुजन के,
मिलिबो भलो है आछे औसर का पाय पाय।
बिनती हमारी चैती मानिये बिहारी हहा,
आछो नाहिं आइबो तिहारो इतै हाय हाय॥[3]

कवि कृष्ण की बाल लीला का मधुर अंकन कर सूर के साथ जा बठता है—

भवन अधेरे म धरे जो दधि दूध तहा,
मणि भूषनन को करत उजियारो है।
छींके धरो जान विधि ठानत सुजान आन,
पीढा पै उलूखल धरत मैं निहारो है॥
सखाहि चनाय तापै सखा पै चढत आप,
सखा को समूह देत चहुँधा सहारो है।

---

१ कल्याण, भक्तचरिताक विशेषाक, वर्ष २६, जनवरी, १९५२, पृ० ७२३।
२ रामरतन सनाढ्य रतनेश रतनेश शतक, नेशनल प्रेस, कानपुर, पृ० ५०।
३ वही, पृ० ५१।

भाजन उतार झटपट नटखट भाजै,
माह कान्ह तेरो बडो हिक्मत वारो है ॥[१]

और भी,

मानस महेश मानसर के मराल मंजु,
जा हित करत ध्यान योगी बरजोरी के।
प्राकृत मनुष्य तिन्ह रचक न पावं देखि
पुण्य पुंज रहित अभक्त मति थोरी के।
रतनेश' शेष औ महेश गिरा गीरवान,
गाय गाय हारि गये गुनन करोरी के।
साइ नन्द नन्दन समस्त जग बन्दन ह्वै,
बन्दन पन्नारबिन्द कीरति किशोरी कै ॥[२]

कवि कृष्ण नाम की महत्ता देते हुए कहता है कि—

जाकी मधुराई देखि सिता सिकता सी भई
ऊख सूख सूख भई निपट निकास है।
दाख भयो राख कद मद तर परि गयो,
बाम को अधर सो तो कुम्भीपाक धाम है।
'रतनेश' बसुधा के बीच सुधा मुधा भयो,
स्वाद नहिं दूजो देखि परत ललाम है।
आगम निगम जाकी महिमा न जानि सक,
मधुर महान ऐसो एक कृष्ण नाम है ॥[३]

इस प्रकार रतनेश जी कृष्ण के अनन्य उपासक हैं। उनकी भक्ति भावना मे कृष्ण बाल-लीला की प्रमुखता है। उसके लिये कृष्ण अगम निगम है। उसकी महत्ता वर्णनातीत है। आप भारतेंदुयुगीन कृष्ण काव्य के रंगमच पर बालसखा भाव की उपासना का मधुर स्थान प्रतिष्ठित करते हैं।

वामनाचार्य गिरि

जीवन रेखा

आप भारतेंदुकालीन पुरानी परिपाटी के कवि थे। जन्मस्थान आपका मिर्जापुर है। आप बड़े ही प्रतिभाशाली थे। ब्रजभाषा म आपकी सुन्दर पैठ थी। कविवर प्रेमघन जी से आपका सम्बन्ध बडा ही अच्छा था। आप मे आशुकवित्व शक्ति वर्त्तमान थी। तत्कालीन प्रमुख पत्रो मे आपकी रचनाएँ मुखपृष्ठ पर ही छपा करती थी। आप बडे ही रसिक व्यक्ति थे। आपकी प्रकृति हसोड थी। कवि प्रेमघन भी हसमुख थे। वे सभी को हसाया करते थे। सभी लोग चाहते थे कि उन्हे भी बनाया जाय। वामनाचार्य गिरि को एक दिन मौका मिल गया। वे कब चूकने वाले थे। प्रेमघन सर्वस्व की भूमिका मे लिखा है कि एक दिन वे चौधरी साहब के ऊपर एक कवित्त जोडते चले जा रहे थे। अन्तिम चरण

१ रामरतन सनाढ्य रतनेश रतनेश शतक, पृ० २।
२ वही, पृ० २।
३ रामरतन सनाढ्य रतनेश रतनेश शतक, पृ० २।

रह गया था कि चौधरी साहब अपने बरामदे म कधा पर बाल छिटकाये खम्भे के सहारे खड़े दिखायी पड़े। झट कवित्त पूरा हो गया और वामन जी ने नीचे से वह कवित्त ललकारा जिसका अन्तिम चरण था 'खम्भा टेकि खड़ा जैसे नारि मुगलाने की।' प्रेमघन जो सबको बनाते थे, अत उन्हें और लोग भी बनाने की चेष्टा करते थे।'[1]

उनकी कविताओ म भक्ति की स्रोतस्विनी प्रवाहित है। कवि या तो बहुदेवोपासक है, लेकिन दुर्गा ही आराध्या हैं। दुर्गा की उपासना मे ऐश्वर्यभाव का भक्ति स्पष्टत उनकी कविताओ मे लक्षित होती है। दुर्गा ही सब देवो के ऊपर हैं। यही तीना लोक का आधार है। अत कवि उनके चरणो की वन्दना करता है। यथा—

मगल करनि दुख दरनि वरनि तोहि,
तरनि वरनि तेज सगुन समानी जू।
वेद ब्रह्म वरने अभेद त्योहूँ चकृत ह्वै,
चक्रपानि सरनि सरनि सुखदानी जू॥
भनत विचित्र तल वितल रसातल लौं,
उद्धव उमण्ड धाय भ्रमत भूलानी जू।
तेरो महा महिमा अखड अम्ब आठो जाम,
जै जै जगदम्ब प्रणमामि रुद्ररानी जू॥[2]

और भी

तू ही निराधार को आधार तिन्हू लोकन को,
सोकन की समुद्र सुखावन समानी जू।
तू हीं तीन रूप तीन काल तीन देव तू ही,
तू ही चर अचर सुपालनि प्रमानी जू॥
भनत विचित्र तू ही वेद भेदवारी माँ तू
तू ही परचण्ड मारतण्ड ही मथानी जू।
तू ही खल दल दैत्य दानव दहन अम्ब,
जै जै जगदम्ब प्रणमामि रुद्रदानी जू॥[3]

गिरि जी प्रसिद्ध देवी उपासक हैं। कवि जगदम्बा को ही एकमात्र अवलम्ब मानता है। अत वह उसके शरण की अपेक्षा रखता है—

तू ही जक्त करनि भरनि भौन आनद सो
तू ही पुनि ठीक प्रलयकाल ठहरानी जू।
तू ही महाविद्या महासक्ती महामोक्ष वारी,
तू ही महादेवी छिति गगन समानी जू॥

---

१ प्रभाकेश्वर उपाध्याय (सपादक) प्रेमघन सर्वस्व, भूमिका, पृ० ७।

२ पचम सिंह (सपादक) हरिश्चन्द्र कौमुदी, भाग १, स० १ फाल्गुन स० १९५०, पृ० २०।

३ वही, पृ० २०।

भनत बिचित्र ब्रह्मडे तू ही तीन लोक,
तू ही चक्रपानि चित्त चचल करानी जू।
तू ही क्षी आधार अवलम्ब अज तेरो अम्ब,
जै जै जगदम्ब प्रणमामि रुद्रानी जू ॥[1]

कवि भगवती जगन्म्बा को देवताओ के मध्य महरूप, प्रभापुज, दिव्य द्युति महाप्रलय और नारायण आदि अवतार मानता है। अत बार बार भगवती के चरणो की वन्दना करता है —

तू ही महारूप देवतान की समाज मध्य,
कोटि मारतण्ड पर नख की प्रभानी जू।
तू ही प्रगटात परचण्ड परभा की पुज तू ही,
तू ही दिव्य द्युति की धरैया ठहरानी जू।
भनत बिचित्र तू ही महा प्रलय काल समय,
महा बिकराल रूप धारन भवानी जू।
तू ही नारायन अनादि एक आठो जाम,
ज जै जगदम्ब प्रणमामि रुद्रानी जू ॥[2]

कवि भवानी का दास है। वह उसके ऐश्वय का वणन करते हुए अघाता नही। वह शक्ति स्वरूपा हैं, दैत्यो का दलन करनेवाली हैं। और दासो का दु ख दारिद्य निवारण करनेवाली है—

तू ही चण्ड मुण्ड को विमुण्ड कियो,
सना हीन तू ही शम्भु दलनि निसुम मद्रिमानी जू।
तू ही रक्त बीज रन खडनि करनि,
तू ही लेकर प्रचड खग खप्पर प्रभानी जू ॥
भनत बिचित्र तू ही प्रबल प्रचण्ड चण्ड,
मजनी मधुकैटम अखण्ड खण्ड आनी जू।
तू ही सन्त दासन को आपदा बिशारे मातु,
जै जै जगदम्ब प्रणमामि रुद्रानो जू ॥[3]

भगवती जगदम्बा भूमिभार के निवारण हेतु अवतार लेती हैं। वह एकमात्र ससार का पालन करनेवाली, विद्याओ का विधान और अभूतपूव महिमाशालिनी हैं। उनकी महिमा वणनातीत है। फल स्वरूप सेस आदि मुनिगन भी उनके ऐश्वय का वणन करने मे अपने को असमर्थ पाते हैं—

तू ही अवतार तूही हरनि सुभूमिभार
तू ही निराधार ससार सर सानी जी।
तू ही खटचक्र दस विद्या की विधान तूही
तू ही तिहूँ लोकन की पालन करानी जू।
भनत बिचित्र तेरे महिमा मुलाने सबै
पावत न पार सेस मुनिगन ज्ञानी जू।

---

१ पचम सिह (सपादक) हरिश्चन्द्र कौमुदी, भाग १, स० १, फाल्गुन, स० १९५०, पृ० २०।
२ वही, पृ० २१।
३ पचम सिह (सपादक) हरिश्चन्द्र कौमुदी, भाग १, स० १, फाल्गुन, स० १९५०, पृ० २१।

तू ही महाकाली कर कठिन कृपान वाली
जै जै जगदम्ब प्रणमामि रुद्ररानी जू ॥[1]

छेदालाल

जीवन रेखा

आपके जन्म एव वश के बारे म अभी तक कोई ठास प्रमाण नही उपलब्ध हो सका है। हाँ, प्रयाग के लोकनाथ मुहल्ले म आपकी दूध और मलाई की दूकान थी। इससे स्पष्ट होता है कि आप प्रयाग के ही रहने वाले थे या वही किसी निकटस्थ गाव के वासी रह होंगे। आप जाति के अहीर थे। भट्ट जी के आप परम भक्त थे। उन्ही की प्रेरणा से आप लिखने लगे। भट्ट जी के यहाँ बराबर उठते बैठते थे। आप भारतेन्दु युग के एक अच्छे भक्त कवि थे। शोधकर्ता को इनकी हिन्दी प्रदीप की सचिकाओ मे निम्नोक्त कविताएँ उपलब्ध हुई हैं—

(१) ईश्वर से विनय
(२) कवित्त

इन दोनो कविताओ म कवि देश के प्रति जागरूक है। उसका हृदय देशभक्ति की भावनाओ से लबालब भरा है। देश के प्रति जब ईश्वर स विनय करता है तो उसके स्वच्छ हृदय से भक्ति की स्फीत धारा प्रवाहित हो जाती हैं। दैन्यभाव उससे झलक मारने लगता है। कवि म दीनता का स्वर मुखर है। उदाहरण अपेक्षित है—

ईश्वर से विनय

सह रहा बज्र आघात हुआ भारत है।
जगदाश तुम्हारी शरन दीन भारत है। टेक।
हे विश्वम्भर तुम्ही विश्व उपजाया,
फिर क्या तुमने भारत से नेह घटाया।
अति मोह जाल म फसा खूब भटकाया,
दु ख नही किसी ने इसका तनक बटाया।
यह प्लेग दुष्ट नित लाखन नर मारत है,
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है।
जिस समय दुष्ट यह प्लेग जहा जाता है,
फिर वहा प्रेम जड सहित नाश पाता है।
सब तजे परस्पर मेल घटै नाता हैं,
नही कोई किसी के पास तहाँ आता है।
ये मिल जन्म के पल म मन फारत है,
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है।[2]
य नई विपत्ति पै विपत्ति हाय क्यो डारी,
सब अन्न भेजि परदेश सुखी ब्योपारी।

---

१ वही, पृ० २१।
२ हिन्दी प्रदीप, मार्च १९०८, ई०, पृ० १३ १४।

दिन दिन यह पापी घोर रूप धारत है,
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है।[१]
बिनु अन्न पेड की छाल पीस खाते हैं,
दिन रात परिश्रम करे न सुख पाते हैं।
बिन अन्न करि हाय! प्राण जाते हैं,
नहिं तौभी इधर धनवान ध्यान लाते हैं।
नहिं कोई बचावे घोर पीर टारत है।
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है।[२]
सब साग अलौना खाय उदर भरते हैं
इस घोर शीत मे वस्त्रहीन फिरते हैं।
निशि ताप ताप सताप सहा करते हैं
सब तलफ तलफ के मौत हाय मरते हैं।
यह देखि दीन दुदशा हियो हारत है
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है।[३]
सब युवा बाल औ वृद्ध दीन गोहरावें,
नित कोटि सकट सहैं चैन नहिं पावें।
नहिं बिष भी सस्ता मिलै खाय सो जावें,
इस शीत सुधा से कैसे बचावें।
यह हाय दुष्ट दुर्मिक्ष प्रलय डारत है।
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है।[४]
प्रभु सदा आप हो धेनु विप्र रखवारे,
तुम दीन बधु दुखहीन जनो के टारे।
किस घोर पाप से तुमने हाय! बिसारे,
यह कालव्याल बन दुःख म बिष भारत है,
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है।[५]
प्रभु आप जगत पति क्षमा पाप सब कीजै,
अब डूबत हैं मझधार बाह गहि लीजे।
दुःख बहुत दिनो से सहा अभय कर दीजै।
यह सबमे प्यारा देश तुम्हारा है।
छेदा लाल प्रभु तुम पर सब वारत है,
जगदीश तुम्हारी शरन दीन भारत है।[६]

---

१ वही, पृ० १३ १४।
२ वही, पृ० १३-१४।
३ वही, पृ० १३ १४।]
४ हिन्दी प्रदीप मार्च १९०८ ई०, पृ० १३ १५।
५ वही, पृ० १३ १५।
६, वही, पृ० १३ १५।

कवि भगवान् का अनन्य उपासक है वह भगवान् से अपने अनाथ पन को दूर कर सनाथ बन जाने के लिये प्रार्थना करता है। भगवान् के सिवा उसकी जीवन नौका को पार करने वाला अन्य कोई नहीं है—

शरन हैं, तुम्हारी सुधि भूले, क्यों हमारी दु ख
रैनि रदन भारी टुक ध्यान इत लगाइये।
आप ही बचैया कोई पास ना खिवैया यह,
डूबत है नैया प्रभु पार तो लगाइये।
कहै तुच्छ दास प्रभु दीनन को हरो त्रास,
सुमति को विकास करि कुमति को नमाइये।
बार बार नाथ नाथ टेरत है अनाथ दीन,
करके सनाथ प्रभु हाथ तो गहाइये ॥[1]

छेदालाल जी का दैन्य प्रबल है। उनकी भक्तिभावना मे देशभक्ति का स्वर प्रमुख है। उसकी भक्ति-सुधा सलिला मे अवगाहन कर पाठक मत्र मुग्ध हो जाता है। शुद्ध भक्ति की कविताएँ इन्होंने कम लिखी है।

भक्तरत्न हरिदास

जीवन रेखा

आपका जन्म अमृतसर के एक क्षत्रिय वश मे हुआ था। आपके पिता का नाम श्रीगुलाब सिंह था और माता का नाम रामकुमारी था। आप रामानुज के मत को मानने वाले त्यागी पुरुष थे। आप बहुत ही निर्भीक थे। आपका व्यक्तित्व बडा ही गम्भीर था। आप राजा रणजीत सिंह के बहुत कहने पर भी उनके दरबार मे नही गये।[2] आप रामोपासक भक्त थे। आपके द्वारा रचित निम्नांकित ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थो मे भक्ति की भावगगा का प्रवल प्रवाह बहुत ही मनोरम दीख पडता है—

(१) राम रहस्य (२) सार सगीत (३) नानकचन्द्र चन्द्रिका (४) दाशरथी दोहावली (५) कौशलेश कवितावली (६) रामललाम (७) ब्रजयात्रा (८) रासपचाध्यायी (९) पदरत्नावली (१०) कवित्तकादम्बिनी, (११) नानक नवक (१२) एकादश स्कन्ध भागवत, (१३) महिम्न।

आप पजाबी होते हुए भी सस्कृत और हिन्दी अच्छी तरह जानते थे। आपके अधिकतर ग्रन्थ हिन्दी मे हैं। सस्कृत मे भी आपके ग्रन्थ हैं। अधिकाश ग्रन्थो में भक्ति का पावन, निर्मल प्रवाह ही है। दोहा और चौपाई लिखने मे आपको गोस्वामी तुलसी की भाँति कमाल ही हासिल था। आप विशिष्टाद्वैत मत के मानने वाले थे। ये भारतेन्दु जी के समकालीन थे।

---

१ हिन्दी प्रदीप, मार्च १९०८ ई०, जिल्द ३०, स० ३, पृ० १३ १५।

२ श्रीभक्त रत्न हरिदास जू पावन अमृत सर कियो।
क्षत्रिय वश गुलाबसिंह सुत मत रामानुज ॥
रामकुमारी-गर्भ रत्न त्यागी-मण्डल ध्वज।
सुवसु वेद बसु चद आठ कतिक प्रगटाये।
श्री हरि-महिमा ग्रथ ललित बत्तीस बनाए।
रणजीत सिंह नृप बहु कह्यो तदपि नाहिं दरसन दियो।
श्रीभक्त रत्न हरिदास जू पावन अमृतसर कियो ॥
भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, (उत्तरार्द्ध भक्तमाल), पृ० २६६

हरिदास जी राम के अनन्य उपासक थे। राम और जानकी के युगल चरणों की उपासना वे बराबर आत्मविभोर होकर किया करते थे। भक्तिकालीन परम्पराओं का उनकी कविता में पूर्ण निर्वाह पाया जाता है। कवि राम की महानता एवं ऐश्वर्य का वर्णन दिल खोलकर करता है—

गीध को उधारिकै कबध भेद मारि कै,
सुधारि सबरीहूँ सबरीतन सो दीनी हैं।
फल पाइ दे कै ताको फल पाइपुनि,
पपासर पाइ अति कथा पाइ लीन्ही है।
रीप्यमूक जाइ सुत वायसो बनाई दाइ,
रघुराई कपिराइ प्रीति रीति कीन्ही है।
बाली बध लायक परपि सिय नायक,
हरिन के नायक ने किन्ही प्रीति पानी है॥[1]

और भी—

सिया सु संदेश सुनि सु मुनि सुदेस देपि,
दुप सुप दोऊ दसा दिपी दाम रचि उर।
तव सियपति, सापा मृगपति साजि सेन,
सरे सन्‌ साम्हे जो सासक असुर सुर॥
अटक पटकि कपि कटक अटन करि,
तटनीस तट ट्टु सुमट सुघट घुर।
सुनि सु विभीषन वि भीषन सुभ्रात तजि।
लीन्हीं अरि भीषन सरनि हरनि जुर।[2]

आप भक्ति के क्षेत्र में प्राचीन परम्परा तथा आस्था के प्रबल समर्थक थे। इन्होंने अपनी भावनाओं में प्राचीनता का पोषण किया। आप सूर तुलसी भाँति साकार भगवान् के ही उपासक थे। उनके राम अयोध्याधिपति श्री दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र ही हैं। लखनलाल उनके अनुज हैं। कवि वन प्रसंग की घटनाओं में सीताहरण का उद्घाटन बड़े ही कौशलपूर्ण ढंग से करता है—

सुनि सिय सुमति सुमित्रा सुव सुवचन गहे,
कहे कुवच कुलिस ते कठोर अति।
सुनत सु लखन के प्रान कल कान भये,
कानन को मूंदि गये कानन को दैव गति॥
सौंपि बन देवन को सीता सती सेवन को,
करि परि देवन को परम विकल मति।
अवसर पाइ लकराइ इत आइ, धाइ,
ले गयो चुराइ सिय को बनाई वेप जति॥[3]

इस प्रकार कवि भारतेन्दुयुगीन रामभक्त कवि है। रामकथा काव्य के रंगमंच पर कवि तुलसी की विनयपत्रिका का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। उसकी भक्तिभावना में शुद्ध भक्ति की अन्तःसलिला प्रवाहित होती है।

---

१ हरिश्चन्द्रचंद्रिका, सं० १०, सं० १ सन् १८७४, पृ० ३७।

२ हरिश्चन्द्रचन्द्रिका, सं० १०, सं० १, सन् १८७४, पृ० ३८।

३ वही, पृ० ३९।

ललितकिशोरी

जीवन रेखा

कुन्दल लाल कबीस अग्र-कुल-दीप लखनवी।
ललितकिसोरी नाम धरयो हरि प्रेम अनुमवी ॥
ललित निकुज बनाय आप वृंदावन छाये।
रस-कलिका तहँ रची ललित लीलापद गाये ॥
रचना अति रसमरी मरी हरि रग रगीली।
दिल दीवानी, ग्न दिली कै चित्त चुमीली ॥
नव अनुभव की सार बसी ऊर गास गमीली।
स्याम रूप रुचि अमल नसीली नेह-फमीली ॥[1]

आपका असली नाम कुन्दनलाल था। इनके पिता का नाम साह गोविन्दलाल था। आप अग्रवाल वश को सुशोमित करने वाले थे। आपका जन्मस्थान लखनऊ है, लेकिन जन्म तिथि अनात है। आपने इस असार ससार को कार्तिक शुक्ल २ स० १६३० वि० को छोड दिया। आप राधागोविन्द के शिष्य थे। आप राधा रमणीय भक्त थे। तत्कालीन मक्तो में प्रचलित सखी सम्प्रदाय के मानने वाले थे। इस सम्प्रदाय मे अपने को भगवान की आनाकारिणी सखी मानकर और भगवान् श्रीकृष्ण को अपना प्रियतम सखा समझकर उपासना की जाती। इस सम्प्रदाय का विश्वास है कि सखीभाव से उपासना किये बिना किसी को निकुंज सेवा का अधिकार प्राप्त नही होता। आप इससे एक डग और बढ़ जाते हैं। आपकी यह उपासना उच्चकोटि की है। आपने अपने को सखी रूप म सौंप ही नही दिया बल्कि सखी का नाम भी धारण कर लिया। आपका रचना काल स० १६१५ वि० है। आपने 'रस विलास' अष्टयाम और समय प्रबन्ध सम्बन्धी बडे ही मधुर और प्रेम पूर्ण पद रचे हैं।

आप भारतेन्दु युगीन भक्त कवि हैं।[2] आपकी कविताएँ भक्ति भावनाओ से ओतप्रोत है। आपकी वाणी म ससार की निस्मारता विद्यमान है। ससार के समस्त वैभव को आपने तुच्छ समझा है।[3] एक प्रभु ही सर्वोपरि है। आपने नाम कीर्तन की महत्ता सिद्ध की है। आपकी कुछ कविताएँ अवलोकनाथ उद्धृत हैं—

---

१ वियोगी हरि कवि-कीर्तन, पृ० ६०।

२ भारतेन्दु जी ने आपके बारे मे लिखा है—
प्रथम लखनऊ बस श्रीवन सौं नेह बढायौ।
तह श्रीजुगल-सुरूप चापि मन्दिर बनवायौ ॥
द्वापर को सुखरास रास कलियुग मे कीनौं।
सोई भजन-आनन्द भाव-सहचरि रग मीना ॥
लाखन पद ललितकिसोरि का नाम प्रगट बिरचि नये।
कुल अग्रवाल पावन करन कुन्दन लाल प्रगट भये ॥
ब्रजमाधुरीसार, पृ० २६७।

३ छाडि बादसाही वैभव लछिमनपुर त्यागौ।
श्रीवृन्दावन वास दृढ व्रत अति अनुराग्यौ ॥
ललित निकुज बनाय राधिका रमन बिराजे।
रास विलास प्रकास लच्छ पद रचना भ्राजे ॥
नवभक्तमाल, पृ० १०२।

कमल मुख खोलौ आजु पियारे ।
बिकसित कमल, कुमोदिनी मुकलित, अलिगन नत गुंजारे ।।
प्राणी निसि रविचार-आरती लिय ठनी निव दारे ।।
ललितकिसोरी सुनि यह बानी कुरकुट विसर पुकारे ।
रजनीराज बिना मार्ग बलि निरखौ पलक उघारे ।।[1]

× × ×

मै तेरे सग मुरली श्याम बजाऊँ ।
ऐसेई पिय सब छेदनि पै, अगुरी चपल चलाऊँ ।।
पचम रिषभ निषाद सुरनि लौं, सग सग टोप लगाऊँ ।
ललितकिसोरी ईमन काफी सोरठ गाय सुनाऊँ ।।[2]

मोहन, क्यो वैराग लियो ।
नासा मूँदि हास माला लै नीको ध्यान कियौ ।
भली करी मिच्छा जोगी बनि भलो प्रसाद दियौ ।
'ललितकिसोरी' कौन काज यह कथा कपट मियो ।।[3]

ललितकिशोरी जी का नवधा भक्ति म पूर्ण विश्वास था । अत भजन के बारे म उनका विचार दर्शनीय है—

मन पछितैहो भजन बिन कीने ।
धन दौलत कछु काम न आवै, कमल नयन गुन चित्त बिनु दीन ।
देखत को यह जगत सजाती, तात मात अपने सुख भीन ।
ललितकिशोरी दुख मिटै ना आनन्दकन्द बिना हरि चीन ।।[4]

कवि की भक्तिभावना म भक्तिकालीन उपदेशात्मकता का पूर्ण निर्वाह पाया जाता है । उसे पूर्णविश्वास है कि इस स्वर्णवत शरीर के पान से कुछ भी फायदा नही है । एकमात्र दुखमोचन का नाम ही आधार है—

मुसाफिर रैन रही थोरी ।
जागु जागु सुख नीद त्यागि दै, होत वस्तु की चोरी ।।
मजिल दूरि, भूरि भव सागर मान कूर मति मोरी ।
ललितकिशोरी हाकिम सा डरु, करै जोर बर जोरी ।।[5]

और भी—

लाभ कहा कचन तन पाय ।
भजे न मृदुल कमल दल लोचन, दुख मोचन हरि हरखि न ध्याय ।।

१ ब्रजमाधुरीसार, पृ० २६६-२७५ ।
२ वही, पृ० २६६-७५ ।
३ वियोगी हरि (सपादक) ब्रजमाधुरी सार, २६६ ७५ ।
४ कल्याण सतवाणी विशेषाक पृ० ४३७ ।
५ वही, पृ० ४३७ ।

तन मन धन अरपन न कीन्ह, प्रान प्रानपति गुननि न गाये।
जोबन धन कलधौत धाम सब, मिथ्या आप गवाय गँवाये ॥
गुरजन गर्व विमुख रगराते, डोलत सुख सपनि बिसराये।
ललितकिशोरी मिटै ताप ना, बिन दृढ़ चिन्तामनि उर लाये ॥[1]

कवि भक्तमण्डली में फैली कुरीतियों की ओर भी संकेत करता है—

साधो ऐसेइ आयु सिरानी।
लगत न लाज लजावत संतन, करतहिं दम्भ विहानी ॥
माला हाथ ललित तुलसी गर, अग अंग भगवत छाप सुहानी।
बाहिर परम विराग भजन रत, अतस मति पर-जुवति नसानी ॥
मुख सो ग्यान ध्यान बरनत बहु, कानन रति नित विषय-कहानी।
'ललितकिसोरी' कृपा करो हरि, हरि सताप सुहृद सुखदानी ॥

कवि ससार के समस्त प्रपचों से ऊबकर एक मात्र आनन्दघन से प्रीति लगाने की स्पष्ट घोषणा करता है—

दुनियाँ के परपचो मे हम, मजा कछू नहिं पाया जी।
भाई-बधु पिता-माता, पति सब सो चित अकुलाया जी ॥
छोड छाड घर, गाँव नाँव, कुल, यही पथ मन भाया जी।
'ललितकिसोरी' आनदघन सो, अब हठि नेह लगाया जी ॥
क्या करना है सतति-सपति, मिथ्या सब जग माया है।
शाल-दुशाले, हीरा मोती में मन क्या भरमाया है ॥
माता पिता, पती बधू सब गोरखधध बनाया है।
ललितकिसोरी आनन्द घन हरि हिरदै कमल बसाया है ॥
बन बन फिरना बिहतर हमको रतन भवन नहिं भावै है।
लता तरे पड रहने मे सुख नाहिन सेज सुहावै है ॥
सोना कर धरि सीस भला अति तकिया ख्याल न आवै है।
ललितकिसोरी नाम हरी का जपि-जपि मन सचु पावै है ॥
तजि दीनी जब दुनियाँ दौलत फिर कोइ के घर जाना क्या।
कद-मूल फल पाय रहै अब खट्टा मीठा खाना क्या ॥
छिन मे साही बकसं हमको मोती-माल-खजाना क्या।
ललितकिसोरी रूप हमारा जानै ना तहँ आना क्या ॥
अष्टसिद्धि नवनिद्धि हमारी मुट्ठी मे हरदम रहती।
नही जवाहिर, सोना चाँदी, त्रिभुवन की सपति चहती ॥
भावै ना दुनियाँ की बातें दिलबर की चरचा सहती।
ललितकिसोरी पार लगावै माया की सरिता बहती ॥
गोर-स्याम बदनार बिंद पर जिसको बीर मचलते देखा।
नैन-बान, मुसक्यान फस फिर नहिं नैक सभलते देखा ॥

---

१ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, पृ० ४३७।

ललितकिसोरी जुगल इश्क मे बहुतो का घर घलते देखा ।
डूबा प्रेमसिन्धु का कोई हमने नही उछलते देखा ॥
देखो री, यह नद का छोरा बरछी मारे जाता है ।
बरछी-सी तिरछी चितवन की पैनी छुरी चलाता है ॥
हमको घायल देख बेदरदी मद-मद मुसकाता है ।
ललितकिसोरी जखम जिगर पर नौनपुरी बुरकाता है ॥[१]

इस तरह ललितकिशोरी जी भारतेन्दुयुगीन कविता की भक्तिधारा के प्रबल पोषक है । भगवान् की रासलीला का सुखानुभव प्राप्त करने के लिये कवि अपने को उस शृ गार सम्राट् श्रीकृष्ण का सखी घोषित करता है । यही कारण है कि वह कवि नाम सखी नाम के रूप म धारण करता है । उसकी भक्तिभावना मे सखीभाव की मधुर उपासना का स्वच्छ सरस प्रवाह बडा ही आह्लादकारी दृष्टिगोचर होता है ।

ललितमाधुरी

जीवन रेखा

आप भक्तप्रवर ललितकिशोरी के अनुज थे । इन लोगो की जन्म तिथि अज्ञात है । लखनऊ के नवाब घरानो से आपके परिवार का अच्छा सम्बन्ध था । वियोगी हरि ने लिखा है 'लखनऊ म साह बिहारीलाल अग्रवाल नवाब के जौहरी थे, इनके पुत्र साह गोबिन्दलाल जी थे । इनकी दो स्त्रियाँ थीं । पहली स्त्री के साह रघुबरदयालु जी और साह मक्खनलाल जा नाम के दो पुत्र हुए और दूसरी स्त्री के साह कुन्दनलाल जी और साह फुन्दनलाल जी ।[२] अत आपके बचपन का नाम साह फुन्दनलाल जी था ।

आप दोना भ्राताआ मे खूब गाढा प्रेम था । भारतेन्दु जी ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि—

'त्रेता म जो लछमन करी, सो इन कलियुग माहि किये ।[३] आप अपने अग्रज के साथ कौटुम्बिक कलह के कारण वृन्दावन चले आये । यदि आपके अग्रज के गुरु श्रीराधारमणीय गोस्वामी राधा गोबिन्द जी थे तो आपने अपने अग्रज का ही अनुकरण किया ।

आपने भगवद्गुणानुवाद ललित पदो के द्वारा किया है । आपकी कविता मे सखीभाव की उपासना लक्षित होती हे । सखिभाव की उपासना से मस्त होकर आपने अपना नाम ही ललितमाधुरी रख लिया । नाम से सखि रूप का ही आभास होता है । नीचे आपकी कविता-माधुरी का दर्शन अनुपमेय है—

श्रीवृन्दावन सहज ही ललित माधुरी रूप ।
ललित त्रिभगी भामिनी, नित्य विहार अनूप ॥[४]
आय ! कहा बिपरीति भई ।
जुगुल चद-मुखचन्द बिलोकन, डसी भुजगिनि बिन रदई ॥

---

१ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, पृ० ४३७ ४३८ ।
२ वियोगी हरि (सपादक) ब्रजमाधुरी सार, पृ० २६७ ।
३ ब्रजरत्नदास (सपा०) भारतेन्दु ग्रथावली, दूसरा खड, पद १६१, पृ० २६७ ।
४ कल्याण संतवाणी विशेषाक, पृ० ४३८ ।
वियोगी हरि (सपा०) ब्रजमाधुरी सार, पृ० २७८ ।

ललितमाधुरी बिरह बिथित अनि, कढत न प्रानहुँ कठिन दई।
मो अभाग के उदै भये कोउ, दपति प्रीति की रीति नई॥[1]

कृष्ण भक्ति म वृदावन का महत्वपूर्ण स्थान है। अत कवि वृन्दावन आन द का वणन करते हुए आत्म विभोर हो जाता है। उसकी यह त मयता देखते ही बनती है—

देखी बलि वृदाबन आनद।
नवल सरद निसि नव बसत रितु नवल सु राका चद॥
नवल मार पिक कीर कोकिला कूजत नवल मिलिद।
रटत श्रीराधे माधव मारूत सोतल मद॥
नवल किसोर उमगत खेलत, नवल रास रस कद।
ललित माधुरी रसिक दोउ वर, निरतत स्यि करफद॥[2]

कवि चितचोर श्रीकृष्ण का अन य उपासक है। वह उसकी रासलीला के निमित्त चौर्यकार्य की प्रशसा करता है—

मोहन चोर पकरि कैसे पाऊँ।
देखत ही दृग भरि भरि सजनी परसन को रहि रहि ललचाऊँ॥
दुरयौ निकुज लता बन बीथिन निपट निकट मैं तोहि बताऊँ।
ललितमाधुरी ही मे जो सग, चित्त चोरे हा आनि मिलाऊँ॥[3]

कवि कृष्ण की निकुज लीला का अनवरत निरीक्षण करने वाल च द्रमा से सहेट सयोग का सरस रस पान करना चाहता है—

कहा चद, दपति कुसलात।
मम जीवन धन प्रान पियारे दपति कौन कुज बिलसात।
तू छिन भल निहारे नख सिख लली-लाल सुकुमारे गात।
तौ तन दुति अति बदन बिपुलता कहै नेति छबि निरखत नात।
ध य ध य तू धनि ता जीवन कछु तौ करि बचनामृत पात।
ललित माधुरा जरे निरखई, कत अबोल द्रुम-ओटनि जात॥[4]

ब्रजमाधुरी सार का विश्वास है कि ललितकिसोरी के स्वर्गस्थ हो जाने पर जितने पद बनाये अपना नाम न रखकर ललितकिसोरी की ही छाप इ होंने दी है।[5]

इस प्रकार ललितमाधुरी की भक्तिभावना म सखीभाव की प्रधानता लक्षित होती है।

केशवदास जी महराज

जीवन रेखा

इनकी ज मतिथि अज्ञात है। मृत्यु के बारे म प्रयागदत्त ने लिखा है कि इनका देहान्त ई० सन् १६१० म हुआ।[6] इससे सिद्ध होता है कि ये भारते दुयुग के कलाकार हैं। ये एक भजनोपदेशक

---

१ वियोगी हरि (सपा०) ब्रजमाधुरी सार पृ० २७९।
२ कल्याण, सतवाणी विशेषाक पृ० ४३८।
३ वियोगी हरि (सपा०) ब्रजमाधुरी सार, पृ० २७९।
४ वियोगी हरि (सपा०) ब्रजमाधुरी सार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ० २७८।
५ वही, पृ० २७८।
६ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विदर्भ की देन, पृ० ६३।

थे। वेद का इन्होंने गहरा अध्ययन किया था। ये मराठी भाषी थे और तहसील सौसर के मोहगाव नामक ग्राम म रहा करते थे। हिन्दी और मराठी म पदो की रचना करते थे। इनका स्वर बडा ही मधुर था। फलस्वरूप स्वचरित पदो को गा गाकर लोगो का ध्यान आध्यात्म की ओर आकृष्ट करते थे।

ये नाथ सम्प्रदाय के अनुगामी थे। नागपुर की साहित्यिक एव आध्यात्मिक भूमि म आपकी काफी प्रतिष्ठा थी। आप कृष्ण के सच्चे उपासक थे। कृष्ण के कमल नयन को देखते ही ससार के समस्त गोरख धधे भूल जाते हैं। कृष्ण क बारे म उनका क्या विचार है यह कवि के शब्दो म सुने—

कमल नयन निरख नयन बिसर गई बधा।
देह से विदेह भई देखती स्वानन्दा॥
जमुना तीर भरन नीर श्याम सुदर आयो।
नाटक रूप देखत सखी मन मेरा सुख पायो॥
गोकुल मो दिखात नाही श्याम बिना कोई।
जहाँ तहाँ नद कुवर जहा बिसर गई दोई॥
तन मन हर श्याम जी ने प्रीति मो सो लाई।
केशव प्रभु मिलत रोम रोम सुख पाई॥[1]

आप एक सत कवि थ। अत उनके स्वर म सतो का स्वर प्रतिध्वनित होता है। सतो की उपदेशात्मक शैली का आपने पूर्णरूपेण अनुसरण किया है उदाहरणाथ यह पद उपस्थित है—

संतो का साथ करो दिल खोल के बात करो।
चारो का घात करो मेवा हाथ बना है॥
दास का भी सम्हाल करो चाहे सो अमाल करो।
पाचो को हमाल करो मेवा एक माल है॥
ओमय का गजर करो करना होय तो फजर करो।
तन मन की नजर करो उजर धम का नही है॥
कहे सद्गुरु शिवनाथ संत सग अजब सग।
सगत से तुकाराम पगत जा बठा है॥
कहता कवि केशवदास सुन प्यारे गोपाल जी।
जीना है कितने दिन काहे नर ऐसा है।[2]

कवि भारतेन्दु युग मे निर्गुण परम्परा का एक अच्छा कवि है। वे अपने को 'साहेब का सरदार' कहने म जरा सा भी सकोच नही करते हैं। उनका सद्गुरु पर पूर्ण विश्वास है।

सबका तो हिसाब क्या हमारा हजार हैं।
लाखो तो फाक हुए कामिल तो अपार है॥
अर्व खब का हिसाब नही पदमनिधि सार है।
मेरे मन खजाची कुबेर सा दिलदार है॥
कहे सद्गुरु शिवनाथ सुनसुन वे माखीचूस।
कमला वहा कमलापत साहेब सरकार है॥

---

१ वही, पृ० ६४।

२ श्रीप्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विदर्भ की देन, नागपुर, १९६१, पृ० ६५।

कहता कवि केशवदास नामनिधि ।
नामनिधि सुन सुन वे कगाल हम साहेब के सरदार हैं ॥[1]

आप भक्ति के क्षेत्र मे ज्ञानमार्ग के नही बल्कि प्रेममार्ग के अनुयायी थे। यही कारण है कि आप भेदभाव को प्रश्रय नही देते थे। आप कहते हैं—

जहा प्रेम परायण खूब बनी, तुलसी तु रिया रघुनाथ घनी।
गुरुनाथ निवृति ग्यान मनी, गुरु ज्ञान दियो लख दीन मनी।
सुन सूर, कबीरा खूब धनी, प्रभु तारलियो तुम दासी जनी।
गुरुदत्त दिगबर अलख धनी, तन एको जनार्दन आन बनी।
शिवनाथ निरजन ओट दनी, खुल देखलियो गोपाल फनी।
मुख नाम हृदी सुख प्रेम घनी, कवि केशवदास उदास धनी।[2]

अत वह श्यामसलोने के दर्शन की अभिलाषी है। श्याम सुन्दर के दर्शन से भय भाग जाता है। मानव जीवन की सार्थकता इसी मे है—

देखत श्याम सलोना वे, भय तो हुआ दिवाना वे।
त्रिकुट शिखर पर आसन डाला, कर भजनो की माला जी।
सोला मन की मन मे फेरे, पिया ब्रह्म रस प्याला।
सतरानी एक बाजा साथी, लागी नयन की पाती।
अलख निरजन आप जगावे, अजपा जप दिन राती।
अनुहत बाजा बिनन बाजे, मूंदे नव दरवाजा।
दसवी खिडकी खोला ताला, लख लख तेज विराजे।
तेज बिराजे आप श्रीरामा, नील वर्ण घन श्यामा।
जानकी नाथ अनाथ के बधु, सिदुरा चल धामा जी।
शिवनाथ ने बहुविध गाया, खुन कोई बिरला पाया।
केशवदास कहे कर जोरे, नाहक जन्म गमाया।[3]

कवि संसार की नि सारता को देखकर लोगो से मोह पाश को अन्त करने को कहता है। उसका विश्वास है, ससार म कितना दिन रहना है। सामने तो काल खडा है। अत है अभिमानी तू किस मद म भूला पडा है। कवि को मानापमान की फिक्र नही है। वह एक स्वर से सभी को मूर्ख कहता है—

मूरख! मोह हुआ है बे, हमने साहेब पाया बे।
बडा महल क्या करना खासा कितने छिन है जग बासा॥
काल खडा है अपने पासा, क्या सासा की आसा।
खाक भई सारी जिंदगानी, क्या भूला अभिमानी॥
एक घटी मो है धुल धानी, असमानी सुलतानी।
राम नाम कोई विरला पाया, पावन अमत खाया॥
एक पद त्व पद असि पद गाया, जाकर शून्य समाया।

१ वही, पृ० ६५।
२ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विदर्भ की देन, नागपुर, १९६१ ई०, पृ० ६१।
३ वही

नाथ निरंजन मेरे साई उनसे बात कमाई ॥
केशवदास उदासी साईं, कृष्ण गोपा न सवाई ॥[1]

कवि जानता है कि इस ससार म कोई किसी का नही है। इस ससार म यह एक तमाशा लगा है—

अजब तमाशा जग म देखा।
कोई न यहाँ पर रहे हजारो काल भुवन मे गये,
घन सुत जोरू माल खजाना।
यहा के यही रहे, कोई ना साथ कुछ ले गय,
टूटा नाता जग का सारा।
मात तात या कहो,
हमेशा कौन खान कू दये ॥
तीन दिना तो तिरिया रोवे, भाई कहा के गये।
अकेला आप अगन मो दहे,
हसा अकेला आप गया है।
कहो पुण्य क्या पाप किया है।
जग ने जी को ताप दिया है ॥
फेर नर्क मो पडा, लगा है चौरासी का धडा।
इन दुनिया मे कौन तुम्हारा क्यो गफलत मे पडा ॥[2]

इस प्रकार कवि अद्वतवादी नाथ सम्प्रदाय का अनुगामी होकर भी निगुण और सगुण के बीच का रास्ता पकडा है। उसे स्पष्ट रूप से निगुणवादी या सगुणवादी नही कहा जा सकता। उसके पदो पर मराठी का स्पष्ट प्रभाव है। सतो की परम्परा का निर्वाह अच्छा हुआ है। उसकी वाणी में कबीर की अक्खडता लक्षित होती है।

मारकण्डेय लाल

जीवन रेखा

इनका जन्म आजमगढ जिलान्तगत कोपागज नामक ग्राम म हुआ था।[3] इनका जन्मकाल अज्ञात है। ये १८६२ ई० से १९०३ ई० तक बिहार के मिथिला महाराज, लक्ष्मीश्वर सिंह तथा सूर्यपुरा के राजा श्रीराजाराजेश्वरीप्रसाद सिंह के दरबार मे रहे। बिहार की रसिक भूमि पर ही आपकी भक्तिलता पल्लवित एव पुष्पित हुई।

आपका देहान्त स० १९५३ वि० (सन् १८९६ ई०) मे हुआ था।[4]

कवि का अतस्तल भक्तिभाव से आतप्रोत है। उसकी रचनाओ मे निगुण तथा सगुण की भक्ति रस का परिपाक बडा ही हृदयग्राही हुआ है। कवि निगुण राम को नयनो से निहार लेने को कहता है, नही तो सोने जैसी देह मिटटी मे मिल जायेगी—

म रहते समय इनकी अवस्था ४० वर्ष की रही होगी। इसी कारण से ये भारतेन्दुकालीन हैं।

---

१ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य का विदभ की देन, नागपुर सन् १९६१ ई०, पृ० ६२।
२ प्रयागदत्त शुक्ल हिन्दी साहित्य को विदभ की देन, नागपुर, पृ ६३।
३ मिश्रबन्धु मिश्रबन्धु विनोद, भाग ४, पृ० १२९७।
४ हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २ के सम्पादक का यही अनुमान है कि आश्रयदाताओ के दरबार

छूटि जैहैं धाम ग्राम ऊपर अराम सारी,
बनै यह हमारो उर-अंतर मे डारी लै।
रहि जैहैं ह्याई हाथी घोडो ओ खजानो सवै,
एकौ नहिं जैहैं संग भलै हूँ विचारि लै॥
मानुष शरीर पाप राम सौं लगाय नेह,
'चोरजीव'[1] याहि विधि जीवन सुधारि ले।
सोना एसी देह यह माटी होय जैहे,
प्यारे कह्यो जो न मानै तौ तू नैनन निहारि लै॥[2]

हिंडोरे झूलत नन्दकिशोर।
श्रीनन्दनंदन प्रिया अलबेली, श्रीराधा - चितचोर॥
सूय कोटि, प्रति प्रभा बिराजत, दामिनि लक्षकरार।
हुलसि 'मार करो गुन गावत लखि लखि प्रभु की ओर॥[3]

कवि उपास्य-युगल की मधुर लीलाओं के दर्शन मे आत्मविभोर है। युगल सरकार को हिंडोले पर झूलते देखकर उसकी उत्कट अभिलाषा अभिव्यंजित होती है। उस सलोनी जोडी के प्रेमरस मे अपने को रमा देने की इच्छा प्रबल हो जाती है। इस पद मे कवि की अनन्यता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

रामचरणदास

जीवन रेखा

आप हिन्दी भक्ति जगत् म हंसकला जी के नाम से विख्यात थे। आपका जन्म सारन जिला के गगहरा नामक ग्राम म हुआ था। ये जाति के ब्राह्मण थे। बचपन का नाम नागा पाठक था। किशोरावस्था की देहली पर पहुचते ही आपके हृदय म विराग की भावना व्याप गई। अत आप गृहत्यागी विरागी होकर बैद्यनाथ धाम पहुँचे। यही आपको रामदास जी 'नृत्यकला' के दर्शन हुए। नृत्यकला जी एक पहुँचे हुए महात्मा थे। इन्हीं से आपने दीक्षा ली।

रामदास जी के आप अनन्य भक्त हो गये। वह सब ईश्वरीय प्रेरणा से ही हुआ। आप यही इनके साथ रहकर धार्मिक ग्रन्थो का अनुशीलन करने लगे। ईश्वर भजन और साधु सेवा ही आपको प्रिय था। महंत रामदास जी ने आपको अपने गुडहट्टा (भागलपुर) के श्रीराममन्दिर की महन्थी गद्दी देकर साकेत यात्रा की।[4] गुरु ने आपका नाम हंसकला रख दिया। आपको यहा बडी प्रतिष्ठा मिली।

आप बहुत बडे उपदेशक तथा भक्त कवि थे। आपके उपदेशो म भक्ति का अविरल स्रोत प्रवाहित होता है। आपके प्रवचन से प्रभावित होकर ही सीतारामशरण भगवान् प्रसाद रूपकला जी ने

---

१ आपका उपनाम चिरजीव था। यह कवि समाज द्वारा उपाधि इन्हे मिली थी। सम्मेलन पत्रिका, भाग ४५, स० १, पौष फाल्गुन १८८० वि० पृ० ६०।
२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार भाग २, पृ० १५६।
३ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० २७७।
४ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० १५६।

आपका शिष्यत्व स्वीकार किया ।[1] आपकी प्रसिद्धि म आज भी भागलपुर मे श्रीहसकला भगवत सकी संत-समाज स्थापित है ।[2]

आप हिन्दी एवं संस्कृत दोनो के ज्ञाता थ । आपने हिन्दी म एक धार्मिक पुस्तक 'राम महात्म्य चन्द्रिका का प्रणयन किया था ।[3] स्फुट पद्य की सख्या काफी है जिसस आपकी भक्तिभावना का पता चलता है ।

आप एक संतमार्गी कवि हैं । आपके विचार से यह संसार एक विचित्र पहेली है । यहाँ सभी लोग मोह पाश म बधे हैं । एक दूसरे को देखकर मोहवश मरते हैं । लेकिन सत्य तो यह है कि यहाँ कौन किसका है—

स्वांसहु मर या जियब की करै प्रतीति न कोय ।
ना जाने फिर स्वास को आवन होय न होय ॥
परिजन भाई बापु देखे देखत नित मरत ।
अमर मोह बस आपु माते अचरज कवन बड ॥

एकमात्र रामनाम ही सहारा है—

कोई निषिद्ध अरु त्याज्य सो जाते बिसरे राम ,
त्याग सूत्र यह साधु मन विधि जपिबो हरिनाम ।
पिय को पन पिय तबहि जब, आठ पहर तब नाम ,
पिय तेरो सुमिरन बिना जियबो कवने काम ।[4]

आपका देहान्त सन् १६१२ ई० मे हुआ ।[5]

महत स्वामी रामानुजदास

जीवन रेखा

स्वामी जी का जन्म जयपुर के हरसोलीली ग्राम म हुआ था ।[6] ये जयपुर के विशाल मन्दिर सीताराम जी के प्रसिद्ध महत थे । ये गौड ब्राह्मण कुल के थे । बाल्यावस्था म इनकी बुद्धि बडी तीव्र थी । बचपन से ही कवि पण्डितो के सत्सग म रहा करते थे । परिणामस्वरूप साधु संगत का अमिट प्रभाव इनके जीवन पर पड़ा । सयाने होने पर इनका विवाह कर दिया गया । लेकिन विवाह का इनके जीवन पर कोई प्रभाव नही पडा । ये भगवन्निष्ठ हो गये । अब इनका जीवन भजन, पूजा, ध्यान और स्वाध्याय म बीतने लगा । गृहस्थाश्रम म भी आप बड़े त्यागी पुरुष थे ।

आप एक अच्छे कवि थे । सुन्दर रचना करने म आपको दक्षता हासिल थी । आप रूपलता जी के शिष्य थे । आपने 'सीताराम रहस्य चन्द्रिका' नाम का एक अच्छा ग्रन्थ लिखा है । इस ग्रथ से

१ इनकी चर्चा अन्यत्र वर्णित है । देखो पृष्ठ ५०१ ।
२ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २, पृ० १५६ ।
३ इसका प्रकाशन सन् १६०२ ई० म मुगेर के रामधनी महतो नामक व्यक्ति ने किया था । माताप्रसाद गुप्त हिन्दी पुस्तक साहित्य, पृ० ५८१ ।
४ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, पृ० ५०८ ।
५ शिवपूजन सहाय हिन्दी साहित्य और बिहार, भाग २ पृ० १५६ ।
६ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, पृ० ७३० ।

ओपकी भक्ति का परिचय मिलता है । इस ग्रथ मे पट ऋतु विहार और अष्टयाम का वणन बहुत ही सुन्दर है । कवि का भक्तिभावना पर वल्लभ सम्प्रदाय की स्पष्ट छाप है ।

इनका सेवा प्रकार गहरी भक्ति और उच्च भावावस्था अनुपम थी । य बड़े ही सेवा ध्यान ज्ञान निष्ठ थे । इनकी अष्टयाम की रचनाएँ बहुत सरस और सार भरी हैं । इन्ही से भक्तिरस और सेवा रहस्य का तत्व अच्छा प्राप्त होता है । उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

रावरो विरद गरीब निवाज ।
सुनि सुनि मुदित होहु मन ही मन बानिक लखि महाराज ।।टेक।।
ग्रह कपि सिला उधारक रघुबर एक एक गुन देख ।
सो तिनू मम हिये भये ह्न तेहि ते कछुक विसेख ।
क्रियाशील हो अति किरात त चित नै द्रवै पखान ।
बदर ज्यों चचल विषयन म पशु ज्यो तृप्ति न मान ।
ऐसे सब गुनखानि तदपि कहा न करिहौ उद्धार ।
बहुरि आप नृपमणि दानी अति मैं नर नरक खुवार ।
लख चौरासी साग बनायेउ रीभेउ इच्छित देहु ।
नाहित कहहु छाडि तन रचना बडे आपने गेहु ।
मैं अति दीन दीनहित तुम मैं अज्ञ आप सर्वज्ञ ।
मैं अधमी तुम अधम उधारन मैं परवश तुम तज्ञ ।
वेद विदित पन राखि माधिये मोर और निज हेरी ।
रामानुज त्या जुगल माधुरी निरेखौ निसदिन तेरी ।।[१]

आप युगलस्वरूप के अनन्य उपासक हैं । आपकी भक्ति रागानुगा भक्ति है । कवि के प्रस्तुत पद पर गोस्वामी तुलसीदास का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।

आपका देहान्त स० १९३७ वि० माघ कृष्ण ३ को हुआ । [२]

---

१ कल्याण, सतवाणी विशेषाक, पृ० ७३० ।
२ वही, पृ० ७३० ।

उपसंहार

भारतेन्दु युग के साहित्यकार और कवि प्राचीन और नवीन के संगम पर खड़े थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उनके अगुवा थे। उन्होंने तद्युगीन साहित्यकारों को सजग किया, उन्हें एक नवीन सन्देश दिया और नवीनता को जन्म दिया। उनके सहयोगियों ने युग की धमनियों के साथ साहचर्य स्थापित कर उनके कार्य में सहयोग दिया। फलस्वरूप इन कवियों ने राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक आन्दोलनों का अनुसरण किया। उनकी विचारधारा मे प्राचीनता के प्रति मोह कम था, लेकिन नवीनता के प्रति विशेष आग्रह था। नवीनता का स्वर एवं नवचेतना का उद्‌बोधन इस युग के कवियों मे पाया जाता जाता है।

कविता पुरानी लीक को छोड़ कर देशकाल की परिस्थितियों के अनुसार आगे बढ़ रही थी। वह नए क्षेत्रों और विषयों की ओर मुड़ रही थी। उसका यह मोड़ बिल्कुल नया था। कवियों का उत्साह धार्मिक सुधार और राजनीतिक जागृति की ओर विशेष था। उनका दृष्टिकोण नया था। लेकिन कविता में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नही परिलक्षित होता है। नवीन काव्य शक्ति और कविता का नया रूप नये कलेवर के साथ उपस्थित हुआ। भाषा, भाव और शैली में प्राचीनता का पुट होते हुए भी एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की भूमिका की नींव पड़ गई। विद्रोह का स्वर मुखरित हुआ।

आंग्ल भाषा के प्रचार और प्रसार से भारतेन्दु के सहयोगियों ने नवीन युग का स्वागत किया। साहित्य की प्रत्येक विधा को इस युग ने प्रेरणा प्रदान कर उसका सफल मार्ग प्रदर्शन किया। परिणामस्वरूप व्यक्ति स्वातन्त्र्य और राष्ट्रीय भावना को विशेष अभिव्यक्ति मिली। कवियों की मस्ती कल्पना का पक्ष लेकर अधिक निद्वन्द्वता और संवेदनशीलता का साक्षी है। उनकी धमनियो मे परम्परागत रूढ़ियों के प्रति आक्रोश, सामाजिक बन्धनों के प्रति क्षोभ तथा वर्तमान परिस्थिति के प्रति असन्तोष का रक्त प्रवाहित हो रहा था। तात्पर्य यह कि रोमांटिक काव्य जगत् के विधायक तत्त्व जन्म ले रहे थे। इसी नींव पर भारतेन्दु युग का काव्य जगत् खड़ा है। इन आधुनिकताओं के बावजूद भारतेन्दुकाल में भक्ति की धारा बड़ी प्रबल है। भारतेन्दु का अधिकांश पद्य-साहित्य भक्ति-परक है तथा इस युग के सैकड़ों कवियों ने भक्तिपरक रचनाएँ की।

रीतिकाल के सान्ध्यकालीन प्रहरों में भारतेन्दु युग का आवागमन हुआ। रीतिकाल मे भक्ति का स्थान संकीर्ण था। वहां शृंगार ही सुरसरि मे राधाकृष्ण केवल सुमिरन के बहाना बन हुए थे। वासनामूलक नग्न शृंगार का अश्लील पट खुला था। राधाकृष्ण रीतिकालीन वातावरण में प्रमुख नायक-नायिका के रूप मे चित्रित हो रहे थे। उनके ही माध्यम से कलुषित शृंगार को अभिव्यक्ति मिली। भारतेन्दु युग रीतिकाल को एक चुनौती था। वह रीतिकालीन परम्परा के प्रति सर्वथा उपेक्षा का भाव रखता हुआ राधाकृष्ण के परम दिव्य रूप की आराधना के लिये अवसर प्रदान करता है। राधा कृष्ण के प्रति भक्ति काल के सैकड़ों वर्षों बाद यह श्रद्धा पहली बार अभिव्यंजित होती है।

भक्ति का क्षेत्र विस्तृत नही था। लेकिन अधानुकरण का विरोध तद्युगीन सभी भक्त कवियो की वाणी का विलास है। उन्होंने आध्यात्मिक चिन्तन के एक नये सोपान का सूत्रपात किया। यही समाज को सम्बद्ध करके नवीन दृष्टिकोण से नया समाज दर्शन प्रस्तुत किया गया। लेकिन इस विद्रोह या नयेपन में प्राचीनता के प्रति सहानुभूति थी। यही कारण है कि वैष्णवभक्ति अपनी परम्परागत

स्थिति मे परिलक्षित होती है। फलस्वरूप भारतेन्दु युग म म भक्ति की निम्नांकित साधनाएँ दृष्टिगोचर होती है—

(१) सगुण रामभक्ति शाखा।
(२) निर्गुण रामभक्तिशाखा।
(३) अष्टछाप की कृष्णभक्ति शाखा।
(४) राधावल्लभीय कृष्णभक्ति शाखा।
(५) हरिदासी सम्प्रदाय की राधाकृष्ण-युगल भक्ति शाखा।
(६) गौडी सम्प्रदाय की अष्टकालीन लीला भक्ति शाखा।
(७) नवधाभक्ति शाखा।
(८) सूफिया की मधुर भक्तिशाखा।

ग्यारहवी शताब्दी स जो धार्मिक आन्दोलन चला था, उसकी गति अत्यन्त शिथिल हो गई थी। फिर भी अनेक नये धार्मिक सम्प्रदाय इस युग म जन्म ले रहे थ। वैष्णव और शैव सम्प्रदाया का प्रचार अधिक था। परम्परागत वैष्णवता की सामान्य स्थिति थी। भक्ति के रगमच पर राम और कृष्ण के अतिरिक्त भारतेन्दु युगीन कवियो न दास्य और विनय भावनाओ से प्रेरित होकर शिवकाली दुर्गा गणेश आदि देवी देवताओ की उपासना की। उन लोगा ने धार्मिक तीर्थ क्षेत्रा-वृन्दावन मथुरा, काशी और गगा सरयू आदि पवित्र नदिया को काव्य विषय बनाकर सस्कृत का स्तोत्र शली म स्तोत्र की एक नई विधा ही उपस्थित कर दी। उपासना की इस नई विधा को इस युग म काफी मान्यता मिली। डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय न लिखा है कि विभिन्न देवी देवताओ की स्तुति करते हुए कवियो न पचक, अष्टक, पचीसी, बत्तीसी, चालिसी आदि की रचना की है। इन रचनाओ मे भक्तिकाल के अध्यात्म दर्शन का परिचय नही मिलता। उनम गाम्भीर्य नही है।[1] मिले तो कैसे मिले? भक्तिकाल भक्ति का युग था और भारतेन्दु युग सक्रान्ति का युग। यहा तो प्राचीनता का रूप परिष्कृत होकर नवीनता का आवाहन करता था। अत आध्यात्मिक चिंतन शली म भी नवीनता का होना आवश्यक था। फलत आध्यात्म का चिंतन सामाजिक दृष्टिकोण स होने लगा। यही कारण है कि प्रबन्धात्मकता का अभाव पाया जाता है। केवल फुटकर पदा का सृजन ही इस युग मे हुआ। इन फुटकर पदा म हृदय की सच्ची अनुभूति के बदले केवल धार्मिक सम्प्रदायो की शुष्क सरिता का छिन्न भिन्न प्रवाह दृष्टिगोचर हुआ। बाह्याडम्बर के प्रति विरोध की सूचना सभी कविया ने दी, जिससे भावात्मक आग्रह की जगह मन्दिरो का कठोर कर्म विधान अपना प्रभाव जमाने लगा। अत भक्ति चिंतन का प्रधान अग न होकर गौण रूप म ही परिलक्षित होती हैं। भारतेन्दु युग म काव्य के स्तर पर जो भी भक्ति का निरूपण है, उसका स्वरूप व्यापक आन्दोलन या सामाजिक व्याप्ति मे न होकर सीमित तथा सकीर्ण व्यक्तिगत धर्मनिष्ठा पर है। भारतेन्दु युग म जो भी भक्ति मिलता है, उसमे आस्था का साम्प्रदायिक रूप कम है।[2] फिर भी साम्प्रदायिक प्रवाह की ज्योति क्षीण नही हो पाई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाचरण गोस्वामी और रघुनाथदास रामसनेही आदि कविया की भक्ति भावना मे आध्यात्मिकता का ओज पूर्ण प्रवाह स्पष्ट दीख पडता है। इन कवियो की भक्तिभावना म मध्यकालीन सेवा पद्धति और कीर्तन पद्धति का अभाव सा पाया जाता है। जहा मध्यकालीन भक्तिभावना का अधानुकरण करने का प्रयास किया गया

---

१ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० ३३४।

२ हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (टंकित प्रति), नागरीप्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाश्यमान, पृ० ६०।

है जहाँ रसात्मक आग्रह की अभिव्यक्ति नवीनता का उद्घोष करती है। कवि व्यक्तिगत कल्याण की भावना से परे होकर सामाजिक कल्याण की भावना से उत्प्रेरित हो काव्य की सृष्टि कर रहे थे। उनमें स्वान्त सुखाय की भावना कम थी, लेकिन बहुजन हिताय की भावना का विशेष आग्रह था। कविवर भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीधर पाठक, बद्रीनारायण चौधुरी, बालमुकुन्द गुप्त, राधाकृष्णदास आदि की रचनाओं में भक्ति का यही नवीन रूप दृष्टिगोचर होता है। मध्यकालीन भक्तों की भांति उनकी भक्तिभावना स्वान्त सुखाय नहीं बल्कि बहुजन हिताय थी।

भारतेन्दु युग के रंगमंच पर भक्ति एवं साधना के नाम पर प्राचीन वैष्णवभावना को ही प्रश्रय मिला। यहाँ वैष्णवता की स्थिति सामान्य थी। कवियों के लिये आलम्बन नहीं थे। वे अब स्वतन्त्र थे। अतः उनकी भावनाओं में भावात्मक आग्रह ही परिलक्षित होता है। इस युग के साहित्यकारों में यह भक्ति विकसित अविकसित सामान्य विशेष जिस रूप में भी थी, विचारकता उसके केन्द्र में थी।[1] अतः भक्ति का रूप मात्र न होकर विचार प्रधान था। हृदय का अभाव और मस्तिष्क की प्रधानता थी। राम और कृष्ण दोनों के सगुण रूप प्रधान थे। निर्गुण की धारा क्षीण हो गई थी। संत सालिगराम, नर्मदेश्वर सिंह, बनवारी लाल मिश्र, मोरार साहब गुरु सहाय लाल आदि कवियों ने अपने उपदेशपूर्ण पदों को सर्वसाधारण में प्रचलित करके उसे बचाए रखा। इन कवियों की भक्ति भावना में उपदेशात्मकता का स्थान विशेष है। स्वयं भारतेन्दु जी के भी निर्गुण पदों की संख्या अधिक है। इन पदों में ज्ञान की मात्रा अधिक है। लेकिन साहित्यिक सौन्दर्य का अभाव पाया जाता है। भाषा में अरबी, फारसी, खड़ी बोली आदि का मिश्रण है। इन कवियों का विशेष अध्ययन नहीं था। इसी से भाषा का विकृत रूप ही दृष्टिगोचर होता है। केवल शुद्ध हृदय से भावों का उद्गार सर्वत्र परिलक्षित होता है। इस प्रकार निर्गुणभक्ति धारा का प्रवाह परम्परानुमोदित कूलों का स्पर्श करते हुए सगुण से सम्बन्ध जोड़ रहा था।

रामकाव्य

रामभक्ति का प्रमुख केन्द्र अयोध्या था। भारतेन्दुयुगीन राम भक्तिकाव्य के रंगमंच पर रीतिकालीन रसिक भावना का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। यहाँ राम कृष्ण से कम नहीं हैं। कवियों ने रामभक्ति में रसिकता का समावेश इस प्रकार कर दिया है कि राम का शील-सौन्दर्य शृंगार की हाट में खूब ठाट बाट से रसिक जनों के हृदय को द्रवीभूत कर देता है। भक्तजन राम के सौन्दर्य सागर में मर्यादा का अतिक्रमण कर जाते हैं। यहाँ राम तुलसी के राम से भिन्न हैं। वे कृष्ण की तरह अयोध्या और मिथिला की गलियों में विविध रसरंग में मस्त दीख पड़ते हैं। महाराज रघुराज सिंह भगवान् राम में अनंत सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करती है, ताकि भक्त जनों का चित्त उनके स्वरूप में रमा रहे और दर्शन की प्यास कभी भी शान्त न हो सके। भगवान् की रूपमाधुरी अपनी सुधा वृष्टि से उनके अन्तस्तल को सदैव पुलकायमान रख सके। राम कथा लेकर तद्युगीन कवियों ने कम रचनाएँ प्रस्तुत की है। मुक्तक शैली में विनायकराव, शिवप्रसाद, गुरुदत्त दास, रत्न हरिदास रामलोचन मिश्र आदि कवियों ने रचना की। भारतेन्दु जी ने तो राम कथा को लेकर एक रामलीला नामक चम्पू काव्य की सृष्टि की है। यह एक अत्यन्त छोटी सी रचना है। इसमें गद्य का प्रयोग कम हुआ है। जहाँ पर गद्य की सृष्टि की गई है, वहां केवल दो भावात्मक प्रसंगों को जोड़ने मात्र के लिये। इस तरह मुक्तक शैली में रामकथा काव्य की धारा राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप के संयम का अभि-

1 हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (टंकित प्रति), ना० प्र० सभा से प्रकाश्य, पृ० ८०।

व्यंजित नही कर पाती। राम का यह मर्यादा पुरुषोत्तम रूप भारत की दुर्दिनावस्था के लिए सह्य नही हो सका।

प्रबन्ध काव्य मे दृष्टिकोण से महाराज रघुराज सिंह का रामस्वयवर, बैजनाथ कुरमी का रामायण, बनादास का रामायण, चतुर्भुज मिश्र का रामायण, अभयकुमार का रसिकविलास रामायण और अडकूलाल वैद्य का पारजात रामायण प्रसिद्ध है। रामस्वयवर का प्रणयन काशी नरेश महाराज ईश्वरीप्रसाद सिंह की इच्छानुसार वाल्मीकि रामायण के आधार पर हुआ। तुलसी के समान ही इसकी रचना शैली है। विशेषकर विवाह प्रसग का उद्घाटन ही कवि को अभीष्ट था इसीलिये इसे रामस्वयवर नाम से अभिहित किया गया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी की शैली का हम दर्शन बनादास और बैजनाथ कुरमी के रामायण मे विशेष होता है। तुलसी के बाद प्रथम बार राम कथा काव्य की प्रबन्धात्मक यहाँ दृष्टिगोचर होती हैं। यहा प्रबध पटुता रचना शैली और वर्णनात्मक शैली का अच्छा परिचय मिलता है। कवि बाल-वर्णन, फुलवारी प्रसग, विवाह लका दहन आदि कथाओ का तथा शिशिर, बसत पावस आदि ऋतुओ का अति सुन्दर एव मनोरम दृश्य उपस्थित करता है। अभयकुमार के रसिक विलास रामायण की सृष्टि अपने ज्येष्ठ भ्राता के आज्ञानुसार हुई। इसम तुलसी की कवितावली और विनय पत्रिका की कवित्त शैली का अति सुन्दर उद्घाटन हुआ है। यहा कवि की वर्णनात्मक शैली का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है।

चतुर्भुज मिश्र एक मस्त कवि थे। उन्होंने चार रामायणो (आल्हा रामायण, गयावासी रामायण सरोज रामायण, मनोहर रामायण) का प्रणयन किया। इनमे खडी हिन्दी का प्रयोग मिलता है। कवि रामकथाकाव्य की एक नवीन शैली प्रदान करता है। कवि की प्रबन्धात्मकता पर इस नवीन प्रयोग से किसी प्रकार की आँच नही आ पाई है।

रघुनाथदास रामसनेही का विश्रामसागर नामक एक अच्छा ग्रन्थ इस युग म प्राप्त होता है। इसमे राम और कृष्ण दोनो चरित्र वर्णित है। कवि इसके अतिम खड म तुलसी के आधार पर राम चरित्र का वर्णन प्रस्तुत करता है। अवधी म लिखा गया यह एक अच्छा ग्रन्थ है।[1] इस तरह रोम रोम मे रमने वाल राम का चरित्र प्रबन्ध और मुक्तक दोनो शलियो म वर्णित हुआ। रीतिकालीन प्रवाह के कारण राम का शुद्ध मर्यादापुरुषोत्तम रूप शृगार मे अतिरंजित होकर अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया।

कृष्णकाव्य

कृष्णभक्ति का केन्द्र मथुरा एव वृन्दावन था। कृष्ण की महत्ता वैदिककाल म ही प्रतिष्ठित हो चुकी थी। राम की भक्ति उनके मर्यादा पुरुषोत्तम रूप के कारण अधिक व्यापक नही हो सकी। लेकिन श्रीकृष्ण का रूप तो यशोदा के छैया, दाऊ जी के भैया, वशी के बजैया, गोधन के चरैया तथा कालीनाग के नथैया के रूप मे अधिक प्रसिद्धि पा चुकी थी। फलत भारतेन्दुयुगीन कवियो के मस्तिष्क से राम का शील सम्पन्न सौन्दय पीछे पड गया। श्रीकृष्ण का मधुर रूप नयन मन मे घर कर गया। फलस्वरूप श्रीकृष्ण का रूप सौन्दय निम्नोक्त रूपो म अभिव्यजित होता है—

(१) व्यापक रूप मे

(२) नखशिख निरूपण के रूप मे

---

१ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के मतानुसार अवधी भाषा म लिखा गया एक यही अच्छा ग्रथ है। डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० ३४०।

(३) विशुद्ध भक्तिभावना के रूप मे

(४) भक्ति और विलासिता के सयोग रूप म

श्रीकृष्ण का मनोमुग्धकारी रूप युग परिवर्तन की वह्नि मे भस्मशात नही हो पाया। साहित्य की यह मूल प्रवृत्ति है। यह किसी भी काल म व्याप्त रहती है। सूरदास, नन्ददास, रसखान बिहारी, देव आदि कवियो ने कृष्णभक्ति की मजुल वेलि को सीचा। इसे ही भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी भी सींचें। मुक्तक एव प्रबन्ध दोनों की समान धारायें इस युग मे बही। श्याम के स्वरूप का वणन अत्यन्त व्यापक है। कृष्ण की सरस लीलाओ का मुक्तक शली मे विशेष वणन हुआ है। यहाँ भक्त कवियो ने श्रीकृष्ण-सौन्दर्य से नि सृत प्रेम की अनेक पयस्वनिया बहा दी है। सरस माधुरी, जानकीवर शरण राधावल्लम, व्रजवल्लम नारायण और ललितकिशोरी तथा ललितमाधुरी जी न कृष्ण रूप रसमाधुरी की मधुकरी प्राप्त करने के लिये अत्यन्त सरस वाणी मे विनय किए हैं

महाराज रघुराज सिह राम और कृष्ण म भेद नही रखते। उन्होंने अपने अनेक पदो मे श्रीकृष्ण की लीलाओ का बडा ही सुन्दर वणन उपस्थित किया है। उनके वर्ण्य विषयो मे हिंडोला, नखशिख होली आदि का बडा ही मोहक वणन हुआ है। होली प्रसग का स्पश करे तो भारतेन्दुयुगीन सभी भक्त कवियो ने किया है।

वैष्णव भक्ति मे भक्त भगवान् को रिझाने के लिये अपना नाम बदल कर निकुंज केलि मे प्रविष्ट हो जाता है। यहाँ इस परम्परा का निर्वाह पूणत पाया जाता है। ललितकिशोरी जी (साह कुन्दनलाल जी) और ललित मोहिनी जी (साह फुन्दन लाल जी) ने युगल दपति के निकुजविहार का आनन्द इस रूप मे लिया। अष्टछाप की आँधी यहा भी सुगबुगाने से नही मानी। भारतेन्दु जी अपने प्रियतम को रिझाने के लिये अपने कवि नाम (छाप) स्त्रीवत् रख सकने म समर्थ तो नही हो पाये, लेकिन मीरा के सन्निकट अवश्य पहुँच गये हैं। उनकी भक्ति म 'मीरा' की सी तन्मयता अवश्य पाई जाती है। उन्हें उपास्य की प्राप्ति का कोई ढग अरुचिकर नही है। वह प्रियतम की प्राप्ति के लिये पूणतया कटिबद्ध है। यदि नारी रूप मे श्याम-सौन्दय रस पान करने को मिले, तो कवि पीछे नही हटेगा और न वह लज्जा से मस्तक ही झुकाता है। वह तो हर प्रकार का स्वाग कर आराध्य का रंजन करता है।

भारतेन्दु जी मुक्तक काव्य के रचयिताओ मे सवश्रेष्ठ है। उनके पदो मे मानस की सरस अभिव्यजना प्राप्त होती है। यहाँ पर रीतिकाल के वासना की गध नही बल्कि भक्ति की सच्चाई ही परिलक्षित होती है। यद्यपि कि वण्य विषय वही रहा है, लेकिन नूतन भावनाओ की सृष्टि करने मे भी कम कमाल नही किया है। मुक्तक शली मे भारतेन्दु जी अष्ट छाप के उपरान्त पहले हैं जो डेढ सहस्त्र पदो का सृजन करते हैं। अष्टछाप के बाद यह युग कृष्ण-कथा-काव्य को एक चुनौती देता है।

कृष्ण कथा का लेकर प्रबन्ध काव्य की सृष्टि इस युग म एक दम नही हुई है। महाराज रघुराज सिह का 'रुक्मिणी परिणय' प्रबन्ध की दृष्टि से एक रचना उपलब्ध है। इसका आधार भागवत है। इसम कृष्ण जन्म से लेकर रुक्मिणी विवाह तक की कथा जो कवि सगुम्फित करता है। वणन अनेक छन्दों में प्रस्तुत है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृष्ण अपने विष्णु रूप म प्रतिष्ठित न होकर गोपीवल्लभ के रूप मे बहु चर्चित हुए। उनका पौराणिक रूप प्राय लुप्त होने लगा था। बहुत कम कवियो ने उनके पौराणिक रूप की चर्चा की। विशेष गोपीवल्लभ के रूप मे उनको सम्मान मिला। लेकिन उनका गोपी वल्लभ रूप भी रीतिकाल के रगमच से उतर कर ब्रजवनिताओ के शुद्ध हृदय मे बस गया था। वहाँ प्रेम की सच्ची टीस थी। रीतिकाल मे लौकिक रसिकता म बहने वाले श्रीकृष्ण का रूप माधुय भक्ता

के हृदय पटल पर अंकित हो गया। शृंगार की रसवती धारा अपने कगारा के बीच से बहने लगी। भारतेन्दु युग ने अपनी नवीनता से वासनामूलक शृंगार के कपाट का सदैव के लिये बंद कर दिया।

हिन्दू धर्म म विभिन्न देवी देवताओ की उपासना अति प्राचीन है। इस युग म शिव, दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी आदि की उपासना के पदो का सृजन हुआ है। शिव-उपासना के लिये नर्मदेश्वर सिंह का शिवा शतक स्तुत्य रचना है।

इस प्रकार भारतेन्दु युग की भक्ति मे राम एव कृष्ण के निगुण तथा सगुण दोनो रूपा की व्याख्या की गई है। यहाँ 'सूरदास की सी दीनता, रसखान की सी भरमता, मीरा की सी तन्मयता के दर्शन होते हैं, तो कबीर की सी वैराग्यमूलक अक्खडता भी परिलक्षित होती है। शृगार का सकोच और प्रेम का मर्मस्पर्शी आग्रह भक्तजनो का आह्वान करता है। भक्त प्रेम की रज्जु स अपन को बाँधने का लालायित है। इस तरह उसका भक्ति मे स्वान्त सुखाय का भावना लुप्त हो जाती है और बहुजन हिताय की भावना का बीज पनप उठता है। फिर तो भक्ति विश्व बन्धुत्व की तरफ अग्रसरित हो जाती है। भक्ति का यही बहुजन हिताय वाला नया रूप इस युग म जन्म लेता है।



सहायक-ग्रन्थ

अनुसंधान का स्वरूप	सं० डा० सावित्री सिन्हा, प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।
अनुसंधान की प्रक्रिया	डा० सावित्री सिन्हा, प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
अनुसंधान का विवेचन	डा० उदयभानु सिंह, प्रकाशक, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली।
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय	डा० दीनदयाल गुप्त, प्रकाशक, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन	डा० मायारानी टंडन, प्रकाशक, हिंदी साहित्य भण्डार, लखनऊ।
आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्रकाशक, हिंदी परिषद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय।
आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धांत	डा० सुरेशचंद्र गुप्त, प्रकाशक, हिंदी साहित्य संसार, दिल्ली।
आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धांत और समीक्षा	डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, प्रकाशक, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और सौन्दर्य	डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग, हाउस, दिल्ली।
आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास	डा० कृष्णशंकर शुक्ल, प्रकाशक, हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस।
आधुनिक काव्यधारा	डा० केसरीनारायण शुक्ल, प्रकाशक सरस्वती मंदिर बनारस।
आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत	डा० केसरीनारायण शुक्ल, सरस्वती मंदिर, बनारस।
आधुनिक हिंदी कविता में चित्र विधान	डा० रामयतन सिंह भ्रमर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
आधुनिक हिंदी काव्य में वात्सल्य रस	डा० श्रीनिवास शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली।
आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ	डा० मोहनवल्लभ पंत, सरदारवल्लभ भाई विद्यापीठ, गुजरात।
आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा० रामगोपाल सिंह चौहान, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
उन्नीसवीं शताब्दी	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी साहित्य प्रकाशन, प्रयाग।
उत्तरी भारत की संत परम्परा	परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद।
श्रीहितहरिवंश	ललिताचरण गोस्वामी, वेणु प्रकाशन, वृंदावन।
श्रीधर पाठक तथा हिंदी का पूर्व स्वच्छंदतावादी काव्य	डा० रामचंद्र मिश्र, रणजीत प्रिंटर्स, दिल्ली।
श्रीमद्भगवद्गीतारहस्य कर्मयोगशास्त्र	बाल गंगाधर तिलक, अनुवाद, माधवराव सप्रे।
श्रीचंद्रावली नाटिका	*संपादक, व्यथित हृदय, स्टूडेंट्स फ्रेंड्स, प्रयाग।*
रतनेश शतक	रामरत्न शर्मा सनाढ्य 'रतनेश', नेशनल प्रेस, कानपुर।
तुलसीकृत रामायण (बालकाण्ड)	बैजनाथ कुर्मी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

भारतीय साहित्य की सांस्कृति क रेखाएं	परशुराम चतुर्वेदी, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
भागवत दर्शन	डा० हरवंशलाल शर्मा, भारत प्रकाशन, अलीगढ।
भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा	बलदेव उपाध्याय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना।
भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द्र का सचित्र जीवनचरित्र	राधाकृष्णदास, तारा प्रेस, बनारस।
भारत गीत	श्रीधर पाठक, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
भारतेंदु की कविता	शिवनाथ, बच्चन सिंह, युगाश्रय प्रेस, बनारस।
भारत में बृटिश साम्राज्य	गंगाशंकर मिश्र, बिड़ला हिन्दी प्रकाशन, बनारस।
भारतीय राष्ट्रवाद की हिंदी साहित्य में अभिव्यक्ति	डा० सुषमा नारायण हिंदी साहित्य सम्मेलन दिल्ली।
महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग	डा० उदयभानु सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय।
मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन	डा० सत्येंद्र, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
मध्यकालीन धर्मसाधना	हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद।
मनोविनोद	श्रीधर पाठक, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
मराठी हिन्दी कृष्ण-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन	डा० रा० र० केलकर, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली।
मिश्रबंधु विनोद १ (भाग)	मिश्रबंधु, हिंदी ग्रंथ प्रसार मण्डली, प्रयाग।
भाग २	खण्डवा।
भाग ३	गंगा पुस्तकालय, लखनऊ।
मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन	डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, सेंट्रल बुकडिपो इलाहाबाद।
युग और साहित्य	शांतिप्रिय द्विवेदी, इण्डियन प्रेस, प्रयाग।
राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य	डा० विजयेंद्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
राधाकृष्णदास ग्रंथावली	सम्पादक श्याम सुंदरदास, इण्डियन प्रेस, प्रयाग।
रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय	डा० भगवती सिंह, अवध साहित्य मन्दिर, बलरामपुर।
रसिकविलास रामायण	अभयकुमार, बिहार बंधु प्रेस, बाकीपुर, पटना।
रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना	डा० भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना।
रीतिकाव्य की भूमिका	डा० नगेंद्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
वैष्णव धर्म	परशुराम चतुर्वेदी विवेक प्रकाशन, प्रयाग।
विनयपत्रिका	सम्पादक हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर।
वाङ्मय विमर्श	विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य कुटीर, बनारस।
श्यामास्वप्न	जगमोहन सिंह, सम्पादक डा० श्रीकृष्णलाल, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
शिवा शिवशतक	नर्मदेश्वर सिंह, सम्पादक नकछेदी तिवारी, भारत जीवन प्रेस, काशी।

शिवसिंह सरोज	शिवसिंह सेंगर, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।
सूफीमत और हिन्दी साहित्य	डा० विमलकुमार जैन, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।
सूरदास	रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मन्दिर, वाराणसी।
सूरदास और भगवद्भक्ति	डा० मुंशीराम शर्मा, साहित्य भवन, इलाहाबाद।
साहित्य प्रकाश	रमाशंकर शुक्ल, इण्डियन प्रेस प्रयाग।
सचित्र हरिश्चन्द्र	शिवनन्दन सहाय, खड्ग बिलास प्रेस, बांकीपुर।
साहित्य चर्चा	ललिता प्रसाद सुकुल, हिन्दी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता।
सुकवि सरोज	गौरीशंकर द्विवेदी (संपादक), सनाढ्यादर्श ग्रंथमाला बुन्देलखण्ड।
संतसाहित्य की सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डा० सावित्री शुक्ल लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन।
संतकाव्य	परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद।
सूर सौरभ	डा० मुंशीरामशर्मा शुक्ल साधना, कानपुर।
संत साहित्य	डा० सुदर्शन सिंह मजीठिया रूपकमल प्रकाशन दिल्ली।
हिन्दी काव्य की भक्ति कालीन प्रवृत्तियां और उनके मूल स्रोत	सत्यदेव चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सृजन परिषद, जौनपुर।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा रामनारायण लाल, इलाहाबाद।
हिन्दी कविता मे राष्ट्रीय भावना	डा० विद्यानाथ गुप्त, भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली।
हिन्दी साहित्य को बिहार की देन	कामेश्वर शर्मा, सुहृद प्रकाशन, मुजफ्फरपुर।
हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास	रामबहोरी शुक्ल हिन्दी भवन, जालंधर।
हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास	डा० गुलाबराय, साहित्यरत्न भण्डार, आगरा।
हिन्दुत्व	रामदास गौड ज्ञानमण्डल, काशी।
हिन्दी साहित्य	श्यामसुन्दरदास, इण्डियन प्रेस, प्रयाग।
हिन्दी काव्य की निर्गुण काव्यधारा मे भक्ति	डा० श्यामसुन्दर शुक्ल बनारस विश्वविद्यालय।
हिन्दी काव्यधारा	राहुल सांकृत्यायन, किताब महल इलाहाबाद।
हिंदी और मराठी का निर्गुण संत काव्य	डा० प्रभाकर माचवे, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी।
स्फुट कविता	बालमकुन्द गुप्त, सम्पादक यशोदानन्द अखौरी, भारत मित्र प्रेस, कलकत्ता।
संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह दिनकर राजकमल दिल्ली।
सिक्ख गुरुओ की जीवनी	शिवनन्दन सहाय नागरीप्रचारिणी सभा, आरा।
हिन्दी साहित्य का विकास	कृष्णानन्द पंत, ब्रह्मानन्द ब्रदर्स, मेरठ।
हिन्दी के कृष्णभक्ति कालीन साहित्य मे संगीत	डा० उषा गुप्ता, लखनऊ विश्वविद्यालय।
हिन्दी साहित्य की भूमिका	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई।
हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास	चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली।

हरिश्चन्द्र चन्द्रिका ,,
नागरी प्रचारिणी पत्रिका

तथा

साहित्य सन्देश, धर्मयुग, हिन्दुस्तान, कल्याण, वीणा, सरस्वती सम्वाद, परिषद पत्रिका।

अवध भारती सम्मेलन पत्रिका	गायकवाड ग्रन्थालय, बनारस।
सुधा	बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटना में सग्रहीत।
सरस्वती	,,
प्रदीप विद्याविलास हिन्दी नाट्यपत्र।	डा० मधुकर भट्ट के सौजन्य से।
कविवचनसुधा	भारतकलाभवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय सग्रह।
हरिश्चन्द्र मैगजीन	ब्रजरत्नदास सग्रह से।

हस्तलेख

हसदूत	नागरीप्रचारिणी सभा, काशी।
बालकृष्ण भट्ट की डायरी	डा० मधुकर भट्ट, के सौजन्य से।
पारिजात रामायण	नागरीप्रचारिणी सभा पुस्तकालय।
श्रीरामनाम महिमा	राष्ट्रभाषा परिषद् पटना।

UD